जनवरी १९६९
यी तालीम

शिक्षकों, विद्यार्थियों एवं समाज सेवियों के लिए २०.००

चुनाव और शिक्षक

पिछले हफ्ते की बात है। मैं देहात के एक मिडिल स्कूल के किनारे से होकर सडक पर जा रहा था। स्कूल के विद्यार्थी सामने की खुली जगह में इकट्ठा बैठे हुए थे। स्कूल के एक नवजवान शिक्षक विद्यार्थियों के बीच में खडे होकर उन्हें मध्यावधि चुनाव के बारे में कुछ कह रहे थे। शिक्षक और शिक्षण में गहरी दिलचस्पी होने के कारण क्षणभर के लिए मेरे कदम रुक गये। मैं नवजवान शिक्षक की बातों को कान लगाकर सुनने लगा। शिक्षक का ध्यान मेरी ओर गया। वे पलभर के लिए चुप हो गये। कुछ देर तक मुझे पहचानने की कोशिश करने के बाद उन्होंने अपना भाषण फिर से शुरू कर दिया। वे विद्यार्थियों को बता रहे थे कि मध्यावधि चुनाव में वे भारतीय क्रान्ति दल के प्रत्याशी को विजयी बनाने में पूरी ताकत लगायेंगे। उन्होंने विद्यार्थियों से कहा कि वे अपने माता-पिता और सगे-सम्बन्धियों का वोट भारतीय क्रान्ति दल के प्रत्याशी को ही दिलाने की कोशिश करें, क्योंकि भारतीय क्रान्ति दल किसानों की सबसे ज्यादा भलाई चाहनेवाला दल है।

वर्ष : १७
अंक : ६

नवजवान अध्यापक जब अपनी बात कह चुके तो विद्यालय के प्रधानाध्यापक मेरे करीब आये। उन्होंने मुझसे पूछा — "आप किस दल के हैं ?"

आजादी के बाद हमारे देश मे जो शासन-प्रणाली शुरू हुई उसकी बहुत बड़ी अच्छाई यह है कि वह हर बालिग को शासक चुनने के मामले में अपनी पसन्द प्रकट करने का मौका देती है। इसका सबसे बड़ा फायदा यह है कि शासक के निकम्मा साबित होने पर उसे बदलने का लोगों को मौका मिलता है। इस प्रणाली की एक दूसरी अच्छाई यह है कि सामाजिक क्रान्ति की प्रक्रिया को लागू करने के लिए न छिपा षडयंत्र करने की आवश्यकता है, न संघर्ष करने की। जनता के वोट में क्रान्ति की शक्ति का स्रोत है। हमारा २१ साल पुराना लोकतंत्र चाहे जितना अधूरा हो, लेकिन उसने सामाजिक परिवर्तन के जो अवसर खुले रखे हैं, वे विकास की दृष्टि से अनमोल हैं। किन्तु लोकतंत्र के इस अनमोल अवसर ने ही हमारे राष्ट्र के सामने दुहरी समस्या उपस्थित कर दी है—एक है अपने नागरिक-अधिकारों की रक्षा और दूसरी है, लोकतंत्र-विरोधी शक्तियो से लोकतंत्र की रक्षा।

पिछले २१ वर्षों के लोकतंत्र के प्रयोग के दौरान हमने मान लिया कि जनता वोट देकर अपने प्रतिनिधि चुन ले और चुने हुए प्रतिनिधियों के बहुमत की सरकार बने तो लोकतंत्र शक्तिशाली होता चला जायेगा। अब तक हमने यह नही समझा था कि वोट प्राप्त करने की रीति-नीति के कारण लोकतंत्र दुर्बल और क्षतिग्रस्त भी हो सकता है। आज जातिगत चुनाव-पद्धति के कारण न केवल राजनैतिक जीवन मुरझाने लगा है, बल्कि सामाजिक और आर्थिक जीवन मुर्दार होता जा रहा है।

आज चुनाव की पद्धति ने देश के जीवन मे जो मंथन पैदा किया है, उससे स्पष्ट है कि उम्मीदवार चुनने की जातीय कसौटी लोकतंत्र के लिए स्वस्थ परम्परा नही है। शिक्षण-संस्थाओं को इस मामले मे अविलम्ब अपना रंग-ढग बदलना चाहिए और तय करना चाहिए कि लोकतंत्र के विकास मे उनका क्या रोल है।

विनोबाजो द्वारा प्रस्तावित 'आचार्यकुल' इस दिशा मे हमारा मार्गदर्शन कर सकता है। क्या हमारे शिक्षकों को यह बात सूझेगी या देश राजनीति के ही भरोसे रहेगा? •

आचार्यों की जिम्मेवारी

विनोबा

अभी तक भारत में ६३ हजार के ऊपर ग्रामदान हुए हैं और बिहार में २३ हजार के ऊपर। इतने ग्रामों के लोगों ने अपनी जमीन की मिल्कियत गाँवसभा को अर्पण की। जमीन का बीसवाँ हिस्सा भूमिहीनों को देने का, आमदनी का चालीसवाँ हिस्सा हर साल गाँव के विकास के लिए गाँवसभा को देने का, वचन दिया। इतना सारा जनता कर रही है। उसका दिल खराब नहीं, अच्छा है। लेकिन एक हवा-सी बन गयी है, उसके लिए कौन जिम्मेवार है ? हम सब जिम्मेवार हैं—अपनी-अपनी रीति से। यह अलग बात है कि जिन लोगों ने सारे देश की जिम्मेवारी उठायी, जनता ने जिनको टैक्स और वोट दिये, उनकी जिम्मेवारी ज्यादा है। वे खुद मानते हैं और लोग भी कहेंगे कि यह ठीक है। लेकिन जहाँ तक नैतिक जिम्मेवारी का सवाल है, मानना चाहिए कि हमारी जिम्मेवारी है। जिस किसी की जिम्मेवारी मानी जाय, देश में अराजकता है, यह देखने को मिलता है। जहाँ देखो वहाँ दंगे, कशमकश। वर्धा बहुत बड़ा नगर नहीं। लेकिन महात्मा गाँधी, जमनालालजी, किशोरलाल भाई, कुमारप्पा ऐसे बहुत सज्जन लोग वहाँ उस स्थान में रहे हैं। अभी मुरारजी देसाई वहाँ गये थे, तो वहाँ के लोगों ने उनकी मोटर पर पत्थर फेंके। फलाना कारखाना वर्धा में खोलो, यह उनकी माँग थी चर्चा चली होगी कि वहाँ खोला जाय। तो वर्धा में खोला जाय, इसलिए वर्धा के लोगों ने मोटर पर पत्थर फेंके। वर्धा को गाँधी का स्थान और पवित्र नगरी समझकर हजारों लोग दर्शन करने के लिए आते हैं। वहाँ ऐसे दंगे होते हैं। पूरे देश की यह हालत है। ऐसी हालत में जिम्मेवारी की चर्चा व्यर्थ है।

समझना चाहिए कि सरकार के बाद अगर किसीकी जिम्मेवारी है, तो वह आचार्यों की। और वह नम्बर दो में मानी गयी है, क्योंकि भारत में 'डिमोक्रेसी' है, और लोगों ने सरकार को वोट दिये हैं। पर जरा तटस्थ

बुद्धि से देखा जायेगा, तो माना जायेगा कि प्रथम जिम्मेवारी आचार्यों की ही है, क्योंकि वह ज्ञानी वर्ग है। आचार्य विद्वद् जन हैं। उनके नेतृत्व में, मार्ग-दर्शन मे सब देश का कारोबार चलना चाहिए। यह नही कि कानूनी तौर पर वे दखल दें। लेकिन किसी विषय पर उनकी जो सर्वसम्मत राय होगी, उसकी ओर ध्यान न दिया जाय, उसे टाला जाय, तो देश खतरे में है। ऐसे आचार्य-कुल भारत मे बनें तो उसका असर यू० एन० ओ० पर भी पड सकता है। ऐसी गर्भित चीज है आचार्यकुल। इस पर हमारे मुख्य दो व्याख्यान हुए हैं जो पुस्तक रूप* मे प्रकाशित हो चुके हैं। उत्तर प्रदेश के आचार्यों ने हमें सुझाया कि इसमें आचार्यों के अलावा और भी जो तटस्थ बुद्धि रखते होंग, सम-वयपुक्त चिन्तत करते होंगे, ऐसे विद्वान् भी शामिल हो। हमने यह बात मान ली है। विद्वान, अध्ययनशील, चरित्रवान पक्षमुक्त एसे जो लोग होंगे वे भी इसमें आ सकेंगे।

यह सारा आपके सामने इसलिए रख रहा हूँ क्योंकि एक नवशक्ति भारत में प्रकट हो रही है। और आप लोग एसे भाग्यवान हैं कि इसका आरम्भ बिहार में आपकी ओर से होगा।

प्रश्न : प्रतिज्ञापत्र में यह भी जोडा जाय कि व्यसन की या नशीली चीजें नही लेंगे आदि।

विनोबा सुझाव वो अच्छा है, लेकिन सोचना यह है कि उसका उद्देश्य क्या है? ऐसी व्यक्तिगत शुद्धि की प्रतिज्ञा करनी हो, तो यह भी जोड सकते हैं कि रिश्वत लेंगे नही, देंगे नही। यह भी कह सकते हैं कि जितना हो सकता है, उतना स्वदेशी माल का ही उपयोग करेंग। और भी कई चीजें जोड सकते हैं। लेकिन यह जोडना उसके उद्देश्य के साथ जँचता नही। उद्देश्य यह है कि आपकी स्वतन्त्र शक्ति खडी करनी है। व्यक्तिगत शुद्धि के लिए तो महात्मा गाधी ने जो कहा है, वही पर्याप्त है। सत्य, अहिंसा ब्रह्मचर्य, संयम, शरीरश्रम अस्वाद, सब धर्म का समन्वय स्वदेशी, स्पर्शभावना—यह सारा व्यक्तिगत शुद्धि के लिए है। महात्मा गाधी ने हमसे इसकी प्रतिज्ञा करवायी। व्यक्ति की प्रतिज्ञा यो—विश्वहित के अविरोधी भारत की सेवा करूँगा। और उसके लिए नीचे के नियम यो कहकर एकादश व्रत दिये। व्यक्तिगत शुद्धि का आन्दोलन सारे जमात को लागू करेंगे तो वह आपको भी लागू होगा। वह समाज शुद्धि की बात है। वह प्रतिज्ञा तो गाँव में हर मनुष्य से करवानी

---

* 'आचार्यकुल मूल्य एक रुपया। सर्व सेवा सघ प्रकाशन राजघाट, वाराणसी–१

होगी। लेकिन आपके लिए जो विषय है, जो प्रतिज्ञा आपको लेनी है, उससे आपकी स्वतन्त्र शक्ति खड़ी करनी है। यह प्रयत्न करना है।

आचार्य का अर्थ—जो सबको आचरण सिखाता है, उसका नाम आचार्य। "यद्यद् आचरति श्रेष्ठ"—श्रेष्ठ पुरुष जो आचरण करते हैं, उसका अनुकरण सब करते हैं। आज अगर लोगों से पूछा जाय कि कौन श्रेष्ठ पुरुष है, तो किसी मन्त्री का नाम ले लेंगे। वे जानते नहीं कि ये मन्त्री तो उनके पाँच साल के नौकर हैं। आज तो कहेंगे, "यद् यद् आचरति मिनिस्टरः।" तो श्रेष्ठ यानी मिनिस्टर यह कल्पना होगी, तो उसे हटा दीजिए, क्योंकि मिनिस्टर ने बहुत तमाशे करके दिखाये हैं। अगर पूछेंगे कि श्रेष्ठ मानी कौन ? तो यही उत्तर मिलेगा कि आचार्य। अब यह जमात भी शराब पीती हो और झूठ भी बोलती हो, किस्मत की बात है कि व्यभिचार करेंगे नहीं, ऐसा लिखने के लिए नहीं सुझाया। सामान्य नीतिशास्त्र जो है वह आपसे प्रचारित होनेवाला है, तो उसको संकल्प-पत्र में दर्ज करने की बात ही नहीं। मान लीजिए, कोई शिक्षक ऐसा है, जो शराब पीता है, या झूठ बोलता है, तो उसको प्रेम से समझा सकते हैं। वह नहीं समझेगा, तो फाका कर सकते हैं सब मिलकर, उसको हटा भी सकते हैं। चरित्र यानी शील और ज्ञान, ये दो बातें शिक्षकों में प्रधान हैं, उनके साथ-साथ समाज के लिए और विद्यार्थियों के लिए कर्तव्य। ये तीन गुण मिलकर आचार्य बनता है। शिक्षकों के लिए ये तीन यानी शील, ज्ञान और कर्तव्य, अत्यन्त आवश्यक बातें हैं। और हमने मान लिया कि इनके आधार से ही आचार्यकुल खड़ा होगा।

शिक्षा और शिक्षक सरकार के द्वारा

यह दुश्चक्र (विशस सर्कल) है। इसमें शक नहीं कि आज शिक्षकों की हैसियत नौकर की हैसियत है वे ऊपर से आज्ञांकित हैं। हमने यह पहचान लिया कि यह ठीक नहीं। पहचानना ही मुख्य वस्तु है। मान लीजिए, आपने पहचाना नहीं, तो कोई भी प्रणाली काम देगी नहीं। अगर पहचान हो, तो यह आत्मशक्ति की पहचान ही शक्ति है।

आज सारी शिक्षा सरकार के हाथ मे है। भारत मे जरा कम ही है, लेकिन दुनिया भर की सब सरकारें शिक्षा को अपने हाथ में लेकर विद्यार्थियों का दिमाग एक ढांचे में ढालने की कोशिश कर रही हैं। रूस मे क्या है ? चीन में क्या है ? कुल शिक्षा उनके इशारे पर चलेगी। ऐसा ही फैसिज्म में चला। एक ओर हर व्यक्ति को वोट का अधिकार और दूसरी ओर उनका दिमाग

एक सिस्टम में ढालने का प्रयास चल रहा है। लेकिन अगर आपने अपनी शक्ति का खयाल किया और आपको आत्मा का भान हुआ, तो जैसा कि शंकराचार्य ने कहा और उपनिषदों में कहा है—आत्मा की पहचान जिस क्षण हुई, उसी क्षण आप मुक्त हुए, सब बन्धनों से अलग हुए, पुरानी जजीरें टूट गयीं। मुक्तिदाता है ज्ञान। आत्मा का ज्ञान, आत्मा का साक्षात्कार। वह न हुआ तो एक-एक बंधन तोड़ते जायें तो भी पुराने बंधन टूटते जायेंगे और नये बंधन तैयार होंगे, नये कानून आयेंगे। इसलिए प्रथम अपनी शक्ति की पहचान होनी चाहिए।

प्रश्न : क्या आचार्यकुल केवल आचार्यों तक ही सीमित है? शिक्षकों का समावेश उसमें क्यों नहीं किया गया है?

विनोबा : इसमें तमाम शिक्षकों का समावेश है। लेकिन आरम्भ चीज का कहाँ से होगा? गभीर गुफा से। गगा का आरम्भ कहाँ से हुआ है? हिमालय की गभीर गुफा से। और फिर धीरे धीरे वह गंगा सागर में चला आयेगा, जहाँ तमाम शिक्षक शामिल होंगे। इसलिए प्रथम प्रोफेसर्स से आरम्भ किया है। शिक्षक और आचार्य में हमने फरक नहीं किया है।

[बेतिया, जिला चंपारण ६-८ '६८]

क्या आप जानते हैं ?

१२ वर्षों में राज्य-कर्मचारियों की तादाद दूनी हुई !

'यू० एन० आई०' के बंबई स्थित कार्यालय द्वारा प्रस्तुत एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में आज हर ५० व्यक्ति में १ आदमी केन्द्रीय सरकार, राज्य-सरकार, अर्द्ध सरकारी संस्था या स्थानीय निकाय का कार्य सम्पादन कर रहा है।

'फोरम ऑफ फ्री इण्टरप्राइज' नामक सगठन के अध्ययन के प्रतिवेदन में कहा गया है कि सन् १९५६ के मार्च महीने में सरकारी कर्मचारियों की संख्या ५२ लाख थी। जून १९६७ में वह संख्या लगभग दूनी यानी ९६ लाख हो गयी, जिसमें केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों की संख्या २७ लाख, राज्य सरकारों के कर्मचारियों की संख्या ३८ लाख, अर्द्ध सरकारी कर्मचारियों की संख्या १४ लाख और स्थानीय निकायों के कर्मचारियों की संख्या १७ लाख थी।

मतदाता और मनीषी

काका कालेलकर

प्रजाराज्य अथवा लोकतन्त्र का अंतिम आधार मतदाता पर है। भारत का संविधान जिन मनीषियों ने बनाया और जिन प्रतिनिधियों ने मंजूर किया, उन्होंने श्रद्धा के बल पर मान लिया कि 'मतदाता सुरक्षित हो या न हो, संस्कारी हो या न हो, धन या जमीन का मालिक हो या न हो, उसके हाथ में अधिकार देना ही कल्याणप्रद है।' यह विचार या सिद्धान्त अनुभवसिद्ध नहीं है, केवल श्रद्धामूलक है। संविधान के बनानेवाले मनीषियों ने, और उनके प्रेरक महात्माजी ने भी स्पष्ट कहा था कि 'सार्वत्रिक मतदान के अधिकार पर लोकतंत्र चलाना 'ऐन ऐक्ट आफ फेथ' है," श्रद्धा पर विश्वास रखकर यह एक हिम्मत की है।

लोकतन्त्र ही क्यों ?

दुनिया के मनीषियों ने कहा है कि लोकतंत्र कोई सर्वोच्च सर्वहितकारी राज्यव्यवस्था नहीं है, इसमें दोष बहुत हैं, लेकिन मनुष्य के पास इससे बढ़कर, इससे अच्छा, राज्यतंत्र है नहीं, इसलिए अराजकता टालने के लिए, सलामत उपाय एक ही है कि भला बुरा कैसा भी हो, लोकतन्त्र चलाये यही अन्तिम सहारा है।

इतिहास ने सिद्ध किया है कि जिन लोगों के हाथ में मतदान के अधिकार नहीं होते वे राज्यतन्त्र के खिलाफ बगावत कर सकते हैं, शारीरिक बल का प्रयोग करके गुण्डाशाही चला सकते हैं और समर्थ किन्तु मतलबी लोग ऐसे गैर-जिम्मेदार लोगों का संगठन करके राज्यतन्त्र को तोड़ सकते हैं। ऐसे डर से अगर बचना है तो मत देने का अधिकार अधिक से-अधिक लोगों को देना और उन्हें तत्वतः राज्यतंत्र का मालिक बनाना यही एक उपाय है।

जो महत्वाकांक्षी लोग 'डिक्टेटर' बनना चाहते हैं वे दो में से कोई एक रास्ता लेते हैं। कभी-कभी दोनों रास्तों का प्रयोग एकसाथ करके सर्वाधिकार प्राप्त करते हैं। एक उपाय है सशस्त्र फौज की निष्ठा अपनी ओर खींच लेना और उसके बल के सहारे राज्यतंत्र को जीत लेना। दूसरा रास्ता है मतदाताओं में से एक प्रचंड बहुमत को बहकाकर अपने अनुकूल कर लेना और उसके बल पर लोकतंत्र को (जिसे पुराने लोग 'गणराज्य' कहते थे) कायम के लिए अपने वश कर लेना। प्रचण्ड बहुमत के बल पर राज्याधिकार कायम के लिए जो आदमी

अपने हाथ मे लेता था उसे कहते थे 'गणंजय'। आज उसे कहते हैं सर्वाधिकारी 'डिक्टेटर'।

आजकल के चुनाव के खिलवाड को देखकर और लोक-प्रतिनिधियों के पक्षान्तर की खतरनाक लीला देखकर ऊबे हुए लोग कहते कि 'ऐसे लोकतंत्र को खतम ही करना चाहिए। और अच्छा हो या बुरा, किसी गणंजय का, 'डिक्टेटर' का राज्य स्थापित करना चाहिए।''

भारत गणजय के हाथ म क्यों नही जायेगा ?

ऐसी दलील करनेवाले जानते नही कि 'डिक्टेटर' का राज्य कितना खतरनाक हो सकता है। एक दफे सब अधिकार गणंजय के हाथ में गये तो फिर वह एक या दूसरे ढग से, बल का प्रयोग करके ही उसे अपने हाथ में सदा के लिए रखने की कोशिश करता है।

और मेरा तो दृढ अभिप्राय है कि भारत में किसी एक 'डिक्टेटर' या गणजय का राज्य कभी भी हो नही सकता। इसका कारण स्पष्ट है। भारत की जनता एक जिनसी नही है। यहाँ अनेक धर्म, अनेक भाषाएँ, संस्कृति के अनेक स्तर और अनेक वश हैं। अगर किसी एक आदमी ने गणजय बनने की कोशिश की तो उसे प्रचण्ड बहुमत नहीं मिल सकेगा। एकदम दो चार गणजय खडे होंगे अपने अपने अनुयायियो के बल पर आपस में लडेंगे अथवा भारत की एकता तोडकर अपने अपने दो चार अथवा अधिक राज्य बना देंगे। और जनता कुछ नहीं कर सकेगी।

भारत को अगर एक अखण्ड, आजाद, और समर्थ बनाना है, तो लोकतन्त्र के द्वारा ही (याने बल की जगह विशाल जनता के अभिप्राय से) बना हुआ राज्य हम पसन्द कर सकते हैं। इसीका अर्थ है अहिंसामूलक राज्य। जिनका अन्तिम विश्वास राजनैतिक अहिंसा पर है, वे ही लोकतन्त्र को मान्य करते हैं और उसीको मजबूत करने की कोशिश में रहते हैं।

प्रजातन्त्र सुरक्षित कैसे हो ?

ऊपर के विवेचन से सिद्ध होता है कि आज की दयनीय और खतरनाक हालत से बचना है तो मतदाताओ को प्रथम सयाने, संस्कारी बनाना चाहिए। (आजकल के विचारक कहते हैं कि जनता को सुरक्षित बनाना चाहिए। लेकिन सुरक्षित का क्या अर्थ होता है सो हम जानते हैं। देश के हरएक राज्य का शिक्षातंत्र कैसा चलता है सो भी हम जानते हैं। समाज को सुधारने की और सुधरे हुए समाज के द्वारा क्रांति करने की शक्ति आज की सरकारो में है नही।)

इसीलिए हमने कहा है कि मतदाताओं को सस्कारी, सुदृढ बनाना जरूरी है। प्रजातंत्र को सुरक्षित रखना है तो मतदाताओं को सुसस्कृत बनाये बिना चारा नहीं।

यह काम कौन करे ? आजकल का जमाना कहेगा, यह राष्ट्रव्यापी सुधार सरकार ही कर सकती है। और अनुभव कहता है कि यह बात सरकार के बूते की नहीं है। देश में जो राजनैतिक दल हैं, उनके नेता अपने अपने मतदाताओं को शिक्षित करने के लिए सभा और सगठन के द्वारा दिन रात प्रयत्न करते ही रहते हैं। लेकिन यह सारा सगठन केवल चुनाव के हिसाब से किया जाता है। वह शिक्षा और वह सगठन जिनके हाथों में आज हैं वे स्वय कहते हैं कि हम दूसरा कुछ भी कर नहीं सकते। जो चल रहा है सो चल रहा है।

देश का सारा शिक्षा तत्र सरकार के हाथ में है। सार्वजनिक शिक्षा सस्थाएँ भी अनुदान के द्वारा सरकार की आश्रित बन गयी हैं। हमारे विश्व विद्यालय पश्चिम के चिन्तन के अनुयायी हैं। जिस तरह धार्मिक लोग धर्म-शास्त्र जड बनते हैं वैसे ही हमारे अध्यापक पश्चिम के चिन्तन से बने हुए शास्त्र के जड अनुयायी बन जाते हैं, अनुभव पश्चिम का और चिन्तन भी पश्चिम का। हमारे देश के लिए हमारे जमाने के लिए वह कहाँ तक लागू है उसका मौलिक चिन्तन कही भी दीख नही पडता।

मतदाताओं को सस्कारी बनाने की समस्या

तब मतदाताओं को व्यापक, विशाल और मौलिक ज्ञान देकर उन्हें सस्कारी कौन बनाये ? राजनैतिक पक्षों के नेता चर्चा करते हैं व्याख्यानो के द्वारा जनता को परिस्थिति समझाने की कोशिश करते हैं लेकिन वह सारी चर्चा चुनाव के लिए और तात्कालिक लाभ हानि की दृष्टि से ही होती है।

अब बाकी रहे रचनात्मक काम करनेवाले समाज सेवक याने राष्ट्रसेवक, जिनमें से अधिकाश निःस्वार्थ प्रजासेवक होते हैं। राजनैतिक अधिकार का लोभ उनमे नहीं होता। चन्द लोगो मे अपने धर्म समाज का या किसी वर्ग का पक्षपात होता है सही लेकिन अधिकाश समाजसेवक पक्षपातरहित निःस्वार्थ सेवा करनेवाले होते हैं। उनके द्वारा मतदाताओं को सस्कारी बनाना और स्वय निर्णय करने की शक्ति मतदाताओं में लाना शक्य है।

लेकिन ये रचनात्मक कार्यकर्ता अथवा राष्ट्रसेवक गहराई में सोचने के लिए तैयार नहीं होते। वे कहते भी हैं कि व्यापक दृष्टि से सोचने का काम गाधीजी ने किया है। जवाहरलालजी ने हर विषय पर दिशा-दर्शन किया है। आज विनोबाजी हमारा नेतृत्व करते हैं। हमारा काम उनके विचार और

उनके कार्यक्रम जनता तक पहुँचाने का है। अगर हम सोचने बैठे तो मतभेद बढ़ेंगे। आप हमारी निन्दा चाहे जितनी करें, लेकिन अगर राष्ट्रव्यापी काम करना है तो 'बाबा वाक्य प्रमाण' यही सलामत रास्ता है। किसी एक श्रेष्ठ व्यक्ति की दुहाई देकर हम लोगो को साथ रख सकते हैं।

बात सही है, लेकिन मतदाताओं को ज्ञान-समृद्ध और अनुभव समृद्ध करने का यह तरीका नही है। जैसा जूआ चलता है वैसा चुनाव चलता है। हरएक पक्ष के नेतागण, लोकमत के बल पर चुनाव जीतनेवाले चुनाव वीर और देश और दुनिया के सब सवालो पर अपना अभिप्राय तुरन्त देनेवाले अखबारनवीस, सब मिलकर मतदाताओं को शिक्षा देते जाते हैं, और कुल मिलाकर मतदाताओं के दिमाग में एक कोलाहल ही मच जाता है।

समस्या का एक ही इलाज

ऐसी परिस्थिति में इलाज एक ही है कि देश में जितने भी तटस्थ और अनुभवी मनीषी हैं, उनको चाहिए कि भारत की परिस्थिति, भारतीय जनता का जनमानस, लोगों की सकल्प शक्ति और जागतिक परिस्थिति, इन सबका विचार करके मतदाताओं को सुबुद्ध, विचारशील, स्वय चिन्तक और स्वय-निर्णय के शक्तिमान बनाने की कोशिशें करें। प्राचीन या मध्यकालीन भारतीय सस्कृति के सिद्धान्तो की दुहाई देने से काम नहीं चलेगा। हमारी सस्कृति की बुनियाद मे जैसे अद्भुत, विशाल और उज्ज्वल अनेक तत्त्व हैं वैसे ही उसमें खतरनाक और कालग्रस्त तत्त्व भी हैं। जिस आर्य सस्कृति की और भारतीय सस्कृति की दुहाई हम देते हैं वह सस्कृति चिरजीवी भले हो, हारी हुई सस्कृति है, और उस पराजय का कारण उसकी बुनियाद में ही है। इतनी बात पहचानकर हमें अपनी सस्कृति के गुण दोष, दोनो का तटस्थ भाव से पृथक्करण करना चाहिए। हमारा समाज-विज्ञान जब हम अपने अनुभव पर खड़ा कर सकेंगे तभी वह कारगर हो सकता है। दूसरों के चिन्तन पर और बडो के वचनो पर आधार रखकर जब हम चलते हैं तब हमारा विचार और हमारा सकल्प प्राणदायी बनता नही। बहुत दफे वह जीवनानुकूल भी नही होता।

देशहित चिंतक मनीषियों को अब सजग, सजीवन जीवननिष्ठ और प्राणवान बनना चाहिए और ज्ञानदान के द्वारा राष्ट्र को स्वावलम्बी बनाना चाहिए। स्वयं निर्णय का अधिकार जिन्हें मिला है, उन्हें स्वय निर्णय की शक्ति भी मिलनी चाहिए। राष्ट्र हित चिंतक, जीवनानुभवी मनीषी ही यह काम कर सकते हैं। •

बालकों में वाम-हस्तता : दोष और उपचार

विमला माहेश्वरी

आज संसार में लगभग सभी व्यक्ति दायें हाथ से काम करते हैं और दायें हाथ को ही अधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं। यहाँ तक कि व्यक्तित्व के विकास की यह एक सामान्य विशेषता है। सदियों से ही क्या विकास के प्रारम्भिक काल से ही मानव ने शायद इस बात का निर्णय कर लिया होगा कि दायें हाथ की प्रधानता होनी चाहिए और बस, तब से बराबर हम अपने दायें हाथ का ही प्रयोग करते आ रहे हैं। और आज संसार की हर सभ्यता का यह एक अंग बन गया है। यद्यपि विभिन्न देशों में दायें हाथ से कार्य करनेवाले व्यक्तियों का प्रतिशत भिन्न भिन्न है। यह भिन्नता इस बात पर निर्भर है कि हर सभ्यता व संस्कृति में बायें हाथ से काम करने को किस दृष्टि से देखा जाता है। बैकविन और हिल्ड्रेथ ने अध्ययन करके बताया कि संयुक्त राज्य अमरीका में ९५ प्रतिशत व्यक्ति दायें हाथ से काम करनेवाले हैं और ५ प्रतिशत व्यक्ति वाम-हस्त हैं। आगे उन्होंने यह भी कहा कि स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में बायाँ हाथ प्रयोग करने की प्रवृत्ति अधिक पायी जाती है। इसके विपरीत अनेक पूर्वी देशों में, जैसे चीन में वाम-हस्तता कम पायी जाती है। क्योंकि अमरीकी माता-पिता की अपेक्षा चीनी माता-पिता इस सम्बन्ध में अधिक सजग और कठोर हैं। वे बालक में गति-विकास के प्रारम्भ से ही इस बात के लिए बहुत अधिक सजग और सावधान रहते हैं कि बालक को हस्त-प्रयोग का सही प्रशिक्षण मिले और वह उचित ढंग से दायें हाथ का ही प्रयोग करे। यदि कोई बालक वाम हस्त हो भी जाता है तो इसे माता-पिता की असावधानी व गलत प्रशिक्षण का ही परिणाम माना जाता है।

हेहो के अनुसार आज की दुनिया दाहिने हाथ को ही अधिक महत्त्व देनेवाली है। सभी यंत्र, मशीन, उपकरण, कुर्सी, डेस्क, ड्रावर आदि सीधे हाथ का प्रयोग करनेवालों को दृष्टि में रखकर बनाये जाते हैं। ऐसे संसार में यदि बालक

में बायें हाथ की प्रधानता हो जाती है, तो माता-पिता के लिए यह एक चिन्ता का विषय होना स्वाभाविक है।

इस समस्या को लेकर दुःखी होनेवाले माता-पिता क्या कभी इस बात पर विचार करने का कष्ट करते हैं कि उनके बच्चे में यह वाम-हस्तता का दोष क्यो विकसित हो गया है ? उनके अथक प्रयास करने पर भी बालक बायें हाथ की अपेक्षा दायें हाथ का प्रयोग क्यो नही कर पाता है ? और यदि आप उसे जबर-दस्ती दायें हाथ से कार्य करने के लिए बाध्य करते हैं तो इसके क्या दुष्परिणाम हो सकते हैं ?

इन सभी प्रश्नो का उत्तर पाने के लिए हमें कुछ सैद्धान्तिक बातो की जानकारी करना बहुत आवश्यक है।

हस्तता-सम्बन्धी नियम

एक प्रश्न हमारे सामने आता है कि बालक मे ही क्या, हर व्यक्ति मे एक ही हाथ की प्रधानता क्यो पायी जाती है ? और इसके साथ ही दूसरा प्रश्न यह है कि अधिकाश व्यक्ति दायें हाथ से ही काम करनेवाले क्यो होते हैं ? इस सम्बन्ध मे विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अपने विचार विभिन्न प्रकार से प्रकट किये हैं।

(१) कुछ लोगो का मत है कि हस्तता एक जन्मजात गुण है, जो बालक में वंश-परम्परा के अनुसार आता है। हमारे पूर्वज दायें हाथ से कार्य करते रहे हैं, अत वह गुण हममें भी आ गया है। इसमें किसी प्रकार का परिवर्तन लाना कठिन है। यदि इसमे किसी प्रकार की बाधा डाली जाती है, तो बालक में स्नायविक कमजोरी आ जाने का भय रहता है।

(२) कुछ लोगो का कहना है कि हमारे मस्तिष्क के दो भाग होते हैं · दायाँ और बायाँ। मस्तिष्क का दायाँ भाग हमारे शरीर के बायें अंगों पर नियन्त्रण करता है और बायाँ भाग शरीर के दायें अगो पर। उनके अनुसार साधारण मनुष्य में उसके मस्तिष्क का बायाँ भाग अधिक प्रभावी होता है, फलस्वरूप उसके दायें हाथ की प्रधानता होती है। यदि किसी बालक के मस्तिष्क का दायाँ भाग अपेक्षाकृत प्रभावी हो जाता है तो इसमें बायें हाथ की प्रधानता हो जाती है।

(३) कुछ लोग बालक मे दायें या बायें हाथ की प्रधानता का हो जाना सयोग मात्र ही मानते हैं।

(४) बनावट की दृष्टि से दायाँ हाथ बायें हाथ की अपेक्षा अधिक मजबूत होता है। अतः हम दायाँ हाथ ही प्रयोग करते हैं और कठिन से कठिन कार्य इसके द्वारा कुशलतापूर्वक सम्पन्न कर सकते हैं।

(५) इन सबसे अलग वाट्सन और हिल्ड्रेथ का विचार है कि हस्तता न तो कोई जन्मजात गुण है और न ही यह सयोग का परिणाम है। हम इसे जन्मजात गुण या सयोग का परिणाम इसलिए कह देते हैं कि किसी और रूप में हस्तता के कारण को स्पष्ट करना हमारे लिए सम्भव नही होता है। उनके अनुसार हस्तता वातावरण का परिणाम है। उनका कहना है कि हस्तता का विकास वयस्कों द्वारा दी जानेवाली शिक्षा व प्रशिक्षण पर निर्भर करता है। चूकि हस्तता का विकास बालक में बाद में होता है, अतः उसे जैसा वातावरण व प्रशिक्षण मिलेगा, वैसा ही उसकी हस्तता का विकास होगा। और धीरे धीरे आयु-वृद्धि के साथ यह उसकी आदत में परिवर्तित हो जाता है।

इसका बहुत अच्छा उदाहरण हमें सयुक्त राज्य अमरीका में प्रथम महायुद्ध तथा महामदी के समय वाम-हस्तता के सम्बन्ध में किये गये अध्ययनो से प्राप्त होता है। यह देखा गया है कि वहाँ पर वाम-हस्तता का प्रतिशत देश की परिस्थितियों के अनुसार बदलता रहा है। देश पर किसी भी प्रकार का बड़ा सकट आने पर वाम-हस्तता का प्रतिशत बढ गया। प्रथम महायुद्ध (सन् १९१४-१८) से पूर्व जन्मे बालको में वामहस्त बच्चे २ ६ प्रतिशत थे जब कि युद्धोपरान्त (सन् १९१८ २१) जो बच्चे उत्पन्न हुए उनमें वामहस्त बालक ८ ३ प्रतिशत थे। इसी प्रकार सन् १९२९ ३१ की मदी के काल में वाम-हस्तता का प्रतिशत ९ २ था और जब महामदी अपनी चरम सीमा पर पहुँची तो यह प्रतिशत बढ़कर १७ ९४ तक पहुच गया, जो कि अबतक के सभी रिकार्डों में अधिकतम रहा। इस प्रकार देश में विभीषिका के काल में वाम हस्तता का प्रतिशत बढने के कारण का स्पष्टीकरण करते हुए "दी न्यूयार्क टाइम्स ने अपनी एक रिपोर्ट लफ्ट हैण्डेड फाइण्ड हैण्डीकैप ग्रोज में लिखा था कि शान्ति-काल की अपेक्षा विभीषिका व सकट के समय में माता पिता को अपने बालको का हर क्षेत्र मे उचित प्रशिक्षण देने के लिए समय का अभाव रहता है क्योकि उनका अधिकाश समय जीवन की अन्य समस्याओं को सुलझाने में व्यतीत हो जाता है जिससे वाम हस्तता की सम्भावना बढ जाती है। यह अध्ययन इस बात को स्पष्ट करता है कि हस्तता पर माता पिता के प्रशिक्षण का प्रभाव बहुत अधिक पडता है।

हस्तता का विकास

जन्म के समय बालक में न तो बायें हाथ की प्रधानता होती है और न ही दायें हाथ की। अनेक जैनेटिक अध्ययनो से यह सिद्ध हो चुका है कि प्रारम्भिक

कुछ महीनों में यह मालूम करना बहुत कठिन होता है कि बालक किस हाथ का प्रयोग अधिक करेगा। विकास के फलस्वरूप जब वह माँस पेशियों पर नियन्त्रण करके हाथों का प्रयोग ऐच्छिक रूप से करने में समर्थ हो जाता है तो वह दोनों ही हाथों का प्रयोग समान रूप से करता है। कभी वह बायें हाथ का प्रयोग अधिक करता है तो कभी दायें हाथ का। किस समय वह किस हाथ का प्रयोग करेगा, यह इस बात पर निर्भर करता है कि उठायी जानेवाली वस्तु उसके किस ओर रखी है। यदि वस्तु बायीं ओर है तो वह बायें हाथ से उसे उठाने का प्रयास करेगा और यदि दायीं ओर रखी है तो दायें हाथ से उठायेगा। इस प्रकार प्रथम वर्ष में हस्तता का दृष्टिगोचर होना कठिन होता है। प्रथम वर्ष में कुछ बालकों में बायें हाथ की प्रधानता दिखलायी पड़ती है परन्तु यह प्रधानता प्रायः शीघ्र ही दाहिने हाथ को चली जाती है। कई बार तो दो वर्ष तक इस प्रकार का निरन्तर परिवर्तन—अर्थात् बायें से दायें और दायें से बायें हाथ की ओर—हमें देखने को मिलता है।

साधारणतया प्रथम वर्ष के अन्तिम दिनों में या द्वितीय वर्ष के आरम्भ में ही हस्तता की प्रधानता के कुछ कुछ लक्षण स्पष्ट दिखलायी पड़ने लगते हैं। वस्तु के उठाने या पकड़ने के लिए वह एक हाथ को ही अधिकतर आगे बढ़ाता है, खाने के लिए एक हाथ का ही प्रयोग अधिक करता है। और इस प्रकार धीरे-धीरे दूसरे वर्ष के अन्त तक यह निश्चित रूप से मालूम होने लगता है कि बालक में किस हाथ की प्रधानता होगी? किस हाथ के प्रयोग की ओर बालक का विशेष झुकाव है? ऐसे भी अनेक दृष्टान्त हैं जब कि बालक लिखने, फेंकने तथा खाने की क्रिया तो बायें हाथ से करता है परन्तु अन्य कार्य, जैसे-खोदना, बल्ले से गेंद फेंकना आदि कार्य दायें हाथ से करता है। कुछ क्रियाओं को दोनों हाथों से कुशलतापूर्वक कर सकता है।

हस्तता के विकास में माता पिता का कर्तव्य

हस्तता के विकास और निर्धारण के प्रति माता पिता को विशेष रूप से सजग रहने की आवश्यकता है जैसा कि हिल्ड्रैथ का विचार है कि हस्तता के विकास में प्रशिक्षण का प्रधान हाथ है। बालक के सामने उपयुक्त उदाहरण और उचित निर्देशन का होना जरूरी है। ३ से ५ वर्ष की आयु हस्तता को निर्धारित करने के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस समय बालक अधिकांश रूप में किसी भी एक हाथ की प्रधानता दिखाता है। ऐसे समय में बच्चे की हस्तता

के विकास को संयोग पर छोड देना एक भारी भूल है। हिल्ड्रेथ का कहना है कि बालक को हस्तता का पूर्ण और सही प्रशिक्षण मिलना चाहिए, क्योंकि यह कार्य-कौशल ही शैक्षिक और व्यावसायिक सफलता को प्रभावित करता है। इसी प्रकार बीले का विचार है कि मानव-शिशु मे बायें या दायें हाथ की प्रधानता जन्म से नहीं होती। अत हस्तता के चुनाव में बालक को स्वतंत्र छोड देना भूल होगी और बालक के प्रति अन्याय होगा, क्योंकि स्वतन्त्र छोड देने से सम्भव है कि वह गलत हाथ का चुनाव कर ले या फिर दोनो ही हाथ समान रूप से प्रधानता को प्राप्त कर लें, जब कि यह भी ठीक नही। क्योंकि कोई भी बालक दोनो हाथों पर समान रूप से नियन्त्रण प्राप्त नही कर सकता है। हिल्ड्रेथ ने इस बात पर जोर दिया है कि केवल कुछ प्रतिभावान बालक ही दोनो हाथो से समान कुशलता से काम करने में सफल हो सकते हैं।

बालक में किस हाथ की प्रधानता होगी, इसका निर्णय जल्दी ही हो जाना चाहिए। यदि लम्बे काल तक बालक मे हस्तता का निश्चय नहीं होता है और वह अपने दोनो हाथो का (कभी दाय का कभी बायें का) प्रयोग समान रूप से करता है तो इससे बच्चे के सामने कई बार अनेक समस्याएँ पैदा हो जाती हैं। कार्य करते समय एक उलझन, अनिश्चितता और असुरक्षा की भावना उसे घेरे रहेगी। सम्भव है वह कई बार असमजस में पड जाये और कार्य को ठीक प्रकार से पूर्ण कौशल के साथ न कर सके। इन सबका प्रभाव उसके व्यक्तित्व पर पडता है। हिल्ड्रेथ के अनुसार उसमें व्यक्तित्व सम्बन्धी अनेक दोष और समस्याएँ जन्म ले सकती हैं, जैसे—जिद्दी होना, स्नायविक कमजोरी, नकारात्मक प्रवृत्ति, लिखने-पढने में दोषहीनता की भावना आदि। इस सबसे यह स्पष्ट है कि बालक में हस्तता का निर्धारण जल्दी हो हो जाना चाहिए, ताकि उसमे स्थिरता, सुरक्षा, दृढता और निश्चितता की भावना का जन्म हो और व्यक्तित्व का समुचित विकास हो सके। इतना ही नही, बल्कि इसमें बालक एक हाथ का प्रयोग करने में प्रवीण हो जायेगा तथा अपने दूसरे हाथ को एक सहायक हाथ के रूप मे प्रशिक्षित कर सकेगा। फिर दोनो हाथ एक टीम के रूप में बहुत ही कौशल व निपुणता के साथ कार्य करने मे सफल हो सकेंगे।

वाम-हस्तता : एक दोष

अबतक के अध्ययन से यह स्पष्ट रूप से माना जा सकता है कि बालक में वाम-हस्तता का होना उसके विकास मे एक बाधा है। दाहिने हाथ को

प्रधानता देनेवाली इस दुनिया मे बालक को दायें हाथ से काम करनेवाला बनने में ही लाभ है। यदि उसमें वाम-हस्तता की आदत पड़ जाती है तो अनेक व्यावहारिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

(१) लिखने की विधि ऐसी है जो इस आधार पर विकसित की गयी है कि सभी लिखनेवालो मे दायें हाथ की प्रधानता होगी। शिक्षक जब बालको को लिखना सिखाता है तो वह दायें हाथ से लिखता है जिसका अनुकरण करना वामहस्त बालक के लिए कठिन पड़ता है। दूसरी तरफ शिक्षक के लिए ऐसे बालकों को विशेष रूप से बायें हाथ से लिखने का प्रदर्शन करना कठिन होता है। इतना ही नहीं, वाम हस्त बालक लिखने में जल्दी ही थकान का अनुभव करने लगता है। साथ ही उसकी लिखने की गति भी धीमी होती है।

(२) किसी भी प्रकार के कौशल को प्राप्त करने में भी वाम हस्तता बाधक सिद्ध होती है। साधारणतया हर मशीन, यन्त्र व उपकरण दायें हाथ से प्रयोग किये जानेवाले बनाये जाते हैं। यन्त्रो को प्रयोग करने का प्रदर्शन व प्रशिक्षण भी दाय हाथवाले व्यक्ति द्वारा दायें हाथवालो को ध्यान मे रखकर दिया जाता है। अत उसका सही अनुकरण करना वाम हस्त बालको व व्यक्तियो के लिए कठिन होता है। यदि वाम-हस्त व्यक्ति उन मशीनो को चलाना सीख भी लेता है तो भी कुशलता व कार्य-गति में अपेक्षाकृत कमी ही रहती है। परिणामस्वरूप उन्हें उपयुक्त पद व नौकरी मिलना कठिन होता है।

(३) वाम हस्तता से सम्बन्धित व्यावहारिक कठिनाइयाँ आयु वृद्धि के साथ बढती जाती हैं। किशोर बालक और बालिकाएँ दोना ही अपने व्यवहार के प्रति अधिक सचेत व सजग होते हैं। अनेक आचार-व्यवहारो मे दाय हाथ का ही प्रयोग होता है। यदि किशोर बालक या बालिका में वामहस्त प्रधान है तो उनके लिए ऐसे कार्यों व व्यवहारो को निभाने में कठिनाई का अनुभव होगा।

(४) इन सब व्यावहारिक कठिनाइयो के साथ ही वाम-हस्तता का बालक के सामाजिक समायोजन सवेगात्मक समायोजन तथा व्यक्तित्व के विकास पर बहुत अधिक प्रभाव पडता है। हम्फ्रे के अनुसार सामाजिक असमायोजन के कारण कई बार बालक में रुचि व प्रेरणा की कमी हो जाती है। वह निरुत्साही तथा समाज विरोधी व्यवहार करनेवाला हो जाता है। वामहस्त बालक अपने समाज में उपहास का विषय बन जाता है। अपने साथी

बालकों में उसका समायोजन ठीक प्रकार से नहीं हो पाता है, जो उसमें हीन भावना को जन्म देता है। यह हीन भावना तथा भग्नाशा यदि उसमें अधिक बढ जाती है तो व्यक्तित्व के विकास को भी प्रभावित करती है। उसका व्यक्तित्व विघटित तथा विशृङ्खल होने लगता है।

अतः बालक के समुचित और संगठित व्यक्तित्व के विकास के लिए तथा भावी जीवन को अधिक सुसमायोजित बनाने के लिए बालक में दायें हाथ की प्रधानता होना अति आवश्यक है।

उपचार

पर यदि बालक बायें हाथ का ही प्रयोग अधिक करता है तो माता-पिता का क्या कर्तव्य है ? क्या जबरदस्ती उसकी इस आदत को छुड़ा देना चाहिए ? इन प्रश्नों के उत्तर के साथ कई बातें सामने आती हैं, जिनका ध्यान वामहस्त बालक के हर माता-पिता को रखना चाहिए।

प्रथम—बालक में यह वाम-हस्तता किस प्रकार से विकसित हुई है ? बालक में वाम हस्तता का कारण यदि उसका गलत प्रशिक्षण या वयस्कों की असावधानी है, तो इस दोष को थोड़े-से प्रयास के द्वारा दूर किया जा सकता है। जैसे ही इस बात का आभास हो कि बालक बायें हाथ का प्रयोग अधिक करता है और यह इसकी आदत बनती जा रही है तो इसकी ओर ध्यान देना आरम्भ कर देना चाहिए। उसे सही प्रशिक्षण देकर बार-बार इस बात का ध्यान दिलाया जाय कि दायें हाथ का ही प्रयोग करे। उसके सामने अन्य लोग सही उदाहरण पेश करें। गलत प्रशिक्षण के कारण विकसित आदत की ओर यदि जल्दी ही ध्यान दिया जाय तो उसका उपचार भी जल्दी ही सम्भव हो जाता है।

द्वितीय—यदि बालक में वाम-हस्तता स्वाभाविक ढंग से विकसित हुई है और इसका प्रमुख कारण बालक के मस्तिष्क के दायें भाग का प्रभावी व शक्तिशाली होना है तो विशेष चिन्ता की बात नहीं है। ऐसी स्थिति में यदि बालक को सीधे हाथ का प्रयोग करने के लिए बाध्य किया जाता है तो अधिक हानिप्रद सिद्ध होता है। माता-पिता के हठ करने, बार-बार टोकने व इसे भला-बुरा कहने से उसमें अनेक व्यावहारिक व भाषा-सम्बन्धी दोष उत्पन्न हो जाते हैं। हकलाना इसका बहुत अच्छा उदाहरण है। अनेक अध्ययनों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि इस प्रकार के बालकों को जब बायें हाथ की अपेक्षा दायें हाथ का प्रयोग करने के लिए बाध्य किया जाता है तो वे हकलाना

शुरू कर देते हैं। यद्यपि हकलाने में कार्य-कारण का सम्बन्ध पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं हुआ है। यह निश्चित करना कठिन है कि हस्तता में परिवर्तन लाने के कारण हकलाना शुरू हुआ अथवा बालक की हस्तता को परिवर्तित करने के लिए जिन विधियों का प्रयोग किया गया है, उनके परिणामस्वरूप हकलाने का जन्म हुआ। यह सम्भव है कि हकलाना मानसिक तनाव का एक लक्षण है और यह मानसिक तनाव हस्तता में परिवर्तन लाने के लिए दबाव के फलस्वरूप बालक में पैदा होता है। कुछ बालकों में दाँत से नाखून काटना, अँगूठा चूसना जैसी अनेक आदतों का जन्म हो जाता है। यदि वयस्कों का दबाव अमनोवैज्ञानिक ढग से वामहस्त बालक पर पड़ता है तो कभी-कभी उसके व्यक्तित्व में स्थायी विशृङ्खलता पैदा हो जाती है। अतः इस सम्बन्ध में माता पिता को बहुत सावधानी से आगे बढ़ना चाहिए और बालक में हस्तता के परिवर्तन के लिए जल्दबाजी या कठोरता का व्यवहार नहीं करना चाहिए। ऐसी स्थिति में माता पिता के सामने चुनाव के लिए दो ही विकल्प रह जाते हैं। एक—या तो बालक की वामहस्तता को दाँयें हाथ में परिवर्तित करने का प्रयास करें और उसके व्यक्तित्व के विशृङ्खल हो जाने का खतरा उठायें। दूसरे—या फिर बालक को बायाँ हाथ ही प्रयोग करने दें और उसके फलस्वरूप पैदा होनेवाली हीन भावना व अन्य कठिनाई तथा बाधाओं को धैर्य के साथ सहन करें।

तृतीय—एक तीसरा प्रश्न हस्तता के परिवर्तन के साथ यह भी सामने आता है कि वाम हस्त बालक अपनी इस विशेषता को किस रूप में देखता है? तथा समाज में उसका समायोजन कैसा है? जो बालक अपने इस दोष के प्रति बहुत अधिक सजग होते है या उनके सम्पर्क मे आनेवाले बालक व अन्य व्यक्ति उसे बार बार इस बात का ध्यान दिलाते हैं कि यह अन्य बालकों से भिन्न है, क्योंकि वह बायें हाथ का प्रयोग लिखने, खाने व अन्य कार्यों मे करता है तो उसे बार बार और लोगो के सामने लज्जित होना पड़ता है, जो उसके अन्दर मानसिक तनाव को पैदा करके हीन भावना को जन्म देती है और कालान्तर में उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को प्रभावित करती है। इसके विपरीत कुछ बालक अपनी वाम हस्तता के प्रति सजग नहीं होते। इस दोष के कारण वे अपने अन्दर किसी प्रकार की हीनता की भावना को नहीं लाते। ऐसे बालकों का न तो समायोजन ही खराब हो पाता है और न ही यह दोष उनके व्यक्तित्व के विकास में बाधक बनता है।•

एक शिक्षक के विचार और अनुभव

मदनमोहन पाडेय

शिक्षा मानवीय सवेदना को जाग्रत करने का अपूर्व साधन है। हमारे जीवन की समग्रता शिक्षा में ही निहित है। शिक्षा के बिना व्यक्तित्व का सकलन (इटीग्रशन) नहीं होता और सकलनहीन व्यक्तित्व हमें विघटन की ओर प्रवृत्त करता है। शिक्षा से हमारी आध्यात्मिक चेतना का विकास होता है और हम असद् से सद् की ओर तथा अन्धकार से ज्योति की ओर अग्रसर होते हैं। शिक्षा के द्वारा हम नयी चेतना से युक्त होकर जीवन का नये सन्दर्भों में अनुभव करते हैं। सबसे पहले हमें अपनी पशुता का अतिक्रमण करना है। प्रतिक्रियात्मक विचारो से ऊपर उठकर अपने को राग द्वेष से मुक्त बनाना है। घृणा के स्थान पर जीवन में प्रेम का आरोप करना है। समस्त मानवीय मूल्यों मे प्रेम का सबसे ऊँचा स्थान है। प्रेम के बिना हमें पूर्णता नहीं प्राप्त हो सकती जीवन की समग्रता का बोध नही हो सकता। शिक्षा हमें जीवन की समग्रता का बोध कराती है।

क्या हम शिक्षित हैं ?

हम पुस्तकीय ज्ञान को ही शिक्षा समझते हैं। जिस शिक्षा से चित्त की वृत्तियों का परिष्कार नहीं होता जो शिक्षा हमें शुचिता और पवित्रता का

पाठ नही पढ़ाती, जो शिक्षा हमें प्राणिमात्र में अपनी आत्मा का दर्शन नही कराती, जो शिक्षा एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य से छोटा या बडा बनाती है जो प्रतिस्पर्धा पर आधारित है, वह शिक्षा शिक्षा नही कही जा सकती है। आज शिक्षा का सबसे बडा प्रमाण यूनिवर्सिटी की डिग्रियो को माना जाता है। घिसी पिटी प्रणाली से परीक्षा पास कर लेना ही पुरुषार्थ चतुष्टय का साधन समझा जाता है। किन्तु यह कैसी विडम्बना है कि आज की शिक्षा में न तो ज्ञान की गभीरता है, न चरित्र का वैभव है। ज्ञान और चरित्र, दोनो ही से हीन होने पर भी लोग शिक्षित होने का गर्व करते हैं। आज उद्दड और उच्छृङ्खल मनोवृत्तियो से आवेष्टित लोग भी अपने को शिक्षित समझते हैं! वाणी के चमत्कार अक्षर के चमत्कार मात्र को शिक्षा नही कहा जा सकता। केवल बौद्धिक उपलब्धियो के ही द्वारा मनुष्य शिक्षित नही बनता। ज्ञान और चरित्र दोनो के सम्यक संयोग से ही मनुष्य म सद्गुणो का प्रादुर्भाव होता है। जा सद्गुणो से रहित है वह मनुष्य अनेक ग्रथो को कठस्थ कर लेने के बाद भी भारवाही पशु के सदृश्य है। जो शिक्षित है विद्वान् है वह अहकार से रहित होता है। वह स्वाभाव से विनम्र होता है। उसके सानिध्य से दूसरो को सुख मिलता है। दूसरो को दु ख पहुचाना शिक्षित मनुष्य का गुण नही है। जो समष्टिमात्र में विश्वात्मा का दर्शन करता है और सभी प्राणियो को आत्मवत् समझता है वही व्यक्ति शिक्षित कहलाने का अधिकारी है। प्राविधिक ज्ञान से युक्त मनुष्य अर्थ का सचय भले ही कर ले किन्तु सदाशयता से रहित होकर वह अपने को लोकोपकारी नही बना सकता। पद और प्रतिष्ठा का आवरण ओढकर मनुष्य दूसरो को त्रस्त बनाता है। अधिकार के मद में वह अपने को सबसे श्रेष्ठ समझता है। यदि ऐसा मनुष्य शिक्षित कहला सकता है तो अशिक्षा की क्या परिभाषा हो सकती है? अल्पज्ञाता और प्रमाद के कारण ही मनुष्य दूसरो की अवहेलना करता है। भरे घडे से आवाज नही आती।

शिक्षा सस्थाओ की सबसे बडी समस्या

यह अत्यन्त दुर्भाग्य की बात है कि हम शिक्षा को आदर्श रूप देने की बातें तो करते हैं किन्तु शिक्षक की कठिनाइयो को समझने का प्रयास नही करते। यदि हमारे आदर्शोन्मुख शिक्षा प्रेमी थोडा यथार्थ का भी बोध करें तो सारी घृणित अव्यवस्थाओ का अन्त हो जाये। किन्तु वे आदर्शों के व्यामोह में इतना अधिक फँसे हुए हैं कि यथार्थ की ओर से उनकी उदासीनता घातक रूप धारण करती जा रही है। वे यथार्थ की यथार्थता को स्वीकार करने के लिए

तैयार नहीं। वे आदर्शों की परिकल्पना तो करते हैं, किन्तु पार्थिव सत्य की ओर से अपनी आँखें मूँदकर। आदर्शों को जीवन से सम्बद्ध करने के लिए यथार्थ की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

आज हमारी शिक्षा-संस्थाओं में अनेक परोपजीवी (पैरासाइट्स) दूसरों का रक्त पीकर संतुष्ट हो रहे हैं। हम इस तथ्य की ओर से आँखें नहीं मूँद सकते। यह हमारी शिक्षा-संस्थाओं की सबसे बड़ी समस्या है। शिक्षकों का वेतन बढ़ाकर, अथवा कायदे कानूनों में थोड़ा परिवर्तन करके, सेवा नियमावली में सुधार की घोषणा करके हम इस समस्या का निराकरण नहीं कर सकते। हमें शिक्षक राजनीतिज्ञों की कुटिल चालों को विफल करना होगा। हमें ईमानदार शिक्षकों को उचित अधिकार दिलाना होगा। तभी शिक्षा-स्तर ऊँचा उठाया जा सकता है और शिक्षा के मूलभूत उद्देश्यों की पूर्ति हो सकती है। अन्यथा ज्ञान और चरित्र से शून्य अनाधिकारी व्यक्ति शिक्षक के पवित्र पेशे को कलंकित करते रहेंगे।

शिक्षक बनने के लिए मस्तिष्क की अपेक्षा हृदय को अधिक महत्त्व देना चाहिए। जो संवेदना रहित है जिसके हृदय में करुणा नहीं है वह व्यक्ति छात्रों के भावात्मक विकास में कौनसा योगदान दे सकता है ? कुटिल और स्वार्थी व्यक्तियों को शिक्षक बनकर देश के होनहार बच्चों के जीवन से खिलवाड़ करने का क्या अधिकार है ? किन्तु हमारी शिक्षा संस्थाओं में ऐसे ही व्यक्तियों का बाहुल्य है। फिर हम अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा कैसे दे सकते हैं ? हमें अच्छे अध्यापकों की आवश्यकता है, जो ज्ञान और चरित्र, दोनों ही से युक्त हों। यदि उनका ज्ञान कोश सीमित भी हो तो उनमें चरित्र का अभाव नहीं होना चाहिए। सरल स्नेहमय वाणी की महत्ता समस्त ज्ञान विज्ञान से अधिक है। अध्यापक के लिए मृदुभाषी होना आवश्यक है किन्तु वह कृत्रिमता से दूर हो। अध्यापक के व्यक्तित्व में विशिष्टता होनी चाहिए। तभी उसका साहचर्य अपने छात्रों के लिए प्रेरणाप्रद हो सकता है। किन्तु आज शिक्षा के क्षेत्र में स्वार्थी लोगों का आधिपत्य होने के कारण अध्यापक का व्यक्तित्व छिन्न हो गया है। क्या हम इस व्यक्तित्व की रक्षा का उपाय करेंगे ? यदि नहीं तो हम राष्ट्र के जीवन को ऊँचा नहीं उठा सकते। शिक्षा शिक्षकों की वस्तु होनी चाहिए। वह राजनीतिज्ञों के मन बहलाव का साधन नहीं है। राजनीतिज्ञों को शिक्षा-संस्थाओं से सर्वथा दूर रहना चाहिए।

हमारे विद्यार्थी

आधुनिक शिक्षा के सन्दर्भ में विद्यार्थियों की जीवन-चर्या पर ध्यान देने से ऐसा प्रतीत होता है, मानो वे स्कूल एव कॉलेज को मनोरजन का केन्द्र समझते हैं। ज्ञान के प्रति उनकी लेशमात्र भी अभिरुचि नहीं है। वे परीक्षा मे उत्तीर्ण होने का सरल नुस्खा ढूँढते हैं। पाठ्य-पुस्तको के अतिरिक्त वे न तो कुछ पढ़ना चाहते हैं, न सुनना चाहते हैं। इसका मूल कारण है हमारी शिक्षा-पद्धति में परीक्षा को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान देना। वास्तव में परीक्षा की परिधि में ज्ञान को सीमित बनाकर हम छात्रो के मानसिक विकास में अवरोध उत्पन्न करते हैं। उन्हें स्वतत्र मनन और अनुशीलन की प्रेरणा से दूर रहते हैं। हमारे विद्यार्थी पढने लिखने मे विशेष तत्परता नही दिखलाते। हमें ऐसा विकल्प ढूँढना है, जो विद्यार्थियो को परीक्षा के भय से मुक्त बना सके। सच तो यह है कि हमारी शिक्षा सस्थाओ मे उपयुक्त शैक्षणिक वातावरण का पूर्ण अभाव है, ऐसा क्यों है ? बात तो यह है कि विद्यार्थी के मन मे अपने अध्यापक के प्रति लेशमात्र भी श्रद्धा नहीं है। एसा इसलिए है कि हमारी शिक्षा सस्थाओं मे शिक्षक राजनीतिज्ञो ने अपने क्षुद्र स्वार्थ की सिद्धि के लिए विद्यार्थियो को भी शतरज की मोहरें बना रक्खा है। वे उन्हें अपने दूसरे सहयोगियो के प्रति उकसाते हैं और उनके समक्ष उनकी निन्दा करते हैं। बेचारे भोले विद्यार्थी यह नही सोच पाते कि उनके शब्दो मे सत्य का कितना अंश है। निर्बल मस्तिष्क-वाले विद्यार्थी तो सहज ही उनके हाथो के खिलौने बन जाते हे और उनके इशारे पर अविवेकपूर्ण आचरण करना आरम्भ कर देते हैं।

छात्र अनुशासनहीनता का प्रमुख कारण

इन शिक्षक-राजनीतिज्ञों के ही कारण अनुशासनहीनता फैलती है। अनुशासनहीनता के अन्य सभी कारणों में यह प्रमुख कारण है। शैक्षणिक स्तर में गिरावट के लिए भी ये ही दोषी ठहराये जा सकते हैं। फिर भी हमारी सस्थाओं के नीति निर्धारण में इनका प्रमुख हाथ होता है। प्रबन्ध समिति के द्वारा इन्हे महत्त्व दिया जाता है, क्योंकि ये आत्म विज्ञापन में प्रवीण होते हैं और दूसरो की निन्दा करने में भी उतने ही कुशल होते हैं। यह दुर्भाग्य ही तो है कि हमारे देश में ईमानदार कर्मठ अध्यापको की उपेक्षा की जाती है और छल-कपट से पूर्ण दम्भी व्यक्तियों को सम्मान दिया जाता है। इस प्रकार के वातावरण में हमारे छात्रों का बौद्धिक विकास नहीं हो सकता है। छात्र स्वभाव से अनुशासित होते हैं। उन्हे अनुशासनहीनता की प्रेरणा मिलती है शिक्षक-राजनीतिज्ञो से। विद्यार्थियो को दोष देना सर्वथा अनुचित है। ये तो नवजात पौधे हैं। इनकी

देखरेख करनेवाला माली इन्हें जैसा बनायेगा, वैसे ही ये बनेंगे। उनके सामने गलत उदाहरण रखकर हम उनके जीवन को सही मोड नहीं दे सकते। अध्यापक की इज्जत उसके चारित्रिक गुणों के कारण होनी चाहिए, न कि उसके धूर्तता पूर्ण व्यवहार के कारण। हमारे देश में अधिकतर अन्तिम गुण को ही वरीयता दी जाती है। जो सरल हैं निष्ठावान हैं प्रपंचों से रहित हैं उनकी दुर्दशा की ओर किसीका भी ध्यान नहीं जाता। उनकी योग्यता को अयोग्यता माना जाता है। अनैतिक ढग से अपना प्रभुत्व स्थापित करनेवाले व्यक्तियों को इतनी वरीयता दी जाती है कि संस्था का सारा जीवन भय संकुल हो जाता है। शिक्षा का स्तर तबतक ऊँचा नहीं उठाया जा सकता जबतक शिक्षक का स्तर ऊँचा न उठे। हमें अपनी शिक्षा-संस्थाओं से सब प्रकार की दलबन्दियों को समाप्त करना होगा, ताकि हमारे शिक्षक खुली हवा में साँस ले सकें और निर्भय होकर अपने कर्तव्य का पालन करें। ऐसा होने पर ही हमारे विद्यार्थियों में ज्ञान के प्रति अनुराग होगा और वे अनुशासन की मर्यादा को समझ सकेंगे। हमें उन्हें शब्दों का ज्ञान मात्र ही नहीं देना है वरन् उनके जीवन को समग्र दृष्टि से सकलित बनाना है। ऐसा तभी होगा जब अध्यापक के गुरुत्व की रक्षा की जाये।

हमें शिक्षा के क्षेत्र में आमूल क्रान्ति करनी होगी। कोरे शब्द ज्ञान की अपेक्षा चरित्र को महत्ता देनी होगी। शिक्षा संस्थाओं की प्रबन्ध-समितियों में त्यागी और निस्पृह व्यक्तियों को सम्मिलित करना होगा जो स्वयं विद्वान हो और शील तथा मर्यादा से युक्त हो जो तटस्थ दृष्टि से समस्याओं पर विचार करने की क्षमता रखते हों जिनका व्यक्तियों से कोई लगाव न हो, जो सभी प्रकार के पूर्वाग्रहों से मुक्त हो और जो विद्वेष की भावना से रहित होकर धैर्य पूर्वक समस्याओं के मूल में प्रवेश करने की क्षमता रखते हो।

प्रबन्ध समिति के सदस्य चाहे वे सरकारी व्यक्ति हो चाहे गैर सरकारी व्यक्ति हो, प्रत्येक अध्यापक की कठिनाइयों का अध्ययन करें। वे स्वयं सरल भाव से उनके जीवन से सान्निध्य स्थापित कर। अधिकार-सम्पन्न होकर न उनकी भावनाओं को कुचलें और न उनके मन में भय जाग्रत करें। कम से कम जीवन का एक क्षेत्र तो भय और मत्सर से अछूता हो। ज्ञान-यज्ञ के लिए केवल अधिकारी यजमान और अधिकारी होता ही चुने जायें। अध्यापक भय से रहित होकर अपना समय ज्ञानार्जन में व्यतीत करें, और अपने छात्रों के सम्मुख अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करें। अपनी अपनी बौद्धिक क्षमता के अनुसार सभी लोकजीवन को समुन्नत बनाने की चेष्टा करें।•

भारतीय युवकों की बेचैनी

एम० एन० श्रीनिवास

पिछले २० वर्षों के दौरान शिक्षा प्राप्त करनेवाले युवकों की तादाद में भारी बढ़ोतरी हुई है। विश्वविद्यालयों की संख्या २० से बढ़कर ७० हो गयी है, जिसमें वे ९ संस्थाएँ अभी शामिल नहीं हैं, जो जल्दी ही विश्वविद्यालय का स्तर प्राप्त करनेवाली हैं। इन विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध कालेजों की संख्या २६०० तथा छात्रों की संख्या लगभग २० लाख है। इनमें से प्रति वर्ष लगभग १ लाख छात्र स्नातक बनकर बाहर आते हैं।

शिक्षित होने की बढ़ती हुई आकांक्षा

पिछले २० वर्षों के दौरान छात्रों की तादाद में जो भारी वृद्धि हुई है वह इतनी खास बात नहीं है। खास बात तो यह है कि पहले जिस सामाजिक परिवेश के छात्र विश्वविद्यालयों में दाखिल हुआ करते थे, वह अब बिलकुल दूसरा हो चुका है। विश्वविद्यालयों में पहले ऐसे परिवारों से छात्र आते थे जिनके सदस्य शिक्षित, सम्पन्न, और विद्वत्ता के प्रति सम्मान का भाव रखनेवाले होते थे। अब विश्वविद्यालयों में जो छात्र अध्ययन के लिए पहुँच रहे हैं वे समाज के हर तबके से आये हैं। चूँकि शिक्षा आज ऊँची प्रतिष्ठावाली नौकरियाँ पाने और राजनीतिक अधिकार प्राप्त करने का एक जरूरी साधन है और शिक्षित होना इज्जत और समझदारी का लक्षण माना जाता है, इसलिए चाहे शहरी क्षेत्र हो या ग्रामीण, हर क्षेत्र की जनता में अपने बच्चों को ऊँची शिक्षा दिलाने की आकांक्षा है। और हर क्षेत्र की जनता की शिक्षित होने की इस आकांक्षा ने धीरे धीरे एक राजनैतिक माँग का रूप ले लिया है।

शिक्षा की बढ़ती हुई माँग की पूर्ति के लिए विभिन्न जातीय संगठनों को शिक्षण-संस्थाओं के क्षेत्र में प्रवेश करने की प्रेरणा मिली। जिन जातियों के

लोग अधिक संख्या में थे या जिनकी संख्या बड़ी जाति के लोगों से कुछ कम थी, उन्होने अपनी-अपनी जातियों के लड़कों को शिक्षा की सुविधा उपलब्ध कराने के लिए शिक्षा-संस्थाओं का गठन करना शुरू किया।

घटिया दर्जे के महाविद्यालयों की वृद्धि

इस प्रकार के प्रयत्न से जो विद्यालय खुले उनकी इमारतें घटिया दर्जे की थीं, विद्यालय के लिए आवश्यक उपकरण और साज-सामान भी प्राय अपर्याप्त या घटिया किस्म मे ही रहे। प्रधानाचार्य, शिक्षक और अन्य कर्मचारियो के चयन में भी अपनी जाति के लोगों को प्रधानता देने की कोशिश की गयी। चुनाव करते समय उनकी योग्यता, चारित्र्य और अनुभव को प्रधानता देने के बदले, उनके जातीय और सामाजिक प्रभाव का विचार किया गया। ऐसे विद्यालयों में छात्रों को भी इसलिए भर्ती किया जाता है कि उनके कारण विद्यालयो की फीस की आय बढ़ती है।

शिक्षण-सम्बन्धी अपर्याप्त सुविधाओ, और अयोग्य अध्यापको से जैसे तैसे परीक्षा पास करनेवाले छात्रों की भारी तादाद एक ऐसी सास्कृतिक परिस्थिति का निर्माण करती है, जिसके अन्तर्गत छात्र का एक ही लक्ष्य रहता है—अच्छे नम्बर से इम्तहान पास करना। शिक्षक विद्यालयो में अच्छी तरह पढाने के बदले प्राइवेट ट्यूशन करना पसन्द करते हैं। परीक्षा में आनेवाले प्रश्नों के उत्तर छात्रों को बताने और परीक्षक पर प्रभाव डलवाकर छात्र को अधिक अच्छे नम्बर दिलाने मे शिक्षको की अधिक दिलचस्पी रहती है।

दुहरी क्रान्ति की समस्या

विश्वविद्यालय की कक्षाओ में प्रवेश पाना एक बात है और अच्छे अंको में परीक्षोत्तीर्ण होना दूसरी बात है। जो छात्र भूमिहीन परिवारों, कारीगरी से जीविकोपार्जन करनेवाले लोगो या समाज सेवा करनेवाले समुदाय में पल-पुसकर विश्वविद्यालयों में दाखिल होते हैं उनकी बुद्धि और विवेक-शक्ति पर भारी दबाव पड़ने लगता है। ऐसे तबको से आनेवाले अधिकाश छात्र अपने परिवारो के प्रथम साक्षर सदस्य हुआ करते हैं और चूँकि कालेज या विश्वविद्यालय प्राय नगरो में ही अवस्थित होते हैं, इसलिए ऐसे छात्र शहरी जीवन का भी प्रथम परिचय विश्वविद्यालय छात्र के रूप में ही प्राप्त करते हैं। इसी तथ्य को समाजशास्त्रीय शब्दावली में कहें तो कहना चाहिए कि उन छात्रों को अपनी जिन्दगी में दो-दो क्रान्तियों का साक्षात्कार करना पड़ता है—एक शिक्षा की क्रान्ति और दूसरी नगरीकरण की क्रान्ति। इस

दुहरी क्रान्ति की प्रक्रिया में से गुजरने के कारण ऐसे छात्रों को जिन समस्याओं का सामना पडता है वे निम्नलिखित हैं

समस्या का स्वरूप

पहली समस्या छात्र की घरेलू संस्कृति और विश्वविद्यालय की संस्कृति के भारी अन्तर के कारण उपस्थित होती है। देहात के वातावरण में पला हुआ छात्र ऐसी परम्परा के समाज में से आता है जहाँ पुरुष और स्त्री अलग अलग रहते हैं। लोगों का विवाह बहुत कम उम्र में ही हो जाता है। विश्वविद्यालय का सामाजिक वातावरण उससे बिल्कुल भिन्न होता है, जहाँ २४-२५ वर्ष की अवस्था तक के अविवाहित स्त्री पुरुष साथ साथ विद्या-अध्ययन करते हैं। गाँव के लोग अक्सर ऐसी धारणा रखते हैं कि जो सयानी लड़कियाँ अविवाहित रहती हैं वे अनैतिक जीवन जीती हैं। किसी लक्ष्य की उपलब्धि के लिए अविवाहित जीवन जीने की भी आवश्यकता हो सकती है, इस पर देहात के लोगों को आसानी से विश्वास नहीं हो पाता। ऐसे सामाजिक परिवेश से आनेवाले छात्र को विश्वविद्यालय मे पहुँचकर बडी लडकियों के बगल में बैठकर प्राध्यापक का लेक्चर सुनने, सभाओं में शरीक होने या अभिनय तथा खेल कूद म भागीदार बनने पर एक नया ही अनुभव मिलता है। होटल मे बैठकर चाय और काफी पीते हुए गपशप करना भी एक नया ही तजुर्बा होता है। ये सब नये अनुभव छात्र से एक नये सामाजिक सन्तुलन की माँग करते हैं। क्या इन माँगो का छात्रों की अनुशासनहीनता के साथ कोई सम्बन्ध है, यह एक ऐसा पहलू है जिसकी वैज्ञानिक छानबीन होनी चाहिए। जहाँ तक ग्रामीण युवको की बात है यह आमतौर से माना जा सकता है कि उनके और नगरवासी छात्रों के बीच एक बडी खाई रहती है।

दूसरी समस्या पढाई के विषयो को लेकर प्रस्तुत होती है। जो विषय छात्र हाईस्कूल की कक्षाओ मे पढता है वे विश्वविद्यालय में पहुँचने पर बदल देने पडते हैं और प्राय ऐसे विषय लेने पडते हैं, जो उनके लिए नये होते हैं। इसके विपरीत जो छात्र नगर स्थित विद्यालयो में शिक्षा प्राप्त करके कालेज या विश्वविद्यालय में दाखिल होते हैं वे अपने बचपन से ही प्रतिस्पर्धात्मक शिक्षण पद्धति और शहरी संस्कृति के अभ्यासी बने रहते हैं। देहाती और शहरी छात्रों की प्रतियोगिता की मिसाल रेस के घोड़े और तागे म चलनेवाले घोडे की घुडदौड की मिसाल से बहुत मिलती जुलती है। विश्वविद्यालय की ऊँची कक्षाओ में जाकर यह मिसाल और भी मौजूँ हो जाती है जब कि अंग्रेजी भाषा की

अच्छी जानकारी प्रत्येक विषय की पढाई का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हिस्सा बन जाती है।

आज की स्थिति

आज के भारत में छात्रो का आन्दोलन रोजमर्रा की जिन्दगी का एक अग बन गया है और यह हालत अब एक अर्से तक कायम रहनेवाली है। अब पावित्र्य की धारणा को मन्दिर के अतिरिक्त विद्यालय तक लागू करने की आवश्यकता है। प्राचार्यों और कुलपतियो का छात्रो द्वारा बार-बार घेराव हो तो भी उन्हें विद्यालय में पुलिस नहीं बुलानी चाहिए। क्योंकि जैसे ही पुलिस बुलायी जाती है, पुलिस बुलाने के निमित्त कुलपति अथवा प्राचार्य की छात्र नेताओ, राजनीतिज्ञों, समाचार-पत्रों और शिक्षको द्वारा भी निन्दा की जाती है।

यहाँ यह कहना अनुचित न होगा कि प्राय जब कभी पुलिस को शिक्षण सस्थाओं के अहाते में बुलाया जाता है तो स्थिति सुधरने के बदले और ज्यादा बिगड जाती है। शिक्षित प्रदर्शनकारियो और विशेष रूप से छात्रों को नियत्रित रखने के लिए आज की पुलिस से कहीं अधिक व्यवहारकुशल पुलिस की आवश्यकता है। छात्रो को नियत्रित करने के लिए एक अलग पुलिसवाहिनी का गठन करने पर भी गृहमत्रालय को विचार करना चाहिए।

विश्वविद्यालयो में शीघ्र ही शान्ति और सुव्यवस्था का वातावरण बनना चाहिए, अन्यथा शिक्षा के क्षेत्र मे घोर अराजकता की स्थिति पैदा होगी। विश्वविद्यालयो मे अध्यापन करनेवाले अनेक वरिष्ठ प्राध्यापक अब ऐसे क्षेत्र में कार्य सलग्न होना चाहते हैं, जहाँ छात्रो से सम्पर्क रखने की जरूरत ही न हो। *कुलपति का पद स्वीकार करने के लिए आजकल अच्छे लोग बडी मुश्किल से* तैयार हो पाते हैं। सम्प्रति कुलपति का पद आज सबसे अधिक त्रासदायक हो गया है।

राजनीतिज्ञो की घुसपैठ का दुष्प्रभाव

विश्वविद्यालय के अहाते में राजनीतिक दलों की घुसपैठ का दुहरा परिणाम होता है। एक तो यह कि विश्वविद्यालय की प्रत्येक समस्या राजनीतिक समस्या में रूपांतरित हो जाती है और दूसरा यह कि कोई भी राजनीतिक समस्या विश्वविद्यालय के अन्दर हिंसा और हडताल का स्रोत बन जाती है। हरेक राज-नीतिक दल की छात्र-शाखा है और यह भी जानकारी मिली है कि कुछ विश्व-विद्यालयों के छात्र अपने सम्बन्धित दलों से नियमित आर्थिक सहायता प्राप्त करते हैं। विश्वविद्यालया के छात्रो का इस प्रकार का राजनीतिकरण ऐसी स्थिति

पैदा कर चुका है कि विश्वविद्यालयों के प्रांगण में आसानी से शान्ति-स्थापना नहीं हो पायेगी।

इसी बीच सार्वजनिक जीवन के खास-खास व्यक्ति बराबर यह कह रहे हैं कि राजनीतिक दलों को छात्र-राजनीति से अलग रहना चाहिए और वरिष्ठ विद्वानों को विश्वविद्यालय की समस्याओं पर शुद्ध शैक्षिक दृष्टिकोण से विचार करना चाहिए। इस कथन का मतलब है समस्या को उसके सामाजिक परिवेश से अलग करना। वामपंथी दल चाहते हैं कि विश्वविद्यालयों का क्षेत्र उनके लिए खुला रहे और सच्चे लोकतंत्र में विभिन्न राजनीतिक दलों का छात्रों में प्रवेश रोकने का कोई उपाय नहीं है। आज तो ज्यादा-से-ज्यादा इतना ही सम्भव है कि छात्रों की जो भी शिकायतें पेश हों, उनके बारे में राजनीतिक दलों में पूरी जानकारी के साथ वाद-विवाद हो सके। इतना हो पाना भी आज की परिस्थिति में बड़ी दूर की बात है, क्योंकि छात्रों की शिकायतों को किस ढंग से दूर किया जाय, इसके बारे में राजनीतिक दल आसानी से एक राय नहीं हो पायेंगे।

लोकतंत्र के लिए खतरनाक स्थिति

ऐसी परिस्थितियों में छात्रों में बेचैनी का होना स्वाभाविक ही है। अब समय आ गया है जब कि सामान्य जनता को हमारी शैक्षिक संस्थाओं की असली हालत की जानकारी मालूम होनी चाहिए। आज जो हालत है, उससे सिर्फ इतना ही नहीं हुआ है कि छात्रों और शिक्षकों के स्तर में गिरावट आयी है, और हमारी शिक्षा प्रणाली देश की समस्याओं का सामना करने के लायक नहीं है, बल्कि इस बात का खतरा उपस्थित हो गया है कि अगर छात्र-असंतोष इसी तरह बढ़ता गया तो हमारी लोकतान्त्रिक व्यवस्था ही नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगी। अतः आज सबसे बड़ी जरूरत इस बात की है कि आम जनता और दलों के नेता इस खतरे की गंभीरता को समझें।

परिस्थिति की माँग है कि हमारे राजनीतिक नेता और शैक्षिक क्षेत्र के प्रतिष्ठित व्यक्ति शिक्षा सम्बन्धी तात्कालिक और दूरगामी निर्णयों तथा नीतियों के बारे में विचार-विमर्श करते रहें। राष्ट्रीय जीवन की अन्य समस्याओं की तरह शिक्षा के मामले में भी कुछ ऐसे गैर-पेशेवर व्यक्तियों की आवश्यकता है, जो शिक्षा की वर्तमान और भविष्य की समस्याओं पर लगातार चिन्तन करते रहें। (श्री एम० एन० श्रीनिवास के मूल अंग्रेजी लेख का संक्षिप्त हिन्दी रूपान्तर; 'टाइम्स आफ इंडिया' : १२ नवम्बर, '६८)

बेसिक स्कूलों के उद्योग और उनका संगठन

सच्चिदानन्द सिंह 'साथी'

'उद्योग' मे दो शब्द हैं—'उद्' और 'योग'। योग का अर्थ होता है मेल या सन्धि। मेल या सन्धि का अर्थ है प्रकृति और पुरुष का सन्तुलित विकास। ऐसा सन्तुलित विकास तब होता है, जब नैतिकता को पृष्ठभूमि में भौतिकता का आचरण किया जाता है। ऐसे आचरण से जो श्रमिक होता है वही भोक्ता होता है, यानी अहिंसक समाज तैयार होता है। अहिंसा और सत्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। शास्त्रकारों की दृष्टि में 'अहिंसा परमो धर्म' है। यही कारण था कि शोषण, हिंसा, विश्वासघात, ईर्ष्या, द्वेष, मोह, मत्सर और असूया इत्यादि से कराहते हुए सन्तप्त वर्तमान मानव समूह के सामने पूज्य बापू ने अहिंसा का आदर्श रखा था—अहिंसा आती है चित्तवृत्तियों के निरोध से, चित्त-वृत्तियों का निरोध होता है त्याग से, त्याग होता है कर्म या उद्योग के अभ्यास से। इसलिए शिक्षा तो उद्योग-केन्द्रित यानी कर्म केन्द्रित ही होनी चाहिए।" और आज की स्वीकृत शिक्षा प्रणाली में उद्योग को केन्द्रीय स्थान दिया गया है—शिक्षा का यह सुन्दरतम माध्यम माना गया है क्योंकि इसके माध्यम से जो शिक्षा दी जाती है, वह व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए द्वार खोलती है।

अंग्रेजी शिक्षा पद्धति में उद्योग तिरस्कृत था क्योंकि उस शिक्षा पद्धति का लक्ष्य व्यक्तित्व को खण्डित करना था।

शिक्षा और जीने की क्रियाएँ

बुनियादी शिक्षा-पद्धति जीवन की पद्धति है, अर्थात् बुनियादी शिक्षा जीवन की है और ऐसी योजना बनायी गयी है कि जीवन द्वारा ही वह दी जाय, इसलिए निश्चित है, ऐसी शिक्षा जीने की क्रियाओं में ही मिलना चाहिए।

तभी तो, विनोबा ने कहा है 'शिक्षा-पद्धति पाठ्यक्रम, समय-पत्रक, ये सब अर्थशून्य शब्द हैं। इनमें सिवा आत्मवचना के और कुछ नही है। जीने की क्रिया में ही शिक्षा मिलनी चाहिए। जब जीने की क्रिया से भिन्न शिक्षण नाम की कोई स्वतंत्र क्रिया बन जाती है, तब किसी विजातीय द्रव्य के शरीर मे प्रविष्ट होने पर सम्भाव्य दुष्परिणाम की तरह शिक्षा का भी मन पर विषैला, रोगयुक्त प्रभाव पडता है।"[१] स्पष्ट है, शिक्षा में जीने की क्रियाओं अर्थात् कर्म, जिसको हम उद्योग कहेगे का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सच में, प्रत्यक्ष ज्ञान-प्राप्ति के लिए कर्म के अतिरिक्त और कोई दूसरा मार्ग नही है। महात्मा गाधी ने ऐसा ही अनुभव किया था। आपने कहा था कि "हाथ का काम एक बडा जबरदस्त जरिया है या बन सकता है।"[२]

पढाने का सर्वोत्तम तरीका

काम के जरिये तालीम देना या काम के साथ पढाई जोडना पढाने का सबसे अच्छा तरीका है, क्योंकि कर्म के द्वारा या काम के जरिये विद्यार्थी को जो कुछ भी प्राप्ति होती है, उसमें स्थायित्व होता है और यही सच्चा और ठोस ज्ञान होता है। उद्योग ज्ञान की जननी है। ज्ञान अनुभूति से होता है और अनुभूति कर्म से निकलती है। प्रमाणित यह हुआ कि ज्ञान का स्रोत कर्म का उद्योग है।"[३] इस प्रकार यदि यह कहा जाय कि काम के जरिये छात्र आनन्दपूर्वक ज्ञान की प्राप्ति करता है तो कोई अत्युक्ति नही, क्योंकि बालकों को अपने हाथो से तरह-तरह की चीजो को बनाने में बडा आनन्द मिलता है और इस प्रकार बालक की रुचियो, आकाक्षाओं, प्रवृत्तियो तथा उनके सस्कारो के अनुरूप उन्हें शिक्षा मिल पाती है और उनके व्यक्तित्व का पूर्ण विकास होता है।

कर्म और ज्ञान के बीच कोई विभाजक रेखा नहीं खीची जा सकती है। कर्म और ज्ञान एक-दूसरे से इतने ओतप्रोत हैं कि उनका अलगाव नही बताया जा सकता है और इसके पीछे मनोवैज्ञानिक सत्य भी है। आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार ज्ञान, भावना और कर्म, तीनो एक-दूसरे से पृथक् नहीं हैं। शिक्षा-शास्त्रियों ने स्वीकारा है कि शिक्षा के क्षेत्र म ज्ञान और कर्म का पृथक्करण मनोविज्ञान की उपेक्षा है, क्योंकि मनोविज्ञान बतलाता है कि "मन" एक है। इस स्थल पर हमे डिवी का दर्शन होता है, जिसने मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के

१—विनोबा ('महाराष्ट्र धर्म' अक ४ जनवरी १९२३)
२—'दि क्रिश्चियन न्यूज लेटर' ८ अगस्त, १९४४
३—द्वारिका सिंह ('बुनियादी शिक्षा में समवाय' ; पृष्ठ ११)

आधार पर कि "मन एक है' योजना पद्धति का "दर्शन" समाज को दिया। श्री वशीधरजी ने कहा है कि "मन ने भी, जो आदर्शवादी हैं और जिन्हें डिवी के विरुद्ध विचारोवाला कहा जाता है, माना है कि शिक्षा का आधार क्रिया होनी चाहिए। क्रिया को माध्यम बनाकर ज्ञान देने से ज्ञान की एकता और अखण्डता बनी रहती है और विभिन्न विषयो का विभाजन नही हो पाता है।"[1]

बुनियादी शिक्षा की विशेषता

शिक्षा के ऐसे महत्त्वपूर्ण माध्यम उद्योग को छोडकर शिक्षण-पद्धति की योजना कदापि सम्भव नही बनायी जा सकती थी। इसीलिए बुनियादी शिक्षा में उद्योग को केन्द्रीय स्थान दिया गया है। यों भी कह सकते हैं कि बुनियादी शिक्षण की रचना उद्योग पर खडी की गयी। विनोबा का मत है कि "बच्चों के सारे शिक्षण को रचना किसी एक मूल उद्योग पर खडी की जाय, ताकि उद्योग से शिक्षण को गरमाहट मिले और शिक्षण से उद्योग पर प्रकाश डाला जाय।" महात्मा गांधी ने इसी सत्य को स्वीकारते हुए कहा था कि "ग्रामोद्योग के शिक्षण को शिक्षा का आधार और केन्द्र समझने की जरूरत और कीमत के बारे में मुझे जरा भी शक नही।"[2]

इस प्रकार स्पष्ट है कि शिक्षा जगत् को नवीन शिक्षण धारा मे उद्योग को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है और बुनियादी शिक्षा के एक विशिष्ट तत्त्व के रूप में यह स्वीकार हो गया है। इसमें दो मत नहीं है कि उद्योग शिक्षण का आधार हो और इसीके माध्यम से जीने की प्रक्रिया में विभिन्न विषयो—जैसे, इतिहास, भूगोल, गणित आदि की शिक्षा सहज रूप में छात्रो को मिले तो ज्ञान का ग्रहण सहज और स्वाभाविक होगा।

बुनियादी शिक्षा को यदि हम एक त्रिभुज के रूप में मान लें, तो उसका आधार उद्योग होगा और एक भुजा प्रकृति तो दूसरी भुजा समाज में होगी। स्पष्ट है, बुनियादी शिक्षा का आधार उद्योग ही है और शिक्षण का एक सफल माध्यम भी। तभी तो, माध्यमिक शिक्षा आयोग (१९५२–५३) ने अपने प्रतिवेदन में उद्योग की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए कहा कि वास्तव में यह शिक्षा का सर्वोत्तम और सर्वाधिक प्रभावकारी माध्यम है।

१—वशीधर ('समवाय का मनोवैज्ञानिक आधार' 'नयी तालीम', जनवरी–६४, पृष्ठ–२३०)

२—महात्मा गांधी ('हरिजन' ५ जून १९३७)

यह निर्विवाद है कि उद्योग शिक्षा का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। परन्तु इसका प्रभाव समुचित संगठन पर निर्भर करता है। इस क्रम मे हमें निम्नांकित बिन्दुओ पर विचार करना होगा

उद्योग की योजना—किसी भी कार्य को सुसंचालित करने के लिए सबसे पहले उसकी योजना बना लेनी चाहिए। इस प्रकार उद्योग को सुसगठित करने के लिए एक योजना बनानी होगी, जैसे—वार्षिक, अर्द्धवार्षिक त्रैमासिक, मासिक एवं दैनिक। इस योजना के अनुसार उद्योग के सारे कार्य सम्पादित होंगे। योजनाबद्ध सभी कार्य लडके आनन्दपूर्वक खेल-खेल मे पूरे कर देंगे। इस क्रम में आवश्यकता इस बात की है कि योजना एकांगी न हो। उद्योग से सम्बन्धित छोटी-सी छोटी बातों का भी समावेश इसमें होना अपेक्षित है।

उद्योग का चुनाव—उद्योग का चुनाव समुचित ढग से होना चाहिए। के० सी० मलैया तथा विद्यावती मलैया के अनुसार मूल उद्योग ऐसा चुनना चाहिए, जिनमें निम्नांकित गुण हो:

(१) मूल उद्योग देश, काल, परिस्थिति तथा वातावरण के अनुकूल होना चाहिए।

(२) मूलोद्योग में सम्पूर्ण समाज एव सदस्यों की आवश्यकताएँ पूर्ण करने की क्षमता होनी चाहिए।

(३) मूल-उद्योग के लिए कच्चा माल आस पास सुलभता से तथा सस्ता मिलना चाहिए। इतना ही नही, यह वर्ष भर सरलता से उपलब्ध होना चाहिए।

(४) मूलोद्योग से तैयार होनेवाली वस्तुओ की खपत भी आस पास के स्थानों में ही होनी चाहिए।

(५) मूलोद्योग के लिए उपयोग में लाये जानेवाले सामान, यन्त्र आदि इतने सरल होने चाहिए कि साधारण बुद्धिवाले बालक भी उनका सरलता से प्रयोग कर सकें।

(६) मूलोद्योग आरम्भ करने के लिए आरम्भिक व्यय अधिक नहीं होना चाहिए।

(७) मूलोद्योग ऐसा हो, जिसमे कम से-कम परिश्रम की आवश्यकता पडे, जिससे बालक जल्दी न थकें।

(८) मूलोद्योग बालको की रुचि, योग्यता तथा शक्ति के अनुकूल होना चाहिए।

(९) मूलोद्योग ऐसा हो, जिसके आधार पर अधिक से अधिक विषयो का ज्ञान सुगमता से स्वाभाविक रूप से दिया जा सके।

(१०) मूलोद्योग में बालक के शारीरिक तथा मानसिक विकास की क्षमता होनी चाहिए।

(११) मूलोद्योग मे बालक को उच्च श्रेणियों की ओर बढ़ने के साथ-साथ नयी खोजें तथा आविष्कार करने के अवसर प्रदान करने की क्षमता होनी चाहिए।

(१२) मूलोद्योग में नैतिक तथा आध्यात्मिक गुणों की वृद्धि करने की क्षमता होनी चाहिए।[1]

उपर्युक्त बातों को दृष्टि में रखकर विद्यालय में उद्योग की योजना की जा सकती है। साधारणतया विद्यालय के औद्योगिक कार्य निम्न होंगे—कृषि-बागवानी, कताई-बुनाई, काष्ठ-कला, चर्मकला, गत्ता-कार्य, हाथ से कागज बनाना आदि।

उद्योग-भवन—उद्योग चलाने के लिए उद्योग-भवन की आवश्यकता पड़ती है, जिस ओर ध्यान जाना ही चाहिए। उद्योग-भवन सुन्दर ढग से बने हों और वहाँ सभी सम्बन्धित सामान उपलब्ध हो, जैसे—यदि बुनाई-उद्योग-भवन हो तो करघा तथा अन्य सामानों का वहाँ रहना अनिवार्य है। मान लीजिए, वहाँ करघे हों और बुनाई के लिए सूत न हों, कताई के लिए तकली या चरखे हो, परन्तु सूत कातने के लिए रुई न हो, तो ऐसे उद्योग-भवन की क्या उपयोगिता हो सकती है? इसी प्रकार काष्ठ कला-भवन के लिए आवश्यक है कि यदि वहाँ एक ओर बसुला, रुखानी, आरी आदि काम करने के सामान हों तो दूसरी ओर सम्बन्धित कच्चे माल भी हों। यही बात अन्य उद्योगों के साथ लागू होगी। पर्याप्त साधन के अभाव में न तो उद्योग-शिक्षक सम्यक ढग से हो सकता है और न उद्योग-द्वारा ज्ञान देने का कार्य ही प्रभावपूर्ण ढग से सम्पन्न किया जा सकता है।

उद्योग-शिक्षक—उद्योग के संगठन के लिए यह आवश्यक है कि हर विद्यालय में विशेष रूप से उद्योग-प्रशिक्षित शिक्षक हो। ऐसा होने पर अध्यापक अपने उद्योग से सम्बन्धित छात्रों को सैद्धान्तिक और व्यावहारिक, दोनों ज्ञान देंगे और इस प्रकार के उद्योग के माध्यम से जो शिक्षा दी जा सकेगी वह पूर्ण होगी। इस क्रम में हम यह निवेदन करना चाहेंगे कि यदि किसी विद्यालय में

१—के० सी० मलैया, विद्यावती मलैया ('बुनियादी शिक्षालय-संगठन तथा विभिन्न विषयों का शिक्षण'. पृष्ठ—१५४-१५६)

विशेष रूप से उद्योग में प्रशिक्षित अध्यापक न हो तो स्थानीय विशेषज्ञों से सहायता ली जा सकती है—जैसे, यदि विद्यालय में बुनाई-प्रशिक्षित अध्यापक नहीं हों तो स्थानीय बुनकरों से हम सहायता ले सकते हैं। इसी प्रकार स्थानीय बढ़ई, लोहार, चर्मकार आदि व्यक्तियों से लाभ उठाया जा सकता है। सही है, हमारे कार्य सरलतापूर्वक सम्पादित हो तो जायेंगे, परन्तु यह भी सम्भव नहीं है कि विभिन्न उद्योगों की सैद्धान्तिक बातों की जानकारी छात्रों को अच्छी तरह न मिल सके। इसलिए अच्छा तो यही होगा कि हर विद्यालय में उद्योग में विशेष रूप से प्रशिक्षित अध्यापक ही इसके लिए नियुक्त हो।

उद्योगों का समुचित रूपेण सगठन हो, इसके लिए यह भी आवश्यक है कि हम उपर्युक्त चर्चित बिन्दुओं के अतिरिक्त चालू पूँजी की आवश्यकता, उद्योग के लिए आवश्यक बहियाँ, तैयार माल की खपत के लिए स्थानीय बाजार आदि की व्यवस्था पर भी ध्यान दें।

उद्योगमूलक शिक्षा के लाभ

प्रारंभ में हमने शिक्षा और उद्योग के परस्पर-सम्बन्ध और शिक्षा में उद्योग का स्थान, आदि बातों पर विचार किया है। अब हम इसकी उपादेयता पर विचार करना चाहेंगे। उद्योग के द्वारा बालकों को जो ज्ञान प्राप्त होता है, वह स्थायी होता है, क्योंकि यहाँ कर्म और ज्ञान में समन्वय-सूत्र की स्थापना होती है। विद्यार्थी अपने हाथों से जो कुछ बना पाता है, उसमें उसके हृदय की भावनाएँ जुड़ जाती हैं और कर्म, ज्ञान और भावना का अभूतपूर्व सम्मिलन होता है। गांधीजी का यह मत था कि बालकों को अपने हाथों से तरह-तरह की चीजें बनाने में बड़ा आनन्द आता है। सच में कहा गया है कि गीत गाने का आनन्द और वस्तुएँ बनाने का आनन्द एक ही है। स्पष्ट है, आनंदमय वातावरण में इस प्रकार आनन्दपूर्वक उद्योग के कार्य करने से विद्यार्थियों का जीवन आनन्द से परिपूरित होगा।

उद्योग के द्वारा शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थियों में श्रम के प्रति आस्था का भाव आसानी से उत्पन्न किया जा सकता है। श्रम का व्यापक महत्त्व है, तभी तो कार्लाइल ने कहा है कि श्रम ईश्वर का सबसे बड़ा पूजन है। विनोबा भी कार्लाइल की तरह श्रम को ईश्वर का सबसे बड़ा पूजन समझते हैं और उनके लिए वही जीवन है, तभी तो आपने कहा है कि दुनिया में सभी दुःख शरीर-श्रम को छोड़ देने से पैदा हुए हैं। इस प्रकार उद्योग द्वारा शिक्षा पाकर विद्यार्थी श्रम का पूजक बन अपने अन्तर में चेतना का दृढ़ भाव भरता है।

छात्र जब अपने द्वारा किये गये कार्यों के रचनात्मक रूप को देखता है तो उसके अन्तर मे आत्म विश्वास की लहर उठती है और उसका पौरुष जगता है। आत्म विश्वास व्यक्तित्व की एक उत्तम कड़ी है, जिसकी प्राप्ति वह कर लेता है।

उद्योग-शिक्षण बालको में स्वावलम्बन की प्रवृत्ति जगाता है। विद्यार्थी अपने पैरो पर खडे होने की ताकत का अनुभव करता है—आत्म निर्भरता की भावना से वह भर जाता है।

स्वावलम्बी जीवन के आर्थिक आधार की भी प्राप्ति बालकों को होती है। बालकों द्वारा तैयार की गयी वस्तुओं की बिक्री से जो कुछ भी प्राप्त होता है वह कम महत्त्व का नही है। इस प्रकार उद्योग द्वारा शिक्षा प्राप्त कर अपने अगले जीवन में बालक जब प्रवेश करता है तो वहाँ वह हाथ पर हाथ धर कर बैठा नहीं रहता है बल्कि अपनी जीविका के लिए अपने हाथों से कुछ अर्जन कर ही लेता है। स्वाश्रयिता की इससे और अच्छी शिक्षा उद्योग द्वारा बालको को क्या दी जा सकती है?

उद्योग द्वारा शिक्षा प्राप्त करने के क्रम में विद्यार्थियों को जो काम करने पड़ते हैं उससे शारीरिक क्षमता का विकास होता है जो व्यक्तित्व की पूर्णता की प्राप्ति के लिए एक सोपान है।

विद्यार्थी जो कुछ भी बनाता है उसके लिए उसे तैयार होकर योजना के अनुसार जानना पडता है। इसके लिए बौद्धिक चिन्तन करने की आवश्यकता हो जाती है। मान लीजिए किसी विद्यार्थी को कोई एक मूर्ति बनानी है तो उसके लिए आवश्यक वस्तुओं का चुनाव तथा उससे सम्बन्धित अन्य काम तो उसे करने ही होंगे। इसके लिए उसे सोचना और विचारना पडता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि उद्योग द्वारा शिक्षण प्राप्त करने के क्रम मे बालकों का मानसिक स्तर विकसित होता है।

कुछ करके सीखने के क्रम मे बालक सामाजिकता के गुणो से समन्वित हो जाता है। मिलकर काम करने की भावना का उसमें विकास होता है और व्यक्तिगत परिधि से उठकर वह समाज के लिए सोचता है। इस तरह बालको में अनुशासन सहयोग तथा सामाजिक चेतना के भाव भर जाते हैं और उनका नैतिक और सामाजिक संस्कार विकास पाता है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि उद्योग द्वारा दी जानेवाली शिक्षा विद्यार्थी की रुचियो, प्रवृत्तियों एवं संस्कारों के अनुरूप विकास का पूर्ण भाग देकर उनके व्यक्तित्व को पूर्णता प्रदान करती है। •

समवायित पाठ-संकेत

वंशीधर श्रीवास्तव

दिनाक	कक्षा	कालाश	मुख्य क्रिया	उपक्रिया	समवायित विषय
२१ ९ '६७	५	१, २, ३,	कताई	तुनाई	भूगोल गणित

समवायित पाठ-सख्या · १—तुनाई

सामान्य उद्देश्य—(१) समाजोपयोगी उत्पादक काम करने का अभ्यास कराकर छात्रो में आत्मनिर्भरता एव स्वावलम्बन की भावना उत्पन्न करना ।

(२) उपयोगी वस्तुओ के निर्माण में उनकी रुचि को विकसित करना ।

(३) छात्रो को श्रमनिष्ठ बनाना ।

(४) कर्मेन्द्रियो और ज्ञानेन्द्रियो में सामंजस्य स्थापित करना ।

मुख्य उद्देश्य—(१) *क्रिया सम्बन्धी* : छात्रों को तुनाई की वैज्ञानिक विया से परिचित कराना ।

(२) ज्ञान सम्बन्धी (क) भूगोल—भारत में कपास की उपज के बारे में ज्ञान देना । (ख) गणित : गति-सम्बन्धी प्रश्न हल करने की क्षमता उत्पन्न कराना ।

सहायक सामग्री—रुई, दफ्ती, रोलरबोर्ड पर बने भारत के मानचित्र पर कपास उत्पादन क्षेत्र ।

पूर्व ज्ञान—(१) छात्र बुनाई कर चुके हैं ।

(२) छात्र ऐकिक नियम जानते हैं ।

प्रस्तावना—(१) अच्छे सूत के लिए कैसी रुई चाहिए ? (साफ रुई)

(२) रुई किस प्रकार साफ की जाती है ? (तुनाई द्वारा)

(३) तुनाई किस प्रकार करोगे ? (समस्या)

उद्देश्य-कथन—आज हम लोग रुई की तुनाई करेंगे।

आदर्श प्रदर्शन—अध्यापक छात्रों की सहायता से रुई वितरित करेगा तथा रुई की तुनाई विधि का प्रदर्शन करेगा और अग्रांकित प्रश्नों द्वारा छात्रों को रुई तुनने की वैज्ञानिक विधि और तुनाई के समय की सावधानियों से परिचित करायेगा—

(१) तुनाई के लिए कैसी रुई लेनी चाहिए ? (सूखी रुई)

(२) रुई को सुखाते समय किन किन बातों का ध्यान रखना चाहिए ? (साफ, हवाविहीन स्थान)

(३) रुई तुन कर मैं कहाँ रख रहा हूँ ? (दफ्ती के टुकड़े पर)

(४) रुई किस प्रकार तुननी चाहिए ? (चुटकी से रेशों को समानान्तर खींचकर)

(५) तुनते समय रुई आँखों से कितनी दूर रखनी चाहिए ? (१२")

(६) तुनाई करते समय किस आसन में बैठना चाहिए ? (सुखासन)

(७) तुनते समय रुई में से क्या-क्या निकाल देना चाहिए ? (पीले रेशे, कचरा, और विनौले)

क्रियाशीलन और निरीक्षण—सभी छात्र उपर्युक्त विधि से बैठकर रुई की तुनाई करेंगे और अध्यापक घुमकर उनका निरीक्षण करेगा तथा आवश्यक सहायता करेगा।

पुनरावृत्ति—(१) रुई किस प्रकार तुननी चाहिए ?

(२) रुई से किन किन चीजों को अलग कर देना चाहिए ?

मूल्यांकन एव नवीन पाठ-समस्या—(१) रुई और कपास मे क्या अतर है ? (रुई विनौला रहित तथा कपास विनौला-सहित)

(२) कपास की पैदावार हमारे देश में कहाँ-कहाँ होती है ? (समस्या)

समवायित पाठ-सख्या २—भूगोल

उद्देश्य कथन—आज हम लोग पढ़ेंगे कि भारत में कपास की खेती कहाँ-कहाँ और क्यों होती है ?

प्रस्तुतीकरण—(१) कपास के लिए किस प्रकार की मिट्टियाँ उपयुक्त हैं ? (काली एव दोमट)

(२) काली मिट्टी में क्या विशेषता है ? (जल सरक्षण)

(३) कपास के लिए भूमि की बनावट कैसी होनी चाहिए ? (ढालू)

(४) अमेरिकन कपास किस प्रकार की भूमि मे उत्पन्न की जाती है ? (लाल कछारी)

(५) अमेरिकन कपास के लिए सिंचाई की आवश्यक्ता क्यो होती है ? (अप्रैल मई मे बो दी जाती है।)

अध्यापकीय कथन---इस स्थल पर अध्यापक छात्रो को बतलायेगा कि कपास के लिए उच्च तापक्रम ३०° अश तथा साधारण वर्षा ५० से १००' तक की आवश्यकता होती है। मौसम २०० दिन तक पालारहित होना चाहिए। भारत में गुजरात अहमदाबाद भडौच महाराष्ट्र सूरत धारवाड खानदेश मे सर्वाधिक देशी कपास पैदा की जाती है तथा पजाब गुजरात, महाराष्ट्र आ ध्र प्रदेश राजस्थान और मद्रास कपास के अन्य मुख्य केन्द्र हैं। इन स्थानो की मिट्टी और जलवायु कपास के लिए उपयुक्त है।

पुनरावृत्ति---(१) उत्तर प्रदेश में कपास की उपज कहाँ होती है ?
(नक्शा दिखाकर---मेरठ आगरा)

(२) उत्तम रुई की क्या विशेपता होती है ? (मुलायम एव रेशा लम्बा)

(३) अच्छा रेशा कितना लम्बा होता है ? (लगभग १")

(४) अमेरिकन कपास को उत्तम क्यो समझा जाता है ? (अधिक उपज, लम्बा रेशा १ से अधिक)

(५) देशी कपास अधिकतम कितने क्विटल प्रति हेक्टर तक पदा की जाती है ? (४ ५ क्विटल)

(६) कपास के लिए कैसी भूमि की आवश्यकता होती है ?

(७) सबसे अधिक कपास भारत में कहाँ उत्पन्न होती है ?

समवायित पाठ संख्या ३---गणित

(१) आज तुमने क्या कार्य किया ? (तुनाई)

(२) तुम्हें कितनी रुई तुनने को दी गयी थी ? (२ ग्राम)

(३) २ ग्राम रुई तुमने कितनी देर तूनी थी ? (२० मिनट मे)

(४) रमेश ने उतनी ही रुई कितनी देर में तूनी थी ? (१५ मिनट में)

(५) यदि ५ ग्राम रुई दोनों मिलकर तूनें तो कितना समय लगेगा ? (समस्या)

उद्देश्यकथन, प्रस्तुतीकरण—(१) अ ५ ग्राम रुई को १० मिनट में, ब १२ मिनट में और स १५ मिनट में तुन सकता है, तो तीनों मिलकर उसे कितने समय में तुनेंगे ?

(१) प्रश्न में क्या दिया है ? (अ, ब, स की रुई तुनने की गति)

(२) क्या ज्ञात करना है ? (तीनों की एक मिनट की गति)

(३) तीनों ने मिलकर कितनी रुई तुनी ? (१५ ग्राम)

(४) तीनों का अलग-अलग कार्य कैसे ज्ञात होगा ? (१ मिनट का ज्ञात होने पर)

(५) 'अ' का १ मिनट का कार्य कितना होगा ? ($\frac{१}{१०}$ भाग)

(६) 'ब' का एक मिनट का कार्य कितना होगा ($\frac{१}{१२}$)

(७) 'स' का एक मिनट का कार्य कितना होगा ($\frac{१}{१५}$)

(८) तीनों का १ मिनट का कार्य कैसे ज्ञात होगा ? (जोड़कर)

श्यामपट्ट कार्य— ∵ अ १० मिनट में रुई का १ भाग तुनता है

अ १ „ „ १/१० भाग तुनेगा।

ब १२ „ „ १ „ तुनता है।

∴ ब १ „ „ १/१२ „ तुनेगा।

स १५ मिनट में रुई का १ भाग तुनता है।

∴ स १ „ „ १/१५ भाग तुनेगा।

$$\text{तीनों का १ मिनट का कार्य} = \frac{१}{१०} = \frac{१}{१२} + \frac{१}{१५}$$

$$= \frac{६+५+४}{६०} + \frac{१५}{६०} = \frac{१}{४}$$

तीनों मिलकर १/४ कार्य करते हैं १ मिनट में

∴ „ „ १ „ करेंगे ४/१ = ४ मिनट में

उत्तर : ४ मिनट

अभ्यासार्थ प्रश्न एवं गृहकार्य—(१) क एक खेत को १२ दिन, ख १६ दिन और ग २४ दिन में जोत सकता है, तो तीनों मिलकर उससे तिगुने खेत को कितने दिन में जोत लेंगे ?

(२) राम एक गड्ढा ६ दिन में, मोहन ८ दिन में और श्याम १२ दिन में खोद सकता है। यदि २ दिन बाद राम काम छोड़कर चला जाय तो मोहन और श्याम शेष काम को कितने दिनों में कर लेंगे ?

•

बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्तों और स्वरूप में परिवर्तन की आवश्यकता

प्रवीणचंद्र

शिक्षा-आयोग के प्रादुर्भाव के पहले से ही बुनियादी शिक्षा के गांधीजी द्वारा प्रस्तावित अथवा 'जाकिर हुसैन कमिटी' द्वारा प्रवर्तित सिद्धान्तो और उसके स्वरूप में परिवर्तन और संशोधन की माँग उठती रही है। परिस्थितियों के परिवर्तन के अनुसार और युग के परिवर्तन के अनुरूप, परिवर्तन और प्रगति शिक्षा-क्षेत्र में भी वाछनीय, अपेक्षित और आवश्यक होती है, इस बात से पंडितो अथवा पुरोहितों का इन्कार करना हठधर्मी है, यह स्वयं स्पष्ट है। और फिर जब कि स्वय बुनियादी तालीम (या नयी तालीम) नित्य नयी तालीम होने का दावा करे, तब तो संशोधन और प्रगति का विरोध निश्चय ही प्रतिगामी माना जायेगा और हास्यास्पद भी होगा।

सचमुच यह दुःख और पश्चाताप का विषय है कि आज भी बुनियादी तालीम की वे ही धारणाएँ प्रचलित हैं, जो सन् १९३७ में थी। आज भी स्वावलम्बन और उद्योग के सम्बन्ध में वे ही आग्रह प्रचलित हैं, जो उस समय थे, आज भी, केवल उद्योग से ही अन्य सभी विषयो का समवाय करना होगा, यही एक औसत मान्यता जारी है। श्री अमरसिंह सोलंकी ने "बुनियादी शिक्षा में अनुबंध की कला" नाम की एक पुस्तक लिखी है, यह बुनियादी तालीम के अधिकांश शिक्षकों को मालूम नही है। बुनियादी तालीम एक नित्य नयी तालीम है, यह साबित करने अथवा मानने का कोई प्रयत्न और प्रयास ही नहीं किया जाता। आज भी बुनियादी शिक्षा-क्षेत्र मे कट्टरता से छुटकारा नहीं मिल सका है। अतः इस बात की जरूरत महसूस होती है कि बुनियादी तालीम के सिद्धान्तों, स्वरूप और पद्धति पर, उसके सभी पहलुओ पर, नये

सिरे से नवलेखन प्रकाशित किया जाय। यह स्पष्ट किया जाय कि पुरानी मान्यताओं और धारणाओं में क्या क्या परिवर्तन और संशोधन हो गये हैं, और वे किस रूप मे अब सर्वमान्य हो चुके हैं। सर्व सेवा संघ की नयी तालीम समिति का ही यह कार्य और दायित्व है कि वह यह कार्य सम्पादित करे। जब तक यह नहीं हो जाता तब तक सामान्य और साधारण बुनियादी शिक्षक भ्रांतियों के शिकार ही रहेंगे और उससे कितनी हानि होती है, यह हम समझ ही सकते हैं।

शिक्षा आयोग की रिपोर्ट में बुनियादी तालीम के विद्यालयो में किये जा रहे कृषि-कार्यों अथवा प्रयोगो की जिस असफलता की घोषणा की गयी है, और जिससे इन्कार नहीं किया जा सकता वह सब चिन्तनीय है। फिर भी आज हम यह मानने को तैयार नहीं हैं कि हमारे लक्ष्याका के निर्धारण में गलतियाँ रही हैं। गलतियों के परिणामो अथवा असफलता के अनुभवों के प्रकाश में जो लोग भूल-सुधार नहीं करते, सशोधन और पुनर्विचार नहीं करते वे आगे जाकर घन तमसान्ध में ही जाकर गिरेंगे, इसमें क्या सदेह है ?

इसीलिए आज अगर शिक्षा आयोग ने बुनियादी तालीम के नाम को निस्सार पाया तो उसकी पीडा को अनुभव करने के साथ साथ हमें पुनर्विचार की तकलीफ भी उठानी चाहिए और नये विचारा की प्रसव पीडा भी वहन करनी चाहिए।

इस परिप्रेक्ष्य में मैं 'बुनियादी' नाम का मातम मनाने की अपेक्षा 'कार्यानुभव' के विचार का स्वागत करना पसन्द करता हूँ। बुनियादी विद्यालय के स्थान पर 'कार्यानुभव विद्यालय' का नाम रख लिया जाये तो गांधीजी की आत्मा को ठेस पहुँचेगी ऐसा जो लोग सोचते या महसूस करते हैं, उनसे मेरी विनती यह है कि वे राजस्थानी महिलाओं की तरह 'पल्ला रुदन' नहीं करके पुरुषार्थ क्षेत्र में उतर आयें और 'कार्यानुभव'-पद्धति का विकास करके राजकीय विद्यालयों का मार्गदर्शन करें।

आवश्यकता तुरन्त इस बात की है कि कार्यानुभव के विचार पर गहन चिन्तन मनन और प्रयोग किये जायें और इस विचार और सिद्धांत, और उसके यथार्थ कार्यान्वयन के स्वरूप का आदर्श-निर्धारण किया जाय। एक ऐसा रूप-स्वरूप निर्धारित करने का प्रयत्न किया जाय, जो प्रगतिशील विद्यालयो का मार्गदर्शक हो सके। व्यावहारिक मध्यम मार्ग पर चलते हुए उद्योगों के 'व्यावहारिक' पाठ्यक्रम बनाये जायें, प्राकृतिक परिवेश के अध्ययन के स्तर और सूत्र

निर्धारित किये जायें, जिस तरह सामाजिक वातावरण के अध्ययन श्री वंशीधरजी श्रीवास्तव ने 'नयी तालीम' के दिसबर '६७ के की है, और, सामाजिक परिवेश का प्रखण्ड-स्तर पर अध्ययन किया जाय, जो शिक्षा-क्रम को समवायित स्वरूप देने की वजाय आधार प्रदान कर सके।

मेरा अपना दृष्टिकोण और कतिपय सुझाव इस प्रसग में जो हैं, विद्वद्जनो के विचारार्थ यहाँ प्रस्तुत हैं

(१) बुनियादी तालीम अथवा नयी तालीम का अधिकतम और कार्यक्रम तय किया जाय। अधिकतम कुछ विशिष्ट सस्थाओ या शिक्षा-के लिए और न्यूनतम सामान्य विद्यालयो के लिए, ताकि हर विद्यालय बु अथवा नयी तालीम विद्यालय की नाम प्लेट नहीं लगा सके, ताकि अब बदनामी से बचा जा सके।

(२) यथार्थ मे जिन्हें बुनियादी या नयी तालीम के विद्यालय कहा सके—माना जा सके—उनका भी प्रामाणिक तौर पर एक वर्गीकरण कर f जाय, ताकि प्रत्येक विद्यालय अपनी सीमाएँ निर्धारित कर सके और साथ अपनी अग्रिम विकास-योजनाएँ बना सके और प्रगति के पथ पर बढ सके।

(३) देश के हर राज्य में, केन्द्रीय सघ (वाराणसी) से सम्बद्ध, कम-से कम तीन विद्यालय स्थापित या मान्य किये जायें

(अ) अधिकतम कार्यक्रम का पथ-प्रदर्शक नयी तालीम विद्यालय

(आ) न्यूनतम कार्यक्रम का स्टैंडर्ड-नियामक बुनियादी तालीम विद्यालय

(इ) प्रायोगिक 'कार्यानुभव विद्यालय'

(४) उपरोक्त अथवा अन्य बेहतर सुझावो के अनुसार सारे देश में नयी तालीम के कार्य को पुनर्संगठित करने के लिए, और इस विषय पर समग्र और सर्वांगीण रूप से विचार करने के लिए एक अखिल भारतीय स्तर का सप्त-दिवसीय शिविर वाराणसी में बुलाया जाय, जो सारी बातो पर प्रामाणिक निर्णय कर सके।

(५) इन बातों के अलावा, जैसा कि इस लेख में ऊपर उल्लिखित है, आज मेरे जैसे अनेक शिक्षक यह चाहते हैं कि नयी तालीम (या बुनियादी तालीम ?) के समस्त मानदण्डो, आदर्शों, सिद्धान्तो, मान्यताओं, लक्ष्यांकों, अपेक्षाओं, घोषणाओ, और उसके सभी पहलुओ तथा पद्धतियों पर पुनर्विचार किया जाय। •

आत्मकथा (खान अब्दुल गफ्फार खाँ)*

कदाचित कोई भी देशभक्त भारतीय गांधी के नाम से अपरिचित नहीं होगा। भारत के स्वाधीनता संग्राम में सीमान्त गांधी का जो योगदान रहा है, उससे उन्होंने हर भारतवासी के दिल में सम्मान और श्रद्धा का स्थान हासिल कर लिया है। इसी श्रद्धा के झरोखे से मैंने भी खान अब्दुल गफ्फार खाँ को, जिन्हें 'सीमान्त गांधी' के नाम से ही लोग जानते हैं, देखा था। एक दिन राय-बरेली के बुकस्टाल पर खड़े मेरे एक मित्र ने जब उक्त पुस्तक मुझे दी और कहा कि इसके बारे में मैं कुछ लिखूँ तो उसने यह भी कहा कि मैं इस पुस्तक पर कवर चढ़ा लूँ। इसके पीछे उसकी मंशा कुछ भी रही हो, लेकिन मेरे लिए स्पष्ट संकेत था कि वह पुस्तक को किताब नहीं, ग्रन्थ मानता है।

अंग्रेजों ने भारत के साथ साथ अनेक उपप्रदेशों में भी अपनी साम्राज्य वादिता के कारण फूट डालो और शासन करो की नीति अपनायी थी। सबसे पहले सीमान्त प्रान्त से अंग्रेजों को पख्तूनों ने निकाला। और पख्तूनों से ही प्रेरणा लेकर भारत ने 'अंग्रेजो, भारत छोड़ो' का नारा बुलन्द किया था। भारत को आजाद कराने में सबसे अधिक जेहालत बादशाह खान और उनके सहकर्मियों ने उठायी। इसलिए नहीं कि वे भारत की आजादी में हिस्सा बटाना चाहते थे, बल्कि इसलिए कि पख्तून भी पहले भारतीय हैं, बाद में कुछ और। खान अब्दुल गफ्फार खाँ को सीमान्त गांधी, सरहदी गांधी, बादशाह खान, बाचा खान आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है। अयूब खाँ तो उनको 'खान चचा' कहते हैं।

कांग्रेस के जिस दिल्ली अधिवेशन में भारत के विभाजन के प्रश्न पर विचार हुआ, उसमें खान साहब भी थे। सरदार पटेल और राजगोपालाचारी तथा अन्य बहुत-सारे लोग विभाजन के पक्ष में थे। केवल दोनों गांधी—महात्मा गांधी और सरहदी गांधी-विभाजन किसी कीमत पर नहीं चाहते थे। क्यों नहीं चाहते थे, यह पुस्तक को पढ़ने पर ही ज्ञात होगा। लेकिन सीमान्त गांधी की आवाज को दबाने के लिए सीमा प्रान्त में जनमत संग्रह कराने की धमकी दी। उस धमकी से कौन डरनेवाला था, परन्तु जैसी कि भारतीय कहावत है—पति अपनी पत्नी से हारता है, बाप अपने बेटे से हारता है, डाकू अपने साथी से हारता है और क्रान्तिकारी हमेशा अपने पिछलग्गुओं से मात खाता है—वही

---

*प्रकाशक हिन्द पाकेट बुक्स, जी० टी० रोड शाहदरा, दिल्ली–३२
मूल्य : दो रुपये, पृष्ठ संख्या : १८२

हाल सीमान्त गांधी का हुआ और बेचारे पख्तूनो को भेड़ियो के हवाले कर दिया गया। यह वही सरहदी गाधी हैं जिन्होने अटक-पार युद्धशाली पख्तूनों के हाथो से बन्दूक फिकवायी और उनके हृदय में खुदाई खिदमतगारी मानव मात्र की सेवा का भाव जगा दिया। अहिंसा की ठोस भूमिका पर खडे होने के कारण अत्यन्त बबरता और नृशसता का शिकार इस बहादुर जाति को होना पडा। न जाने कितनी बार पठानो ने सरहदी गाधी के चरणो में सिर झुकाकर कहा कि अब इन चिमिरखियो को ज्यादती बरदाश्त नहीं हो रही है आप हुक्म दीजिए पूरे सीमान्त मे एक भी अग्रज की औलाद नजर नही आयेगी। पर सरहदी गाधी के गले के नीचे यह बात नहीं उतरी। बादशाह खान ने अपनी इस आत्मकथा' के पृष्ठ १४६ पर लिखा है काग्रस की दुबलता से हमारे लोग हिन्दुस्तान से बहुत निराश हो गये। खेद मुझे इस बात पर था कि हमने तो काग्रस को न छोडा लेकिन काग्रसियो ने हमें छोड दिया। यदि हम आजादी की लडाई के समय काग्रस को छोड देते तो अग्रज हमे सब कुछ देने को तैयार था। हमारा बडा दुभाग्य यह था कि गाधीजी इस ससार से चले गये। यदि वे होते तो अवश्य हमारी सहायता करते। जवाहरलाल से भी हमें बडी आशाएँ थी और वे कुछ कर सकते थे लेकिन हम नही समझते कि उन्होने क्यो हमारे लिए कुछ नही किया ?"

विभाजन के बाद पाकिस्तान की सरकार बनी और बिना किसी अपराध के सीमान्त गाधी और उनके साथी खुदाई खिदमतगारो पर गजब के अत्याचार भारत के कर्णधारो के सामने किये जाने लगे। लेकिन किसीने भी उफ तक नहीं किया और आज भी बावफा बाप की तरह उनको भारतीयो से मुहब्बत है। १५ वर्ष अग्रजो की जेल में काटे और १५ वर्ष इस्लामी सरकार के शासन में पाकिस्तान की गन्दी कोठरी मे बिताये। बादशाह खान को भयकर बीमारी हो गयी और और अयूब खाँ ने सोच लिया कि अब तो खान चचा मर ही जायेंगे क्यो न एन वक्त पर उन्हें जेल से रिहा करके लोगों की वाहवाही और दरियादिली का ताज पहन ल और ३० जुलाई १९६४ को उन्हे जेल से जीवित लाश के रूप म रिहा कर दिया गया। भगवान को अभी बादशाह से काम लेना था इसलिए वे चगे हो गये। खान साहब कल भी एक महान नेता थे और आज भी महान नेता हैं तथा भविष्य में भी महान नेता के रूप में ही रहेंगे।

पख्तूनों की स्वतत्रता का प्रश्न आज भी इसी प्रकार महत्त्वपूण है जिस प्रकार सन् १९१४ में था। सरहदी गाधी ससार की नजरो में महान सत्यनिष्ठ योद्धा हैं गाधीजी के सच्चे अनुयायी हैं और ऐसे अडिग अहिंसाव्रती हैं कि

जिनका नाम लेकर शताब्दियों तक विश्व की शान्तिप्रिय जातियाँ और कोटि-कोटि सज्जन गौरव से सिर ऊँचा रखेंगे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि बादशाह खान को पख्तूनों से बहुत प्यार है, पर उससे भी ज्यादा उनके दिल में भारतीयों के लिए प्यार भरा है। और इसका प्रमाण यह है कि जब भी कोई भारतीय उनसे मिलता है और भारत चलने का अनुरोध करता है तो वे कहते हैं कि "क्या भारत के लोगों को मेरी याद है? अगर सच्चे दिल से मुझे याद किया गया होता तो पख्तूनों की आजादी में भारत के लोग मददगार होते। क्यों बुलाते हो भाई मुझे वहाँ, कहीं पुराना घाव फिर हरा न हो जाये।" अब यह तो हमारी कायरता है कि हमने गांधी जन्म-शताब्दी मनाने का नाटक तो रच लिया है, लेकिन गांधी के दिल के टुकड़े को क्रूरता के हवाले कर रखा है। क्या हक है हमें गांधी का नाम लेने का?

इस ७८ वर्ष की आयु में भी सरहदी गांधी में जोश है और होश भी है, तभी तत्परता के साथ बहुत अच्छी याददाश्त के सहारे कुँवर भानु नारंग और रामशरन नगीना को आपबीती सुनायी है। बधाई के पात्र हैं श्री जगन्नाथ प्रभाकर, जिन्होंने पश्तू भाषा से उर्दू अनुवाद का हिन्दी रूपान्तर करके सर्वसुलभ किया है। सरहदी गांधी ने अपने दिल का दर्द ३१ अगस्त १९६५, ३१ अगस्त १९६६ और ३१ अगस्त १९६७ को काबुल में पख्तूनिस्तान दिवस के अवसर पर दिये गये तीन भाषणों में उँडेल दिया है। ये अलभ्य ऐतिहासिक भाषण उक्त 'आत्मकथा' के अन्त में सग्रहित हैं, जिसे हिन्द पाकेट बुक्स, दिल्ली ने इसी वर्ष प्रकाशित किया है। जिसे अपनी आजादी से मुहब्बत है और आजादी के शहीदों के प्रति हमदर्दी है, उसे यह पुस्तक अवश्य पढनी चाहिए।

इस पुस्तक के २४ भाग हैं। प्रत्येक भाग में क्रमबद्ध घटनाओं का सजीव चित्रण प्रस्तुत है। १८२ पृष्ठों की यह पुस्तक केवल बादशाह खान के अन्तरग जीवन पर प्रकाश ही नहीं डालती, अपितु भारत की आजादी का सुख भोग रहे नेताओं का कच्चा चिट्ठा भी बताती है। क्रान्ति की चाह रखनेवालों को इस पुस्तक से यह सबक लेना चाहिए कि क्रांति करने के समय जो जिस रैंक में रहता है वह क्रान्ति के बाद उसी रैंक का 'डिक्टेटर' बनकर अपने ही साथियों की बेबसी का लाभ उठाने लगता है।

पुस्तक का तिरंगा कवर एवं मनमोहक गेटअप देखकर पुस्तक के सम्पादकों का परिश्रम सार्थक हुआ है। पुस्तक की छपाई अत्यन्त आकर्षक एवं शुद्ध है।

—कपिल अवस्थी

वर्ष : १७
अंक : ६
मूल्य : ५० पैसे

अनुक्रम

जनवरी, '६६

●

निवेदन

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- 'नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा छ रुपये है और एक अंक के ५० पैसे।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक-सख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- रचनाओ मे व्यक्त विचारो की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट सर्व सेवा सघ की ओर से प्रकाशित, अमल कुमार बसु, इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि०, वाराणसी-२ मे मुद्रित।

नयी तालीम : जनवरी '६९
पहले से डाक-व्यय दिये बिना भजने की अनुमति प्राप्त
लाइसेंस नं० ४६ रजि० सं० एल १७२३

सन् १९६९ गांधी जन्म-शताब्दी-वर्ष है

गाधीजी ने कहा था :

"मेरा सर्वोच्च सम्मान जो मेरे मित्र कर सकते है, वह यही है कि मेरा वह कार्यक्रम वे अपने जीवन में उतारें, जिसके लिए मै सदैव जिया हूँ या फिर यदि उन्हे उसमें विश्वास नही है, तो मुझे उससे विमुख होने के लिए विवश करें।

मानव-समाज के सामने, आज के संघर्षपूर्ण एवं हिंसामय वातावरण से मुक्ति पाने के लिए, गाधी-मार्ग ही आशा का एक-मात्र मार्ग रह गया है।

गाधीजी की दृष्टि मे :

(१) दुनिया के सब धर्म एक जगह पहुँचने के अलग अलग रास्ते है।
(२) जाति और प्रान्त की दोहरी दीवार टूटनी चाहिए।
(३) अछूत प्रथा हिन्दू समाज का सबसे बडा कलंक है।
(४) यदि किसी व्यक्ति के पास, जितना उसे मिलना चाहिए उससे अधिक हो तो वह उसका सरक्षक या ट्रस्टी है।
(५) किसान का जीवन ही सच्चा जीवन है।
(६) स्वराज्य का अर्थ है अपने को काबू मे रखना जानना।
(७) प्रत्येक को सन्तुलित भोजन, रहने का मकान और दवा दारू की काफी मदद मिल जानी चाहिए यह है आर्थिक समानता का चित्र।

पूज्य बापू की जीवन-दृष्टि मे अपनी दृष्टि विलीन कर
गाधी जन्म-शताब्दी सफलतापूर्वक मनाइए।

राष्ट्रीय गाधी जन्म शताब्दी समिति की गाधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति
टुंकलिया भवन कुन्दीगरों का भैरू, जयपुर-३ (राजस्थान) द्वारा प्रसारित

आवरण मुद्रक खण्डेलवाल प्रेस, वाराणसी।

फरवरी १९६९

स्व० डा० सम्पूर्णानन्द

वर्ष : १७
अंक : ७
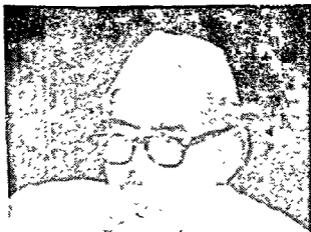
डा० सम्पूर्णानन्द

सम्पूर्णानन्दजी तत्त्व-चिन्तक मनीषी, राजनेता और साहित्यिक थे। राजनीति और दर्शन, साहित्य और विज्ञान पर उनका समान अधिकार था। कला और संगीत के वे मर्मज्ञ थे। समाजवाद, योग, दर्शन, अध्यात्म और पुरातत्त्व, ऐसे गहन विषयों पर उन्होंने उच्च कोटि के ग्रन्थ लिखे हैं। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। उनके निधन के बाद विद्वानों द्वारा उनके इन सभी रूपों का स्मरण किया गया है और उनके विषय में जो कुछ लिखा गया है, थोड़ा है। परन्तु उनका एक और रूप था, जिसके विषय में बहुत कम कहा गया है। सम्पूर्णानन्दजी बहुत बड़े शिक्षा शास्त्री थे। वे प्रशिक्षण-प्राप्त अध्यापक थे और अध्यापन के पेशे का उनको व्यावहारिक अनुभव था। यद्यपि शिक्षा शास्त्र पर उन्होंने 'चिद्‌विलास' ऐसा कोई तात्त्विक ग्रन्थ नही लिखा है, पर शिक्षण की प्रक्रिया में उनकी अपूर्व गति थी और शिक्षा और शिक्षण पर उनके अपने स्वतंत्र विचार थे, जिसका वे निर्भीकतापूर्वक प्रतिपादन करते थे। बेसिक शिक्षा जब प्रारम्भ हुई तब उसके स्वावलम्वी पक्ष से वे सहमत नही हुए और उन्होंने गाधीजी को पत्र लिखा कि शिक्षा कभी स्वावलम्बी नही हो सकती और अपने बालकों को शिक्षा देने की जिम्मेवारी राज्य की है। पीछे उत्तर

प्रदेश में बेसिक शिक्षा के उत्पादक पहलू को छोड़ देने से जब उस पद्धति की खामियाँ सामने आयी और जब उनकी ओर उनका ध्यान दिलाया गया तब उत्तर प्रदेश में बेसिक शिक्षा के उत्पादक पक्ष की अवहेलना की बात को स्वीकार करते हुए भी वे अपनी राय पर कायम रहे।

वैसे बेसिक शिक्षा के विषय में उनके विचार बहुत साफ थे। वे उसे शिक्षा की उत्तम प्रणाली मानते थे और इसीलिए उत्तर प्रदेश में जब बेसिक शिक्षा के प्रचार की बात आयी तो अपने मन्त्रित्व-काल में उन्होंने उसका पूर्ण समर्थन किया। सन् १९३९ में जब मैं बेसिक ट्रेनिंग कालेज इलाहाबाद का छात्राध्यापक था, जिला परिषद के अध्यक्षों, जिला विद्यालय के उपनिरीक्षकों और नगरपालिका के शिक्षा निरीक्षकों के सामने बेसिक शिक्षा सम्बन्धी अपनी नीति की बात रखते हुए उन्होंने कहा था—"बेसिक शिक्षा आज की प्रचलित शिक्षा पद्धति से कई अर्थों में उत्तम पद्धति है। उसमें हाथ और दिमाग के समन्वित विकास की गुंजाइश है। इसीलिए मैं बेसिक शिक्षा को अपनाने में पक्ष में हूँ, परन्तु चूंकि बेसिक शिक्षा अच्छी शिक्षा पद्धति है और आज की शिक्षा पद्धति से वह निश्चय ही अच्छी है, इसलिए मैं चाहता हूँ कि उसका लाभ पूरे प्रदेश को मिले। मैं कुछ थोड़े से स्कूलों में बेसिक शिक्षा का गहन प्रयोग करने और शेष में गैर बुनियादी पद्धति को बनाये रखने और इस प्रकार प्रदेश में प्रारम्भिक शिक्षा की दो समानान्तर पद्धतियाँ चलाने के पक्ष में नहीं हूँ। बेसिक शिक्षा अच्छी है, तो उसका लाभ प्रदेश के सभी बच्चों को मिलना चाहिए। हमारे नार्मल स्कूलों के ट्रेण्ड अध्यापक शिक्षा शास्त्र और अध्यापन-कला के बुनियादी सिद्धान्तों में दीक्षित हैं। उन्हें अध्यापन का व्यावहारिक अनुभव भी है। अतः उन्हें बेसिक क्राफ्ट और समवाय शिक्षण पद्धति के सिद्धान्तों मे 'रेफ्रेशर कोर्स' देकर प्राइमरी स्कूलों को बेसिक स्कूलों में परिवर्तित करने के काम में लगाया जाय।" उत्तर प्रदेश में बेसिक शिक्षा के प्रसार की यही नीति अपनायी गयी। इस नीति को अपनाने में कोई

दोष नही था, दोष था उसके कार्यान्वयन में। अगर 'रेफ्रेशर कोर्स' कम-से-कम छह महीने के होते (और जाकिर हुसैन-समिति ने अध्यापकों के लिए छह महीने के लिए एक 'शार्ट कोर्स' की सिफारिश भी की थी) और उन्हे पूर्ण साधन-सम्पन्न बनाकर ट्रेनिंग का काम शुरू किया गया होता तो 'रेफ्रेशर कोर्स' की इस नीति को अपनाने में कोई बुराई नही थी। परन्तु कार्यान्वयन का कार्य जिनके हाथों में था उन्होंने ऐसा नहीं किया। प्रदेश में बेसिक शिक्षा की जो प्रगति हुई और उसने जो रूप ले लिया उससे स्वय बाबूजी को घोर असन्तोष था। सन् १९४२ के आन्दोलन के बाद जेल से लौटने पर बेसिक ट्रेनिंग कालेज में आकर उन्होने इस असन्तोष को हम शिक्षकों के सामने व्यक्त करते हुए कहा—"मैं जब शिक्षा में स्वावलम्बन की बात को अमान्य करता हूँ तो इसका यह अर्थ नही है कि बेसिक शिक्षा के उत्पादक पहलू की भी अवहेलना की जाय और फिर आप लोगों ने प्राइमरी स्कूलों के अध्यापकों के मार्गदर्शन के लिए क्या कभी समवायित पाठ तैयार किये हैं ? फिर प्रारंभिक कक्षाओ के अध्यापकों का पथ-प्रदर्शन कैसे होगा ?" में उस समय बेसिक ट्रेनिंग कालेज मे अध्यापक था और मुझे अच्छी तरह याद है कि हम लोगो ने उत्पादकता के लक्ष्य निश्चित करने के लिए कुछ प्रयोग भी किये और कुछ समवायित पाठ-सकेत भी तैयार किये। परन्तु बात वहीं-की-वहीं रह गयी और चूंकि आगे चलकर बाबूजी का सीधा सम्बन्ध शिक्षा-विभाग से नही रहा, अतः उनकी प्रखर आलोचनाओं से सीखने-सुधारने का काम भी रुक गया। परन्तु उत्तर प्रदेश में प्रारंभिक शिक्षा की दो समानान्तर धाराएँ नही चली। सभी स्कूल बेसिक स्कूल हो गये। परन्तु उनसे बुनियादी तालीम के बमूलों की रक्षा नही हो सकी है, यह दूसरी बात है।

शिक्षा की समस्याओ के सम्बन्ध मे बाबूजी की स्वतत्र नीति का एक दूसरा उदाहरण और है। देश की माध्यमिक शिक्षा का, प्रारम्भिक स्तर की बेसिक शिक्षा से ताल-मेल बैठाने और माध्यमिक शिक्षा की खामियों पर विचार करने के लिए भारत सरकार द्वारा मुदलियार-

कमीशन की नियुक्ति की गयी। उसकी संस्तुतियों के विस्तार में मैं नही जाऊँगा, परन्तु उसकी एक बहुत महत्त्वपूर्ण सस्तुति थी माध्यमिक शिक्षा के बारह वर्ष की अवधि मे से एक वर्ष कम करके ग्यारह वर्ष की शिक्षा-अवधि रखने की और इस एक वर्ष को काटकर स्नातक-स्तर की दो वर्ष की शिक्षा को तीन वर्ष की कर देने की। डा० सम्पूर्णानन्दजी ने तर्क किया—"माध्यमिक शिक्षा शिक्षण की एक पूर्ण इकाई है। इस स्तर की शिक्षा के बाद अधिकाश विद्यार्थियो को जीवन में प्रविष्ट होना चाहिए और विश्वविद्यालयों मे केवल मेधावी विद्यार्थियों को ही जाना चाहिए। अत जीवन के प्रविष्ट द्वार की शिक्षा को अवधि में एक वर्ष कम करना ठीक नही होगा, क्योंकि इसका अर्थ होगा छात्रों की प्रौढता और परिपक्वता में से एक वर्ष कम करना। डिग्री कोर्स में एक वर्ष जोडने का अर्थ है विश्वविद्यालयों में कम उम्र के विद्यार्थियों की भीड बढाना, जो सर्वथा अवाछनीय है। अत मुदलियार-कमीशन चाहे जो भी निर्णय करे और उसकी दूसरी सस्तुतियों का यथाशक्ति जितना भी कार्यान्वियन सम्भव हो किया जाय, परन्तु उत्तर प्रदेश में १२ वर्ष की माध्यमिक शिक्षा चलती रहेगी।" बाबूजी इस निर्णय पर अटल रहे और १६ वर्ष के बाद जब बहुचर्चित कोठारी-कमीशन की नियुक्ति हुई तो उसने सम्पूर्णानन्दजी की नीति का समर्थन किया और आज पुनः माध्यमिक शिक्षा को १२ वर्ष तक की करने के लिए फेर-बदल किया जा रहा है और जहाँ ११ वर्ष की माध्यमिक शिक्षा कर दी गयी थी, वहाँ उसे पुन १२ वर्ष तक की करने के लिए कदम उठाये जा रहे हैं।

उनके मन्त्रित्व-काल में उत्तर प्रदेश में शिक्षा के जितने नये आयाम प्रारंभ हुए, उतने फिर कभी नही हुए। अथवा यह कहना अधिक ठीक होगा कि शिक्षा के क्षेत्र में जितना नया वह कर गये उतना ही हुआ, उससे आगे कुछ हुआ नही है। उनके समय इलाहाबाद में गवनमेंट सेण्ट्रल पेडागाजिकल इन्स्टीच्युट खुला, जो पाठ्यक्रम और शिक्षण कला

पर ग्रन्वेषण, ग्रनुसधान करनेवाली ग्राज ग्रपने ढग की एशिया की सबसे बडी सस्था है। उनके ही समय में, माध्यमिक स्तर पर बहुउद्दशीय विद्यालयों के लिए रचनात्मक विषयों के ग्रध्यापक तैयार करने के लिए इलाहाबाद में ही राजकीय रचनात्मक प्रशिक्षण महाविद्यालय खुला, जो पीछे लखनऊ में स्थानांतरित कर दिया गया ग्रौर जो ग्राज शिल्प ग्रौर विज्ञान के उच्च प्रशिक्षण का प्रमुख केन्द्र है। उनके ही समय में इलाहाबाद में गवर्नमेंट फिजीकल ट्रेनिंग कालेज ग्रौर नर्सरी ट्रेनिंग कालेज खुले। इलाहाबाद की मनोविज्ञान-शाला भी उन्हीकी प्रेरणा से प्रारभ हुई ग्रौर बहुत जल्दी उसने पूरे देश में ग्रपना स्थान बना लिया। प्रदेश के प्रारंभिक कक्षाग्रों मे ट्रेण्ड ग्रध्यापकों की कमी पूरी करने के लिए उन्होंने सचल शिक्षण दल (मोबाइल ट्रेनिंग स्क्वायड) की योजना चलायी। मेरा इस योजना से प्रारभ से ग्रन्त तक घनिष्ठ सम्बन्ध था, ग्रौर मैं जानता हूँ कि इसका सैद्धातिक ग्रौर सगठनात्मक रूप पूरा-का-पूरा उन्हींके विचारों से प्रेरित ग्रौर ग्रनुप्राणित था ग्रौर ग्रन्त तक इसकी प्रत्येक गतिविधि में उनकी दिलचस्पी रही। शिक्षा क्षेत्र के इन सारे नूतन प्रयोगों ग्रौर प्रयासों को वह विनोद से ग्रपने ब्रन वेव (ग्रपनी सनक) का परिणाम बताते थे, परन्तु समय साक्षी है कि वे सनक मात्र न होकर ठोस सुधार थे जिनके पीछे एक विद्वान् शिक्षा शास्त्री का तत्त्व चिन्तन ग्रौर व्यावहारिक ग्रनुभव था। हम जानते हैं कि इन सारे नये प्रयोगों में उनकी मात्र ग्रभिरुचि ही नही थी, उनकी प्रक्रियाग्रों में उनकी ग्रद्भुत पहुँच थी ग्रौर उनके पास जाकर इन प्रयोगों के विषय में बातचीत करने पर सदा यह बोध होता था कि इस सम्बन्ध में उनसे ग्रभी बहुत कुछ सीखने को है। ऐसा लगता था कि उनके उवर मस्तिष्क में योजनाएँ ग्रप्रयास रूप ग्रहण करती थी ग्रौर उनके विकास के प्रत्येक पहलू से वे पूणत परिचित रहते थे। कोई भी गलती कही हो तो उनसे छिपी नहीं रहती थी। वह जो कर गये उससे ग्रधिक बीस वर्ष के बाद भी हमने किया है क्या?

ग्र तरराष्ट्रीय खिलौना प्रदर्शनी की कल्पना उनके इसी उर्वर

मस्तिष्क का परिणाम थी। खिलौने किसी जाति के सांस्कृतिक स्तर की जितनी खूबी के साथ प्रतिनिधित्व करते हैं उतनी खूबी के साथ उसके ग्रन्थ भी नहीं कर पाते। ग्रन्थ कुछ विद्वानों की कृतियां हैं, मानव-सभ्यता के केवल प्रबुद्ध स्तर के द्योतक हैं, परन्तु खिलौने उसकी समग्र सास्कृतिक उपलब्धि के द्योतक हैं। इनमें शिशुओं को रिझाने के लिए मानव की बुद्धि और हृदय का अद्‌भुत संयोग हुआ है। अतः किसी भी जाति की आर्थिक, बौद्धिक अथवा आध्यात्मिक प्रगति कितनी हो तो उसकी जाति के खिलौनों को देखना चाहिए। मोहन्‌जोदड़ो के खिलौने ही बतलाते हैं कि पत्थर और धातु के उस संक्रमण-काल में भी हिंदू जाति ने कितनी सास्कृतिक प्रगति कर ली थी। वहाँ से प्राप्त नर्तकी की अंग-भंगिमा में जो संतुलन और सौष्ठव है, वह किसी भी जाति को तभी प्राप्त होता है, जब उसमें पर्याप्त बौद्धिक और कलात्मक संतुलन आ जाता है। वह एक खिलौना आनेवाली अजन्ता और एलोरा के सारे कलात्मक वैभव की ओर सकेत करता है। सिन्धु-घाटी के युग की सारी पूजा-पद्धति भी वहाँ के खिलौने में प्रकट हुई है। अतः संपूर्णानन्दजी ने खिलौनों की प्रदर्शनी को बचकने स्तर पर नहीं अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर आयोजित करने का निश्चय किया। विश्व के लगभग सभी राष्ट्रों ने उसमें भाग लिया। लखनऊ में जिन्होंने उस प्रदर्शनी को देखा है, वे स्वीकार करते हैं कि वैसी चीज फिर कभी देखने मे नहीं आयी, न आयेगी—न भूतो न भविष्यति।

वह प्रदर्शनी खिलौनों की नुमाइश ही नहीं रह गयी थी, उसमें लगभग चालीस कक्ष थे। उत्खनन से प्राप्त भारत के विभिन्न युग के खिलौने थे, नहीं तो उनके माडल थे। काशी, जहाँ भारतीय संस्कृति की धारा कभी खंडित नहीं हुई, और जो आर्यपूर्व युग से आज तक भारत की समन्वित संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती है, वहाँ के लिए एक अलग कक्ष था। विदेशों के विभिन्न राज्यों के लिए तो अलग-अलग कक्ष थे ही, भारत के प्रत्येक प्रदेश के लिए भी अलग-अलग कक्ष थे। अनेकता में एकता की जैसी झाँकी उस खिलौना-

प्रदर्शनी में मिली, वैसी हजार पृष्ठ की किसी पुस्तक से भी नहीं मिलेगी। अमेरिका से आये हुए खिलौने जिस कक्ष में रखे हुए थे, उसे देखकर अमेरिका की उन्नत टेकनालोजी का चित्र खिंच जाता था। जापान से आये हुए खिलौनों की एक झांकी ही बता जाती थी कि इस क्षेत्र में शायद वह आज के यंत्रप्रधान युग का अगुवा है। (और जापान क्या भौतिक समृद्धि में एशिया का अगुवा नहीं है—ऐसा अगुवा जहां पश्चिम के विज्ञान और टेकनालोजी का एशिया की पारिवारिक-प्रधान संस्कृति से मेल हुआ है।) अफ्रीका के एक रेगिस्तानी मुल्क से एक खिलौना आया था—ऊंटों का एक काफिला, जिसके आगे आगे एक खच्चर चल रहा था। उसे देखकर बाबूजी ने हँसकर कहा था—चलो, एक दूसरा देश भी है, जहां गधे कारवां का नेतृत्व करते हैं! यह सन् १९५१-५२ की बात है। उसके बाद तो लगभग १० वर्ष तक उत्तर प्रदेश के शिक्षा विभाग ने खिलौना-प्रदर्शनी का आयोजन किया, परन्तु उसका स्तर घटता ही गया। और यह संयोग ही कहा जागया कि अंतिम खिलौना-प्रदर्शनी का आयोजन उनके काशी नगर में ही हुआ। खिलोना-प्रदर्शनी के वे वर्ष उत्तर प्रदेश के शिक्षा-विभाग के वैभव के वर्ष थे।

सम्पूर्णानन्दजी की उत्तर प्रदेश के शिक्षा-जगत् को एक दूसरी बहुत बड़ी देन है, जिसके लिए शिक्षा-विभाग को उनका ऋणी रहना चाहिए। बाबूजी स्वयं साधारण शिक्षक रह चुके थे और साधारण शिक्षक की आर्थिक कठिनाइयों से पूर्ण परिचत थे। वह कितने ही बड़े आदर्शवादी स्वप्नद्रष्टा रहे हो, उन्होंने इसे कभी नहीं माना कि शिक्षक भूखा रहकर, लंगोटी पहनकर प्राचीन गुरुकुल के आचार्यों की तरह ज्ञान की अलख जगाये। लंगोटीधारी आचार्य की जब समाज में प्रतिष्ठा थी तब थी, आज तो समाज में प्रतिष्ठा धन की है। अतः शिक्षकों का वेतनक्रम किसी दूसरे प्रशासकीय सेवाओं से कम न रहे, इसका उन्होंने निरन्तर प्रयास किया। फलतः अपने मन्त्रित्व-काल में शैक्षिक प्रशासन में काम करनेवाले वरिष्ठ अधिकारियों को वही वेतनक्रम दिया गया,

जो दूसरे प्रादेशिक सेवावाले वरिष्ठ अधिकारियों को मिलता था। पी० सी० एस० की तरह पी० ई० एस० का वेतनक्रम एक हुआ। उन्होंने जब संस्कृत कालेज को विश्वविद्यालय का स्तर दिया तो संस्कृत के आचार्यों का वेतनक्रम भी दूसरे विश्वविद्यालयों के वेतनक्रम की ही भाँति रखा। उनके प्रयास से उत्तर प्रदेश के प्रत्येक जिले में पी० ई० एस० के वेतनक्रम का एक जिला विद्यालय-निरीक्षक नियुक्त किया गया और जो बड़े-बड़े जिले थे और जहाँ माध्यमिक विद्यालयों की संख्या ५० या ५० से अधिक थी, वहाँ सीनियर वेतनक्रम के जिला विद्यालय-निरीक्षक नियुक्त हुए। शिक्षा का पेशा दूसरे किसी पेशे से वेतनक्रम की दृष्टि से पीछे न रहे, यह उनका सतत प्रयास रहा। शिक्षक की आर्थिक स्थिति अच्छी होगी तभी वह समाज मे प्रतिष्ठा प्राप्त करेगा, यह वह अच्छी तरह जानते थे और अपने मन्त्रित्व-काल मे उनसे जो कुछ सभव हुआ, इसके लिए किया और उनके मन्त्रित्व काल में शिक्षा-विभाग का जितना गुणात्मक और सगठनात्मक विस्तार हुआ उतना फिर कभी नही हुआ। उन्होने उत्तर प्रदेश के शिक्षा-विभाग के लिए जो किया उसके लिए शिक्षा-विभाग को सदा उनका ऋणी रहना चाहिए। शिक्षा-क्षेत्र का कौनसा ऐसा कोना था, जो उनकी प्रतिभा से चमका नही और शिक्षा-सगठन की कौनसी ऐसी शहतीर थी, जिसने उनकी गुरुता का अनुभव नही किया?

अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक बाबूजी शिक्षा की समस्याओं के प्रति जागरूक रहे। कोठारी-आयोग की रिपोर्ट के प्रकाशित होते ही भारत के जिस शिक्षा शास्त्री ने सबसे पहले उसकी प्रखर आलोचना की, वह डा० सम्पूर्णानन्द थे। उन्होने आयोग के अनेक पहलुओं पर विचार करते हुए कई लेख लिखे, जिनके प्रकाश मे आयोग का रूप जितना साफ दिखाई पडने लगा उतना पहले नही दिखाई दिया था। उन्होने आयोग की सस्तुतियो की सूक्ष्म आलोचना की है और आयोग की रिपोर्ट को लक्ष्यहीन, दिशाहीन कहकर आयोग के विवरण को परखने की एक ऐसी कसौटी दी है, जिस पर परखने से आयोग की सस्तुतियों

का खोखलापन साफ जाहिर हो जाता है। उनके इस तर्क का क्या जवाब है कि आयोग के विदेशी सदस्यों के पास जीवन के जिन मूल्यों के प्रति आस्था थी और आग्रह था वे परस्पर-विरोधी थे और भारतीय सदस्यों के पास अपना कोई जीवन-मूल्य ही नहीं था, फलतः आयोग की रिपोर्ट किसी भी जीवन-मूल्य को लक्ष्य करके नहीं लिखी गयी है, उसमें पाठ्यक्रम को सुधारने के सुझाव हैं, उसमें मूल्यांकन-प्रणाली को बेहतर बनाने की राय है। उसमें संगठनात्मक सुधार की बात कही गयी है; परन्तु यह सब किसलिए, किस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए, यह कहीं नहीं कहा गया है। रिपोर्ट में शरीर है, प्राण नहीं है। ऐसे रिपोर्ट को लागू करने से भारतीय शिक्षा में क्रान्ति नहीं होगी, चाहे और कुछ भी हो।

डा० सम्पूर्णानन्दजी को खोकर जहाँ देश ने एक तत्त्व-चिन्तक, दार्शनिक और स्वतन्त्र चेता राजनीतिज्ञ खोया है, वहाँ एक बहुत बड़े शिक्षा शास्त्री को भी खोया है। "नयी तालीम" का परिवार उन्हें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है!

—वंशीधर श्रीवास्तव

मैं श्रद्धावान मनुष्य हूँ। मेरा भरोसा पूर्णतया ईश्वर में है। पहला कदम उठाना ही मेरे लिए काफी है। दूसरा काम क्या होगा, सो तो उसका समय आने पर 'वह' स्वयं स्पष्ट कर देगा। —महात्मा गांधी

अपराध, अपराधी और जनमानस

स्व० डा० सम्पूर्णानन्द

[स्व० डा० सम्पूर्णानन्दजी का यह विचारोत्तेजक लेख अपराध की समस्या को नयी दृष्टि से देखता है। वह समस्या का हल राष्ट्रीय चरित्र और राष्ट्रीय दृष्टिकोण में अपराध और दुराचार के प्रति अपेक्षित परिणाम लाने में ही ढूँढ पाते हैं। उनको यह बात कल्पना लोक की बात लगती है, जिसे यथार्थ में परिवर्तित नहीं किया जा सकता। परन्तु चाहे कुछ लोग कल्पना भी न करें तो अन्य लोग पृथ्वी पर मामूली जीवन भी नहीं बीता सकेंगे। —सं०]

"अच्छे लोग एक बुरी सरकार को सहन नहीं कर सकते और बुरे लोगों को अच्छी सरकार नहीं मिल सकती।'—ये शब्द श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने सन् १९०५ में कांग्रेस के बनारस अधिवेशन में कहे थे। हालां कि ये शब्द सामान्य-से लगते हैं, किन्तु इनसे एक महान सत्य पर प्रकाश पड़ता है, जिस पर प्रत्येक नागरिक को गम्भीरता से विचार करने की आवश्यकता है। यदि एक अच्छी पुलिस उस व्यवस्था का आवश्यक अंग है, जिसे एक अच्छी सरकार अपने प्रशासन के आवश्यक अंग के रूप में इस्तेमाल करती है, तो इसका यह अर्थ हुआ कि अच्छे लोगों पर ही अच्छी पुलिस निर्भर करती है। एक ऐसे देश में जहां अधिकांश लोग अच्छे नहीं हैं, यह सोचना कि अपराध पर अच्छी तरह नियन्त्रण किया जा सकता है, एक असम्भव कल्पना है। हम सबको इस बात पर

गम्भीरता से विचार करना चाहिए कि क्या हम भारतवासी स्वयं को अच्छा कहने के हकदार हैं। मैं ईमानदारी से यह सोचता हूँ कि हम ऐसा नहीं कह सकते। हम अच्छे लोग नहीं हैं।

अपराध के प्रति हमारा दृष्टिकोण

यह बात नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति दण्ड-संहिता की किसी-न-किसी धारा का जान-बूझकर उल्लंघन करता रहता है। हममें से अधिकाश में ऐसा करने का साहस नहीं है। किन्तु क्या हमारा अपराध के प्रति वैसा ही दृष्टिकोण है, जैसा होना चाहिए? कोई व्यक्ति किसी कारणवश सक्रिय रूप से कोई अपराध करे या नहीं करे, किन्तु क्या वह उस अपराध को जिसे उसने नहीं किया है, माफ करता है या नहीं करता है? हम भ्रष्टाचार के बारे में खूब बढ़-चढ़कर बात करते हैं, किन्तु क्या हम किसी ज्ञात भ्रष्टाचारी को इस बात का संकेत देते हैं कि हम उसे एक बुरा आदमी समझते हैं और उसे भले आदमियों की संगत के योग्य नहीं समझते।

कितने लोग अपराध का पता लगाने में पुलिस की मदद करने की तकलीफ गवारा करते हैं? मैं जानता हूँ कि पुलिस की सक्रिय मदद करना एक जोखिम का काम लगता है, किन्तु किसीको तो यह जोखिम उठाना ही होगा। मैं अपने व्यक्तिगत अनुभव से जानता हूँ कि जब किसीको हत्या के लिए सजा दी जाती है, तो ऊपरी तौर से कोई वास्ता न रखनेवाले लोग हत्यारे की सजा कम कराने के लिए दौड़-धूप करने लगते हैं। मृत्यु दण्ड को समाप्त कर देना चाहिए या नहीं, यह प्रश्न बिलकुल अलग है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जिस व्यक्ति की हत्या हुई है, वह सम्भवत हत्यारे की तरह ही एक अच्छा नागरिक था। जबतक हत्या कानून के अनुसार एक दण्डनीय अपराध है, अपराधी को दण्ड से बचाने की कोशिश करना हत्या के समान ही एक बुरा अपराध है। जब कोई अपराध किया जा रहा हो, तो कितने लोग इसकी ओर से अपनी आँखें मूँदने के लिए तैयार नहीं हैं? कितने लोग ऐसे होगे, जो गवाही से बचने के लिए बहाना ढूंढ लेते होंगे?

जब कोई अपराध किया जा रहा हो, तो दूसरी ओर मुँह फेरकर क्या हम अपनी आत्मा को धोखा नहीं देते? यह जानते हुए भी कि अपराध हुआ है, बाद में इसकी सूचना पुलिस को नहीं देते। हम इस सिद्धान्त पर चलते हैं कि जो प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है, वह किसी एक व्यक्ति का कर्तव्य नहीं और यदि किसी अन्य व्यक्ति ने पुलिस थाने में जाकर खबर नहीं दी है, तो हम ही

क्यों यह रास्ता खोल लें, भले ही हमारी गवाही महत्वपूर्ण हो। यही एक अपराधी को दण्ड दिलाने और उसकी रक्षा करने का अन्तर स्पष्ट होता है। अपराधी को बचाने का अर्थ है उसे निर्दोष व्यक्तियों को सताने की छूट देना, जब कि उसे दण्ड दिलाने का अर्थ है निर्दोष व्यक्तियों के जान माल की रक्षा करना।

झूठ बोलने, बात को तोड़ मरोड़कर कहने, बात को गलत ढंग से पेश करने आदि को मामूली समझकर उपेक्षा कर दी जाती है। लोग यह भूल जाते हैं कि बूंद-बूंद से घट भरता है। जब कोई व्यक्ति एक छोटा अपराध करता है, तो वह किसी दिन बड़ा अपराध भी कर सकता है। खुद को एक मामूली दोष के लिए क्षमा करना भविष्य में बड़े दोषों का आमंत्रित करना है।

अपराध के कारण और निवारण

मेरा यह तात्पर्य नहीं है कि हम भारतवासी दुनिया के सबसे बड़े अपराधी हैं। मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ कि अन्य देशों में बड़ी संख्या में अपराधी हैं जो भारतीयों को कुकृत्यों में कहीं पीछे छोड़ सकते हैं किन्तु यह कोई विशेष सन्तोष की बात नहीं है। मेरे अलावा दुनिया में और लोग भी बुरे हैं, इससे मैं अच्छा नहीं हो जाता। इसके अतिरिक्त एक और बात है, जो बहुत दुःखद है कि ऐसी स्थिति हमेशा नहीं थी। हाल के वर्षों में सदाचार का तेजी से ह्रास हुआ है। जीवन की पवित्रता के प्रति आदर भाव में कमी आयी है। उस जाति के लोग जो पहले कीड़े मकौड़ा तक के जीव को पवित्र समझने के लिए विख्यात थे, अब अपने हित साधन में आड़े आनेवाले मनुष्य की हत्या करने में नहीं झिझकते। हिंसापूर्ण अपराधों की संख्या में चिंतनीय वृद्धि हो रही है और इस बात को स्वीकार करना ही होगा कि इस बुराई को समाप्त करना पुलिस की शक्ति के बाहर है। चाहे हम पुलिस को कितने ही और घातक हथियार क्यों न सौंप दें, चाहे पुलिस की संख्या में कितनी ही वृद्धि क्यों न कर दें, चाहे पुलिस को कितने ही विशेष अधिकार क्यों न दे दें इस बुराई को दूर करने के लिए और तरीके ढूंढ़ने ही होंगे। ऐसे तरीकों की खोज शुरू करने से पहले हमें यह जानना होगा कि रोग की जड़ें कहाँ हैं।

यह साफ-साफ समझना होगा कि यह रोग नैतिक है और समाज का नैतिक शुद्धिकरण करना बहुत जरूरी है। भारत को पीछे लौटना होगा, वेद युग तक

नहीं, जैसा कि कुछ प्रति आधुनिक लोग व्यग्य में कहते हैं, किन्तु हम कुछ पीछे तो लौटना ही होगा। आधुनिकता के उन्माद में हम सीमा का उल्लंघन कर चुके हैं। मैं उस भारत की बात नहीं कर रहा हूँ, जब चारों ओर वेद मन्त्रोच्चार सुनाई पड़ता था, किन्तु मैं आज के भारत की भी चर्चा नहीं कर रहा हूँ, जहाँ मनुष्य के जीवन का महत्व मच्छर या मक्खी से अधिक नहीं है। हमें पाठ्य पुस्तकों में नहीं, वातावरण में मूलभूत परिवर्तन लाना होगा। वातावरण श्रद्धा व जीवन के प्रति आदर-भाव से ओत प्रोत होना चाहिए।

हर व्यक्ति में वह भाव पैदा करने का प्रयास करना चाहिए, जिससे उसमें हरेक के प्रति भाईचारे का भाव जन्मे। हमें, विशेषकर हममें से उन व्यक्तियों को, जिन्हें समाज में उच्च स्थान प्राप्त है, यह याद रखना होगा कि प्राचीन भारत में अधिकार की नहीं, धर्म की मर्यादा की चर्चा की जाती थी। प्रत्येक व्यक्ति को अपना-अपना धर्म समझाया जाता था, जिसके बारे में सुनिश्चित नियम बनाये गये थे। तब अधिकार पर नहीं, कर्तव्य पर जोर दिया जाता था। तब कहा जाता था कि अपना कर्तव्य करो, अधिकार स्वयं मिल जायगा।

जितना अधिक हम अतीत के उन दिनों की भावना को लौटा सकेंगे, उतना ही अधिक हम अच्छे जन की कल्पना के करीब पहुँच सकेंगे। तभी हम अच्छी पुलिस के हकदार हो सकेंगे और तभी हम इस अच्छी पुलिस के साथ अधिकाधिक सहयोग कर सकेंगे।

मैं शायद उस कल्पना लोक की बात कर रहा लगता हूँ, जिसे यथार्थ रूप नहीं दिया जा सकता। किन्तु यदि कुछ लोग कल्पना भी न करें, तो अन्य लोग पृथ्वी पर मामूली जीवन भी नहीं बिता सकेंगे। यदि हम अधिकारों पर जोर दे सकते हैं, तो कर्तव्यों पर क्यों नहीं दे सकते? यह सब होते हुए भी आजकल भी हम अगर अपराध को होता देखकर अनदेखा करें, तो उसे कर्तव्य विमुखता माना जाता है। कर्तव्य-विमुखता समझने की इस भावना को हमें और मजबूत बनाना होगा, तभी यह उद्देश्यपूर्ण हो सकेगी। मैंने जो कुछ लिखा है, उसमें मैंने जनसामान्य की भूमिका पर जोर दिया है। मेरे विचार में जनसाधारण की भूमिका पुलिस के द्वारा किये जानेवाले किसी भी कार्य से अधिक महत्वपूर्ण है। राष्ट्रीय चरित्र, अपराध और दुराचार के प्रति राष्ट्रीय दृष्टिकोण में अपेक्षित परिवर्तन ला देने के बाद, यह शिकायत अक्सर सुनने को नहीं मिलेगी कि पुलिस को पूरा सहयोग नहीं मिलता।●

समाज में नयी शक्ति का उद्भव शिक्षकों से ही सम्भव

शकरराव देव

[श्री शकरराव देव का यह भाषण आज की समस्याओं के हल के लिए शिक्षक की शक्ति का आह्वान करता है। शिक्षक सजग होगा, तभी समाज को सही नेतृत्व मिलेगा। —सं०]

अभी आपके आचार्यजी ने कहा कि संसार में चारों ओर विनाश और अंधकार है। यह सही है। इसका कारण क्या है, यह हमको समझ लेना चाहिए। जीवन का नैसर्गिक रूप विनाश नहीं है, जीवन सृजनशील है, लेकिन आज हम उस सृजनशीलता से, उस विधायक तत्त्व से दूर हो गये हैं। जीवन से सृजनात्मक सहयोगी तत्त्व निकल गया है और इसीलिए सर्वत्र निराशा और दुःखरूपी अँधेरा छाया हुआ है।

हिंसा की मूल जड़

रोग का सही उपचार तभी हो पाता है जब उसका निदान ठीक से हो। निदान गलत होता है तो चिकित्सा भी गलत होती है। ससार भर के मानव के आज के जीवन रोग की चिकित्सा का विचार अनेक लोग कर रहे हैं। वैद्यों की कमी नहीं है। लेकिन निदान में कहीं-न-कहीं गलती रह गयी है, तभी रोग दूर नहीं हो रहा है। वैद्यराज, अपना स्वास्थ्य सुधारो', ऐसा कहने की नौबत आयी है। स्वामी विवेकानन्द ने एक जगह यह वैज्ञानिक सिद्धान्त कहा था कि प्रत्येक कार्य का कारण उसीमें ही विद्यमान रहता है। किसी भी कार्य का कारण खोजने के लिए कहीं बाहर नहीं जाना है।

इस सिद्धान्त के अनुसार जब हम सोचते हैं तो आज हमें जो निराशा और अंधकार दिखाई दे रहा है, उसका मूल कारण भी हमें अपने ही अन्दर खोजना होगा। हमें दिखाई देनेवाले इस अंधकार का कारण क्या है? आज वियतनाम में इतना भयकर युद्ध हो रहा है, उसका कारण क्या है? क्या केवल जानसन

ही उसका कारण है ? नहीं । हमें समझ लेना चाहिए कि उस युद्ध के लिए संसार के हम सब मानव, एक एक व्यक्ति कारण है । मानव-मानव के बीच के युद्ध का कारण मानव मे ही है । समस्त मानव के अन्दर जो प्रतिहिंसा और संघर्ष है, उसे बाह्यरूप दे रहा है जानसन ।

जमाने की मांग

लेकिन जमाने की सही मांग इससे भिन्न है। विज्ञान की प्रगति ने यह सिद्ध कर दिया है कि विश्व एक है, मनुष्य का भौतिक और आन्तरिक जीवन एक है। इसमें कहीं किसी प्रकार की द्वन्द्वता या संकीर्णता को स्थान नहीं है । लेकिन हम सब अपनी पुरानी सारी संकीर्णताओं में फँसे हुए हैं । हमारा संकुचित दर्शन और हमारे आचरण की सीमित मर्यादाएँ जमाने की मांग को पूरी नहीं होने दे रही हैं । धर्म, जाति, विचार, श्रद्धा, राष्ट्रीयता आदि अनेक दीवारें हैं, जो हमे एक होने नहीं दे रही हैं, मानव जाति का विभाजन करती जाती हैं ।

महर्षि याज्ञवल्क्य हमें मानवीय जीवन के शाश्वत सुख का रहस्य समझा रहे हैं । वे कहते हैं—"यो वै भूमा तत् सुखम्, नाल्पे सुखमस्ति ।" जो भूमा है, जो अनंत, असीम, अगाध है, वही सुख है । अल्प में सुख नहीं है, आत्मा भूमा है । लेकिन ये धर्म जाति आदि तत्त्व में अल्प बना रहे हैं । ये सब व्यावर्तक गुण हैं, एक को दूसरे से अलग करनेवाले तत्त्व हैं । जो भी गुण व्यावर्तक होता है वह अल्प है, अतएव दुःख है, और जो भी गुण समाहारक हैं, एक को दूसरे से जोड़नेवाले हैं, वे भूमा हैं, अतएव सुख है ।

लेकिन आज मानव का व्यवहार अल्प प्रधान है । कोई अपने को हिन्दू कहता है । हिन्दू में भी ब्राह्मण हैं । उसमें भी मराठा ब्राह्मण । फिर मराठा ब्राह्मण में भी कर्‌हाडा ब्राह्मण । इस दीवार का कहीं नहीं अन्त है ।

भारत एक महान देश है, लेकिन हम भारतवासी बहुत छोटे हैं, अल्प हैं । संसार मे कई राष्ट्र हैं जो महान माने जाते हैं । लेकिन महानता की कसौटी क्या है ? क्या भौतिक शक्ति कसौटी है ? उपनिषद् ने कहा है—"न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः"—वित्त से मनुष्य का समाधान नहीं होता है । जो अन्त समाधान न दे, वह महानता की कसौटी कैसे होगी ? आज हम देख ही रहे हैं कि भौतिक दृष्टि से सम्पन्न ये राष्ट्र क्या कर रहे हैं ? वे तो कट-मर रहे हैं, विध्वंसक युद्ध कर रहे हैं । हम अपनी संस्कृति का बड़ा गौरव गाते हैं लेकिन यह वास्तव मे विकृति है, संस्कृति नहीं । क्योंकि यह हमें छोटा बनाती है । गांधीजी को एक पुस्तक बड़ी प्रिय थी—"सिविलिजेशन : इट्स कॉज एण्ड रेमेडी" । सभ्यता एक प्रकार का रोग है, क्योंकि वह भेद डालती है जोड़ती नहीं ।

जीवन का सर्वोत्कृष्ट मूल्य सम्पूर्ण मनुष्य

मनुष्य-मनुष्य को जोड़नेवाली वस्तु क्या है ? वह है जितना आत्मज्ञान उतना ही विज्ञान। आज विज्ञान की बाढ़ आ रही है। जब बाढ़ आती है, तब सारे छोटे-मोटे ताल-तलैया और नदी नाले डूब जाते हैं, एकाकार हो जाते हैं। गीता के शब्दों में "यावानर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके।" ऐसी स्थिति हो जाती है। जबतक सागर दूर है तभीतक गंगा गंगा है, जमुना जमुना है। सागर में मिल जाने पर सब एक हो जाते हैं, कोई भेद नहीं रहता। जब विज्ञान का प्रचण्ड प्रवाह आ रहा है तब धर्म, जाति, राष्ट्र, पन्थ आदि छोटे-छोटे घेरों को कहाँ तक बनाये रख सकते हैं ? विज्ञान ने विश्व को एक बना दिया है। व्यक्ति विश्व से बाहर कैसे रह सकता है। मनुष्य जो भी है, सबसे पहले वह विश्व का नागरिक है। वर्तमान में वह अपने को इससे कम मान नहीं सकता। विज्ञान के कारण विश्व-नागरिकता आज के युग की आवश्यकता हो गयी है। ज्ञानदेव ने कहा था—"विश्वचि माझें घर" (विश्व ही मेरा घर है)। उपनिषदों ने कहा—"यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्"—जहाँ विश्व एक घोसला बनता है। हम तो अपनी झोपड़ी में ही रहनेवाले को अपना कुटुम्ब मान बैठे हैं, लेकिन वह ऋषि क्या कह रहा है ?—"वसुधैव कुटुम्बकम्।" ये सब कोरे शब्द नहीं हैं, हमारे जीवन की स्फूर्ति के मूल स्रोत हैं। जब हम तर्पण करते हैं, तब इन सब ऋषियों का हम स्मरण करते हैं, नाम लेते हैं। तो उनकी इस भावना को हमें अपने जीवन में चरितार्थ करना है।

विश्व एक होता है, तो हिन्दू-हिन्दू कहाँ रहेगा, हिन्दी-अंग्रेजी का झगड़ा कहाँ रहेगा ? सभी तो सभी के हैं, तब मिटायें किसे ? और हटायें कहाँ ? ये सारे भेद रहेंगे नहीं। रहेगा केवल मनुष्य। मुख्य तो मनुष्य ही है। जो भी है, सब मनुष्य के लिए है। धर्म, राष्ट्र, भाषा आदि किसीके लिए मनुष्य की बलि नहीं देनी है। भगवान भी अगर है, तो मनुष्य के लिए है। आखिर भगवान के अस्तित्व की कसौटी क्या है ? मनुष्य ही तो, यदि मनुष्य के लिए नहीं तो भगवान भी हमें नहीं चाहिए। सारांश यह कि जीवन का सर्वोत्कृष्ट मूल्य अगर कुछ है तो वह है संपूर्ण मनुष्य।

एकत्व की स्थापना संघर्ष से असम्भव

इस प्रकार युग की माँग है एकत्व की, तो अनेकत्व में ही संतोष फैला है। काल विवश कर रहा है सारी दीवारें तोड़ने को, और मन छटपटा रहा है दीवार मजबूत करने को। लेकिन आप समझ लें कि मन की यह आखिरी खंदक की लड़ाई है। जैसे एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं, वैसे ही

मानव का संकुचित मन और विज्ञान का आज का विश्व, दोनों में से एक को जाना ही होगा। आप पर निर्भर है कि कौन टिकेगा और कौन जायेगा। और यही सारे संघर्षों का मूल कारण है। काल नया है, पर मन पुराना है। इसीलिए काल की दौड़ में मन पिछड़ रहा है और इसीलिए थकावट है, मायूसी है, अब प्रश्न यह है कि यह मायूसी दूर कैसे होगी? जागृति कैसे आयेगी?

हमें स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि वह काम द्वन्द्वजन्य संघर्ष से नहीं होगा, विद्रोह से नहीं होगा। मार्क्स की जो विचारसरणि है—सिद्धान्त, प्रतिसिद्धान्त और समन्वय की, उस द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद से भी नहीं होगा। क्योंकि संघर्ष का रूप आज वह नहीं रहा, जो पिछले जमाने में था। संघर्ष सर्वविनाशी बन गया है। आज का संघर्ष हार-जीत की चीज नहीं रही है, यह विध्वंसक सार्वभौम विनाशलीला है। इसलिए संघर्ष का समर्थन करनेवाला कोई विचार या आचार उस विश्वात्मभाव को जगा नहीं सकता।

संघर्ष से किसी अच्छी चीज की सम्भावना आज खत्म हो गयी है। इसलिए आज नया ही दर्शन, श्रुति और स्मृति चाहिए। कृष्ण की वह पुरानी बात कि 'तस्मात् युद्ध्यस्व भारत'—क्योंकि युद्ध धर्म का रक्षण कर सकता है—आज नहीं चलेगी। आज राकेट का युग है। आज यदि कृष्ण को राह देखनी हो, तो कृष्ण को भी नया अवतार लेना होगा। युद्ध ही जब सर्वविनाशक के कारण अधर्म बन गया है, तब युद्ध से धर्म संस्थापना कोई कैसे करेगा?

कृष्ण के सामने उतना बड़ा महाभारत युद्ध हुआ, लेकिन निष्कर्ष क्या निकला? यही कि जो जीता, वह भी रोया। शत्रु संहार करके जिसने निष्कण्टक राज्य पर आधिपत्य जमा लिया, वह भी अन्दर से असन्तुष्ट ही रहा। भयानक युद्ध और एकांतिक विजय विजेता को अन्ततः समाधान नहीं दे सकी, और न कभी भी दे सकेगी।

क्योंकि विजित और विजेता के मन में कोई फर्क नहीं रहा। सबका मन वही द्वन्द्वाभिघाती मन था, संघर्षरत मन था। तब जो स्थिति थी, वही आज की भी स्थिति है। आज का मानव-मन भी द्वन्द्वों से ग्रसित है, नाना भेद-मोहों से विमूढ़ है—'धर्मसंमूढचेता'।

आज शिक्षकों का युग आया है

आज आवश्यकता है उसी "अतीत" अवस्था की, मन से परे उठने की। विरोध आज का मंत्र नहीं है, आज पार करना है। मैं तोड़ता जाऊँगा, किसको-किसको तोड़ता जाऊँगा, थक जाऊँगा। इसलिए 'पार' कर जाना ही एकमात्र उपाय है।

हमें निश्चित समझ लेना चाहिए कि शस्त्र युग समाप्त हो चला है। आज शस्त्रों का जो उग्र रूप दीख रहा है, वह अन्तिम साँस है। समाज को शान्ति और समाधान देने में योद्धा असफल हुआ, राजकीय मुत्सद्दी भी असफल हो गया है। धर्म भी विफल हो गये हैं। अब नया युग आया है शिक्षक का। ब्राह्मणों का युग गया, क्षत्रियों का युग गया, व्यापारी, वैश्य का युग गया, और शूद्र का यानी साम्यवादी का भी युग गया। अब शिक्षक का युग आया है।

आप सब शिक्षक हैं। आप अपने को कम न आँकें। आपकी दिक्कतें और परेशानियाँ मैं जानता हूँ। लेकिन मनुष्य केवल रोटी से नहीं जीता है। आप उस ब्रह्मर्षि के वारिस हैं, जो कह गया कि 'न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्य ।" उस महान विरासत के आप हकदार हैं। आप महान हैं, लेकिन आपको उसका भान नहीं है। आर्थिक जीवन की छोटी छोटी स्पर्धाओं में आप उलझ गये हैं।

शब्द शक्ति का विकास हो

आज की समस्या का समाधान तलवार से नहीं होगा, धन से नहीं होगा, न कानून से होगा। अणुशक्ति ने विश्व का विचार करने का परिमाण ही बदल दिया है। उसकी एकमात्र शक्ति है शब्द शक्ति। शब्द शक्ति का ही अर्थ है शिक्षा। आज के संत्रस्त समाज को सुख का मार्ग बताने की शक्ति शिक्षक में ही है।

इतिहास मे जितने भी महापुरुष हुए वे व्यर्थ नहीं गये। आप यह न कहिए कि सन्त पुरुष भी जो न कर सके, वह हम कैसे कर सकेंगे ? वास्तव मे हम जो हैं वह उन्ही सन्तो की कृति हैं। सिकन्दर हो गया, मुहम्मद गजनवी हो गया, जाने ऐसे कितने कितने हो गये। लेकिन आम समाज को आज भी कोई स्मरणीय है तो वे हैं भगवान बुद्ध महावीर तुलसी कबीर, मीरा, शकराचार्य ज्ञानदेव विवेकानन्द गाधी आदि। यह इस बात का सूचक है कि समाज पर किसका प्रभाव पडता है। आप उन्ही शब्द शक्तिसम्पन्न लोक शिक्षकों के वारिस ह। आपकी शक्ति शब्द की शक्ति है। शकराचाय ने सारे भारत की परिक्रमा करके चारो दिशाओ में अपने मठ स्थापित किये। अद्वैत दर्शन को नयी शक्ति सचालित की। उनके पास कौनसी शक्ति थी ? शब्द ही उनकी शक्ति थी। शब्द में हो एसी शक्ति है, जो मनुष्य को मन से ऊपर उठा सके, द्वन्द्व से परे ले जा सके।

आपसे निवेदन यही है कि आप अपनी शक्ति को समझ लें और समाज में नयी शक्ति भर दें। (समस्तीपुर, बिहार : २३-२ ६८)

सोवियत संघ में शिक्षकों का प्रशिक्षण

जी० चौरसिया

शिक्षकों के अनवरत परिश्रम एव लगन के कारण सोवियत सघ में शिक्षा को एक अनुपम स्थान प्राप्त हो गया है। हर प्रकार की शिक्षा का समुचित प्रबन्ध सोवियत जीवन की एक बड़ी विशेषता है। शिशु बालक, तरुण, वयस्क एव वृद्धो की शिक्षा के लिए नवीनतम साधन एवं सामग्री देखकर किसी भी दर्शक का मन आनंद विभोर हो उठता है। अप्रैल सन् १९६७ में भारतीय प्रतिनिधि मण्डल के सदस्य के नाते मुझे भी सोवियत संघ की विभिन्न शिक्षण संस्थाओं को देखने का अवसर मिला। मास्को, लेनिनग्राड, तिबलिसी, गौरी, रुस्तावी आदि स्थानों में कई शिक्षण संस्थाएँ देखी तथा शिक्षकों एव प्राध्यापकों से वार्तालाप किया। सभी संस्थाएँ शासकीय होने के कारण एक अच्छी बात यह मालूम हुई कि इमारत, सामग्री, पुस्तकालय, क्रीडास्थल, प्रयोगशाला आदि सस्था की आवश्यकता के अनुसार समान रूप से दिये गये हैं। वास्तव में हर प्रकार की शिक्षण संस्था के लिए निश्चित मापदण्ड है और उत्तम शिक्षा के हित मे उनका पूर्णतया पालन किया जाता है।

शिक्षक, प्राध्यापक एव शिक्षा अधिकारियों से मिलकर उनके कार्य के सम्बन्ध में हमारे प्रतिनिधि मण्डल ने विस्तारपूर्वक चर्चा की। हमारे सभी प्रश्नों का उत्तर उन लोगों ने दिया। रूसी भाषा का ज्ञान हमें न होने के कारण अनेक

स्थलों पर सीधा वार्तालाप हम नहीं कर सके। लेकिन कुशल दुभाषी रूसी मित्र हमारे साथ रहे और उनकी मदद से सोवियत-शिक्षा के सम्बन्ध में हम काफी जानकारी प्राप्त कर सके। जिन शिक्षकों, प्राध्यापकों एवं शिक्षा अधिकारियों से हमारी मुलाकात हुई, उनकी कार्य निष्ठा, कौशल एव अदम्य उत्साह से हम बहुत प्रभावित हुए। हमें ऐसा प्रतीत हुआ कि इतने कुशल कार्यकर्ताओं के हाथ सोवियत संघ का भविष्य पूर्णतया सुरक्षित है और सोवियत-शिक्षा अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में सफल होती रहेगी।

प्रशिक्षण-सस्थाएँ

शिक्षक एव शिक्षा अधिकारियों की इस प्रशंसनीय कार्यकुशलता एव लगन के पीछे प्रशिक्षण संस्थाओं का बहुत बडा हाथ है। पेडागाजिकल स्कूल में प्राथमिक शिक्षकों का तथा पेडागाजिकल इंस्टीच्यूट में माध्यमिक शिक्षकों का प्रशिक्षण सोवियत संघ के हर गणतत्र में, होता है। आवश्यकता के अनुसार हर राज्य मे ये प्रशिक्षण-सस्थाएँ स्थापित की गयी हैं। कुशल शिक्षकों के निर्माण के लिए इन सस्थाओं मे भवन, पुस्तकालय, प्रयोगशाला, सामग्री एव समुचित साधन प्रदान किये गये हैं। हमे यह देखकर बडी प्रसन्नता हुई कि प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा की समस्त गतिविधियों में प्रशिक्षण-सस्थाओं का बडा हाथ है। शिक्षा की प्रगति, नये प्रयोग, नये साहित्य का निर्माण, नये सुझाव एवं विचार आदि मे प्रशिक्षण-सस्थाएँ अग्रणी हैं। केवल शिक्षकों का प्रशिक्षण इन सस्थाओं का कार्य नहीं। शिक्षा सम्बन्धी अनुसधान-कार्य निरन्तर इन सस्थाओं मे होता है। नये प्रयोग किये जाते हैं, नयी योजनाएँ बनायी जाती हैं। सेवारत शिक्षकों को नयी गतिविधियों से परिचित कराने के लिए पत्राचार, सायकालीन तथा ग्रीष्मकालीन अध्ययन की समुचित व्यवस्था है।

अध्यापक की दिनचर्या

नये साहित्य के निर्माण में प्रशिक्षण सस्थाओं के अध्यापक निरन्तर जुटे रहते हैं। पाठ्यक्रम, पाठन-विधि, मनोविज्ञान, परीक्षा प्रणाली, शाला प्रबन्ध, आदि के विशेषज्ञ नये अन्वेषणों के आधार पर पाठ्यपुस्तकें, पठन पाठन सामग्री आदि तैयार करते हैं। भारतीय शिक्षा शास्त्रियों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि सोवियत सघ में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में, जिसमें प्रशिक्षण सस्थाएँ शामिल हैं, *प्रत्येक अध्यापक लगभग ६ घण्टे प्रतिदिन सस्था में कार्य करता है। लगभग तीन* घंटे प्रतिदिन अध्ययन में, जिसमें प्रयोगशाला, कार्यशाला का व्यावहारिक कार्य शामिल है तथा तीन घंटे प्रतिदिन अनुसंधान, नये साहित्य का निर्माण, स्वाध्याय

भादि में व्यतीत करता है। राष्ट्रीय स्तर पर मास्को में 'एकेडमी भाव पेडागाजिकल साइन्स' एक विख्यात सस्था है। इसमें कई प्रकार के विशेषज्ञ कार्य करते हैं और सोवियत सघ के प्रत्येक गणतन्त्र से निकट सम्पर्क रखते हैं। इसी सस्था के कार्य से प्रभावित होकर भारत में सन् १९६१ में राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् की स्थापना हुई थी। 'एकेडेमी भाव पेडागाजिकल साइन्स' में ६५० विशेषज्ञ कार्य करते हैं। इस समय वे १५०० नयी योजनाओं पर कार्य कर रहे हैं, इनमें से ५०० योजनाएँ सोवियत सघ के विभिन्न गणतन्त्रों में चल रही हैं। इन सभी योजनाओं का उद्देश्य है प्राथमिक, माध्यमिक एव उच्च शिक्षा के विकास के लिए नयी दिशा देना। राष्ट्रीय स्तर पर अनेक सम्मेलन, विशेषज्ञों की बैठकें, सलाहकार-समितियों का निर्माण, साहित्य-प्रकाशन आदि कार्य इस 'एकेडेमी' द्वारा किये जाते हैं।

सोवियत-शिक्षा के प्रमुख लक्षण

सोवियत सघ में प्रशिक्षण-संस्थाओं को अग्रगण्य स्थान प्राप्त हुआ है तथा शिक्षा शास्त्रियों को शिक्षा की हर गतिविधि में प्रमुख स्थान मिला है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि प्रशिक्षण-सस्थाएँ अपनी अलग दुनिया न बसाकर राष्ट्रीय जीवन की हर गतिविधि से सीधा सम्बन्ध रखती हैं प्रशिक्षण शास्त्री स्वप्न-जगत् में चैन की बाँसुरी नहीं बजाते। सभी प्रकार की शिक्षा-सस्थाओं से उनका निकट सपर्क है। उनके विकास में, उनकी समस्याओं के हल में, उनके उद्देश्यों की प्राप्ति में हर प्रकार सहायता देना प्रशिक्षण-सस्थाओं का कार्य है। इसीलिए इन सस्थाओं को शिक्षक-समुदाय ज्ञान एव प्रेरणा का केन्द्र मानता है।

प्रशिक्षण-सस्थाओं के इस अनुपम स्थान को समझने के लिए हमें सोवियत-शिक्षा के प्रमुख लक्षण समझना आवश्यक है। जिस तरह जन-जीवन और प्रशिक्षण-सस्थाओं के बीच कोई खाई नहीं है, उसी प्रकार शिक्षा और राष्ट्रीय जीवन में भी कोई खाई नहीं है। जन जीवन एव राष्ट्रीय जीवन का अविभाज्य अंग है शिक्षा। शिक्षा की अद्भुत शक्ति पर जन-साधारण की अटूट विश्वास है। सोवियत सघ में नेता, अधिकारी एव नागरिक यह अच्छी तरह समझ गये हैं कि शिक्षा स्वर्ण-कुंजी की तरह है, जिससे राष्ट्रीय उन्नति का प्रत्येक द्वार खुलता है। शिक्षा द्वारा जन-जीवन सुखी एवं प्रशस्त होता है, राष्ट्र सबल होता है। अतएव राष्ट्र के कर्णधार सतत प्रयास करते हैं कि शिक्षा के लिए आवश्यक निधि उपादान, पाठ्य-सामग्री, प्रयोगशाला, पुस्तकालय, रूप्रहालय, साज-सज्जा और कुशल शिक्षक प्रदान किये जायें।

उत्पादन और शिक्षा साथ-साथ

यदि आप यह जानना चाहें कि सोवियत-शिक्षा की अद्वितीय सफलता का रहस्य क्या है, तो मैं यह कहूँगा कि वह है उत्पादन एवं शिक्षा का परिणय तथा सुखी दाम्पत्य जीवन। इस सुखी दाम्पत्य जीवन का अद्भुत परिणाम है उत्पादन का बाहुल्य। जीवन के हर क्षेत्र में उत्पादन का बाहुल्य उच्च जीवन-स्तर, जन-साधारण के लिए सुखी जीवन, सबल राष्ट्र, यह सब शिक्षा और उत्पादन के संयोग का परिणाम है। मेरे विचार से सोवियत-शिक्षा का यह सबसे प्रमुख लक्षण है। कोठारी शिक्षा-कमीशन ने भारतीय शिक्षा के विकास के लिए जो सुझाव दिये हैं, उनमें इसी बात पर अधिक बल दिया गया है कि शिक्षा और उत्पादन में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किया जाय। वर्तमान भारत की सबसे विकट समस्या है उत्पादन में वृद्धि करना। खाद्य-सामग्री के उत्पादन में वृद्धि तो अब हमारे राष्ट्र के लिए जीवन-मरण का प्रश्न हो गया है और सारी शक्ति लगाकर हमें यह कार्य करना है। अन्य क्षेत्रों में उत्पादन की वृद्धि भी राष्ट्रीय विकास के लिए आवश्यक है। इस सन्दर्भ में सोवियत संघ का उदाहरण भारत के लिए बड़ा उपयोगी और सामयिक है। हमारे शिक्षा-विशारद सोवियत-शिक्षा का अध्ययन कर यह समझ लें कि शिक्षा और उत्पादन का सुन्दर सम्बन्ध कैसे जोड़ा जाय तो भारतीय शिक्षा को नवीन दिशा मिलेगी।

शिक्षण की पत्राचार-प्रणाली

सोवियत-शिक्षा का सबसे अद्भुत एवं प्रशंसनीय लक्षण पत्राचार-प्रणाली, सायंकालीन अध्ययन तथा ग्रीष्मकालीन अध्ययन है। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में ३४० प्रकार के विशेषज्ञ तैयार किये जाते हैं। इनमें से २७० विशेषताओं का अध्ययन सायंकालीन अथवा पत्र-प्रणाली द्वारा किया जा सकता है। उच्च शिक्षा में लगभग एक-तिहाई विद्यार्थी सायंकालीन अध्ययन द्वारा शिक्षा प्राप्त करते हैं, एक-तिहाई विद्यार्थी पत्राचार-प्रणाली द्वारा शिक्षा प्राप्त करते हैं, और शेष एक-तिहाई विद्यार्थी दिन में अध्ययन कर शिक्षा प्राप्त करते हैं। सायंकालीन अथवा पत्र-प्रणाली द्वारा शिक्षा किसी प्रकार हीन नहीं मानी जाती। वास्तव में उत्पादन और अध्ययन के संयोग की कुंजी सायंकालीन अथवा पत्र-प्रणाली की शिक्षा है। दिन में अपना काम करते हुए लोग सायंकालीन अध्ययन द्वारा उच्च शिक्षा प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार अपना काम करते हुए पत्र-प्रणाली द्वारा अथवा ग्रीष्मकालीन अध्ययन द्वारा उसी प्रकार की शिक्षा प्राप्त करते हैं। इस प्रणाली के दो बड़े लाभ हैं :

(अ) उत्पादन-कार्य में कमी या बाधा नहीं होती, क्योंकि अध्ययन एवं कार्य साथ साथ चलते हैं।

(आ) इस प्रणाली से मैं बहुत प्रभावित हुआ हूँ, जिसकी अमिट छाप मेरे हृदय पर है। इस प्रणाली के तीन अद्भुत शैक्षणिक लाभ हैं, जिनकी जानकारी से भारतीय शिक्षा विशारदों को नयी प्रेरणा मिल सकती है :

(१) शिक्षा की साज सज्जा, उपादान, पुस्तकालय, संग्रहालय, भवन आदि का निरन्तर उपयोग। सायंकालीन एवं ग्रीष्मकालीन अध्ययन तथा पत्राचार-प्रणाली की शिक्षा देने के लिए नयी संस्थाओं का निर्माण नहीं करना पड़ता। शिक्षा की जो संस्थाएँ सोवियत संघ में हैं, उनमें दिन मे एक प्रकार के विद्यार्थी पढ़ते हैं और उन्हीं संस्थाओं में पत्राचार और ग्रीष्मकालीन अध्ययन द्वारा तीसरे प्रकार के विद्यार्थी शिक्षा पाते हैं। इस प्रकार शिक्षण-संस्थाओं का पूर्णरूपेण उपयोग शिक्षा में होता है। शिक्षा की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को देखते हुए अनिवार्य है कि हमारी संस्थाओं का उपयोग केवल १० बजे से ५ बजे तक न होकर जितना अधिक हो सकता है, उतना किया जाय।

(२) इस प्रणाली द्वारा जो शिक्षा, कौशल अन्तर्दृष्टि, काम के नये ढंग मिलते हैं, वे अद्वितीय हैं क्योंकि काम और शिक्षा एकसाथ चलने से शिक्षा अधिक बलवती और उपयोगी होती है। शिक्षा का प्रभाव भी अधिक स्थायी होता है। शाम को जो नये ढंग शिक्षण-संस्थाओं में सिखाये जाते हैं, उन्हें दूसरे दिन अपने काम मे व्यवहार-रूप में लाने का अवसर विद्यार्थी को मिलता है। इसलिए नये ढंग से सीखने की प्रेरणा बढ़ती है और विद्यार्थी में आत्म-विश्वास जाग्रत होता है।

(३) शिक्षा में सबसे बड़ा और कठिन प्रश्न है—विद्यार्थी को प्रेरणा और प्रोत्साहन देना, ताकि वह शिक्षा का पूरा लाभ उठा सके। कार्य और अध्ययन साथ-साथ चलने पर यह जटिल प्रश्न उठता ही नहीं है। विद्यार्थी दिन मे कार्य करते हैं और सायंकालीन अध्ययन। वह जानते हैं कि उनका उज्ज्वल भविष्य अध्ययन पर निर्भर है। साथ ही सायंकालीन अध्ययन का सीधा सम्बन्ध उसके दिन भर के कार्य से होता है। सायंकालीन अथवा पत्र प्रणाली के अध्ययन में जो व्यावहारिक काम शिक्षण-संस्थाओं में कराया जाता है, उसका सम्बन्ध विद्यार्थी के दैनिक कार्य से रहता है। शिक्षा पूर्ण होते ही उसे पदोन्नति एवं वेतन में उन्नति अपने आप मिल जाती है। ("नया शिक्षक' से साभार)

राष्ट्रीय शिक्षा-नीति और राष्ट्र-विकास का संकल्प बोध

सुरेश भटनागर

भारत के भाग्य का निर्माण इस समय उसकी कक्षाओं में हो रहा है। हमारा विश्वास है कि यह कोई चमत्कारोक्ति नहीं है। विज्ञान और शिल्प विज्ञान पर आधारित इस दुनिया में शिक्षा ही लोगों की खुशहाली कल्याण और सुरक्षा के स्तर का निर्धारण करती है।[1] वास्तविकता यही है कि हम स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् से ही राष्ट्र निर्माण के पावन संकल्प को वर्ष में दो बार दोहराते रहे हैं। परन्तु संकल्प बोध की अभिप्राप्ति किस प्रकार होगी, इस पर हमारा ध्यान उस समय गया जब एक पीढ़ी जवान हो गयी और उस कसमसाती जवान पीढ़ी को हम दिशा-बोध नहीं दे सके।

आज का युग प्रगति का युग है। प्रगति का आधार है भौतिक संसाधनों का विकास तथा मानव मूल्यों की अभिवृद्धि। मानव को मूल्यों की अभिप्राप्ति आध्यात्मिक वृत्ति से होती है। अतः स्वातन्त्र्योत्तर भारत की भौतिक अभिवृद्धि हुई है तो आध्यात्मिक तथा नैतिक गुणों का ह्रास हुआ है यह तथ्य भी उतना ही कटु है।

शिक्षा परिवर्तन का साधन

विज्ञान तथा शिल्प विज्ञान पर आधारित इस युग में क्रान्ति के तीन आधार रहे हैं—मंत्र तंत्र और अस्त्र। आज तंत्र तथा अस्त्र सामाजिक परिवर्तन की भूमिका का निर्वाह नहीं कर पा रहे हैं। मंत्र अर्थात् शिक्षा आज अहिंसक क्रान्ति की जबरदस्त प्रक्रिया है। शिक्षा में क्रान्ति की आवश्यकता है जिसके परिणामस्वरूप हमारे द्वारा अत्यन्त विहित सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक क्रान्ति होगी।[2] स्पष्ट है—शिक्षा क्रान्ति का माध्यम है और क्रान्ति का माध्यम चूँकि दोषपूर्ण है इसलिए साधन की शुद्धि आवश्यक है। साधन शुद्धि के इस अभियान में हमें इन पहलुओं पर ध्यान देना होगा[3]

---

१ शिक्षा आयोग का प्रतिवेदन पृष्ठ १।१ १

२ शिक्षा आयोग पृष्ठ ६।१ १७

३ शिक्षा-आयोग : पृष्ठ ६।१ १७

(१) आन्तरिक रूपांतरण पर, ताकि शिक्षा का सम्बन्ध राष्ट्र-जीवन, उसकी आवश्यकता तथा आकांक्षा से जुड़ सके।
(२) गुणात्मक सुधार पर, ताकि प्राप्त मानक (स्टैण्डर्ड) समुचित हों, वे सदा बढ़ते रहें तथा कम-से-कम कुछ क्षेत्रों में तो उनकी अन्तर-राष्ट्रीय तुलना हो सके।
(३) शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं के विस्तार पर, जिसका आधार मोटे तौर पर जन-शक्ति सम्बन्धी आवश्यकताएँ होनी चाहिए, जिससे शिक्षा-सम्बन्धी अवसरों को सबके समान बनाया जा सके।
(४) शिक्षा का सम्बन्ध उत्पादकता से जोड़ने पर।
(५) सामाजिक और राष्ट्रीय एकीकरण को मजबूत करने पर, जिससे सरकार सच्चे अर्थ में लोकतन्त्र को तथा उसे एक जीवनशैली के रूप में निखारने में देश की मदद करे
(६) आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में गति लाने पर।
(७) सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों को बढ़ावा देकर चरित्र का निर्माण करने पर।

राष्ट्र-विकास का संकल्प बोध कैसे हो? किस प्रकार नवीन उद्भावनाओं को जनजीवन की खुशहाली तथा प्रगति के सन्दर्भ में कार्यान्वित किया जाय? कौन कौनसी बाधाएँ हमारे मार्ग में हैं और उनको किस प्रकार दूर किया जा सकता है? ये हैं कुछ विचार बिन्दु, जो राष्ट्रीय शिक्षा नीति के निर्माण में विचारणीय हैं।

संकल्प-बोध और बाधाएं

हमारे समक्ष पहली समस्या है जनसंख्या की। विद्यमान जनसंख्या लगभग ५० करोड़ है। आगामी २० वर्षों में यह लगभग २५ करोड़ और बढ़ेगी। आजकल ५ लाख विद्यालय, ७ करोड़ विद्यार्थी और २० लाख अध्यापक शिक्षा के प्रसार में लगे हैं। आनेवाले वर्षों में अध्यापकों तथा विद्यालयों की संख्या उसी अनुपात में बढ़ेगी। प्रश्न केवल विद्यालयों के भवनों, छात्रों और अध्यापकों के बढ़ने का ही नहीं है, उनके लिए भोजन भी चाहिए। हम खाद्यान्न के मामले में कितने आत्मनिर्भर हैं, यह रहस्य किसीसे छिपा नहीं है। इसी प्रकार राष्ट्रीय आय का प्रश्न है, सन् १९५०-५१ में प्रति व्यक्ति २६५ रु० वार्षिक थी और यह सन् १९६४-६५ में ३४८ रु० हो गयी, परन्तु न्यूनतम आय आज भी १२० रु० वार्षिक है।

इसी प्रकार सामाजिक ग्रौर राष्ट्रीयकरण की समस्या भी विकट है। पढ़-लिखकर व्यक्ति किसी ग्रोर ही रंगत में रंगा जाता है। "चूँकि शिक्षा की जड़ें लोगों की सांस्कृतिक परम्पराग्रों में नहीं हैं, इसलिए शिक्षित व्यक्तियों की प्रवृत्ति ग्रपनी ही संस्कृति से दूर होते जाने की ग्रोर हो रही है।"[४]

हम विश्व के नवीन राष्ट्र हैं ग्रौर हमारी बुनियाद लोकतंत्र है। हमारा लोकतंत्र खतरे में है ग्रौर ग्रापसी स्वार्थों के कारण विशृङ्खलित हो गया है। हमारा प्रमुख कार्य लोकतंत्र को मजबूत बनाना है। स्वतंत्रता की रक्षा करना एवं जनमानस को जाग्रत करना है। सच यह है कि भौतिकता को ग्रध्यात्म के माध्यम से स्वीकार करना है। विज्ञान तथा ग्रध्यात्म[५] का समन्वय करना है।

हमारे समक्ष शिक्षा का जो स्वरूप विद्यमान है, उसे किसी भी उन्नत तथा प्रगतिशील कहलानेवाले देश की शिक्षा का मानचित्र नहीं कहा जा सकता। पढ़ना-लिखना तो हमने कुछ को सिखाये, पर चरित्र तथा नैतिकता के मानदण्ड बदलते गये। परिणामतः ज्ञान का विस्फोट हुग्रा, परन्तु बदलती नैतिक मान्यताग्रों ने नवीन ज्ञान को ग्रनैतिक ग्रास्था के सन्दर्भ में स्वीकार किया। सत्ता, शासक, जनता ग्रौर जनमानस के निर्माताग्रों का संघर्ष जारी रहा ग्रौर इसका परिणाम यह हुग्रा कि हम ग्रपने ग्रादर्शों से दूर होते गये।

संकल्प-बोध कैसे ?

संकल्प दोहराने से ही कुछ नहीं होता, संकल्प का यथार्थ बोध होना ग्रावश्यक है। यथार्थ बोध का ग्राधार है शिक्षा, जो ग्रहिंसक क्रान्ति एवं सामाजिक परिवर्तन की जबरदस्त प्रक्रिया है, शिक्षा में क्रान्ति हो तो शिक्षा भी क्रान्ति करेगी। ज्ञान के विस्फोट से सामाजिक परिवर्तन होगा ग्रौर ग्राधुनिकीकरण के समन्वय से राष्ट्रविकास की दिशा ग्रौर सभावनाएँ मुखरित होंगी। ग्रायोग ने इसीलिए कहा है—'ग्राधुनिकीकरण की प्रक्रिया का सबसे शक्तिशाली साधन विज्ञान ग्रौर शिल्प-विज्ञान पर ग्राधारित शिक्षा है।'[६]

राष्ट्र-विकास के संकल्प-बोध के लिए ग्रावश्यक है कि सामाजिक ग्रौर

---

४. शिक्षा ग्रायोग : ११९.०७

५. शिक्षा ग्रायोग : ४।१.११

६. शिक्षा-ग्रायोग : २५।१.४२

राष्ट्रीय एकीकरण हो। सामाजिक और राष्ट्रीय एकीकरण के लिए इन तथ्यों की आवश्यकता है :

(१) राष्ट्र के भविष्य में आस्था;

(२) लोगों के रहन सहन के स्तर में निरन्तर वृद्धि और बेकारी तथा देश के उन विभिन्न भागों के विकास में असमानता में कमी की, क्योंकि ये सभी बातें राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक अर्थों में अवसर की समानता की भावना को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक हैं।

(३) नागरिकता के मूल्यों और दायित्वों की एक गंभीर भावना की तथा लोगों में सम्पूर्ण राष्ट्र के प्रति बढ़ते हुए निष्ठापूर्ण तादात्म्य की ;

(४) सरकारी सेनाओं की चारित्रिक दृढ़ता पर आधारित अच्छे और निष्पक्ष प्रशासन तथा केवल कानून की दृष्टि से ही नहीं, किन्तु वास्तविक रूप से समान व्यवहार के आश्वासन की,

(५) राष्ट्र के विभिन्न वर्गों की संस्कृति, परम्पराओं तथा जीवन-प्रकार के लिए आपसी सद्भावना और सम्मान की।

ये विचार-बिन्दु इस बात पर बल देते हैं कि हमें अपनी शिक्षा-प्रणाली का पुनर्मूल्यांकन करना होगा। यदि हम उनका पुनर्मूल्यांकन नहीं कर पाते तो हम राष्ट्रीय शिक्षा-नीति को स्वीकार कर सकेंगे, यह संभव नहीं है। अतः आयोग[७] ने स्पष्ट कहा है

(१) राष्ट्रीय विकास के समग्र कार्यक्रम में शिक्षा की भूमिका का हम फिर से मूल्यांकन करें।

(२) यदि शिक्षा को अपनी भूमिका निभानी है तो शिक्षा की वर्तमान प्रणाली में जो परिवर्तन आवश्यक हैं, उन्हें हम पहचानें और उनके आधार पर शिक्षा के विकास-कार्यक्रम तैयार करें।

(३) इस कार्यक्रम को दृढ़ संकल्प तथा शक्ति के साथ अमल में लायें।

राष्ट्रीय शिक्षा-नीति

स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद के वर्षों में सन् १९६८ का वर्ष महान उपलब्धियों का वर्ष है। उपलब्धियों के क्षेत्र में राष्ट्रीय शिक्षा-नीति की घोषणा महान तप है।

हमारी राष्ट्रीय शिक्षा-नीति का आधार रहा है : "शिक्षा में सबसे महत्वपूर्ण सुधार यह है कि इसको परिवर्तित करके व्यक्तियों के जीवन, आवश्यकताओं और आकांक्षाओं से इसका सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया जाय और

७. शिक्षा-आयोग . ११ ०१

इस प्रकार इसको सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तन का शक्तिशाली साधन बनाया जाय, जो राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक है।'

राष्ट्रीय शिक्षा-नीति के प्रमुख बिन्दु ये रहे हैं

(१) संविधान के ४५ वें अनुच्छेद के अनुसार १४ वर्ष तक के बच्चों के लिए नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करना,

(२) अध्यापकों की स्थिति, वेतन और प्रशिक्षण एवं सेवा-सम्बन्धी शर्तें उचित एवं संतोषजनक होनी चाहिए,

(३) भाषाओं के विकास के लिए ये कार्यक्रम हों .

(क) क्षेत्रीय भाषाओं और उनके साहित्य का विकास हो। इन्हें विश्वविद्यालय स्तर तक शिक्षा का माध्यम बनाया जाय।

(ख) राज्य-सरकारें त्रिभाषा सूत्र का पालन करें।

(ग) हिन्दी के विकास के लिए हर सम्भव प्रयत्न हो।

(घ) सांस्कृतिक एकता के लिए संस्कृत की शिक्षा का बड़े पैमाने पर दी जाने का प्रबन्ध किया जाय।

(च) अन्तरराष्ट्रीय भाषाओं के अध्ययन पर बल दिया जाय।

(४) शिक्षा प्राप्ति का अवसर सबको समान रूप से मिल सके, इसलिए अनवरत रूप से प्रयत्न किया जाना चाहिए। इसमें भर्ती का आधार योग्यता हो बालिकाओं तथा शारीरिक और मानसिक दृष्टि से अक्षम बालकों की शिक्षा की नियमित व्यवस्था हो।

(५) विभिन्न क्षेत्रों में कार्यशील प्रतिभाओं को परखा जाय।

(६) कार्यानुभव तथा राष्ट्रीय सेवा का शिक्षा का अभिन्न अंग बनाया जाय।

(७) वैज्ञानिक शिक्षा तथा शोध को प्रोत्साहन मिले।

(८) कृषि तथा उद्योगों की शिक्षा पर बल दिया जाय। प्रत्येक राज्य में कृषि विश्वविद्यालय हो। उद्योगों में व्यावहारिक प्रशिक्षण पर बल दिया जाय।

(९) विभिन्न स्तरों पर विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं में उत्तम पुस्तकों का निर्माण कराया जाय।

(१०) परीक्षाओं को अधिकाधिक विश्वसनीय तथा वस्तुनिष्ठ बनाया जाय।

(११) माध्यमिक शिक्षा का विस्तार सामाजिक परिवर्तन हेतु किया जाय। इस दृष्टि से प्राविधिक और व्यावसायिक शिक्षा की सुविधाओं में वृद्धि होनी चाहिए।

(१२) उच्च शिक्षा के विकास के लिए छात्रों तथा अध्यापकों के अनुपात, नये विश्वविद्यालयों की स्थापना के लिए पर्याप्त धन-राशि, स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम तथा शोध की सुविधाएँ, उच्चतर अध्ययन-केन्द्रों की व्यवस्था करना तथा स्थापना पर बल देना चाहिए।

(१३) अंशकालिक तथा पत्राचारी शिक्षा की व्यवस्था समाज के सभी वर्गों को मिलनी चाहिए।

(१४) निरक्षरता को दूर करने के लिए रचनात्मक कार्यक्रम लिये जायँ।

(१५) खेल और क्रीडा का विकास बडे पैमाने पर इस उद्देश्य से किया जाय कि सामान्य रूप से सभी छात्रों की, और विशेष रूप से उनकी जो इस क्षेत्र में वैशिष्ट्य प्राप्त कर चुके हैं, शारीरिक क्षमता और कार्यकुशलता बढ़े और उनमे क्रीडा तथा तत्सम्बन्धी निपुणता आये।

(१६) अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा का ही भरपूर प्रयत्न नहीं होना चाहिए, वरन् शिक्षा-सम्बन्धी उनके हितों के सवर्द्धन का भी प्रयत्न हो।

(१७) देश के सभी भागों के लिए एकरूप शैक्षणिक ढाँचा रखना अधिक लाभकर होगा। अन्तिम उद्दिष्ट यह होना चाहिए कि सारे देश में १० + २ + ३ वर्ष का ढाँचा रहे।

राष्ट्रीय शिक्षा-नीति के ये विचार-बिन्दु अपने में स्वयं महान कार्यक्रम हैं और ये कार्यक्रम यदि कागज पर ही रह जाते हैं तो राष्ट्र विकास हो जायेगा, इसमें सन्देह है। शिक्षा स्वयं में क्रान्ति है और इस क्रान्ति की मशाल को बुझने न दिया जाय, इसके लिए सत्ता ही नहीं, जनता को भी आहुति देनी होगी। यह आहुति तन, मन तथा धन से देनी होगी। परन्तु कैसे ?

क्या यह क्रान्ति अध्यापकों की उपेक्षा से होगी ? क्या यह राष्ट्र विकास की भेदपूर्ण नीति से होगी ? 'प्रिविलेज्ड क्लास' को मान्यता देने से क्या राष्ट्र का प्रत्येक बालक राष्ट्र विकास में योग दे सकेगा ? आदि ऐसे प्रश्न हैं, जिनके सन्दर्भ में राष्ट्रीय शिक्षा-नीति का मूल्यांकन होना चाहिए।

राष्ट्रीय शिक्षा-नीति की पहली असफलता है अध्यापकों का अस्तित्व-बोध के लिए संघर्षरत होना। कागजी महलों में जीनेवाले हम राष्ट्रवादी कथनी तथा करनी के अन्तर को आधार मानकर राष्ट्र का सचालन करते रहे हैं। बढ़ता छात्र-असन्तोष इस बात का द्योतक है कि हमारी शिक्षा प्रणाली दोषपूर्ण है, जो छात्रों को दिशा-बोध नहीं दे रही है। भाषा-नीति पर विवाद चल ही

रहा है, सामान्य (कामन) स्कूलों की सुविधा जनसामान्य को मिल नहीं सकती, अध्यापकों को प्रतिष्ठा मिलना स्वप्न है, अनुसन्धान करानेवालों में ओछी वृत्ति (स्लाव मेन्टेलिटी) रहेगी ही, तो फिर कैसे उसका क्रियान्वयन होगा ? जब क्रियान्वयन होगा नहीं, तो फिर कागजों पर छपी शिक्षा-नीति पुरालेख-संग्रहालय (आर्काइव्ज) की शोभा ही बढ़ायेगी।

तो क्या हो ?

एक विकसनशील राष्ट्र यदि देर से जागा है तो ठीक ही है, संतोष यह है कि वह जाग तो गया है। राष्ट्र-विकास के लिए हमारी राय में शिक्षा-नीति का पुनर्मूल्यांकन करते समय इन तथ्यों पर विचार करना चाहिए।

(१) राष्ट्र को शिक्षा पर लगभग ८० प्रतिशत व्यय करना पड़ता है। २० प्रतिशत के लिए शिक्षा-संचालन का दायित्व समुदाय को निभाना पड़ता है। अतः आर्थिक रूप से शिक्षा का भार राष्ट्र को ही निभाना चाहिए।

(२) शिक्षा को केन्द्र का विषय बनाया जाय।

(३) प्रशासनिक तंत्र में सौहार्द का वातावरण उत्पन्न हो और अफसरशाही समाप्त हो तथा कार्यकर्तापन विकसित हो।

(४) राजनीति को शिक्षण-संस्थाओं से दूर रखा जाय।

(५) राष्ट्रीय शिक्षा-नीति के क्रियान्वयन के लिए सदैव सचेत रहें और उसका लक्ष्य राष्ट्र का सर्वाङ्गीण विकास बनायें।

राज्य सरकारें शिक्षा को लेकर मनमाने अशोभनीय निर्णय लेती रही हैं। इससे विलगता तथा विघटन विकसित हुआ है। क्या राष्ट्र की एकता के निर्माण के लिए शिक्षा का राष्ट्रीयकरण नहीं किया जा सकता ? इस पहलू पर विधायकों, जनता तथा शासन को विचार करना चाहिए। •

> जो ज्ञान मस्तिष्क तक ही सीमित रहता है, हृदय के भीतर प्रवेश नहीं कर पाता, वह जीवन के संकटपूर्ण अनुभव के क्षणों में किसी काम का नहीं होता।
>
> —महात्मा गांधी

भारत में शैक्षणिक आयोजन

युवेशचन्द्र शर्मा

वर्तमान शिक्षा प्रणाली को, आज के नित प्रति बदल रहे संसार के सन्दर्भ में, सम्पूर्णतः पुनर्गठित करना पड़ेगा और इस प्रणाली को उपयोगिता एवम् वास्तविकता की आधारशिला पर आधारित करना होगा। शिक्षा-आयोग ने भी अपने प्रतिवेदन में सुझाया है . "शिक्षा, राष्ट्रीय विकास तथा समृद्धि में सीधा सम्पर्क ..तभी सधता है जब गुणवत्ता तथा परिमाण, दोनों ही दृष्टियों से शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली का पुनर्गठन किया जाय।...वास्तव में शिक्षा-क्षेत्र में एक ऐसी क्रान्ति की आवश्यकता है, जो बहु इच्छित सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक क्रान्ति को गतिमान कर दे।" ऐसी क्रान्ति एक सुपरिभाषित, निर्भीक एवम् विचारपूर्ण नीति तथा इस क्षेत्र मे कार्य कर रहे सभी लोगों द्वारा संकल्प और उत्साहपूर्वक उसके कार्यान्वयन द्वारा लायी जा सकती है।

राजनीतिक स्वाधीनता हमने इक्कीस वर्ष पहले ही प्राप्त कर ली थी, परन्तु आर्थिक समृद्धि, सामाजिक न्याय तथा सांस्कृतिक पुनरुत्थान का स्वाद हमें अभी तक चखने को नहीं मिला, जिसके लिए हम यह मान बैठे हैं कि वह राजनीतिक स्वतन्त्रता के उपरान्त अपने आप हो जायेगा। हमने अपने लिए राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में लोकतंत्र, समाजवाद

तथा धर्म निरपेक्षता की नीति को आदर्श रूप में अपनाया है। इन आदर्शों तक पहुँचने के लिए अधिक गहरी सूझ बूझ, व्यापक जानकारी और उच्च सांस्कृतिक स्तरों की स्वाभाविक रूप से आवश्यकता होगी। और ऐसी स्थिति केवल एक अच्छी शिक्षा प्रणाली द्वारा ही आ सकती है। शासन की एक औपचारिक लोकतांत्रिक प्रणाली अपनाना सुगम है, परन्तु यदि हमने लोकतन्त्र के आदर्श को एक जीवन-चर्या के रूप में चुना है तो इसकी प्रतिष्ठा जागरूक तथा शिक्षित निर्वाचक समुदाय में करनी आवश्यक होगी। इसी दृष्टि से प्रेरणा लेकर हमारे संविधान ने एक निर्देश दिया था कि राज्य को १४ वर्ष तक की आयुवाले सभी बच्चों को सन् १९६० तक अनिवार्य तथा निःशुल्क शिक्षा प्रदान करना चाहिए। इस सांविधिक निर्देश द्वारा निर्धारित लक्ष्य से हम अभी भी बहुत दूर हैं। सन् १९६१ में जब कि साक्षरता प्रतिशतत्व सन् १९५१ के १७ प्रतिशत से बढ़कर केवल २४ तक गया था, इस अवधि में निरक्षरों की संख्या भी जनसंख्या में वृद्धि के कारण बढ़ी, जो कि २९ करोड़ ८० लाख से बढ़कर ३३ करोड़ ४० लाख हो गयी। अब ऐसी आशा की जाने लगी है कि १४ वर्ष तक के बच्चों के निःशुल्क सार्वजनिक शिक्षण का प्रावधान सन् १९८१ के पहले सम्भव न हो सकेगा।

पुनर्गठन की आवश्यकता

लगभग सभी विचारवान लोगों द्वारा इस बात पर बारम्बार जोर दिया जा चुका है कि वर्तमान शिक्षा-प्रणाली, जिसकी रूपरेखा भारत में शासन कर रही साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा अपनी आवश्यकता के अनुरूप बनायी और विकसित की गयी थी, का तुरन्त सम्पूर्णतः पुनर्गठन करने और स्वातंत्र्योत्तर भारत के परिवर्तित सन्दर्भ में तथा संसार में हुई प्राविधिक क्रान्ति के सन्दर्भ में इसे सोद्देश्य एवम् वास्तविक बनाने की आवश्यकता है। जैसा कि शिक्षा-आयोग ने ठीक ही निष्कर्ष निकाला है परम्पराधारित भारतीय समाज को एक सुविकसित आधुनिक समाज, जो कि अपने सदस्यों को समुचित जीवन-स्तर सुलभ कर सके, में परिवर्तित करना केवल एक ही साधन से सम्भव हो सकता है और वह साधन है, शिक्षा। उसमें कहा गया है, "विज्ञान एवम् प्रौद्योगिकी पर आधारित संसार में लोगों की समृद्धि, उनका कल्याण एवम् उनकी सुरक्षा का स्तर शिक्षा ही निर्धारित करती है। यदि राष्ट्रीय विकास की गति में तीव्रता लानी है तो एक सुपरिभाषित, निर्भीक एवम् विचारपूर्ण नीति अपनाने तथा शिक्षा को जीवन्त बनाने, सुधारने तथा विस्तृत करने के लिए उस नीति का संकल्प एवम् उत्साहपूर्वक कार्यान्वियन करने की आवश्यकता है।" इसमें

ग्रागे कहा गया है, "शिक्षा, राष्ट्रीय विकास एवम् समृद्धि का यह सीधा सम्पर्क, जिस पर हमने जोर दिया है तथा जो कि, हमारा पूर्ण विश्वास है, तभी समग्र है, जब कि शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली गुणवत्ता तथा परिमाण, दोनो ही दृष्टियों से अच्छी तरह सगठित की जाय। वस्तुतः शिक्षा के क्षेत्र में एक ऐसी क्रान्ति की आवश्यकता है, जो कि हमारी अभीप्सित सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक क्रान्ति को गतिमान कर दे।'

अपर्याप्त व्यय

अनेक सगठनो ने इससे पहले शिक्षा में तेजी से परिवर्तन लाने तथा उसे विकसित करने का अनुरोध किया था। खेर समिति ने अनुशसा की थी कि भारत सरकार को अपने राजस्व का १० प्रतिशत धन शिक्षा पर व्यय करना चाहिए तथा राज्यों को अपने राजस्व का २० प्रतिशत धन शिक्षा पर खर्च करना चाहिए। दुर्भाग्यवश गत दो दशाब्दियों की अवधि मे शिक्षा पर किये जानेवाले व्यय में बहुविध वृद्धि होने के बावजूद भारत सरकार द्वारा शिक्षा के लिए किया जानेवाला प्रावधान ३ प्रतिशत से आगे नही बढ़ता और तीनों योजनाओं की कुल अवधि में राज्य योजनाओं के कुल परिव्यय का केवल १० प्रतिशत शिक्षा पर व्यय किया गया। अतिरिक्त आँकडे इस प्रकार हैं सन् १९६५ में शिक्षा पर प्रति व्यक्ति व्यय भारत में केवल १२ रुपये था, जब कि उस समय जापान में प्रति व्यक्ति २४४ रुपये, सोवियत संघ में ३७८ रुपये, इंग्लैंड में ५३५ रुपये तथा संयुक्त राज्य अमेरिका में १,१७५ रुपये व्यय किया जाता था। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि राष्ट्रीय विकास में शिक्षा के महत्त्व को व्यापक महत्त्व मिलने पर भी उसे दी गयी वास्तविक प्राथमिकता अत्यन्त न्यून एवम् चिन्तनीय है। इससे भी अधिक खेदजनक तथ्य यह है कि शिक्षा पर जो कुछ भी धन व्यय किया जा रहा है वह सही दिशा मे तथा उचित रीति से नहीं व्यय किया जा रहा है, ताकि भारतीय दशाओं में सही मूल्यों की सुस्थापना की जा सके। शिक्षा-साधन का सुविधा-सपन्न लोग प्रायः अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए उपयोग करते हैं। परिणाम यह होता है कि सुविधा सपन्नों और विपन्न जनता के बीच की खाई और गहरी होती जाती है। अब सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवम् आवश्यक बात यह है कि हमारी शिक्षा के पुनर्गठन के प्रश्न को आयोजन में न केवल कागजों में, अपितु व्यवहारतः सर्वाधिक प्राथमिकता दी जाय।

आयोजन की कमजोरियाँ

यह आयोजन युग है। विकासशील देशों में जहाँ जहाँ साधन स्रोतों का अभाव है तथा उद्धार की मंजिल अभी कोसों दूर है, आयोजन का महत्त्व

शिक्षा सहित जीवन के सभी क्षेत्रों मे और अधिक तथा अनेकश. बढ़ जाता है, ताकि उपलब्ध साधन स्रोतों का अधिकतम उपयोग करते हुए अभीष्ट सामाजिक एवं आर्थिक लक्ष्यो को यथासम्भव न्यूनतम समय में प्राप्त किया जा सके। भारत में शैक्षणिक आयोजन का शुभारम्भ प्रथम पंचवर्षीय योजना लागू होने के साथ-साथ हुआ, जब कि शिक्षा-योजना को सम्पूर्ण आयोजन का अभिन्नाग बना दिया गया और तभी से यही प्रक्रिया निरन्तर चल रही है। हमारे देश मे शैक्षणिक आयोजन की कहानी लगभग सामान्य आयोजन जैसी ही है— विशेष करके गुणवत्ता के दृष्टिकोण से। परिणामस्वरूप शैक्षणिक आयोजन की उपलब्धियाँ और कमियाँ भी काफी हद तक लगभग वैसी ही हैं, जैसी कि अन्य सारी योजनाओ मे है। शिक्षा-सुविधाओ मे सभी स्तरो पर उल्लेखनीय विस्तार हुआ है, जिसमें शिक्षा के अनुगामी उच्चतर स्तरो मे विस्तार की मात्रा अधिक रही है। व्यावसायिक शिक्षण तथा विज्ञान-क्षेत्रीय शिक्षण को अधिक सबल बनाया गया है और इन क्षेत्रो में शिक्षा का स्तर भी सामान्यतः ऊँचा उठा है। व्यावसायिक (शिल्प-यंत्र, तंत्रादि) शिक्षण के क्षेत्र में भी शिक्षा दी जाने लगी है, परन्तु जैसा कि पचवर्षीय योजनाओ के अन्तर्गत सभी अन्य कार्यक्रमो के मामले मे होता है, दुर्भाग्यवश शिक्षण कार्यक्रम भी व्ययोन्मुखी है और शिक्षा-योजन में राष्ट्रीय स्तर पर अत्यधिक सकेन्द्रण पाया गया है। कोई दीर्घकालिक दृष्टिकोण नहीं रहा, जो कि शिक्षा की एक राष्ट्रीय प्रणाली विकसित करने के लिए अत्यावश्यक है। पचवर्षीय योजनाओ की एक प्रमुख कमजोरी यह थी कि कार्यान्वियन स्तर पर मानवीय कमजोरियो के कारण कार्यक्रमो में असफलता ही हाथ लगती थी। इन सभी कमजोरियो ने स्वाभाविक तौर पर शिक्षा मे गुण-सम्बन्धी सुधारो के बहु अभीप्सित उद्देश्यो को प्राप्त करने में बहुत व्यवधान डाला, जिसके लिए अध्यापको तथा प्रशासको को धन की अपेक्षा रचनात्मक चिन्तन पर जोर देना आवश्यक है।

शिक्षा-आयोग

भारतीय शिक्षण के इतिहास में शिक्षा-आयोग की नियुक्ति, सम्पूर्ण भारतीय शिक्षण प्रणाली की व्यापक परिप्रेक्ष्य मे समीक्षा प्रस्तुत करनेवाले सर्वप्रथम सगठन की दृष्टि से, सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना थी। आयोग ने यह निष्कर्ष निकाला है कि यदि अपने विभिन्न क्षेत्रो के सावैधिक दायित्वों को अच्छी तरह पूरा करना है तो सम्पूर्ण भारतीय शिक्षण-पद्धति की ही पुनर्रचना की जानी चाहिए। शिक्षा-प्रणाली को जीवन की आवश्यकताओ तथा राष्ट्रीय महत्वा-

संस्थाओं से जोड़ने की आवश्यकता पर शिक्षा-आयोग द्वारा दिया गया और भी बड़े महत्त्व का है। 'एजुकेशन इन दी फोर्थ प्लान,'* जिसमें श्री जे० पी० नाईक द्वारा हाल में दिये गये तीन भाषण संकलित हैं, शिक्षा-आयोग में उपागम के तत्त्वों, निष्कर्षों तथा सिफारिशों को सार-रूप में अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करता है।

गुण-सम्बन्धी सुधार

श्री नाईक ने शिक्षा में गुण-विषयक सुधारों के कार्यक्रम पर अधिक जोर दिया है, जिसे श्री गाडगिल ने शिक्षकों एवम् विद्वानों के गुण-सम्बन्धी प्रयासों के लिए अनिवार्य बताया है और जिसमें अधिक आर्थिक लागत अपेक्षित नहीं है। हमारे जैसे विपन्न देश में इसका विशेष औचित्य है, क्योंकि इस कार्यक्रम के अनेक ऐसे पहलू हैं, जिन पर शिक्षा हेतु उपलब्ध संसाधनों में से खर्च करना आवश्यक होता है और इस तथ्य की दृष्टि से भी कि गत कुछ वर्षों में कुल मिलाकर शिक्षा का स्तर गिरता हो गया है। शिक्षा की राष्ट्रीय एवम् राज्यीय योजनाएँ बनाते समय जिला और संस्था-स्तरीय योजनाएँ बनाने का सुझाव समयानुकूल है, क्योंकि किसी भी ऐसे आयोजन, जो कि नीचे से आरम्भ नहीं किया जाता, के सफल होने की सम्भावनाएँ बहुत कम हैं तथा इस विचार को सम्बन्धित लोगों में से अधिकांश का समर्थन भी प्राप्त है।

राष्ट्रीय स्तर पर केवल नीति-निर्धारण, समन्वय तथा उच्च शिक्षण के पर्यवेक्षण का ही कार्य उचित है, जब कि राज्य-स्तर पर प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षण, प्रौढ़ साक्षरता कार्यक्रम आदि सम्बन्धी नीतियाँ निर्धारित की जा सकती हैं। नेतृत्व, उपक्रम तथा कार्यान्वियन का भार जिला-प्रशासन तथा व्यक्तिगत संस्थाओं को सौंप देने से रचनात्मक चिन्तन की वृद्धि, वास्तविकता पर आधारित कार्यान्वियन तथा लोक-समर्थन के निर्माण की दिशा में महत्त्वपूर्ण सफलता मिलेगी। श्री नाईक ने ठीक ही कहा है कि मनुष्यों की भाँति प्रत्येक संस्था का निजी व्यक्तित्व होना चाहिए। मानवीय कारक के कार्य में सुधार लाने हेतु श्री नाईक ने पाँच बुनियादी अपेक्षाओं का सुझाव दिया है, जो कि विकास-कार्यक्रम का सन्तोषजनक कार्यान्वियन सुनिश्चित करेगा। उदाहरणार्थ जन्मभूमि-प्रेम, स्वदेशी-भावना, जिसका मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अर्थ होता है भारतीयता का स्वाभिमान अनुभव करना तथा भारत के भविष्य में आस्था रखना, समर्पण की भावना से कठिन श्रम करने की रुचि, शालीनता और

---

* 'एजुकेशन इन दी फोर्थ प्लान' : लेखक : जे० पी० नाईक,
प्रकाशक : नचिकेता प्रकाशन, बम्बई-१, पृष्ठसंख्या : १२२, मूल्य : रु० ७·५०।

सरलता तथा जन सामान्य के समान व जनसामान्य के साथ जीवन बिताने की इच्छा। श्री नाईक के शिक्षा क्षेत्र में स्वदेशी भावना को पुनर्प्रतिष्ठित करने तथा विदेशी अनुभवों, विचारों और रीतियों का अन्धानुकरण, जिसका अर्थ होता है आत्मविश्वास का अभाव, त्यागने के भावपूर्ण तर्क से कोई भी पाठक प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। अनेक प्रतिष्ठित विद्वानों ने स्पष्ट लिखा है कि हमारी शिक्षा प्रणाली की बुनियादी कमियों का श्रीगणेश गत सौ या उससे अधिक वर्षों से भारत में शिक्षा की अंग्रेजी (ब्रिटिश) पद्धति की स्थापना और उसका अविवेकपूर्वक विस्तार करने से हुआ है। यह पद्धति भारतीय मूल्यों एवम् भारतीय संस्कृति से शून्य है। इस भारी भूल को सुधारने का यह अत्यन्त उपयुक्त समय है जब कि हम ऐसा करने के लिए परम स्वतन्त्र हैं।

शिक्षा प्रणाली में क्रांति लाना तब तक सम्भव नहीं है जब तक कि शिक्षा के सम्पूर्ण प्रशासन तन्त्र का ही अच्छी तरह पुनस्संगठन न किया जाय—विशेष करके राज्य स्तर पर, क्योंकि वर्तमान संगठन स्वतन्त्र भारत—जो कि वैज्ञानिक प्रगति के पथ पर अग्रसर होने को उत्सुक है—की बदली हुई परिस्थितियों में पूर्णतः अनुपयोगी हो चुका है। शिक्षा प्रणाली के सर्वतोमुखी विकास हेतु पर्याप्त धन उपलब्ध करने का प्रश्न भी महत्वपूर्ण है—विशेष करके इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए कि शिक्षा राज्यों का उत्तरदायित्व है, जिन्हें अपने सीमित तथा अविस्तारशील साधन स्रोतों के कारण भारी घाटे की स्थितियों का सामना करना पड़ता है। केन्द्रीय स्तर पर भी कर लगाकर अतिरिक्त निधियों के उगाहने का क्षेत्र भी अत्यन्त सीमित प्रतीत होता है।

साधनों का अधिकतम उपयोग

अतः शिक्षा के क्षेत्र में हमें अपने सीमित साधनों का अधिकतम उपयोग करने का प्रयास करना समीचीन होगा और साथ ही यथासंभव अपव्ययिता बरतने एवं संसाधनों को व्यर्थ न होने देने का सतत प्रयास करना होगा। इस दृष्टिकोण से उच्च स्तरीय शिक्षार्थ अंशकालिक तथा पत्राचार पाठ्यक्रम चलाने को प्रोत्साहन देना होगा। शिक्षा आयोग ने शिक्षा के मद में किये जानेवाले प्रावधान में प्रतिवर्ष १० प्रतिशत वृद्धि करने का सुझाव दिया है। यदि यह सुझाव सन् १९८५-८६ तक अमल में लाया जा सके तो शिक्षा पर प्रति व्यक्ति व्यय ५४ रुपये आ सकता है यद्यपि इस छोटे से लक्ष्य को पूरा करने के लिए भी राष्ट्र को इस भावभूमि के साथ साथ कि शिक्षा राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण साधन है भगीरथ प्रयास करना होगा। जैसा कि शिक्षा आयोग ने सुझाया है शैक्षणिक कार्यक्रमों का सतत मूल्यांकन करते रहने

तथा उसीके आधार पर सुनियोजित अनुसंधान करने जो कि शिक्षा प्रणाली में निरन्तर सुधार लाये की आवश्यकता भी उपेक्षणीय नहीं है क्योंकि उच्च गुण वत्ता बनाये रखने के लिए सतर्कता बरतना पूर्णत आवश्यक और अनिवार्य है।

चतुर्थ पचवर्षीय योजना के प्रारूप मे शिक्षा-सम्बधी प्रस्ताव रखे गये हैं, जो कि शिक्षा आयोग की सिफारिशों के अनुकूल ही है। राष्ट्रीय विकास परिषद् में विचारविमर्श के समय राष्ट्रीय योजना तैयार करने के निमित्त सिद्धान्त निर्देशार्थ योजना आयोग ने अभी हाल मे जो एप्रोच टु दी फोर्थ फाइव इयर प्लान पुस्तिका प्रकाशित की है उसमे भी शिक्षा सम्बन्धी सुझाव है जो कि शिक्षा आयोग के उपागमो के पूर्णत अनुकूल है। तथापि इन प्रस्तावों की व्यापक प्रकृति को देखते हुए यह निश्चित नही कहा जा सकता है कि चतुर्थ पचवर्षीय योजना का उपागम भी आज जो कुछ हो रहा है उसके अनुगमन करने की नीति के बजाय अत्यावश्यक सुनिश्चित उपागमो को अपनाने की नीति का ही अनुसरण करेगा। परन्तु पिछडे क्षेत्रो तथा पिछडे वर्गों को विशेष शिक्षा सुविधाएं सुलभ करने, प्राविधिक एवम् व्यावसायिक शिक्षाएं अशकालिक एवम् पत्राचार पाठ्य क्रमों, छात्रवृत्ति एवम् पठन ऋणो के प्रावधान, कुछ ऐसे कदम है जिन्हे सही दिशा में उठनेवाले कदम कहा जा सकता है। प्रौढ साक्षरता के क्षेत्र में कार्यात्मक उपागम सम्बन्धी तथा लोगों और समुदायो से मनावर्ती पूंजीगत व्यय हेतु स्वेच्छानुसार योगदान प्राप्त करने को प्रोत्साहन देने के सुझाव भी वरणीय है।

परस्पर विरोधी

जब कि एक ओर श्री नाईक द्वारा अपने भाषणो में प्रतिपादित दृष्टिकोण निर्विवाद हैं उनका बुद्धिशील पर्याप्त विदेशी सहायता का सर्वं उन्हीके अन्यत्र कही व्यक्त इस विचार कि विदेशी सहायता का न्यूनतम उपयोग किया जाय के सदर्भ में रखकर देखने पर असगत और परस्पर विरोधी लगता है। इसी प्रकार जब कि उन्होंने एक ओर उच्च स्तर पर शिक्षण-सुविधाओं का प्रसार धीमी गति से करने का सुझाव दिया है ताकि प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षार्थ अधिक निधि उपलब्ध हो सके तथा उच्च शिक्षण का स्तर ऊँचा उठाने की दिशा में पर्याप्त कार्य हो सके उनका स्नातकोत्तर स्तर पर प्रारम्भिक पाठशालाओं के लिए पर्याप्त सख्या में अध्यापकों की सुलभता हेतु आगामी पाँच वर्षों में उत्तीर्ण होनेवालो की सख्या दुगुनी या तीन गुनी कर देने का सुझाव विरोधाभासी लगता है—विशेष करके उस स्थिति मे जब कि देश मे गत एक डेढ़ दशाब्दी में स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तरीय विद्यालयो म आकस्मिक वृद्धि हुई है तथा फलस्वरूप शिक्षित तरुणो की बेकारी या अल्प-बेकारी की समस्या

भीषणतर हुई है। और भी, उनकी यह टिप्पणी कि प्राथमिक स्तर पर शिक्षा का स्तर कम महत्त्व का है, भी औचित्यपूर्ण नहीं लगती, क्योंकि बालक के सर्वतोमुखी विकास तथा उससे भावी ज्ञानार्जन की मजबूत नींव रखने के लिए केवल इसी स्तर पर अधिकतम ध्यान देना आवश्यक है। विकसित देशों में उच्च स्तरीय शिक्षा को जितना महत्त्व दिया जाता है उतना ही महत्त्व पूर्व-प्राथमिक तथा प्राथमिक शिक्षण को भी दिया जाता है और पूर्व-प्राथमिक तथा प्राथमिक शिक्षण के अनुरूप ही सुयोग्य अध्यापकों की सेवाएँ निर्धारित होती हैं। बढ़ती हुई आबादी के लिए तेजी से शिक्षा-सुविधाओं का विस्तार करने हेतु इस सन्दर्भ में शिक्षक-छात्रों के अनुपात बढ़ाने का सुझाव भी पूर्णतः ठोस नहीं लगता, यद्यपि इस समय इसे एक अपरिहार्य बुराई के रूप में स्वीकार ही करना होगा।

विकासशील देशों में शिक्षा का प्रसार करने की दिशा में विकसित देश महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं। तथापि इस पहलू का उपयुक्त सयोग नहीं दिखलाई पड़ता, जैसा कि इस सुविदित तथ्य से ज्ञात होता है कि विकसित देश आजकल अपनी राष्ट्रीय आय का १० प्रतिशत धन अपनी सुरक्षा पर व्यय कर रहे हैं और केवल १ प्रतिशत ही विकासशील देशों की सहायतार्थ देते हैं। यह देखना शेष है कि श्री नाईक का इन अनुपातों को उलट देने, अर्थात् विदेशी सहायता का अनुपात बढ़ाने का आह्वान विकसित राष्ट्रों को कहाँ तक फलीभूत होता है।

बेरुत-सम्मेलन में श्री नाईक द्वारा प्रस्तुत 'हिस्टारिकल रिव्यू आफ एजुकेशनल प्लानिंग इन इंडिया" (जो कि उपर्युक्त पुस्तक के परिशिष्ट रूप में दिया गया है) में लगभग वे सभी विचार आ जाते हैं, जो उन्होंने अपने वक्तव्यों के दौरान व्यक्त किये थे। हाँ, कुछ थोड़े-से विषयों पर और अधिक विस्तार से विचार किया गया है। इस दृष्टि से किसी भी पाठक को इस पुस्तक में इस परिशिष्ट को सम्मिलित करने पर आश्चर्य हो सकता है। तथापि विकासशील देशों में शिक्षा-क्षेत्रीय कुछ विशिष्ट समस्याओं पर श्री नाईक द्वारा डाला गया प्रकाश परिशिष्ट की उपादेयता में चार चाँद लगाता है। ये विशिष्ट समस्याएँ हैं: साधन-स्रोतों की अपर्याप्तता, उपयुक्त राजनीतिक प्रणाली, जैसे—आवश्यक सामाजिक मानदण्डों का अभाव, निहित-स्वार्थवालों की आमूल शिक्षण सुधारों के प्रति अरुचि, सुरक्षा तथा आर्थिक विकास-सम्बन्धी अन्य विभागों के प्रति-योगी दावे आदि।

बम्बई, ४ अक्तूबर, १९६८ ('खादी ग्रामोद्योग' से साभार)

कार्यानुभव : एक चिन्तापूर्ण चिन्तन

प्रबोधचन्द्र

यदि कार्यानुभव जीवन्त, वास्तविक और सर्वमान्य योजना हो तो इसके शैक्षणिक परिप्रेक्ष्य की व्याख्या करने की, उसके उद्देश्य, कार्यक्रम और स्वरूप पर पुनर्विचार करने की, आवश्यकता है। इस सदर्भ में एक दृष्टिकोण प्रस्तुत लेख में प्रस्तावित है। कार्यानुभव की कुछ मुख्य बातो का उल्लेख करते हुए उसके प्रसग में कुछ सशोधन और सुझाव भी यहाँ दिये गये हैं, परन्तु सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि क्या उक्त योजना के सभावित नये आयाम भी हमारे शोध-सधान का विषय हो सकते हैं? क्या शिक्षा-आयोग द्वारा प्रस्तावित और प्रस्तुत इस योजना का सशोधन सभव और आवश्यक है? इस तरह के प्रश्नो पर विचार प्रेरित किया जा सके यह इस लेख का मूल प्रयोजन है।

कार्यानुभव के मूल विन्दु

(१) विद्यार्थी को कोई एक उद्योग सीखना चाहिए और उसे हाथ का काम और श्रम-कार्य करना चाहिए।

(२) ऐसा काम उत्पादक भी होना आवश्यक है।

(३) ऐसे काम का प्रयोजन दोहरा हो

१—यह काम वैज्ञानिक ढग से और वैधानिक दृष्टि से किया जाय, और

२—इसका उद्देश्य उत्पादन हो।

(४) इसके माध्यम से शिक्षार्थी की वैधानिक मनोवृत्ति का विकास होना चाहिए।

(५) विद्यार्थी को ऐसा शिक्षा प्राप्त हो कि वह अपने समाज और समुदाय का एक जिम्मेदार अग बन सके, और यह प्रतीति भी उसे हो।

दो बुनियादी सशोधन

ये लक्ष्य पूरे हो सकें, इसके लिए यह आवश्यक है कि कार्यानुभव के लिए कम-से-कम एक घटा समय रोज दिया जाय। सप्ताह में दो या तीन पीरियड नितात अपर्याप्त ही रहेंगे। अतएव इस मौलिक मूल कार्य सशोधन अपरिहार्य है। दूसरी बात, जिस तरह प्रत्येक विद्यार्थी से यह अपेक्षित है कि कार्यानुभव प्राप्त करे, उसी तरह, प्रत्येक शिक्षक के लिए भी यह अनिवार्य होना चाहिए कि वह किसी भी रूप में, प्रत्यक्ष या परोक्ष मे, रोज एक घटा 'काम' करे।

अगर ये सशोधन शिक्षा विभाग को मान्य हो सकें, तो फिर आगे इस योजना पर विचार करने को कोई सार्थकता भी है, अन्यथा कार्यानुभव योजना की शिक्षा विभाग के द्वारा वही दुर्गति हो जायेगी, जो बुनियादी तालीम की हुई।

अगर हमारी शिक्षा नीति ठीक हो और हमारा शिक्षा-विभाग ईमानदारी से कार्यानुभव-योजना को कार्यान्वित करना चाहे तो ही शिक्षकों की सहानुभूति और सहृदायित्व प्राप्त हो सकेगा। अत यह सभी क्षेत्रो के लिए विचारणीय है कि इस योजना के कार्यान्वयन की संपूर्ति के लिए आवश्यक गम्भीरता का वातावरण किस तरह बनाया जाय। और यह तबतक होना मुश्किल रहेगा जबतक कि शिक्षा नीति में ही कुछ मौलिक परिवर्तन और सशोधन नहीं कर दिये जायँगे। एतदर्थ, कुछ सुझाव यहाँ प्रस्तुत हैं। सबसे मुख्य बात यह है कि विद्यालय को एक समुदाय (कम्यूनिटी) के रूप में देखा और मान्य किया जाय, और विद्यार्थी को इस समुदाय का एक जिम्मेदार सदस्य माना जाय। दूसरे शब्दो में प्रत्येक छात्र अपने विद्यालय का—विद्यालय समुदाय का—एक 'नागरिक' मान्य किया जाय। और विद्यालय की ओर से उसे वही सम्मान और अधिकार भी दिये जायँ, जो कि सविधान की ओर से एक नागरिक को प्राप्तव्य हैं।

बिलकुल ही नये दृष्टिकोण की आवश्यकता

स्कूल कम्यूनिटी को एक राष्ट्र अथवा राज्य (स्टेट) के रूप में देखा जाय तो प्रत्येक विद्यार्थी वहाँ का एक 'नागरिक' है। 'अधिकार और कर्तव्य' के सिद्धान्त के अनुसार अधिकारो को भी मान्यता मिल जानी चाहिए।

आज तक विद्यार्थियों और शिक्षार्थियो के जिम्मे केवल मात्र कर्तव्य ही रहे हैं उन्हें अधिकार नहीं मिले हैं।

विद्यार्थियो के इन अधिकारो की सुरक्षा का दायित्व शिक्षकवर्ग पर अथवा शिक्षा विभाग पर है। ये अधिकार क्या-क्या होने चाहिए, यह विचार करके निर्धारित किया जाय। इन अधिकारो को विशेष अथवा मौलिक अधिकारो के रूप में शिक्षा विभाग द्वारा मान्यता दी जाय,

(१) सामाजिक सम्मान प्राप्त करने का अधिकार,
(२) समानता का या सम्मानपूर्वक व्यवहार का अधिकार,
(३) शिक्षण प्राप्त करने का अधिकार,
(४) निर्वाह-व्यय भत्ता प्राप्त करने का अधिकार,
(५) समुचित पोशाक और शिक्षा साधन सामग्री प्राप्त करने का अधिकार,

(६) पास पडोस के स्कूल में पढने का अधिकार ;
(७) मातृभाषा में शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार।
इसी प्रकार मौलिक कर्तव्यों की सूची बनायी जा सकती है
(१) छात्र समुदाय के एक जिम्मेदार सदस्य के रूप मे समुचित सामाजिक व्यवहार का कर्तव्य ,
(२) गुरुजनों और अधिकारियों के प्रति समुचित व्यवहार का कर्तव्य ;
(३) अध्ययन का कर्तव्य ;
(४) श्रम-कार्य करने का कर्तव्य ;
(५) उत्पादन-कार्य करने का कर्तव्य।

पूर्व विचार : प्रमेय और प्रस्ताव

(१) जो बालक का कार्यानुभव प्राप्त करते हैं, उन्हें स्कूल परिवार का कार्यशील सदस्य मान्य किया जाय।
(२) कार्यरत सदस्यो के साथ स्कूल की अथवा शिक्षा विभाग की निश्चित नीति का निर्धारण किया जाय।

इस सम्बन्ध में मेरे सुझाव ये हैं :

(१) जो बच्चा घर के बाहर किसी भी शिक्षण-सस्था का विद्यार्थी होता है मेरे खयाल से वह उस सस्था में एक प्रकार से 'काम' करता है। और यदि वह स्कूल में ५ घटे बिताता है तो इसका मतलब यह है कि वह वहाँ ५ घंटे काम करता है।

(२) अगर फिल्हाल इतना स्वीकार नहीं किया जाय तो भी कम-से कम यह तो तुरन्त स्वीकार और मान्य हो कि (कार्यानुभव प्रारम्भ होने के बाद) बालक वहाँ स्कूल मे १ घटा रोज काम करता है और इस आधार पर स्कूल में पढ़नेवाले प्रत्येक विद्यार्थी को उसके १ घटे के काम का वाजिब पारिश्रमिक दिया जाना चाहिए।

विद्यार्थी का पारिश्रमिक

यह प्रश्न कई पहलुओं से विचारणीय है। एक व्यक्ति को जीवित रहने का अधिकार तो होता ही है। वर्तमान परिस्थितियों में जीवित रहने का निर्वाह व्यय किसका कम से-कम कितना होगा, यह हिसाब लगाकर देखने का विषय है, परन्तु मोटे रूप में यह मान्य किया जा सकता है कि एक गाँव के विद्यार्थी का निर्वाह व्यय १ रुपया रोज होता है। यह १ रु० रोज पाने का उसका मौलिक अधिकार है।

हमारे देश की वर्तमान आर्थिक परिस्थितियों में और अर्थ-व्यवस्था में यह संभव नहीं है, एक तरह से अव्यावहारिक है। फिर भी प्रतीक रूप में इस अधिकार को, १ रु० मासिक अथवा ५ रु० मासिक देकर मान्यता दी जानी चाहिए।

अन्तिम व्यवहार्य फार्मुला यह हो सकता है कि १ रु० मासिक से शुरू किया जाय और विद्यार्थियों की कार्यगत क्षमताओं के अनुसार, १ से ५ रु० मासिक तक दिये जायें, और यह निर्वाह-शुल्क उनके माँ-बाप को प्रेषित किया जाय।

बालकों के उपर्युक्त अधिकार उनके माता-पिता अथवा अभिभावक मान्य और महसूस करें, यह प्रयत्न शिक्षा-क्षेत्र की ओर से किया जाना चाहिए। इसीलिए पहले यह वाछनीय है कि सबसे पहले स्वयं शिक्षक इन अधिकारों को विद्यालय में मान्यता प्रदान करें। इसके लिए शिक्षा के विधान, सगठन, व्यवस्था और पद्धति में ही तदनुकूल सशोधन अथवा प्रावधान अनिवार्य है।

हमारे बजट में और नियमावली अथवा 'कोड' में इस बात का स्पष्ट प्रावधान या उल्लेख किया जाना चाहिए। यह छात्रों को अधिकार देने का सवाल नहीं है, उनके अधिकारों को मानने का सवाल है।

इस दृष्टिकोण का प्रतिफल यह होता कि प्रारंभ में हम छात्रों के काम के घटों में उस समय को समाविष्ट करेंगे, जिनमें वे काम करते हैं, और फिर शनैः शनैः क्रमश हमारी अपनी सामर्थ्य-सीमा के अनुसार, छात्रों द्वारा स्कूल में बिताये गये पूरे समय को ही काम के घटों में गिनेंगे। और एक दिन ऐसा अवश्य आना चाहिए, जब छात्र स्कूल में जाते वक्त यह अनुभव करेंगे कि वे अपने काम पर जा रहे हैं, एक उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य का अंजाम देने। वे स्कूल में उसी भाव और जिम्मेदारी की भावना से जायेंगे, जैसे कि आज शिक्षक जाते हैं।

छात्रों के व्यक्तित्व को और उनके ईश्वरीय अथवा मौलिक अथवा मानवीय (शब्द कोई भी हो) अधिकारों को समुचित मान्यता देने और महसूस करने का वक्त आ गया है, अब यह शिक्षकों की शैक्षणिक दृष्टि, और उस दृष्टि-दर्शन पर निर्भर है कि हम प्रगतिशील दृष्टिकोण अपना सकते हैं, या (अभी) नहीं ?

परिस्थितियों की प्रतिकूलता

इस जमाने में, जब कि विद्यार्थी-वर्ग आये दिन हड़तालें करते हैं, और अनुशासन एक विद्रोह में परिणत हो रहा है, और जब कि स्वयं शिक्षक-वर्ग भी

उसी धारा में बह रहा है—उपयुक्त विषय एक खयाली पुलाव ही नजर आता है, लेकिन हमारा सबका विवेक अगर अब भी जीवित और जाग्रत हो तो जो आज करना हो उसे अभी ही कर लेना उचित होगा।

कार्यानुभव के सिद्धात और उसकी योजना को गम्भीरता से कार्यान्वित करना हो तो बालको और विद्यार्थियो के प्रति हमारे जो दायित्व हैं, और जो उनके अधिकार हो हैं, उनको समझना और मान्य करना यह आज का ही एक विचारणीय प्रश्न है।•

<u>पुस्तक-परिचय</u>

बालक अपनी प्रयोगशाला में

महात्मा भगवानदीनजी बाल-मनोविज्ञान के आचार्य रहे हैं। उनके दीर्घकालीन अनुभवो, प्रयोगो एव परीक्षणो के आधार पर इस ग्रथ की रचना हुई है। उनका निष्कर्ष है कि बालक का सम्पूण शिक्षण वैज्ञानिक बुनियाद पर निर्भर होना चाहिए।

इस ग्रथ में अनेक उदाहरणो द्वारा यह बताने की कोशिश की गयी है कि बालक की हर प्रवृत्ति और वृत्ति को बारीकी से समझे बिना पढाना बालक पर अन्याय है। बालक स्वय वैज्ञानिक होता है। उसकी हर क्रिया एक प्रयोग, एक परीक्षण होती है। वह जन्म से ही प्रयोग शुरू कर देता है।

बालक के अन्दर कितनी शक्ति छिपी हुई है, वह कितना ज्ञान लेकर पैदा हुआ है, उसकी वैज्ञानिक जानकारी कितनी है—यह जब इस किताब के द्वारा माता पिताओ को मालूम होगी, तो उन्हें बड़ा आनन्द आयेगा। साथ ही-साथ माता पिताओं और अध्यापको के अनेक वहम भी दूर हो जायेंगे।

पुस्तक मे पाँच खण्ड हैं और प्रत्येक खण्ड में अनेक प्रकरण हैं। २४० पृष्ठो की इस पुस्तक में शिक्षण के अनेक पहलुओं पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार किया गया है और इसमें पद-पद पर यह प्रतीति होती चलती है कि लेखक ने बालक की मानसिक गहराइयो में पैठकर अध्यापकों का पथ प्रदर्शन किया है।

सुन्दर छपाई, पृष्ठ २४०। मूल्य मात्र पाँच रुपये।

सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी–१

विज्ञान : अस्तित्व के लिए एक खतरा

प्रो० बेरी कामनर

(वनस्पति विभाग, वाशिंगटन विश्वविद्यालय, अमेरिका)

[सत्रहवीं सदी से पूर्व ईश्वर तथा धर्म के प्रति जिस प्रकार की उन्माद-पूर्ण अन्धश्रद्धा थी उसी तरह की बात आज बहुत कुछ विज्ञान के बारे में कही जा सकती है। अमेरिका मे वाशिंगटन विश्वविद्यालय में वनस्पति शास्त्र के प्रो० श्री बेरी कामनर ने एक पुस्तक लिखी है : 'विज्ञान और जीवन'— ('साइन्स एण्ड सर्वाइवल") । इसमें वे नीचे लिखी कुछ ऐसी बातों की तरफ हमारा ध्यान खींचते हैं कि यदि इनकी ओर अब भी मानव जाति का ध्यान नहीं गया और यदि हम वैज्ञानिकों की ऐसी सलाहों को नहीं मानेंगे तो समस्त मानव जाति का सम्पूर्ण विनाश निश्चित है। —अनुवादक]

प्रो० बेरी कामनर का कहना है कि विज्ञान आज स्वय मानव जाति के अस्तित्व के लिए एक ऐसा खतरा बन गया है, जिसकी विशाल शक्ति पर अब मनुष्य और विश्व का कोई भी नियन्त्रण नहीं रह गया है। हमारी अनेक आगामी पीढ़ियाँ और स्वय यह पीढ़ी भी अनेक खतरो से ग्रस्त हो गयी है। उदाहरणार्थ, आणविक विस्फोटों से उत्पन्न धूल के कारण हवा दूषित हो गयी है और जिन्हें आज हम जल शोधक मानते रहे जैसे—क्लोरीन आदि, स्वय उसी कारण से दूषित होकर जल को दूषित कर रहे हैं। उनका कहना है कि विज्ञान से होने-वाले लाभों को तो हम जानते हैं किन्तु अब इससे उत्पन्न डरावने खतरो को भी हम अनुभव करने लगे हैं। आज हम इंधन इतनी अधिक मात्रा में और इतनी तेज गति से जला रहे हैं कि सन् २००० तक, याने अब से केवल ३० या ३२ सालो में ही, इससे उत्पन्न कार्बन डाइआक्साइड से वातावरण में इतनी गरमी पैदा हो जायगी कि उससे उत्तर और दक्षिण ध्रुव प्रदेशों की सारी बर्फ पिघलनी लग जायेगी और यदि इंधन जलाने की हमारी यही गति जारी रहती है, तो आगामी ४०० से लेकर ४००० सालों में वह सारी

बर्फ गल जायेगी और इससे समुद्र का जल लगभग ४०० फुट ऊँचे उठ जायेगा, जिससे हमारे अनेक बड़े बड़े नगर और धरती का बहुत बड़ा भाग जलमग्न हो जायेगा।

सन् १९२३ से इंजिनों में धक्के कम करने के लिए पेट्रोल में शीशे का प्रयोग शुरू किया गया था, किन्तु इसने धरती के अधिकांश धरातल को दूषित (जहरीला) बना दिया है और अभी तक हम पता नहीं लगा पाये हैं कि इस जहर का मछली, चिड़िया, जानवर या मनुष्य जीवन पर क्या प्रभाव पड़ेगा। अमेरिका की इरी झील में और उसके पास-पड़ोस के नगरों में मल प्रवाह, औद्योगिक कारखानों की गन्दगी तथा खेती में प्रयुक्त होनेवाले रासायनिक खादों के विषैले द्रव्यों के कारण झील में इतना फास्फोट जमा हो गया है कि इससे पानी के जैविक गुणों में स्थायी असतुलन पैदा हो गया है। इससे मछलियाँ मर गयी हैं और यह अनुमान है कि आगामी २० सालों में नगरों से पैदा होनेवाले रद्दी पदार्थों की इस विशाल राशि के कारण सारे (अमेरिकी) राष्ट्र के अधिकांश जल-स्रोतों के जैविक गुण नष्ट हो जायेंगे। अन्तस्फोटवाले इंजिनों के कारण भी हवा खराब हो रही है, क्योंकि उनसे निकलनेवाली विषैली गैस सूर्य की रोशनी मिलने के कारण एक भयानक कुहरा-सा पैदा करती है और इसका नतीजा होता है श्वास-सम्बन्धी बीमारियों में वृद्धि।

यन्त्र-विज्ञान मानव-जीवन पर हावी

प्रो० कामनर कहते हैं कि अमेरिका में चन्द्रयात्रा-सम्बन्धी योजनाओं पर होनेवाले भारी अनुत्पादक व्यय का असर अन्य वैज्ञानिक प्रयत्नों पर पड़ा है और अनेक दूसरे कामों को धन के अभाव का सामना करना पड़ रहा है। अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रान्स पहले से ही ध्वनि से भी तेज गतिवाले यात्रीवाहक विमानों के बेहद खर्चीले कार्यक्रमों पर कटिबद्ध हैं। किन्तु वे इस बात का कोई व्यापक मूल्याकन करने में असफल रहे हैं कि ध्वनितरंगीय धड़ाकों से उत्पन्न जोखिमों, ब्रह्माण्डीय रेडियो विकीरणता और एक काल-क्षेत्र से दूसरे कालक्षेत्र में अति वेगवान आवागमन से मनुष्य पर क्या-क्या शारीरिक प्रभाव होते हैं। अब तो कुछ लोग कुछ बड़े बड़े मौसमी परिवर्तन करने के बारे में भी चर्चा करने लगे हैं, यद्यपि हम अभी तक मौसम के बारे में एक या दो दिन से अधिक की भविष्यवाणियाँ भी नहीं कर सकते हैं। प्रो० बेरी का कहना है कि भूतकाल की गलतियों तथा भविष्य के खतरों से बचने के लिए हमें क्या करना होगा, उसकी कीमत क्या होगी, यदि इस पर सोचें तो सिर चकराने लगता है। क्योंकि इन खतरों को

पैदा करनेवाली टेकनालोजी (यंत्र-विज्ञान) आज हमारे राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक जीवन में बहुत गहरी पैठ गयी है। विज्ञान तो केवल हमें इस संकट की गहराई से ही परिचित करा सकता है; किन्तु इसका हल तो उसके बूते के बाहर है। वह तो सामाजिक पुरुषार्थ से ही सम्भव है। विज्ञान तथा यंत्र-विज्ञान देखने में जरूर आकर्षक लगता हैं, परन्तु प्रायः लोग भूल जाते हैं कि असल इसके पीछे आणविक युद्ध के कारण होनेवाला आत्म-विनाश ही छिपा हुआ है। नैतिकता की दृष्टि से मानव-जाति के इतिहास में यह एक अत्यन्त ही महान प्रश्न है, किन्तु इसके घातक पहलू को विज्ञान के आकर्षक परदे ने छिपा रखा है। वैज्ञानिकों का यह नैतिक कर्तव्य है कि वे इन खतरों से लोगों को सावधान करें। अपने भाइयों से ऐसी सूचनाएँ छिपाने तथा सामाजिक निर्णयों के नाम पर इन्हें रंगने का कोई अधिकार नहीं है।

वैज्ञानिकों की जिम्मेदारी

सबसे बड़ा गम्भीर खतरा आणविक परीक्षणों से उत्पन्न रेडियोधर्मी धूल से है। आज संसार में यह धूल इतने व्यापक पैमाने पर फैल गयी है कि अब इसके इलाज के रूप में की जानेवाली अणु-परीक्षण निषेध-सन्धि से भी खतरा समाप्त नहीं हुआ है, क्योंकि परीक्षण बन्द होने से पहले ही यह धूल बहुत अधिक मात्रा में संसार के वातावरण में फैल चुकी है। वास्तव में अणु-परीक्षण कार्यक्रमों के कारण उत्पन्न इस विशाल रेडियोधर्मी धूल के जानवरों, वनस्पतियों तथा मनुष्यों में प्रवेश पाने के फलस्वरूप होनेवाले जैविक नतीजों को एक भारी गम्भीर टेकनालोजिक भूल स्वीकार कर लिया जाना चाहिए। एक तरह से सन् १९६३ की अणु-परीक्षण-निषेध-सन्धि प्रकारान्तर से विज्ञान तथा टेकनालोजी की इस असफलता की ही स्वीकृति है। अब इस रेडियोधर्मी धूल का विश्वव्यापी फैलाव महामारियों, पारिस्थितिक दुर्घटनाओं और संभाव्य मौसमी परिवर्तनों के कारण सारे जैविक वातावरण की स्थिरता को इस हद तक प्रभावित करेगा कि इससे दुनिया में मनुष्य के अस्तित्व को हर जगह ही खतरा पैदा हो गया है। आज हमारी यह सबसे बड़ी आवश्यकता है कि हम वैज्ञानिकों के समुदाय में किन्हीं ऐसी योजनाओं और साधनों का विकास कर लें कि ऐसे वातारण-सम्बन्धी हस्तक्षेपों से होनेवाले लाभ और हानियों से पहले से ही समाज को सूचित और सावधान किया जा सके। यदि हम ऐसा कर सकते तो हम अपने राष्ट्र की रक्षा के लिए ऐसे उपाय करने की भूल कभी नहीं करते, जिनसे असल में राष्ट्र की रक्षा के बजाय राष्ट्र का विनाश ही होता है। यदि हम जीवित रहना

चाहते हैं तो अब टेकनालोजी के नवोन्मेषों के हानिकारक प्रभावों के प्रति सतर्क हो जाना चाहिए। हमें उनकी आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक कीमत तय कर लेनी चाहिए, उसके संभावित लाभों के मुकाबले इन हानियों का भी हिसाब लगा लेना चाहिए और सामान्य जनता को यह सब साफ-साफ बताना चाहिए। एक ऐसा स्वीकारयोग्य सन्तुलन प्राप्त करने के लिए आवश्यक प्रयत्न करने का वक्त आ गया है।

कारखानों से निकलनेवाले निकम्मे पदार्थों के प्रबन्ध की पद्धति में साबुन को तो विखण्डित करने में सफलता बहुत जल्दी मिल गयी, किन्तु ऐसी सफलता अन्य शोधक पदार्थों के विनियोग में नहीं मिल सकी है। पहले सब प्रकार के प्रयत्न करने पर भी शोधक पदार्थों के हानिकारक द्रव्य शेष रह जाते थे। केवल दो या तीन साल पहले ही उद्योगों ने इस गलती को समझा है और अब वे शोधक-रसायनों के आसान विखण्डन में सफलता प्राप्त कर सके हैं। उसी तरह पौधों को बीमारियों से बचाव के लिए होनेवाले छिड़काव (दवाइयों के) से भी जल दूषित होता है। और अप्रत्यक्ष रूप से मनुष्य के आरोग्य के लिए बहुत हानिकर है। पेट्रोल से चलनेवाली मोटरकार भी अब त्याग दी जानी चाहिए, क्योंकि दौड़ते हुए यह अपने पीछे जो धुआँ फेंकती जाती है, वह भी स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकर है। अन्तःस्फोट शक्ति पैदा करनेवाले कारखानों में तो इसे आणविक शक्ति से बदला जा सकता है, बशर्ते कि रेडियोधर्मी धूल के विशाल विकीरण को नष्ट किया जा सके। असल में इन सबका एकमात्र हल सौर-शक्ति ही हो सकता है।

सर्वनाशी विज्ञानवाद के खिलाफ आंदोलन

प्रो० बैरी का कहना है कि हम भावी सन्ततियों से न केवल उनकी काष्ठ या कोयले के भण्डारों की ही चोरी कर रहे हैं, बल्कि असल में उनकी जीवन की मूलभूत या बुनियादी जरूरतें, जैसे—हवा, पानी तथा जमीन भी उनसे छीनी जा रही है। अब तो जीवन को सुरक्षित रखने के लिए एक नये जीवन-रक्षक आन्दोलन की आवश्यकता है। आधुनिक टेक्नालोजी की चमक दमकवाली सफलताओं तथा आधुनिक सैन्य-पद्धतियों की अभूतपूर्व शक्ति के बावजूद वे एक सर्वसामान्य घातक दोष से बुरी तरह ग्रस्त है। दोष यह है कि वे हमें भोजन की प्रचुर मात्रा, बृहद् औद्योगिक प्रतिष्ठान, तीव्र वेगवान वाहन और अभूतपूर्व शक्तिवाले सैनिक-हथियार तो दे सकते हैं, किन्तु वे स्वयं हमारे अस्तित्व को ही संकट में डालते हैं। (अनुवादक : कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा)

सम्पादक मंडल
श्री धीरेन्द्र मजूमदार—प्रधान सम्पादक
श्री वशीधर श्रीवास्तव
श्री राममूर्ति

वर्ष : १७
अंक : ७
मूल्य . ५० पैसे

अनुक्रम

फरवरी, '६९

●

निवेदन

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- 'नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा छः रुपये है और एक अंक के ५० पैसे।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक-संख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट सर्व सेवा सघ की ओर से प्रकाशित, अमल कुमार बसु, इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि०, वाराणसी–२ में मुद्रित।

पहले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की अनुमति प्राप्त

लाइसेंस नं० ४६ रजि० सं० एल १७२३

लोकतंत्र की बुनियाद : निर्भीक, विवेकयुक्त मतदान

गांधीजी ने अपनी 'आखिरी वसीयत' में मतदाता के शिक्षण पर सबसे अधिक जोर दिया था। चुनाव-कार्य शुद्ध, शान्तिपूर्ण और न्याय पर आधारित रहे तब ही लोकतन्त्र टिक सकता है। लोकतन्त्र की सबसे महत्त्व की और बुनियादी कड़ी मतदाता है। मतदाता का कर्तव्य है कि वह मतदान के अपने अधिकार का निर्भीकता से, स्वतन्त्र रहकर तथा विवेकपूर्ण तरीके से उपयोग करे। विभिन्न राजनैतिक पक्षों, संगठनों एवं चुनाव के लिए खड़े होनेवाले व्यक्तियों की भी यह जिम्मेदारी है कि वे अपने-अपने हितों के बावजूद मतदाता के इस कर्तव्य-पालन में किसी प्रकार की बाधा या प्रतिकूलता पैदा न करें।

इसके लिए निम्न न्यूनतम आचार-संहिता का पालन किया जाय.-

(१) उद्देश्य, नीति, कार्यक्रम तथा उसके द्वारा किये गये कार्यों के आधार पर दूसरे पक्ष की आलोचना करें। दूसरे पक्ष के उम्मीदवार या सदस्य के निजी जीवन को लेकर आलोचना न करें।
(२) जनता से झूठे वादे न करें।
(३) वोट प्राप्त करने के लिए गलत और निन्दनीय तरीकों का आश्रय न लें।
(४) विभिन्न जातियों, धर्मों, वर्गों, भाषाओं और प्रांतों के लोगों के बीच घृणा पैदा करनेवाली या हिंसक भावना उभारनेवाली कोई बात न करें।
(५) विचार-प्रचार व अन्य कार्यक्रम इस तरह आयोजित करें कि दूसरे की स्वतन्त्रता में बाधा न पहुँचे।
(६) किसी प्रकार की हिंसा और अशान्ति का वातावरण न बनायें।
(७) सोलह साल से कम उम्र के बच्चों का उपयोग चुनाव प्रचार में कतई न करें।

इस संदर्भ में हरएक मतदाता का भी यह धर्म हो जाता है कि वह

१- अपने मत की पवित्रता का ध्यान रखे,
२ उम्मीदवार के गुणावगुण को देखकर मत दे,
३ मत को किसी भी प्रलोभन के कारण न दे
४- किसी भय से भी मत का गलत उपयोग न करे
५ सही व्यक्ति न मिले तो वोट दे ही नहीं,
६ हिंसा और अशान्ति का प्रसंग न आने दे।

राष्ट्रीय गांधी-जन्म शताब्दी-समिति की गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति टुंकलिया भवन कुन्दीगरों का भैरू जयपुर-३ (राजस्थान) द्वारा प्रसारित

आवरण मुद्रक सम्मेलन प्रेस वाराणसी

मार्च १९६९

"विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा पाने में जो बोझ दिमाग पर पड़ता है वह असह्य है। यह बोझ केवल हमारे बच्चे ही उठा सकते हैं, लेकिन उसकी कीमत उन्हे चुकानी ही पड़ती है। वे दूसरा बोझ उठाने के लायक नहीं रह जाते। इससे हमारे ग्रेज्युएट अधिकतर निकम्मे, कमजोर, निरुत्साही, रोगी और कोरे नकलची बन जाते हैं। उनमें खोज की शक्ति, विचार करने की ताकत, साहस, धीरज, बहादुरी, निडरता आदि गुण बहुत क्षीण हो जाते हैं। इससे हम नयी योजनाएँ नहीं बना सकते। बनाते है तो उन्हे पूरा नहीं कर सकते।"

—गांधीजी

छात्र-आंदोलन का एक नया रूप

२१ फरवरी को दिल्ली विश्वविद्यालय का दीक्षान्त-समारोह था। बम्बई विश्वविद्यालय के उपकुलपति डा० गजेन्द्रगडकर दीक्षान्त-भाषण कर रहे थे। तभी समारोह के पडाल मे कुछ लडके घुस आये और चिल्लाने लगे—'हम काम चाहते हैं, डिग्री नही चाहते।' लडके चार-छह ही थे। उन्हे वहाँ से हटा दिया गया। २२ फरवरी को जयपुर मे राजस्थान विश्वविद्यालय का दीक्षान्त-समारोह था। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष डाक्टर कोठारी दीक्षान्त भाषण देने के लिए खडे हुए, परन्तु विघ्न पडा। बहुत-से छात्र समारोह के पडाल मे घस आये और शोर मचाने लगे—'हमे काम दो, हम डिग्री नही चाहिए।' कुछ ने पर्चे फेंके, बोले—'इन्जीनीयरिंग के स्नातक पडाल के बाहर चाय की दूकान लगा रहे हैं। जानना चाहते हैं, क्यो ? तो इन पर्चों को पढिए। इन दीक्षान्त समारोहो को बद कीजिए।' इस शोरगुल मे डाक्टर कोठारी ने अपना लिखित भाषण नही पढा। जबानी ही बोले। कुलपति का भाषण भी नही सुना जा सका।

वर्ष : १७
अंक : ८

छात्र आदोलन का यह एक नया रूप है—मैं कहता हूँ उज्ज्वल पहलू है। भारत के छात्र-आन्दोलन से लोगो को शिकायत रही है कि उसका लक्ष्य अत्यन्त सकीर्ण रहा है और उसे आदोलन की

सज्ञा देना भी ठीक नहीं होगा। विश्व का छात्र आन्दोलन ससार की बडी-बडी समस्याओ को लेकर चल रहा है। अमेरिका मे उसके सामने नीग्रो की समस्या है वियतनाम युद्ध की समस्या है। फ्रान्स मे प्रतिष्ठान को बदलने की समस्या है इण्डोनेशिया के छात्रो ने राज्य ही पलट दिया। भारतवर्ष मे छात्रो ने कभी राष्ट्र की मूल समस्याओ को लेकर—साम्प्रदायिकता को अस्पृश्यता को लेकर—आदोलन नही किया और फीस घटाने अथवा प्रवेश की सख्या बढाने के सकीर्ण दायरे मे सीमित रहे। परन्तु छात्र आदोलन के इस नये रूप ने पहली बार एक ऐसी समस्या को लिया है जिसका राष्ट्रीय महत्त्व है। इस आदोलन ने पहली बार एक ऐसी समस्या को लिया है जो बुनियादी है और जिसका सम्बन्ध राष्ट्र के जीवन से है—उसके उत्थान और पतन से है। इसने पहली बार शिक्षा की समस्या के मर्म पर आघात किया है यानी शिक्षा प्रणाली को बदलने की बात कही है।

भारत की वर्तमान शिक्षा पद्धति लक्ष्यहीन और निष्प्रयोजन है और छात्रो के मन मे भविष्य के प्रति आशका और अनिश्चितता उत्पन्न कर अनास्था और कुठा को जन्म देती है। इसीलिए गाधीजी ने इस शिक्षा पद्धति को निकम्मी कहा था और उसके विकल्प मे बेसिक शिक्षा की योजना प्रस्तुत की थी जिसके मूल मे दो बात थी :

(१) प्रत्येक छात्र को शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर एक समाजोपयोगी धधा सिखाकर उस धधे (अथवा उद्योग) के माध्यम से व्यक्तित्व के सस्कार की बात।

(२) व्यक्तित्व के मुक्त विकास के लिए विदेशी भाषा के स्थान पर छात्र की मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने की बात।

उनकी इस शिक्षा-पद्धति को राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति कहकर स्वीकार किया गया परन्तु कई कारणो से जिनका विवेचन यहाँ अनावश्यक है यह पद्धति देश मे चल नही रही है (ठीक वैसे ही जैसे गाधीजी नही चल रहे है)। यह कहा जाता है कि बुनियादी शिक्षा के मूलभूत सिद्धान्त शिक्षा जगत के शाश्वत सत्य है परन्तु औद्योगिकता और टेक्नालोजी के मार्ग का अवलम्बन कर विकास के पथ पर चल पडे इस देश मे वे प्रयोग की कसौटी पर खरे नही उतरते। इसलिए उनका विकल्प ढूढा जा रहा है। कोठारी आयोग

ने बुनियादी शिक्षा के 'शिल्प' की जगह 'कार्यानुभव' का विकल्प सुझाया है और संस्तुति की है कि इस देश के हर छात्र छात्रा को शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर कार्यानुभव की शिक्षा दी जाय। परन्तु दो साल हो गये कोठारी-आयोग का यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण सुझाव कार्य-रूप मे परिणत नही हुआ है और हमारी शिक्षा-प्रणाली जैसे पहले लक्ष्य-हीन-उद्देश्यहीन थी वैसे आज भी है और उसीका परिणाम है आज के दीक्षान्त-समारोहो मे छात्रो का प्रदर्शन, जिसकी ऊपर चर्चा की गयी है। छात्र-आन्दोलन का यह नया रूप है जो अगर अनुशासित ढग से चले तो इसकी बहुत बडी सम्भावनाएँ हैं।

बात यह है कि आज जो शिक्षा प्रणाली चल रही है वह एक 'रक्षित स्वार्थ' बन गयी है और जिस नौकरशाही के हाथ मे शैक्षिक प्रशासन है वह ऐसा कुछ भी नही करने जा रही है, जिससे इस दूषित प्रणाली का अन्त हो। सच पूछिए तो आज देश मे जो असमानता है और समाजवाद की कसम के बावजूद नौकरशाही और पूँजीवाद का जो शिकजा कसता जा रहा है, उसके मूल मे शिक्षा-पद्धति और शिक्षा के असमान अवसर ही हैं। यह समझ लेना चाहिए कि आसानी से आज का शैक्षिक प्रशासक इस प्रकार की किसी शिक्षा-पद्धति को स्वीकार करने नही जा रहा है, जिसमे अमीर-गरीब सभी के लडको को हाथ से काम करना पडे और न वह आसानी से मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम ही स्वीकार करने जा रहा है। भारत की शिक्षा-पद्धति मे जिस दिन यह स्वीकार कर लिया जायगा कि इस देश का हर बच्चा शिक्षा के प्रारम्भिक स्तर से उच्चतम स्तर तक किसी-न-किसी समाजोपयोगी धधे की वैज्ञानिक शिक्षा प्राप्त करता रहेगा और उसकी सारी शिक्षा उसकी अपनी भाषा के माध्यम से दी जायगी, उसी दिन शिक्षा के क्षेत्र मे सच्ची क्रान्ति होगी। बेसिक शिक्षा के द्वारा गाधीजी अहिंसक ढग से इसी क्रान्ति को करना चाहते थे, जिसे इस देश की नौकरशाही (ब्यूरिऑक्रैसी) ने सम्भव नही होने दिया। आज छात्र-आन्दोलन के माध्यम से वह हो तो शुभ है। इसे छात्र आन्दोलन का ऐसा उज्ज्वल पहलू मानना चाहिए, जिसकी सम्भावनाएँ महान हैं।

—वशीधर श्रीवास्तव

शालाएँ क्या कर सकती हैं ?

१. महात्मा गाधी के जीवन का अध्ययन .

- उन्होंने अपने जीवन मे जिन विचारो और आदर्शों को महत्त्व दिया, उन्हें समझें,
- स्वराज्य के लिए की गयी अहिंसक लडाई का महत्त्व समझें,
- स्वराज्य का, विशेषत ग्रामस्वराज्य का अर्थ समझें,
- गाधीजी ने अपने लिए जो एकादश व्रत निर्धारित किये थे, उनका अध्ययन करें और अपने व्यक्तिगत जीवन मे उन्हें कार्यान्वित करने का पूरा प्रयत्न करें,
- चर्चा करें कि गाधीजी के विचारो को निजी जीवन म किस प्रकार उतारा जा सकता है ।

२ निम्नाकित वृत्तियो और श्रद्धाओ का विकास

- जीवन म शरीर परिश्रम का मूल्य और प्रतिष्ठा मान्य करें,
- भारत की राष्ट्रीय एकता को हृदय स स्वीकार करें,
- जाति, सम्प्रदाय, पद, भाषा आदि भेदो का तनिक ख्याल न करते हुए प्रत्येक व्यक्ति स मैत्री भाव रखें,
- राजनैतिक दलो और साम्प्रदायिक समूहो के बन्धन से ऊपर उठने की वृत्ति बढायें,
- पडोसियो क प्रति अपने कर्त्तव्यो के बारे म सजग रहें,
- शुभ कार्यों म दूसरो के साथ सहयोग करने मे विश्वास करें,
- मानवता क प्रति निष्ठा बढायें,
- अपने धर्म क विषय म भक्ति और अन्य धर्मों के प्रति आदर-भाव बढायें,
- जीवन-सिद्धान्त के रूप मे अहिंसा को स्वीकार करें ।

३. कार्यक्रम और प्रवृत्तियाँ ·

(क) • गाधीजी के तथा स्वतत्रता-सग्राम के चित्रो का संकलन कर उनकी उत्तम प्रदर्शिनी आयोजित करें,

- गांधीजी के सिद्धान्तों के चार्ट और पोस्टर बनायें;
- गांधीजी के लेखों में उत्तम सुभाषितों का संकलन करें और उन्हें ढंग से सजायें;
- गांधीजी के जीवन और कार्यों पर हस्तलिखित पत्र-पत्रिकाओं का निर्माण करें;
- गांधीजी के विचारों पर छोटे-छोटे समूहों में चर्चा करें;
- सत्य के आलेख के तौर पर व्यक्तिगत डायरी लिखने का आरम्भ करें;
- शालाओं में गांधी-साहित्य और सर्वोदय-साहित्य का पुस्तकालय खोलें;
- घरों में निजी पुस्तकालय आरम्भ करें, जिनमें गांधी-साहित्य और सर्वोदय-साहित्य हो और कम-से-कम वर्ष में एक नयी पुस्तक खरीदने का निश्चय करें।

(ख) शालाओं के लिए :—

- शालाओं में नित्य उचित स्थान पर धर्मभावना के साथ अनुकूल वातावरण में प्रार्थनाओं का आयोजन करें, जिसमें मौन ध्यान, भजनों और मंत्रों का शुद्ध और अर्थसहित गायन, और संतों के भजनों का गान शामिल हो,
- धार्मिक, सामाजिक और राष्ट्रीय उत्सवों का, शाला के नित्य प्रसंगों के रूप में आयोजन करें, जिससे सांस्कृतिक परितृप्ति का अनुभव हो सके।
- प्रतिदिन आधे घण्टे का सूत्रयज्ञ करें;
- अनुशासनिक प्रवृत्ति के रूप में प्रतिदिन घण्टे भर उपयोगी और उत्पादक शरीरश्रम का कार्यक्रम रखें, जैसे—शाला में शौचालय, शौचालय, तथा नयी इमारतों का निर्माण, भवनों की मरम्मत और लिपाई-पुताई का काम, मेज कुर्सी आदि सामान की दुरुस्ती, रंगशाला और तैरने का कुण्ड बनाना तथा बगीचे में बाड़ बनाने आदि काम;
- अन्तर्जातीय सहभोज और सहयात्रा का आयोजन करें।

(ग) व्यक्तियों के लिए :—

- स्वदेशी व्रत का पालन करने का संकल्प लें; जैसे—गृह-उद्योग की वस्तुएं, ग्रामीण चमार की बनायी चप्पलें, हाथकते, हाथबुने कपड़े, हाथकुटा चावल, हाथचक्की का पिसा आटा, घरेलू खादी दवाइयां आदि ही काम में लें; पड़ोसी कारीगरों और किसानों की मदद करें।
- यथासम्भव स्वावलम्बी बनें—अपने उपयोग के लिए सूत कातें, अपने घर-आंगन की सफाई खुद करें, अपने सामान और असबाबों को खुद स्वच्छ करें; अपना कपड़ा खुद धोयें और खुद ही लोहा करें; शौचालय और

मूत्रियो की प्रतिनित्य साफ करें, घर बगिया म सब्जी और फल उगायें;
ग्राम-उद्योग की वस्तुओ का उपयोग करें।

- सर्वोदय-पात्र रखवायें, शान्ति-सेना के सदस्य बनें अथवा उसको सहयोग दें;
- जल्दी सोयें और सूर्योदय स पहले उठें,
- सोने से पहले और सोकर उठने पर कुछ क्षण ध्यान करें,
- किसी ग्रन्थ से कुछ मंत्रो, गीतो और भजनो का सही उच्चारण करना और गाना सीखें।
- अपनी मातृभाषा म और अपनी भाषा के साहित्य म विशेष दक्षता प्राप्त करें।
- गाधी-साहित्य सर्वोदय-साहित्य, खादी और ग्रामोद्योगी वस्तुओ की बिक्री मे मदद करें।
- हरिजनों और भिन्न धर्मीय व्यक्तियो से मैत्री करें।
- संकल्प करें कि 'जो सुविधाएँ हरिजनो को नही मिलती हैं, उनका उपयोग हम भी नही करेंगे।'
- अतिथियो और बुजुर्गों की सेवा और सहायता करना सीखें।
- स्वास्थ्य रक्षा की दृष्टि स व्यायाम करें।
- शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए कुछ सादा आसन सीख लें।
- धूम्रपान, मद्यपान आदि अवाञ्छनीय आदतो का त्याग करें,
- गदी फिल्मो और गदे नाटको को कतई न देखने का, और जो गंदी नहीं हैं ऐसी फिल्मो को भी कम-से-कम सख्या म देखने का निश्चय करें।
- प्रति सप्ताह एक वक्त उपवास करें।

(घ) ता० २ अक्तूबर '६६ को एक महान् राष्ट्रीय दिवस के रूप मे मनायें। निम्न कार्यक्रम किये जा सकते हैं —

- प्रभात-फेरी, सफाई, प्रार्थना, सूत्रयज्ञ, शरीर-श्रम का कार्य।
- महात्माजी के लेखो का वाचन, गीता, कुरान, बाइबिल और अन्य प्रमुख धर्मग्रन्थो का पारायण।
- चित्रो, पुस्तको, पोस्टरो और सूक्तियो आदि की प्रदर्शिनी;
- गाधीजी के विषय मे हस्तलिखित पत्रिकाओ का प्रकाशन,
- गाधी-विचारो पर सामूहिक विचार-गोष्ठी;
- 'मुझ पर गाधीजी का प्रभाव'—विषय पर छात्रो द्वारा भाषण,
- गाधीजी के जीवन की प्रमुख घटनाएँ,

- अन्तर्जातीय सहभोज,
- सायकालीन सर्वधर्म प्रार्थना,
- शिक्षकों और छात्रों द्वारा सकल्प,
- गांधीजी के प्रिय भजनों का गायन,
- गांधीजी के जीवन और कार्यों पर आधारित लघुनाटिकाएँ,
- पड़ोसी मुहल्ले या गाँव में सेवा-कार्य और सभाएँ।
- ३० जनवरी को 'शान्ति-दिवस' और 'सर्वोदय-दिवस' के रूप में मनायें, जिस दिन के कार्यक्रम में निम्न बातें शामिल हों—प्रार्थना, शरीरश्रम, सफाई, आधे दिन का उपवास, समाज-सेवा, स्वाध्याय और ध्यान, सकल्प और सूक्तियों का वितरण।

(सूचना—इन दोनों दिवसों पर संस्थाओं का काम यथावत् पूरा-पूरा चलना चाहिए, अवकाश लेकर काम बन्द नहीं करना चाहिए।)

(च) ग्रामसेवा के कार्यक्रम —

- सेवा के लिए पास का एक गाँव चुना जाय,
- कम-से-कम सप्ताह में एक दिन उस गाँव में जायें, लोगों से मिलें, उनके जीवन से और उनकी परिस्थितियों से निकट संपर्क स्थापित करें,
- देख-परखकर गाँव की हालत का सही-सही सर्वेक्षण करें और चर्चा करें कि किस प्रकार की सेवा उनके लिए अधिक उपयोगी होगी,
- गाँव की प्रगति के लिए खास योजना बनायें,
- नियत अवधि पर सफाई का कार्यक्रम रखें,
- पेशाब-घर और पाखाने बनायें, कम्पोस्ट खाद तैयार करें,
- कुएँ, तालाब और नालियाँ साफ रखें,
- आवश्यकता पड़ने पर प्राथमिक उपचार करें और सीधी-सादी दवाइयों का प्रबन्ध रखें,
- ग्रामीण उत्सवों और प्रदर्शनों का आयोजन करें,
- प्रार्थना और कीर्तनों का आयोजन करें,
- ग्रामीण शालाओं के लिए स्वेच्छा से अपनी सेवाएँ दें,
- नाटक और ग्रामीण मनोरंजन के कार्यक्रम करें,
- लोकनृत्य और लोकगीतों का कार्यक्रम रखें और उनमें स्वयं भाग लें, मेलों, सामाहिक हाटों वगैरह में सेवाकार्य करें;
- स्वास्थ्य और अन्य अभियानों में सम्बन्धित अधिकारियों की सहायता करें,

- गाँव मे स्कूल न हो तो स्कूल शुरू करने का प्रयत्न कर और स्कूल है, तो उसके सुधार मे तथा उसकी सामग्रियो को तैयार करने म शिक्षक की मदद करें
- लबी छुट्टियो म गावो मे पदयात्राएँ निकालें और गाधीजी का सन्देश फैलायें,
- ऐसी पदयात्राओ के दौरान गाँव गाँव मे कुछ-न कुछ उत्पादक श्रम करके ही अपना भोजन प्राप्त करें। —के० एस० आचालु

शाला के विषय

समाजशास्त्र का शिक्षण समाज की आर्थिक तथा समस्याओ के अनुसंधान मे देना चाहिए।

नया इतिहास लिखना और पढाना चाहिए जिसम देश की एकता बनी रहे और विद्यार्थी अपने देश की सस्कृति की परपरा और महानता को समझ सकें।

इतिहास-शिक्षण मे बच्चो को द्वष सकीर्ण राष्ट्रीयता और एकागी सत्य नही सिखाना चाहिए।

विज्ञान का शिक्षण जीवन-सम्बद्ध और समाज की आवश्यकता के अनुकूल होना चाहिए।

प्रत्येक को स्वास्थ्य विज्ञान, सफाई-विज्ञान, आहार शास्त्र आदि का ज्ञान होना चाहिए।

विज्ञान के आधार पर सरजाम मे सुधार करना चाहिए।

विज्ञान आवश्यक है। लेकिन उसे अहिंसा के मार्गदर्शन म काम करना चाहिए।

विज्ञान और आत्मज्ञान साथ साथ चलने चाहिए।

बच्चो मे कला की अभिव्यक्ति जगाने के लिए उन्हे प्रकृति के बीच पलने देना चाहिए।

चित्रकला का शिक्षण खर्चीले और अनेक साधनो के बगैर ही देना चाहिए। उनम से अधिकतर साधन बच्चा के हाथा बनाये होने चाहिए।

(शिक्षण-विचार स) —विनोबा

शिक्षक कृतसंकल्प हों

शंकरराव देव

प्रश्न : आज विद्यार्थी-समाज में अपार अनुशासनहीनता, अनियमितता, फैशन और उद्दण्डता छा गयी है, इसके लिए क्या करें? गांधीजी असहयोग और सविनय अवज्ञा के जो मार्ग दिखा गये, इन्हींका आज दुरुपयोग हो रहा है।

उत्तर आपने गांधीजी का नाम लिया है, तो एक बात स्पष्ट कर दूं। गांधीजी महापुरुष थे, इसमें कोई संदेह नहीं है। लेकिन जहां सत्य का विचार करना होता है, तो मैं नम्रतापूर्वक गांधीजी के भी गुण-दोषों की आलोचना बड़ी नम्रता से करने में हिचकता नहीं हूँ। गांधीजी ने जो कुछ किया, वह सत्य-शोधन का ही काम किया, लेकिन उनकी सारी कृतियाँ, निर्दोष ही थीं, सी बात नहीं है। सत्य की कसौटी पर कसकर उनकी कुछ प्रवृत्तियों को हम गलत कह, या आज के जमाने के लिए गैर-लागू मानें तो उसमें कोई दोष नहीं है, बल्कि यही उचित है। यह बात भी मैंने गांधीजी से ही सीखी है। उनको उद्धृत करना वे ही पसन्द नहीं करेंगे।

इसलिए मैं नम्रता के साथ यह कहना चाहता हूँ कि आज जो कुछ उपद्रव और अनुशासन-भंग का प्रकार हम देखते हैं, इसके लिए गांधीजी भी कुछ हद तक कारण हैं। उनके असहयोग और विदेशी वस्त्र-बहिष्कार आदि कई प्रवृत्तियों की आलोचना उन दिनों में डा० एनी बसेंट, रवीन्द्रनाथ ठाकुर आदि मनीषी भी करते रहे हैं और उन महानुभावों की भविष्यवाणी सत्य हुई है, यह हमको मानना होगा। प्रकृति का यह अटल नियम है कि वह किसीको क्षमा नहीं करती है, महात्मा भी गलत काम करते हैं तो उसका दुष्परिणाम भोगना ही पड़ता है। प्रकृति अपवाद नहीं करती है।

इस दृष्टि से हमे आज गाधीजी के कामो का पुनमूल्याकन करना चाहिए, सत्य की कसौटी पर कसकर जो भी निष्कर्ष आता हो उसे निर्भयतापूर्वक संसार के सामने रखना चाहिए। सही गलत का, अनुकूल प्रतिकूल पहलुओ का आमूल विवेचन करते है, तो ही हमारा अगला कदम सही दिशा म उठ सकेगा। गाधीजी के अच्छे कामो के साथ भी कुछ बुरे अंश जुडे ही हैं—'धूमनाग्निरिवावृता'।

लेकिन हम समझ लेना चाहिए कि गाधीजी जिस जमाने म थे, आज वह जमाना नही रहा। इसलिए आज उनकी कृतियो का सर्वथा अनुकरण करना हितप्रद नही होगा। उस समय जो काम सौ प्रतिशत सही था, हो सकता है, आज वही सौ प्रतिशत गलत सिद्ध हो। उस समय अनियंत्रित विदेशी सत्ता थी और अणु-शक्ति का आज जैसा प्रकाशन नही हुआ था। आज लोकतात्रिक स्वदेशी सत्ता है। इसलिए विरोध प्रदर्शन के नये तरीके हम खोजने होगे।

लेकिन आज के उपद्रवो को देखने स ऐसा लगता है कि हम लोकतंत्र का भान नही है। सामाजिक सन्दर्भ म परिवतन हो गया है, इस बात को हम महसूस ही नही कर रहे हैं।

उदाहरण के लिए भ्रष्टाचार को लें। हर कोई कहता है कि फलाना व्यक्ति भ्रष्टाचार करता है। भ्रष्टाचार के लिए प्रत्येक व्यक्ति दूसरे को दोषी ठहराता है। मानो, उस दोष मे अपना कुछ भी हाथ न हो। यह लोकतत्र का लक्षण नही है। लोकतंत्र म राष्ट्र के प्रत्येक भले-बुरे काम का दायित्व प्रत्येक पर समान रूप से आता है। प्रत्येक दोष और प्रत्येक गलती के लिए प्रत्येक आदमी कारण है। अनुपात म फर्क हो सकता है, लेकिन दोष सबका है।

तो, समाज को इस बात का भान कराने की जिम्मेदारी आप शिक्षितो की है, शिक्षको की है। लोकतत्र को हमने अपनाया है, तो लोग अशिक्षित रहे तो कैसे काम चलेगा? हमारी जनसख्या बहुत बडी है, लेकिन केवल सख्या स काम नही चलता है। गुण प्रथम चाहिए। जनता का गुण स्तर बढाने का काम न योजना-कमीशन कर सकता है न एजुकेशन कमीशन। यह तो प्रबुद्ध नागरिको का ही काम है समाज को शिक्षित करने के लिए कृतसंकल्प शिक्षको का काम है।

आपको स्कूल मे पढाकर ही सन्तोष नही कर लेना है। शाला की चहार-दीवारो ही आपका शिक्षा-क्षेत्र नही है सारा समाज ही आपका स्कूल है इसका आपको भान होना चाहिए।

लडको को आप ६ ७ घटा इन कमरा म बैठाकर कुछ पुस्तकें पढाते होंगे। लेकिन उधर समाज मे क्या चलता है? क्या आप रेडियो टाल सकते हैं? सिनेमा

टाल सकते हैं ? नाना प्रकार की हल्की पत्र-पत्रिकाओं और गन्दे साहित्य को टाल सकते हैं ? घरों में क्या होता है ? सिनेमा, सिनेमा के गाने, गन्दे फैशनों की नकल, यह सब चलता है। स्कूल से बाहर जो संस्कार मिलते हैं, उनके लिए भी आप कुछ कर सकते हैं या नहीं ? यह भी आपके दायित्व में आता है या नहीं ? आपको सारे समाज का शिक्षक बनना है। आपका स्कूल सारा समाज है, सारा विश्व है।

ऋषियों के तपोवनों और गुरुकुलों का जमाना गया, जहाँ छात्र को समाज से दूर, एकान्त में रखकर शिक्षा दी जाती थी। आज समाज के बीच ही शिक्षा देनी तो समाज की शिक्षा का भार आपको लेना ही है।

दूसरी बात, उस जमाने में कहावत चलती थी कि छड़ी बाजे छम-छम, विद्या आये झम-झम; लेकिन वह आज काम की नहीं है। यह खुशी की बात है कि विद्यालयों से छड़ी लगभग निकल गयी है। आम मान्यता बन गयी है कि दण्डभय से मुक्त रखकर ही विद्या दी जानी चाहिए।

शिक्षा में से तो दण्ड निकल गया, लेकिन समाज में तो वही डण्डा और बन्दूक आज भी चलती है। शिक्षकों का ही यह काम है कि समाज को भी दण्डमुक्त करायें, बल्कि यहाँ तो उल्टा चलता है। शाला-कालेजों के आवरण में छात्रों को नियन्त्रित करने के लिए पुलिस को, और कभी-कभी फौज को भी शाला के अधिकारी लोग ही बुलाते हैं। शिक्षक भी माँग करते हैं कि देश में अणुबम बनाना चाहिए। यह शिक्षकों की बड़ी ट्रेजिडी है।

इसलिए शिक्षकों को सजग होना चाहिए और समाज को सही नेतृत्व देना चाहिए। शिक्षक बनना गौरव की बात है। शिक्षक के व्यापक दायित्व का भान रखकर चलना चाहिए। छात्र-समाज में तथा बाहर के विशाल समाज में भी व्याप्त दोषों के लिए आप भी हैं, और उनका निवारण भी आपको ही करना है।

प्रश्न : महाभारत-काल से ही हम देखते आये हैं कि दुर्योधन, कंस जैसे लोग थे, जिन्हें भीष्म, कृष्ण जैसे महापुरुषों ने समझाया, तब भी वे समझे नहीं, तो आज माओ जैसों को कौन समझा सकेगा ?

उत्तर : हम-आप समझा सकते हैं। लेकिन यह प्रश्न सूचित कर रहा है कि हमारा मन महाभारत के युग में जहाँ था, वहीं आज भी है।

शस्त्रास्त्रों की विफलता को क्या हम समझ नहीं सकते ? उस जमाने में शस्त्र-बल पर भारी विश्वास था। वे लोग मानते थे कि समस्याओं का हल शस्त्रों से

हो सकता है। लेकिन हम देख रहे हैं कि शस्त्र विफल हो गये हैं। प्रस्तर-युग मे पत्थर और लकडी के शस्त्र चलते थे। शस्त्र तीव्र स तीव्रतर होते आये, लेकिन समस्या और भी जटिल होती जा रही है।

यह तथ्य आज सबको समझ लेना है और विशेषत शिक्षक को समझ लेना है कि युद्ध किसी जमाने मे धर्म रहा होगा, लेकिन उस जमाने का धर्म आज के जमाने मे नही चल सकता। आज युद्ध निश्चित ही अधर्म है। धर्म का लक्षण तो समाज का धारण करना है। आज युद्ध समाज का धारण नही, संहार करता है। युद्ध से दोनो पक्षो का सहार होता है, सर्वनाश होता है। विज्ञान की प्रगति स, अणुशक्ति के आविष्कार से यही सिद्ध हुआ।

इसलिए शस्त्र-शक्ति नही, शब्द-शक्ति पर हमारा विश्वास होना चाहिए। हम इसी आस्था को लेकर चलना चाहिए कि आज माओ भी समझाने पर समझ सकता है और शब्द शक्ति म वह शक्ति है।

अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय

प्रश्न अध्यात्म और विज्ञान की एकता का क्या अर्थ है?

उत्तर वस्तुत अध्यात्म और विज्ञान दो भिन्न चीजें नही हैं। दोनो एक ही हैं और दोनो का काम भी एक ही है और वह है सत्यशोधन और एकता की सिद्धि। अध्यात्म सत्यशोधन का काम अन्दर से आरम्भ करता है और विज्ञान बाहर से करता है।

और यह अन्दर बाहर का भेद भी वास्तविक नही है, यह मानव के मन का भेद है। मन हर वस्तु को टुकडो मे बाँटकर देखने का आदी है। प्रकृति की दृष्टि म एसा कोई भेद नही है। ईश्वर और सृष्टि भिन्न नही है, सृष्टि ईश्वर का ही सगुण रूप है। सारी सकीर्ण मर्यादाएँ मन के द्वारा कल्पित हैं। स्वयं कृष्ण ने गीता म कहा—अवजानन्ति मा मूढा मानुषी तनुमाश्रितम्—मनुष्य-शरीर म मै हूँ इसलिए अज्ञजन मेरी अवज्ञा करते हैं।

इसलिए इस मन स परे होने का नाम ही विज्ञान और अध्यात्म का मिलन है। अतीतता का अर्थ हा दोनो की एकता है। अक्सर हम एक भूल करते है कि विज्ञान की उपलब्धियो को ही विज्ञान मान बैठते हैं। आत्मज्ञान की तरह म ऋद्धि-सिद्धि। वैज्ञानिक उपकरण और है विज्ञान और। विज्ञान का सही अर्थ है सत्यशोधन। इसलिए विज्ञान का हमारे जीवन म प्रवेश नही हो रहा है। वैज्ञानिक उपकरणो का हम उपयोग तो करते हैं पर वैज्ञानिक नही है।●

(समस्तीपुर २३ २ '६८)

मानवीय एकात्मता सहज कैसे हो ?

दादा धर्माधिकारी

विज्ञान ने मनुष्यों को बाहर से एक-दूसरे के नजदीक लाकर रख दिया है। बाहर से मतलब केवल यह नहीं कि एक-दूसरे के निकट अधिक हो उसका रूप भी एक-दूसरे स समान हो गया है। विज्ञान के कारण दो बातें आयीं—पहली निकटता और दूसरी, एकरूपता। अब तीन-चार बडे आदमी ले लीजिए। कल्पना कीजिए कि अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति की एक बहुत बडी सभा है और उसमे चीन, भारत, इग्लड रूस आदि सभी राष्ट्रों के प्रतिनिधि बैठे हुए है। तो उनकी भाषा अलग-अलग होगी लेकिन उन सबकी पोशाक करीब करीब एक होगी—सूट-पैंट। उनम एक-दूसरे मे सघर्ष भी होगा। फिर भी सबके करीब-करीब एक-दूसरे से मिलते-जुलते नजर आयेंगे। अगर मार्टिन लूथर किंग का रग काला न होता तो, पोशाक उसकी भी एक है। आज के अधिकतर विद्यार्थी पेंट-बुशर्ट मे होते हैं और उन सबके बाल सैलून म कटते हैं। कहने का अर्थ यह है कि बाहर से विज्ञान मे एकरूपता आ गयी है। समान स्तर और जीवन के कुछ समान पैमाने प्रचलित होने म अब परिणाम आ रहे हैं—कामन स्टेंडर्ड के। विज्ञान के कारण इस प्रकार का 'स्टेंडर्डाइजेशन' होना ही है। जैसे दुनिया भर मे बुखार नापने का एक ही थर्मामीटर होता है।

जाहिर है कि दुनिया म आज मनुष्य के बाह्य जीवन के कुछ समान नाप आ गये हैं। लेकिन मनुष्य भीतर से अभी नजदीक नहीं आया है। यह 'इंटीग्रेशन' का प्रश्न है। यह प्रश्न इसलिए पेश हुआ कि विज्ञान मनुष्य को बाहर स नजदीक ला सका, लेकिन भीतर से उसने मनुष्य मनुष्य को निकट नहीं मिलाया। प्रश्न उठता है कि उसे भीतर तक पहुँचाने मे कौन-कौनसी बाधाएँ हैं। मैंने तीन बाधाएँ मुख्य मानी हैं—१ धर्म २ संस्कृति और ३ भाषा। ये तीनों बाधाएँ न हों तो मनुष्य विज्ञान से जितना निकट आया, उतना मनुष्य मे भी निकट आ जायेगा। परन्तु हो सकता है कि वह निकटता पशु के स्तर पर हो, केवल प्राणी के स्तर पर हो, 'एनीमल लेवल' पर। शारीरिक निकटता प्राथमिक होती है। जैसे, आज हम आदिवासियों में देखते हैं कि उनमे असंस्कृति असभ्यता, अशिक्षितता होती है, लेकिन उनमे एक अद्भुत प्रेम भी होता है, एक अद्भुत एकात्मता भी होती है। परन्तु उनका धरातल प्राथमिक है। उससे ऊपर वे नहीं आयेंगे।

इसलिए जहाँ-जहाँ पर मनुष्य के विचारों का विकास हुआ, तत्त्वज्ञान का विकास हुआ, साहित्य का विकास हुआ, कला का विकास हुआ, वहाँ कुछ पृथक्ता आती चली गयी। विशिष्टता आयी और उसके साथ कुछ भिन्नता भी आती चली गयी। और उसमें से आगे विरोध पैदा हुए। तो हमलोगों को देखना यह है कि इस विरोध का स्वरूप क्या है। जब हम इस विरोध का स्वरूप देखने जाते हैं, तब हम उतनी देर के लिए भूल जाना चाहिए कि हम अमुक धर्म के हैं, हम हिन्दू हैं, मुसलमान हैं, ईसाई हैं। यह भी भूल जाना चाहिए कि हम भारतीय हैं। सिर्फ हम मनुष्य हैं। अब यह समस्या मानवीय हो गयी।

आज की समस्या का स्वरूप

विज्ञान का एक गुण है कि वह किसी समस्या को क्षेत्रीय नहीं होने देता। यह विज्ञान का एक प्रभाव है। जैसे पहले उड़ीसा में यदि अकाल हो जाता था तो वह सिर्फ क्षेत्र तक ही सीमित होता था, यानि क्षेत्र में ही उस समस्या का हल हो जाता था। लेकिन आज वह समस्या सारे देश की बन जाती है। जैसे अब पाकिस्तान में कोई तूफान हुआ तो केवल पाकिस्तान तक ही वह सीमित नहीं रहता। हमारा पाकिस्तान से यद्यपि संघर्ष है, फिर भी हमारे यहाँ ऐसे कहनेवाले हैं कि इस समय हमको पाकिस्तान की सहायता करनी चाहिए, उसकी इस आपत्ति में सहायता करनी चाहिए। दुनिया भर के जितने लोग हैं सबके मन में उसके प्रति सहानुभूति हो जाती है। वस्तुतः आज हमारी हर समस्या विश्व-रूप धारण करती है। जैसे अर्जुन ने जब चतुर्भुज का रूप देखना चाहा था तब वह ईश्वर का वास्तविक स्वरूप जो भव्य, भयानक, रौद्र था, वह नहीं देखना चाहता था। इसलिए मैं कहना यह चाहता हूँ कि आप थोड़ी देर के लिए अपनी सभी विशेषताओं को भूल जाइए। केवल मानवता से ही विचार कीजिए। फिर भी इसमें धर्म, संस्कृति, भाषाएँ, ये तीनों बाधाएँ क्यों हुईं? ये तो सबको जोड़ने, मिलाने के लिए पैदा हुई थीं। यही तो धर्म का प्रयोजन था कि मनुष्य को मनुष्य से मिलाये और ईश्वर को ईश्वर से। इसके लिए धर्म आया। संस्कृति किसलिए आयी? मनुष्य मनुष्य के लिए नम्र बने। मनुष्य मनुष्य के लिए नम्र बने यही तो संस्कृति है न? उसके स्वरूप अलग-अलग होंगे। मान लीजिए कि कई प्रांत हैं—आसाम, बंगाल, उड़ीसा। तो उनकी बोली भिन्न होगी। कोई कहेगा 'जी', कोई 'आज्ञा' कहेगा—इत्यादि। तो एक 'आज्ञा' कहेगा और दूसरा 'जी' कहेगा। इन दोनों शब्दों में अन्तर है। लेकिन भाव एक है। ईश्वर के सामने मनुष्य नम्र होता है, यह नम्रता दबाव नहीं है। मनुष्य से मनुष्य दबता नहीं है, ईश्वर के सामने मनुष्य नम्र होता है, यह संस्कृति का आविष्कार है।

संस्कृति का तत्त्व

संस्कृति की अभिव्यक्ति अलग-अलग हो सकती है। लेकिन संस्कृति का तत्त्व एक है। उसका 'कण्टेंट' भी एक है। मनुष्य में दूसरे मनुष्य के लिए, दूसरे जीवों के लिए भी प्रतिष्ठा की भावना होती है। यहाँ तक कि उसमें अपने शत्रु के लिए भी प्रतिष्ठा की भावना होगी। वह भावना जितनी अधिक होगी उतनी वह अधिक सुसंस्कृत है और जितनी अहंकार की भावना होगी, उतना वह असंस्कृत है।

मैं अंग्रेजों के जमाने में जेल में था तो जेलर मुझे पूछता था कि क्या आपको पान, सुपारी मिलती है कि नहीं। उन दिनों मेरी पान-सुपारी खाने की आदत थी। तो मैंने कहा कि यहाँ खाने का नियम नहीं है, मिलेगा तो खाऊँगा। तब उसने मुझे जवाब दिया कि कल अगर सरकार मुझसे कहती है कि आपको निकाल कर कोड़े मारो तो मैं मारने से नहीं हिचकूंगा। पर इस तरह मैं आपका अपमान नहीं करूँगा, क्योंकि आप उस तरह के अपराधी नहीं हैं।

ऊपर मैंने तीन बाधाओं का जिक्र किया है। वे बाधाएँ क्या हो गयी ? क्योंकि उनमें अपने-अपने को बड़ा बताने के लिए विवाद हुआ। कोई कहता है कि मेरा धर्म पहले हुआ, तो पहला देवता मेरा हुआ, इत्यादि।

धर्म और सम्प्रदाय

जो मनुष्य को मिलाने के लिए आये थे, वे एक को दूसरे से अलग करने लगे। मार्क्स ने तो यहाँ तक कह दिया कि धर्म अफीम है, जो लोगों को भुलावे में डालता है। लेकिन यह कहते-कहते मार्क्स ने भी एक दूसरे अलौकिक धर्म की स्थापना कर दी। धर्म याने क्या होता है ? धर्म में एक सबसे बड़ी विशेषता होती है कि वह गलती नहीं कर सकता। जो वह कहता है, उसके लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं, वह स्वयं प्रमाण है। तो जब धर्म इस अवस्था में आ गया तो मैं कहता हूँ कि मेरा वेद स्वतः प्रमाण है। इसी प्रकार मुसलमान और ईसाई, कुरान और बाइबिल के लिए अभिमान रखते हैं। इस प्रकार इसमें भी मैं, तू, हम खड़े हैं। तो इनमें भी संघर्ष है। जिनमें संघर्ष है, वे दो प्रकार के हैं। एक वह है, जो धर्म जन्म-सिद्ध है। इस धर्म में आप जन्म लें तो धर्म आपका। तो मैंने जन्म-सिद्ध धर्म कहा। तो ऐसे कौन-कौनसे धर्म हैं ? साधारणतया हम दो-चार नाम लेते हैं। जैसे हिन्दू धर्म कहते हैं। यह जन्म से ही प्राप्त होता है। यह जन्माश्रित है। शायद पारसियों का धर्म भी ऐसा ही है। तीसरा, ऐसा धर्म बहुत कुछ अंश में यहूदियों का धर्म है। ऐसे कुछ धर्म हैं, जो धर्म जन्मतः प्राप्त होते हैं। वैसे आजकल अब हिन्दुत्व भी लिया जा सकता है। लेकिन इसमें धर्म नहीं मिलता है। मुख्यतः यह जन्म से

प्राप्त है। हो सकता कि कुछ धर्म मनुष्य अपनी इच्छा से ले सकते हैं। ऐसे धर्म हैं १ बौद्ध धर्म, २ ईसाइयों का धर्म, ३ इस्लाम धर्म, ४ सिख धर्म, ५ जैन धर्म। ये पाँच धर्म मनुष्य अपनी इच्छा से ले सकते हैं और अपनी इच्छा से छोड भी सकते हैं इसलिए इन धर्मों को सम्प्रदाय कहते हैं। तो सम्प्रदाय म हम अपनी इच्छा से जा सकते हैं और अपनी इच्छा स निकल सकते हैं। सम्प्रदाय—जिसमे 'क्रीड' होते हैं या क्रियाशील होता है यह एक पथ है एक संप्रदाय है। इन सम्प्रदायो मे एक गुण सामान्यतया यह होता है कि जितने सम्प्रदाय हैं वे दूसरे संप्रदायो को अपने म लाना चाहते हैं। इसे एग्रेसिवनेस' कहते हैं। यह आक्रमणशील है क्योंकि यह दूसरो को अपने म शामिल करना चाहता है। तो जो दूसरों को अपने म लेना चाहता है वह प्रचार का प्रयत्न करेगा और उस धम का प्रचार होगा और ऐसा प्रचार होगा कि दूसरे धमवाले अपन धम को छोड़कर उसमे आयें। इसके लिए वह दूसरो की निन्दा करेगा और अपने धम की स्तुति गायेगा।

अब हर सम्प्रदाय म एक बात और होती है। उसके कुछ 'सिंबल्स', सकेत होते है। लेकिन अब उन संप्रदायो के सिर्फ चिह्न ही अवशेष रह गये है। क्योंकि सभी सम्प्रदायो के कुछ अपने-अपने चिह्न होते हैं। इसलिए मनुष्य जब एक सम्प्रदाय स दूसरे सम्प्रदाय म चला जाता है तो वह एक समाज स दूसरे समाज म चला जाता है। याने धर्मान्तर स समाज-परिवर्तन होता है। चेंज आफ रेलिजन मीन्स चेंज आफ कम्युनिटी। संप्रदाय क दो सामान्य लक्षण मैंने आपको बताये।

(१) सम्प्रदाय म एग्रेसिवनेस होना है—याने वह दूसरे को अपनी तरफ लेने की कोशिश करता है।

(२) संप्रदाय-परिवर्तन क साथ समाज-परिवर्तन भी होता है।

सम्प्रदायों के दो प्रकार

एक संप्रदाय म और दूसरे सम्प्रदाय म कुछ भेद भी होते हैं। कुछ सम्प्रदाय मिलिटेंट' नहीं हो सकते कुछ मिलिटेंट होते है—एक सम्प्रदाय दूसरे संप्रदाय को पराजित करना चाहते हैं और कुछ ऐसे होते हैं जो केवल प्रचार करनेवाले होते हैं। तो केवल जो अपना प्रचार करनेवाले हैं एसे कौन-कौनसे हैं? पुराने जमाने म जैन थे, आज बौद्ध। ये दो सम्प्रदाय एसे थे कि जो या तो दूसरों को अपने म शामिल करवाते थे लेकिन मिलिटेंट नहीं। वे शुद्ध प्रचार करते हैं। दूसरे कुछ हैं जो 'मिलिटेंट' होते हैं। उनमें म सबसे अधिक मिलिटेंट' इस्लामी और ईसाई हैं। लेकिन उनमे भी अब पुराने युग स एक अंतर हो गया है। वह अन्तर यह है कि उन्होंने राजसत्ता और धर्मसत्ता को एक तरह स भिन्न माना। राजसत्ता और धर्मसत्ता म वे अभेद नहीं मानते।

राजसत्ता और धर्मसत्ता में एक भेद शुरू से माना गया है। क्रिस्ता धर्म मे एवं द्वैत नाम चलाया। हमारा देश धर्म-निरपेक्ष राज है। यहाँ 'सेक्युलर स्टेट' आया। तब यहाँ 'मिलीटेंट' होते हुए भी राज की इस्लाम जैसी प्रखरता नहीं आयी, परिणाम क्या हुआ? परिणाम यह हुआ कि ये सारे धर्म—सिख, जैन को छोड़कर—बौद्ध, इस्लाम, क्रिस्ती, अंतर्राष्ट्रीय हैं। किसी एक देश में नहीं। तो ये तीन अंतर्राष्ट्रीय हैं। पाकिस्तान का धर्म तो अंतर्राष्ट्रीय है, लेकिन पाकिस्तान इस्लामी रिपब्लिक है।

तो सम्प्रदाय अंतर्राष्ट्रीय है, लेकिन धर्म-सत्ता और राज-सत्ता दोनों का अभिन्न नाम है। इसलिए हमेशा गैर-मुसलमान को उसमें लेना नहीं चाहते, उसमें से निकालना चाहते हैं। उसे 'हिजरत' कहते हैं। जैसे मक्का से मुहम्मद साहब मदीना चले गये। तो, ऐसा राज, जिसमें मुसलमान सत्ता नहीं, कुरान और मुहम्मद नहीं, उस राज्य में मुसलमान को नहीं रहना चाहिए। मेरा देश और राज्य नहीं, इसलिए मैं उस देश में नहीं रहूँगा, इसमें से 'एक्स्ट्रा टेरीटोरिलिज्म'—देशबाह्य निष्ठा—अतिदैशिक निष्ठा पैदा होती है। परंतु अतिदैशिक निष्ठा का राज मुसलमानों का होना चाहिए, जिसमें से आज हमारी हिन्दू-मुस्लिम समस्या पैदा हुई है।

सिख अपने साथ कृपाण रख सकते हैं, क्योंकि उनकी सम्प्रदाय-निष्ठा देश-निष्ठा से बलवान होती है और उनके 'कान्स्टीट्यूशन' में भी है। कोई हिन्दू मुसलमान बनना चाहे तो बन सकता है और फिर हिन्दू बन सकता है, लेकिन कोई मुसलमान हिन्दू नहीं बनेगा, क्योंकि उसमें 'एक्स्ट्रा टेरिटोरिलिज्म' है। ऐसे देश में जहाँ कुरान और मुसलमान राज नहीं होता है, यदि मुसलमान होते हैं और उस देश को छोड़कर चले जाते हैं तो धार्मिक समझे जाते हैं। 'एक्स्ट्रा टेरीटोरियल लायल्टी' से मतलब है—राज्य को बदलना और मेरी सम्प्रदाय-निष्ठा मेरी देश-निष्ठा से बलवान है यह मानना।

पाकिस्तान इस्लामी देश है। बौद्ध धर्म तो कई देशों में है। एक बर्मा राज ने उसको स्वीकार किया है, जो हमारे पड़ोस में है। तो दो प्रतिदेशी राष्ट्र ऐसे हैं, जिनमें से एक इस्लामी गणराज है और दूसरा बौद्ध धर्मी। बौद्ध धर्म के धर्मानुयायी कहते हैं कि हिन्दू तो जन्मसिद्ध से भारत के राजभर में है। हिन्दू धर्म भारत से बाहर कहीं नहीं है। नेपाल में है, लेकिन नेपाल तो बना हुआ राष्ट्र है। याने भारत के बाहर कहीं भी हिन्दू धर्म नहीं है। फिर भी यहाँ पर हिन्दूइज्म को 'मेजारिटी' याने बहुसंख्या का धर्म मानते हैं।

—किशोर शान्ति-दल शिविर, पुरी के भाषण से।

सामूहिक और वैयक्तिक अध्यापन

वशीधर श्रीवास्तव

अध्यापन के साथ कक्षा की भावना जुडी हुई है। एक अध्यापक द्वारा एक शिष्य का अध्यापन भी अध्यापन ही है, किन्तु जब हम 'अध्यापन' या 'शिक्षण' शब्द का प्रयोग करते हैं, तो १०-२० छात्रो को पढाते हुए अध्यापक का चित्र सामने आता है। प्रारम्भ से ही अध्यापन का अर्थ सामूहिक शिक्षण ही रहा है। कुछ विद्वानो का विचार है कि सभ्यता के आरम्भ मे अध्यापन की इकाई वैयक्तिक ही थी, परन्तु मेरा विचार है कि ऐसा नही था। सम्भवत सबसे पहली कक्षा उस गुफा मे लगी थी, जब एक वृद्ध अनुभवी मानव के चारो ओर कुछ लोग उसम पत्थर का औजार बनाना सीखने के लिए एकत्र हो गये होंगे। इसके बहुत बाद भारतवर्ष मे गुरुकुलो, आश्रमो और यूनान के प्राचीन एकादमियो के चित्र के साथ भी एक गुरु द्वारा एक से अधिक शिष्यो के शिक्षण का चित्र ही सामने आता है।

वास्तव मे शिक्षण एक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा मानव अपने उस अर्जित ज्ञान को, जिसके द्वारा उसे सुखपूर्वक जीवन-यापन करने मे सहायता मिली है, अपनी सतान को देता है। जब शिक्षण का यह कार्य अविधिक सस्थाओ (जैसे परिवार) द्वारा सम्पन्न किया जाता है तब वह भले ही वैयक्तिक रहे, परन्तु जिस समय वह किसी सविधिक सस्था (जैसे विद्यालय) के हाथ मे आता है वह सामूहिक हो जाता है। समूह मे शिक्षण ही तब वह अधिक सुविधाजनक होता है।

उच्च कोटि के शिक्षण की विधि क्या हो ?

सामूहिक शिक्षण के स्थान पर वैयक्तिक शिक्षण के आन्दोलन ने उस समय मे जोर पकडा, जब मनोविज्ञान का पर्याप्त विकास हो गया और मनोवैज्ञानिको ने कहना शुरू किया कि बालको मे व्यक्तिगत विभिन्नताएँ होती हैं, अतएव उनका शिक्षण भी व्यक्तिगत विभिन्नताओ को ध्यान मे रखकर किया जाय। यह सत्य है कि एक ही कक्षा मे भिन्न-भिन्न स्तर के विद्यार्थी रहते हैं। उनकी रुचियाँ भी भिन्न होती हैं, किसीकी गणित मे रुचि होती है तो किसीकी साहित्य मे, कोई पढने-लिखने मे तेज होता है, और जो भी पढाइए शीघ्र ही समझ लेता है, तो कोई हाथ का काम अच्छा

कर लेता है और किसीकी स्मरण-शक्ति अच्छी होती है तो कोई रात भर रटता है, फिर भी सवेरे सब भूल जाता है। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है, जिसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। अत अधिक मनोवैज्ञानिक यही होगा कि विद्यार्थियों की वैयक्तिक रुचि और बौद्धिक स्तर के अनुसार ही उनको शिक्षा का प्रबन्ध किया जाय, जिससे अध्यापन का कार्य अधिक प्रभावकारी हो और बालकों की वैयक्तिक शक्तियों और सम्भावनाओं का अधिक-से-अधिक उपयोग उनके सफल शिक्षण के लिए किया जाय। वैयक्तिक शिक्षण के द्वारा ही विद्यार्थी की वैयक्तिक शक्तियों का विकास किया जा सकता है। बालक के सहज व्यक्तित्व का विकास तभी सम्भव होगा, जब उसे अपनी रुचि और क्षमता के अनुसार अपनी गति से प्रगति करने का अवसर दिया जाय। बालक के समुचित विकास के लिए यह भी आवश्यक है कि उसे शिक्षक का व्यक्तिगत सम्पर्क और ध्यान प्राप्त हो। यह वैयक्तिक शिक्षा से ही सम्भव है। अत उच्च कोटि के शिक्षण के लिए वैयक्तिक शिक्षण की पद्धति उपयोगी है।

सामूहिक शिक्षण का गुण

वैयक्तिक शिक्षण का आदर्श है—'एक बच्चे के लिए एक अध्यापक'। परन्तु जब राष्ट्र के सभी बच्चों की शिक्षा होनी है तो इतने अध्यापक कहाँ से आयेंगे? कौनसा राष्ट्र इतना व्यय कर सकेगा? अत वैयक्तिक शिक्षण की विधि व्यावहारिकता की कसौटी पर खरी नहीं उतरती। व्यावहारिकता की दृष्टि से सामूहिक शिक्षण को ही अपनाना पड़ेगा। आज के युग मे यही उसका सबसे बड़ा गुण है।

परन्तु सामूहिक शिक्षण-विधि का सबसे बड़ा गुण यही नहीं है कि वह सस्ती है और उसके द्वारा राष्ट्र के सभी बच्चों के शिक्षण की व्यवस्था की जा सकती है। उसका उतना ही बड़ा गुण यह भी है कि वह बालकों की सामाजिक भावना का विकास करती है। सामूहिक शिक्षण द्वारा बालक के सामाजिक व्यक्तित्व का विकास होता है। साथ-साथ पढ़ने से बालक का समाजीकरण होता है। शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है और विद्यालय एक सामाजिक संस्था। शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य है बालक के व्यक्तित्व का इस प्रकार विकास करना कि वह एक सफल नागरिक बनकर समाज मे अपने कर्तव्यों का पालन कर सके। यह सभी युगो मे सत्य था, परन्तु आज के समाजवाद और लोकतंत्र के युग में और भी अधिक सत्य है। इसलिए सामूहिक शिक्षण ही युग के अनुरूप है।

कक्षा म साथ-साथ पढ़ने से बालकों मे परस्पर मिल-जुलकर रहने के भाव उत्पन्न होते हैं और वे समय पर एक-दूसरे की सहायता करना सीखते हैं। वे अपने स्वार्थों को दूसरे के लिए छोड़ना और दूसरों की सेवा करना सीखते हैं। ये

ऐसे गुण हैं, जिनका विकास वैयक्तिक शिक्षण से नहीं हो सकता। ये गुण तो समूह मे रहने और कार्य करने से ही विकसित होते है। सामूहिक शिक्षण से निम्न-लिखित लाभ हैं :—

१. इसमें समय और शक्ति की बचत होती है। यह सत्य है कि एक कक्षा मे कुछ तीव्र बुद्धि के छात्र होते हैं और कुछ मन्द बुद्धि के। अध्यापक सबको एक ही पाठ एक ढंग से पढाता है। अतः इस शिक्षण से न तो तीव्र बुद्धिवालों को लाभ होता है और न मन्द बुद्धिवालो को। तीव्र बुद्धिवालो को अपनी गति धीमी करनी पड़ती है और उनकी प्रगति मे बाधा पडती है। मन्द बुद्धिवाले कक्षा के साथ नहीं चल पाते। उनकी व्यक्तिगत कठिनाइयाँ होती हैं, जिन्हे अध्यापक दूर नहीं कर पाते; फलतः वे पीछे छूट जाते है और अध्ययन मे उनकी रुचि नही रह जाती है। इस प्रकार तेज और कमजोर, दोनों प्रकार के लडकों की हानि होती है। परन्तु कक्षा मे अधिकाश छात्र सामान्य बुद्धि के होते हैं। उनकी बुद्धि-लब्धि में अन्तर तो होता है, परन्तु बहुत बड़ा नहीं। अतः उनकी अधिकाश कठिनाइयाँ भी एक-सी होती हैं। सबको एक बार समझा देने से काम चल जाता है। इस प्रकार समय और व्यक्ति की बचत होती है।

२. सामूहिक शिक्षण से बालकों मे स्पर्धा की भावना जागृत होती है। स्पर्धा मे प्रेरणा की शक्ति होती है, एक-दूसरे से आगे बढ़ जाने की इच्छा होती है। व्यक्तिगत प्रगति के लिए स्वस्थ स्पर्धा-भावना का बड़ा मूल्य है, अकेले रहने से यह भावना नही जागती।

३. चरित्र के कुछ दूसरे और गुण है, जो समूह मे ही उत्पन्न होते हैं। अनुकरण बालक की सहज प्रवृत्ति है। इस पद्धति के विकास और पोषण के लिए बालक का समूह मे रहना आवश्यक है। अकेला बालक अपने अध्यापक के अलावा दूसरा किसका अनुकरण करेगा? अनुकरण अनेक कौशलों की आधार-शिला है। अनुकरण से बालक बहुत सीखता है।

४. सामूहिक शिक्षण से एक बहुत बड़ा लाभ यह भी होता है कि उसमे व्यक्ति का संकोच और झिझक दूर होती है। झिझक आत्मप्रकाशन के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा है। समूह मे दूसरो की देखा-देखी कुछ बोलने, कुछ करने की स्वाभाविक इच्छा होती है। समूह के साथ काम करने से यह बहुत बड़ा लाभ है। 'सात पाँच मिल कीजे काज, हारे-जीत न आवे लाज', यह पुरानी कहावत है, जिससे सामूहिक शिक्षण के पक्ष का समर्थन होता है।

५. इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे विषय भी हैं, जिनका प्रभावकारी शिक्षण व्यक्तिगत प्रणाली से नहीं हो सकता। साहित्य, संगीत, कला, समाज-शास्त्र, धर्म

आदि ऐसे ही विषय हैं। ये ऐसे विषय है, जिनको अध्यापक तभी अधिक उत्साह से पढा पाता है, जब वह समूह को पढाता रहता है। इन विषयो के लिए सामूहिक शिक्षण-पद्धति ही अच्छी है। समूह के सामने अध्यापन करने की चेतना अध्यापक को स्वाध्याय की प्रेरणा देती है। वह स्वय खूब पढता है और यथाशक्ति अपने विषय को स्पष्ट करने की चेष्टा करता है। समूह अध्यापक के सर्वश्रेष्ठ को बाहर लाता है।

सामूहिक शिक्षण की न्यूनताएँ

यह सब होते हुए भी सामूहिक शिक्षण-पद्धति अध्यापक-केन्द्रित है, बालक-केन्द्रित नही। इस पद्धति का क्रियाशील प्राणी अध्यापक है, विद्यार्थी नही। वह तो निष्क्रिय श्रोता है। यही निष्क्रियता सामूहिक शिक्षण का अभिशाप है। बालक क्रियाशील प्राणी है। सामूहिक शिक्षण-पद्धति मे उसे अपनी रुचि के अनुसार काम करने का अवसर बहुत कम मिलता है। इस पद्धति मे अध्यापक का शिष्य के साथ सम्पर्क भी कम हो जाता है। कभी-कभी जब कक्षा के विद्यार्थियो की संख्या बहुत बढ जाती है तब तो अध्यापक बहुत-से विद्यार्थियो को बिल्कुल नही जान पाता। शिक्षण-प्रक्रिया मे अध्यापक का बहुत गरिमामय स्थान है। वह विद्यार्थियो की प्रेरणा का स्रोत है। उसका सम्पर्क ही वह पारस है, जो विद्यार्थी को सोना बनाता है। जिस शिक्षण-पद्धति मे पारसमणि ही खो जाय, उसमे निश्चय ही सुधार की आवश्यकता है।

इसीलिए अनेक शिक्षा-शास्त्रियो ने सामूहिक शिक्षण-पद्धति मे सुधार करने के लिए उसमे वैयक्तिक शिक्षण-पद्धति के गुणो को सम्मिलित किया है। ऐसी चेष्टा की गयी है कि बालकों की व्यक्तिगत रुचियां और बौद्धिक भिन्नताओ के अनुसार उन्हे ज्ञान प्राप्त करने और काम करने का अवसर प्रदान किया जाय और उन्हे यथा-सम्भव अध्यापक का सम्पर्क और उनकी व्यक्तिगत सहायता प्राप्त हो। इसीलिए लोग कहते हैं कि कक्षा मे बालको की संख्या २०-२५ से अधिक न हो, जिससे व्यक्तिगत सहायता दी जा सके। कुछ लोग उन्हे टोलियो मे बाँटकर आधे भाग मे शिक्षण, आधे भाग मे स्वाध्याय अथवा स्वक्रिया की व्यवस्था करते है, जिससे सामूहिक और वैयक्तिक, दोनों ही विधियों का लाभ उठाया जा सके।

वैयक्तिक और सामूहिक शिक्षण का कितना सामजस्य हो? इग्लैड के प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री सर परसीनन कहते हैं—सबसे सन्तोषजनक सामजस्य ५० प्रतिशत सामूहिक शिक्षण (कक्षा-कार्य) और पचास प्रतिशत वैयक्तिक शिक्षण (व्यक्तिगत कार्य और स्वाध्याय) द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। •

स्वराज्य आश्रम, वेड़छी : एक परिचय

जब सन् १९२१ में महात्मा गांधी ने असहयोग की अहिंसक लड़ाई के लिए बारडोली तहसील को चुना तब लड़ाई की पूर्वतैयारी के रूप में तहसील के ग्रामीण क्षेत्रो मे रचनात्मक प्रवृत्तियो का आन्दोलन काफी रफ्तार से चल रहा था। इसी वक्त तहसील के रानीपरज—आदिवासी प्रदेश में भी अधिक मात्रा में हलचल चली थी। वेडछी इस आदिवासी, आदिमजाति प्रदेश का केन्द्र था।

चौरीचौरा के हत्याकाण्ड के कारण असहकार आन्दोलन बन्द किया गया, लेकिन बारडोली तहसील में रचनात्मक प्रवृत्तियाँ तो अपनी रफ्तार में आगे बढ़ती रही। आदिवासी गाँव वेडछी ने चरखे मोल लिये और सूत कातना सीखने के लिए बारडोली आश्रम से एक कार्यकर्ता की माँग की। उसके जवाब में बुनाई-काम जाननेवाले अपने तीन-चार आदिवासी सहायको की टुकडी के साथ श्री चुनीभाई महेता वेडछी में सन् १९२४ मे आ पहुँचे। और वहाँ से आदिवासी अगुआ स्व० जीवण पटेल की झोपडी मे आकर वास किया। इस प्रकार वेडछी आश्रम का श्रीगणेश हुआ।

गाँव के बहुत-से भाई-बहन अपनी कताई की खादी के कपडे पहनने लगे। वेडछी के आसपास के गाँवो मे भी इस वातावरण का अच्छा असर हुआ। क्रमश. चरखा, खादी का फैलाव हुआ। दो-तीन सालो मे करीब २०० गाँवो के सैकडो परिवार चरखे अपनाकर खादीधारी हो गये।

रानीपरज विद्यालय

खादी-काम के लिए वेडछी आश्रम मे चरखे और करघो के वर्ग सतत ही चलाये जाते थे। इस अरसे में श्री जुगतराम दवे तथा चीमनभाई भट्ट वेडछी मे आकर बसे। उन्हें शिक्षा मे अधिक दिलचस्पी होने के कारण अब बुनाई-वर्गों को राष्ट्रीय

शिक्षा की संस्था 'रानीपरज विद्यालय' का स्वरूप दिया गया। इस विद्यालय का आशय कताई बुनाई आदि की प्रक्रियाएँ सिखाने का तो था ही, इसके अलावा इस प्रदेश के आदिवासी ग्रामजनों के वास्ते इसी स्थानिक समाज में से सेवक पैदा करना भी था।

सन् १९२८ में बारडोली तहसील के किसानों ने बढ़ाये गये जमीन के लगान के खिलाफ सरदार वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में 'नाकर' का अहिंसक सत्याग्रह चलाया। इसमें वेडछी की ग्राम-जनता, आश्रम के कार्यकर्ता एवं विद्यार्थियों ने अच्छा हिस्सा लिया। सत्याग्रह का सफल परिणाम आने पर बारडोली और आम तौर पर गुजरात के बहुत से हिस्सों में चरखा-केंद्रित रचनात्मक आन्दोलन की बाढ़ आयी। इस प्रवृत्ति के लिए बारडोली और इसके आसपास के तहसीलों में छोटे-छोटे सात-आठ आश्रम कायम किये गये।

अब वेडछी आश्रम के रानीपरज विद्यालय की त्वरित गति से तरक्की होने लगी। आश्रम में आदिवासी विद्यार्थी, ग्रामसेवक तथा जुलाहों का बड़ा जूथ पैदा हुआ, और वेडछी के स्वराज्य आश्रम को वह स्वरूप प्राप्त हुआ, जो आज दिखाई देता है।

नमक-सत्याग्रह

बारडोली की नाकर' की लड़ाई तो स्थानिक स्वरूप की थी, किन्तु इस हकीकत ने कि इन भोले भाले स्वभाव के ग्राम-किसानों ने साम्राज्य-हुकूमत को मजबूर किया था, सारे भारत देश के वातावरण पर गहरा प्रभाव डाला और देश में गर्मी ला दी। फलतः सन् १९२९ की लाहौर कांग्रेस ने पूर्ण स्वातंत्र्य का प्रस्ताव स्वीकार किया, और एक साल में स्वराज्य' देने की अंग्रेज सरकार को ललकार दी। इस ललकार को सार्थक करने के लिए गांधीजी ने रचनात्मक प्रवृत्तियों का आन्दोलन तीव्रतर बनाया और वर्ष के अन्त में सरकार की ओर से प्रत्युत्तर न मिलने पर सन् १९३० में 'नमक-सत्याग्रह' की मशहूर लड़ाई की घोषणा की।

इस नमक सत्याग्रह में बारडोली तहसील के दूसरे विभागों की तरह वेडछी आश्रम एवं इर्दगिर्द के खादीधारी आदिवासी किसानों ने भी प्रशंसनीय हिस्सा लिया। खादी और मद्य-निषेध की प्रवृत्तियाँ अधिक मात्रा में आगे बढ़ीं। जेल यात्रा करने में भी आदिवासी लोगों ने अच्छा सहयोग दिया। लड़ाई की आग को बुझाने के लिए सारे देश में गिरफ्तारी आदि अत्याचार किये गये। उनमें वेडछी आश्रम के मुख्य कार्यकर्ताओं को भी गिरफ्तार किया गया। देश की अनेक राष्ट्रीय

संस्थाओं के साथ वेडछी आश्रम को भी सरकार ने जब्त कर लिया। इस दौरान आश्रम की खेतीबाडी और मकान अत्यन्त बरबाद हो गये।

जब्ती में से आश्रम मुक्त होने पर उसकी पुन मरम्मत की गया और खादी, शिक्षा आदि प्रवृत्तियाँ फिर से शुरू कर दी गयीं। इसके बाद स्वराज्य-संग्राम के दौरान पुन दो दफा वेडछी आश्रम जब्त किया गया। दीर्घ समय तक जब्ती में रखने के बाद अत्यन्त नुकसान के साथ आश्रम वापस कर दिया गया।

सन् १९३८ में हरिपुरा गाँव में तापी नदी के तट पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का ५१ वाँ अधिवेशन हुआ। उसमें वेडछी आश्रम के कार्यकर्ताओं तथा विद्यार्थियों ने विट्ठलनगर के सफाई-काम की जिम्मेवारी अपने सिर ली थी।

बुनियादी शिक्षा का प्रारम्भ

सन् १९३८ के ये दिन देश में बुनियादी शिक्षा के जन्म के थे। वेडछी आश्रम के आसपास के २२ देहातों में बुनियादी पाठशालाओं का सघन क्षेत्र अस्तित्व में आया। वेडछी गाँव की बुनियादी पाठशाला का संचालन वेडछी आश्रम को सुपुर्द किया गया। थोडे वर्षों के बाद आश्रम के रानीपरज विद्यालय को उत्तर बुनियादी विद्यालय के प्रयोग के रूप में चालू कर दिया गया।

स्वराज्य सरकार आने के साथ ही देश में नशाबंदी, ऋणराहत और गणोत-नियमन जैसे कानून लागू किये गये। सुरत जिले में इन कानूनों को अमल में लाने का वेडछी आश्रम एक महत्त्व का केन्द्र बना। उसके प्रयत्नों के कारण इस प्रदेश में इन कानूनों का अमल ठीक तौर से हुआ। इन कानूनों के द्वारा लेन-देन का पुराना महाजनी मार्ग बन्द होने के कारण आदिवासी किसानवर्ग निराधार स्थिति में न फँस जाय इसलिए उन लोगों की विविध कार्यकारी सहकारी मंडलियाँ बारडोली और सुरत जिले के करीब सभी आदिवासी आबादी के तहसीलों में शुरू कर दी गयीं और उसमें इस प्रदेश के अधिकतर गाँव समाविष्ट कर दिये गये।

स्वराज्य के वर्षों में आदिवासी-सेवा का कार्य जिले की सभी तहसीलों में फैलने लगा। आश्रम में शिक्षा पाये हुए और आश्रम के वातावरण से प्रभावित सेवक और खादीधारी ग्रामवासियों ने चारों ओर सेवाकार्य शुरू कर दिये। उन सबको संगठित करके 'रानीपरज सेवासभा' नामक संस्था का सन् १९५१ में प्रस्थापन किया गया।

जंगल कामदारों की सहकारी मंडलियाँ

सुरत जिले में बहुत बडा प्रदेश जंगलों का होने की वजह से वहाँ की आदिवासी प्रजा जंगल विभाग के नौकर तथा जंगल-कटाई पर ठेका रखनेवाले व्यापारी वर्ग के द्वारा कुत्सित व्यवहार, अत्याचार और शोषण की चंगुल में फँसी रहती थी। राज्य में

जगल कामदारा की सहकारी मडलिया की विशाल योजना शुरू की गयी। सुरत जिले म यह प्रवृत्ति 'रानीपरज सेवासभा' ने बडे उत्साह के साथ अपने सिर ले ली। इसके फलस्वरूप आजकल ६० जगल कामदार मडलियाँ कार्य कर रही हैं। और जिले का करीब सारा जगल काटने का कार्य इन मडलिया क हाथा म आ चुका है।

हलपति सेवा सघ

सुरत जिले के गाँवा म पुराने जमाने स 'हाली प्रथा' नामक अभयुत्वादी की पद्धति म आदिवासी खेतमजदूर कष्ट भोग रहे थे। उनकी तरक्की का काय हरिपुरा काग्रेस क बाद शुरू किया गया। हरक कुटुम्ब को अपनी जमीन पर अपना स्वतन्त्र घर हो, ऐसा कायक्रम गुजरात सरकार के सम्मुख पेश कर दिया गया है। अब हरेक कुटुम्ब का घर बना देने का कार्यक्रम बाकी है।

हलपतियो की आबादी खेती की जमीन के मुकाबिले म अधिक है, जिसके कारण उनक लिए ग्रामोद्योगा की तालीम की योजना महत्त्वपूर्ण प्रतीत होती है। इसके लिए प्रयत्न चालू है। हलपतिया को नशामुक्त करने का कायक्रम शीघ्र गति स शुरू कर दिया गया है, जिसको अधिक सफलता मिल रही है। हलपति लोग ग्रामपचायत की योजना म प्रतिदिन उत्साह प्रकट कर रहे हैं। कहीं-कहीं उन्हे ग्रामपचायतो के अध्यक्ष बनकर गाँव की सेवा करने के सुअवसर भी प्राप्त हो रहे हैं। उनकी गति विकास की ओर है। आश्रमशालाएँ, छात्रालय, बालवाडियाँ आदि काय हलपतिया को शिक्षा की ओर अभिमुख कर रह हैं। अब हलपतियो की मजदूर-मडलियाँ और सेविंग्स मडलियाँ स्थापित करने का कार्य भी शुरू कर दिया गया है। इन्ही सब कार्यों के लिए सन् १९६१ मे 'हलपति सेवा सघ' नामक सस्था स्थापित की गयी। जिला पचायत की ओर से तीन तहसीलो मे हलपतियो क लिए सर्वोदय-योजनाएँ चालू कर दी गयी हैं। हरेक योजना मे २० स ३० गाँव समाविष्ट हैं। उनका संचालन हलपति सेवा सघ करता है।

शिक्षा-क्षेत्र म रानीपरज सेवासभा ने आग्रह रखा है कि शिक्षा की सारी प्रवृत्तियाँ नयी तालीम पद्धति मे ही कार्यान्वित की जायँ। सेवासभा द्वारा नयी तालीम की विभिन्न कक्षा की सस्थाएँ चलायी जाती हैं वे निम्न प्रकार हैं

रानीपरज सेवासभा ने जिले की सभी तहसीलो मे जगलवासी अनुसूचित जातियो के कुमारा तथा कयाओ के छात्रालय शुरू किये हैं। इन छात्रालयो के बालकों को गाधी-विचार के सस्कार एवं राष्ट्रीय जीवन का वातावरण देने की कोशिश की जाती है। जिन गाँवो मे छात्रालय स्थापित किये जाते हैं, वहाँ की पाठशालाएँ बुनियादी बनायी जायँ ऐसा प्रयत्न किया गया है, जिसम छात्रा का उद्योगमय राष्ट्रीय शिक्षा का फायदा पहुँचे। सुरत जिले म आजकल रानीपरज सेवासभा सचालित कुमारों के

१७ और कन्याओ के ११ छात्रालय हैं। इनका फायदा १०६५ छात्र तथा ५५५ छात्राएँ उठा रही हैं।

भविष्य म आदिमजाति म शिक्षा का अधिक प्रसार हो सके इस वास्ते आश्रमशाला नामक योजना सरकार न स्वीकार की। इस योजना म बुनियादी शिक्षा खेती सघन उद्योग के लिए जमीन और गृहो की सुविधा दी गयी थी। रानी परज सेवासभा आदिवासी विभागो म १८ आश्रमशालाएँ चल रही है। और इनम ८०० छात्र तथा ७६० छात्राएँ नयी तालीम की शिक्षा ले रही ह।

गुजरात नयी तालीम सघ

बुनियादी शिक्षा के सुरत जिले मे एवं गुजरात के दूसरे जिला म मिले हुए अनुभवो के फलस्वरूप गुजरात म गुजरात नयी तालीम संघ नामक संस्था कायम की गयी। गुजरात नयी तालीम सघ ने राज्य मे ठीक प्रकार स बुनियादी शिक्षा की उन्नति हो तथा सरकार के काम भी शुद्ध माग पर प्रगति करें इसलिए अनेक प्रकार के प्रयत्न किये। सघ ने नयी तालीम के सिद्धान्तो के अनुसार बालवाडियो की हलचल शुरू की और सैकडो स्त्री-पुरुषो को उसकी तालीम देने के शिविर चलाये। १४ शिविरो म कुल मिलाकर १६४ शिक्षिकाएँ और १७४ शिक्षको को तालीम दी गयी है।

बुनियादी शिक्षा की शालाओ की सख्या बढने पर गुजरात नयी तालीम सघ ने सरकार को उत्तर बुनियादी शिक्षा की योजना बनाने के लिए एक समिति नियुक्त करने की सिफारिश की उसके फलस्वरूप गुजरात राज्य ने उत्तर बुनियादी योजना स्वीकृत की। वेडछी तथा मढी आश्रमो के उत्तर बुनियादी विद्यालयो म एवं गुजरात के दूसरे विभागो के प्राप्त अनुभव यह योजना बनाने मे बहुत ही सहायक साबित हुए हैं।

इस प्रकार राज्य-स्वीकृत उत्तर बुनियादी योजना बनने के कारण सुरत जिले म ८ कन्याओ तथा ११ कुमारो के—कुल मिलाकर १९ उत्तर बुनियादी विद्यालय हैं। और उनम ५६१ कन्याएँ तथा ८८९ कुमार पढ रहे हैं। १४८ छात्राएँ और २४१ विद्यार्थी उत्तर बुनियादी शालान्त परीक्षा म उत्तीर्ण हुए हैं।

गुजरात के दूसरे विभागों मे भी लोग इस उत्तर बुनियादी योजना म दिलचस्पी ले रहे हैं। आजकल राज्य मे ४७ से अधिक उत्तर बुनियादी विद्यालय हैं।

आदिवासियों की उच्च शिक्षा

उत्तर बुनियादी शिक्षा पूर्ण करनेवाले कुमार और कन्याओ मे से कई उच्च स्तर पर देश की शिक्षा और रचनात्मक प्रवृत्तियाँ करने की योग्यता पा सकें

इसलिए उनको निम्नांकित दो उच्च शिक्षा की संस्थाओ मे अधिक पढाई के लिए भेजा जाता हैं—

१. गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद

२. लोकभारती, सणोसरा

बुनियादी शिक्षा

सुरत और वलसाड जिलो म कुल मिलाकर आजकल ६२५ बुनियादी शालाएँ चल रही हैं। इन जिलो म एव गुजरात के दूसरे कुछ जिलो में बुनियादी शिक्षा का काम ठीक ढग स चल रहा है। शिक्षक अपने कार्यो म श्रद्धा रखनेवाले हैं। और आतरिक जीवन म भी खादीधारी और वस्त्र-स्वावलम्बी हैं। यह सब होते हुए भी राज्य की सभी बुनियादी शालाएँ सतोषकारक रूप मे चल रही हैं ऐसा हम नही कह सकते। इस परिस्थिति को देखकर गुजरात नयी तालीम संघ ने एक समिति नियुक्त की थी। उसने राज्य की १५२ बुनियादी शालाओं तथा २६ ट्रेनिंग कालेजो की मुलाकात ली और ये सस्थाएँ किस प्रकार के दर्दो से पीडित थीं उसकी जाँच-पड़ताल की और उसके फलस्वरूप समिति ने गुजरात सरकार के सम्मुख अपनी रिपोर्ट पेश की। इस रिपोर्ट की अधिकाश सिफारिशें गुजरात सरकार ने स्वीकार की हैं। इसके फल-स्वरूप गु० न० ता० सघ ने 'घनिष्ठ नयी तालीम योजना' नामक योजना दी है, जो इन बुनियादी सस्थाओ को ठीक रास्ते पर लाने की कोशिश करेगी। और उसके पालन में गु० न० ता० संघ सरकार को हरेक प्रकार से सहयोग दे रहा है। घनिष्ठ नयी तालीम योजना के मुख्य तत्त्व निम्नांकित हैं

१. बुनियादी शिक्षको का उद्योगकौशल अपूर्ण होने के कारण उनके लिए बुनाई तथा धुनाई मोढिया के खास वर्ग चलाना।

२. बुनियादी शालाओ के साधन-सरंजाम भलीभाँति न होने के कारण खास बढइयो के द्वारा दुरुस्त करा लेना।

३. शालाओ के पास साधन विद्यार्थियो की सख्या के मुकाबिले मे पर्याप्त न होने के कारण, उसे पर्याप्त मात्रा मे मोल लेना।

४ धुनाई से पूनी बनाने की क्रिया कच्ची उम्र के बालको के हाथो स अच्छी नही बन पाती और अब अधिक सफल पीजण मोढिया उपलब्ध होने के कारण पाठशालाओ में उन्हे दाखिल करना, और शिक्षको को उसकी तालीम देने के लिए खास वर्ग चलाना।

५. शिक्षा-विभाग का साधन-सरजाम का खर्च हल्का करने के लिए परखे बालक स्वयं खरीद लें, ऐसा करना। इसका खर्च सर्व सम्बन्धित वर्गों में नीचे के अनु-सार बाँट देने का है

(क) मूल्य के ५० % खादी-कमिशन अपने नियम अनुमार दें।
(ख) मूल्य के २५ % सरकार अथवा जिला तथा तहसील पंचायत दें।
(ग) मूल्य के २५ विद्यार्थी खर्च करें।

६ विद्यार्थियों के उद्योग का फल—खादी—उनको वस्त्रस्वावलम्बी बनाने के लिए दे देना। परन्तु व कच्चा माल—कपास—घर स लायें या खरीद लें।

७ पाठशालाओं म काते हुए कुल सूत का बुनाई अगर विद्यार्थी न कर सकें तो जिल्हा खादी-संस्थाएं बुनाई कर देने म मदद करें। भविष्य म जिला पंचायतों क द्वारा जुलाहा को रखकर प्रबंध करें।

८ इस घनिष्ठ नयी तालीम योजना क व्यवहार म गु० न० ता० संघ हरेक जिले म तालीमवाले मार्गदर्शकों को नियुक्त करके सरकार व शिक्षा-विभाग को सहयोग दे रहा है।

९ सरकार की आर्थिक हालत तंग होने के कारण इस योजना के काम म अ०भा० खादी और ग्रामोद्योग कमिशन नीचे लिखी मदद दे ऐसा प्रबन्ध किया गया है

१ मार्गदर्शकों का खर्च।
२ चरखे की कीमत का आधा हिस्सा।
३ शिक्षकों के वर्ग जो गु० न० ता० संघ चलाता है उनका खर्च।

गु० न० ता० संघ अब तक खादी उद्योगवाली बुनियादी पाठशालाओं का काम ही हाथ म ले सका है। खेती शालाएँ एवं अध्यापन मंदिरों के कार्यसुधार की योजनाएं यथासमय आगे हाथ मे ली जायँगी।

भूतकालीन बम्बई राज्य न सन् १९४९ स सर्वोदय विकास-योजना क नाम से ख्यात गांधी रचनात्मक प्रवृत्तियां करनेवाली योजना बनायी थी। इस योजना के अनुसार राज्य के हरेक जिले म करीब ५० गाँवों के सघन क्षेत्र म काम चल रहा है। उसम खेती गोपालन खादी आदि ग्रामोद्योग ग्रामसफाई गाँव के रास्ते नशाबंदी आदि कार्य गांधी-पद्धति के अनुसार चलाये जाते है। इसके अतिरिक्त योजना के संचालक अपने क्षेत्र म जितनी शालाओं के संचालन की इच्छा रखें उतनी शालाएं उन्हें सुपुर्द की जाती है। उन्हें इन शालाओं को बुनियादी शालाएं बना देना पड़ता है।

रानीपरज सेवासभा की ओर स सुरत तथा वलसाड जिला म ५ सर्वोदय केन्द्र अब चल रहे है। और इनमें ७८ बुनियादी शालाएं तथा १८ बालवाडियाँ चलायी जा रही हैं।

गांधी विद्यापीठ और उसकी पृष्ठभूमि

गुजरात प्रदेश के उत्तर बुनियादी विनीत आजकल गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद म तथा लोकभारती ग्रामविद्यापीठ, सणोसरा मे उच्च शिक्षा के लिए जाते हैं। उनके लिए अपने ही प्रदेश मे उत्तम बुनियादी शिक्षा की सुविधा मिलनी चाहिए ऐसा विचार कई वर्षों से प्रकट होता रहा है।

सन् १९६७ मे वेडछी आश्रम के नजदीक ११० एकड जमीन खरीदकर गाधी विद्यापीठ का प्रारम्भ किया गया है।

(१) गाधी विद्यापीठ के मुख्य पदाधिकारी

१ कुलपति आचाय काकासाहेब कालेलकर

२ उपकुलपति आचार्य जुगतराम दवे

३ महामात्र श्री अल्लु शाह

(२) गाधी विद्यापीठ की प्रबन्ध समिति

१ श्री दिलखुश भ दीवानजी अध्यक्ष — २ श्री मोहन परीख उपाध्यक्ष
३ श्री जुगतराम दवे — ४ श्री झीणाभाई दरजी
५ श्री चीमनलाल भट्ट — ६ श्री भूलाभाई पटेल
७ श्री नानुभाई पटेल — ८ श्री दयाराम पटेल
९ श्री मुकुंदभाई चौधरी — १० श्री छोटुभाई भारती
११ श्री झीणाभाई देसाई स्नेहरश्मि — १२ श्री अन्नपूर्णा महेता
१३ श्री सरोजबहन शाह — १४ श्री हृषत्कान्त वोरा
१५ श्री अल्लु शाह मंत्री

(३) विद्यापीठ का क्षत्र

गाधी विद्यापीठ अपनी आवश्यकता और सुविधा के मुताबिक विविध विषयो के महाविद्यालय स्थापित करेगा या सयोजित करेगा। आजकल की तात्कालिक आवश्यकता निम्न विषयो के महाविद्यालयो की है

१ समाजशास्त्र — २ शिक्षाशास्त्र

३ य [illegible] — ४ कृषि-गोपालन

५ वनशास्त्र तथा वनविद्या

६ कृषि और यंत्रोद्योगों के सीमित (लघु) समय के पाठ्यक्रम भी साधारण विद्यार्थियो के लिए।

७ विविध संस्थाओ और विभागो के लिए विशिष्ट तालीम के लिए भी वर्ग निकालना जरूरी रहेगा।

य विद्यालय तथा तालीम केन्द्र वेडछी मे तथा सुरत जिले के अलग-अलग विभागो म सुविधा के अनुसार स्थापित करने का ख्याल है।

(४) विद्यापीठ के सिद्धान्त

गांधी विद्यापीठ के प्रधान सिद्धान्तों की कल्पना इस प्रकार की गयी है

१ विद्यालयो के स्थल ग्रामक्षेत्रो म ही रह, एसा आग्रह रखना।

२ सभी विद्यालय एक ही स्थल पर रहने की अपेक्षा सुविधा क मुताबिक सुरत, वल्साड जिलो के अलग-अलग क्षेत्रो म हो।

३ बोधभाषा गुजराती रहेगी। हरेक विषय की आवश्यकता के अनुसार राष्ट्र-भाषा, संस्कृत आदि संस्कार भाषाएँ, भारत क विविध राज्यो की भाषाएँ, पूरब और पश्चिम की अन्य भाषाओ की पढाई की सुविधा करना।

४ अक्सर, इसी प्रदेश के ही विद्यार्थियो को प्रवेश मिलेगा। हालांकि गुजरात, भारत के अन्य विभागो एवं विदेशो के जिज्ञासु विद्यार्थियो को भी अपनी सुविधा के अनुसार प्रवेश दिया जायगा।

५ छात्रालय-जीवन विद्यापीठ के इन विद्यालयो का आवश्यक अंग माना गया है।

६ गुरु-शिष्यो के सम्बन्ध घनिष्ठ निकट हो, इसलिए विद्यार्थियो की सीमित सख्या को ही प्रवेश दिया जायगा।

७ विद्यापीठ के विद्यालयो मे जनमिलन और जनसेवा के लिए प्रचुर अवकाश रहेगा। प्रत्येक विद्यालय के मुख्य विषयो के उपयोगी संपर्क और सेवा के कार्यक्रमो की योजना की जायगी।

८ विद्यापीठ के सभी विद्यालयो मे शरीरश्रम और उद्योगो का वातावरण रहेगा। इसके लिए भी हरेक विषय के अनुरूप योजना रहेगी।

९ इस विद्यापीठ के सभी विद्यालयो मे विज्ञान का उच्च वातावरण रहेगा। हरेक विषय के अनुरूप विज्ञान की आयोजना लागू की जायगी।

१० विद्यापीठ की आर्थिक समस्या यथाशक्ति स्वावलम्बन पर एव देश की जनता की और सस्थाओ म मिलनेवाले और राज्य की ओर से सप्रेम और बन्धनमुक्त मिलनेवाले अनुदानो और भेंटो पर निर्भर रहेगी।

(५) प्रथम महाविद्यालय

गांधी विद्यापीठ का प्रथम महाविद्यालय—समाजशास्त्र महाविद्यालय—का प्रारम्भ ता २२-६-'६७ को वेडछी मे कुलपति काकासाहेब कालेलकर के मंगल प्रवचन से हुआ।

समाजशास्त्र का अभ्यासक्रम, पाठ्यक्रम चार वर्ष का रखा गया है। प्रथम वर्ष मे ४८ विद्यार्थियों को प्रवेश दिया गया था। इनमे ३४ विद्यार्थी और १४ विद्यार्थिनियाँ थीं।

विद्यार्थियों मे २५ उत्तर बुनियादी, विनीत और २३ सामान्य माध्यमिक शालान्त भाई-बहनें थी।

इसमें आसपास के आदिवासी प्रदेश मे से ४३ विद्यार्थी थे। और गुजरात के दूसरे विभागो के ५ विद्यार्थी।

(६) समाजशास्त्र महाविद्यालय के अध्यापक

१ श्री हर्षकान्त वोरा, M Sc—आचार्य
वेडछी आश्रम म शिक्षा और भूदान-कार्य का २० वर्ष का अनुभव।

२ ,, नानुभाई शाह, M A , B Ed
वेडछी आश्रम म शिक्षा का १० वर्ष का अनुभव।

३ ,, शिवाभाई राठोड, M A (गुजरात युनिवर्सिटी)

४ ,, गमुभाई भथियादरा, M A (गुजरात विद्यापीठ)

५. ,, रमेशचन्द्र त्रिवेदी, कृषिस्नातक (लोकभारती)

६ ,, रामजीभाई पटेल

७ ,, इंद्रजित ठाकर, सगीत मध्यमा (जीवनभारती, सुरत के संगीत शिक्षक)

८ ,, विनोदचंद्र महेता, B Sc (Agri)

मानद अध्यापक

९ श्री दिनुभाई पारेख　　　　　१० श्री रमणभाई चौधरी

(७) समाजशास्त्र महाविद्यालय की प्रबन्ध समिति

१ श्री दिनखुश व दीवानजी, अध्यक्ष

२. ,, मोहन परीख　　　　　३ श्री भल्लु शाह

४ ,, हर्षकान्त वोरा, सयोजक

(८) विद्यापीठ को आर्थिक मदद

गाधी विद्यापीठ की स्थापना जल्दी स हो, ऐसी भावना प्रदर्शित करने के लिए ८० कार्यकर्ताओ और मित्रो ने रु० ५,००० भेंट किये। जिले की जंगल कामदार मडलियो ने रु० १,१५,००० भेंट किये हैं। सुरत जिला पचायत ने रु० २५,०००, वालोड तहसील पचायत ने रु० ५,००० भेंट किये हैं।

गुजरात सरकार उत्तम बुनियादी के प्रयोग को प्रोत्साहित करने का विचार कर रही है। विद्यापीठ के पिछडे वर्ग के विद्यार्थियो को छात्रवृत्तियाँ और शिक्षा-शुल्क सरकार के पिछडी जातियो के कल्याण विभाग की ओर से देने का विचार-विमर्श चल रहा है।

सम्पादक के नाम चिट्ठी

स्वस्थ मूल्यांकन

[नयी तालीम की सफलता के लिए स्वस्थ मूल्यांकन की अनिवार्यता इसका विषय है। इसमे सन्देह नहीं कि यदि मूल्यांकन पूर्ण और स्वस्थ हो तो नयी तालीम के लिए हितकर होगा, परन्तु आज उसकी गुंजाइश है क्या ? — स०]

आज हम संक्रमण की स्थिति म स गुजर रहे हैं। हमारे आचार और विचार दोनो पर पश्चिम का रंग अपनी पूरी गहराई क साथ चढ़ता जा रहा है। हमारे अपने सिद्धान्त और अपने अध्यास म आज हमसे कितनी दूर छूट गये है—उन्हें पीछे घूमकर देख सकें इतनी भी फ़ुरसत हमारे पास रह नही गयी है। एक तरफ तो देश की आर्थिक सामाजिक और नैतिक व्यवस्था बिखरती चली जा रही है और दूसरी ओर हम इन वास्तविकताओ की ओर स आँखें मूँदे सरपट आगे दौडे जा रहे है दुनिया क उन चद देशो की पांत मे शामिल होने के लिए जो हमारी पकड से काफी आगे हैं। हम यह सोच भी नहीं पाते कि हमारी दुरवस्था हम आगे दौडने मे कहाँ तक बाधक होगी। ऐसी परिस्थिति म यदि हमारी बनियादी तालीम को आज का प्रबुद्ध जनमानस अपना सहयोग नही देता अथवा दे नही पाता तो यह कोई अस्वाभाविक नहीं है।

आज ज्ञान शब्द अपने मूल अर्थ से काफी दूर जा पडा है। आज का ज्ञान भौतिक सकपूर्ण शिलावत् अवास्तविक प्रवृत्तिप्राण और यशोपजीविका का साधन बनकर रह गया है। असल मे यह ज्ञान नहीं ज्ञानाभास है और इस प्रकार के ज्ञान से युक्त व्यक्ति ज्ञानी नहा ज्ञानशिल्पी है—अपने स्वरूप को भूलकर छाया को ही मैं समझनेवाला। इसी कारण जब प्रबुद्ध समुदाय क समक्ष शिक्षा की नयी प्रणाली की

चर्चा होती है तब इसे वितर्कों द्वारा असंगत बताकर काट देने की ही चेष्टा की जाती है, अथवा अशक्य कहकर इससे मुंह मोड़ लिया जाता है।

समाज के इस प्रबुद्ध वर्ग के समक्ष शिक्षा की नयी प्रणाली को लाना ही है, उन्हींके तर्कों के माध्यम से इसकी उपादेयता और समर्थता सिद्ध करनी है और उन्हें विविध उपायों से सक्रिय सहयोगी बनाना है। इसके लिए सुलझे हुए मानस के व्यक्ति चाहिए, नयी तालीम के तत्त्वों को जिन्होंने अच्छी तरह जान लिया है और जो अपने जीवन में इन तत्त्वों को समाहित करते हैं। लेकिन जिन्होंने नयी तालीम को ठीक से समझा नहीं है, जो ज्ञानी नहीं, अपितु ज्ञानाभास-प्राप्त हैं और वितर्क-प्रिय हैं, जो अपनी भावना को वातानुकूलित करने में सक्षम हैं, जिनमें सिद्धान्त के प्रति निष्ठा और दृढ़ता नहीं है, जिन्होंने अपने को ऐसे रंग में रंग रखा है कि जिस पर सब प्रकार का रंग चढ़ सकता है—ऐसे व्यक्ति शिक्षा में और वह भी नयी प्रणाली में कदापि नियुक्त नहीं किये जाने चाहिए। परन्तु आज हम देखते हैं कि इस क्षेत्र में लगभग ८० प्रतिशत व्यक्ति इसी श्रेणी के हैं। नयी तालीम क्या है? इसकी विशेषता क्या है? इसकी आवश्यकता क्यों पड़ी? इसके पीछे गांधीजी की भावना क्या थी? आचार-विचार और वातावरण के लिए यह प्रणाली किस ओर इंगित करती है?—यह सब नहीवत् जानते हुए भी आज नयी तालीम के शिक्षा-केन्द्रों में ऐसे ही लोग भरे पड़े हैं। नयी प्रणाली के प्रति उनकी निष्ठा नहीं, सिद्धान्त में दृढ़ता नहीं, लेकिन जीविका चलानी है, संस्था चलानी है, इसलिए 'नहीं मामा से काना मामा अच्छा' समझकर ऐसे लोग धड़ल्ले से इसमें आ रहे हैं अथवा उन्हें आने दिया जा रहा है। उन्हें प्रवेश देते समय हम यह सोच नहीं पाते अथवा सोचने का प्रयत्न नहीं करते कि ये हम नयी तालीम से कितनी दूर ले जाकर फेंक देंगे। हमारा चुनाव यों गलत हो जाता है जो हमें आगे नहीं, पीछे घसीट ले जाता है। और उसमें भी जब ऐसे अनिष्ट व्यक्ति नयी तालीम की संस्था के वरिष्ठ यानी अधिकार-सम्पन्न होते हैं, तब तो फिर कहना ही क्या है?

आज की चल पड़ी नगरीय विचार-धारा के अनुसार परिवार का मतलब है—व्यक्ति स्वयं, माता-पिता, पत्नी-बच्चे, भाई-बहन बस। पड़ोसी हमारे बेगाने हैं। साथ में रहनेवाले, काम करनेवाले पराये हैं। हमारा इनसे कोई मतलब नहीं, वास्ता नहीं। इनसे कोशिश हम उनसे सम्पर्क तक रखना नहीं चाहते। हमारी इस नयी प्रणाली में यह वृत्ति संभव नहीं। दस कार्यकर्ता होंगे तो सभी भाई-भाई। सभी एक-दूसरे के दुख-सुख में भागीदार, सभी एक-दूसरे के सहयोगी—निष्ठावान—विश्वासपात्र। लेकिन आज की संस्थाओं में इस परिवार-भावना का सर्वथा अभाव

दीखता है। यो ऊपर से भाई-बहन-मामा दीखते हैं किन्तु अन्दर टटोलने पर साफ दीख जाता है कि यह तो सम्बन्धो का नकाबमात्र है। आड़े वक्त पर नकाब उतर जाता है और व्यक्ति का असली रूप सामने आ जाता है। एक-दूसरे पर विश्वास का आत्यंतिक अभाव नयी तालीम के लिए कितना विघातक है यह तो अनुभवी ही बता सकते हैं। और यही नही क्रम-क्रम से यह परिवार राजनीति का अड्डा बनता जा रहा है। छाया म पृष्ठपोपण—समर्थन—सहयोग—आश्रय सभी पलते हैं। प्रत्यक्ष म दलमुक्त रहने की शपथ लेते हैं लेकिन अवसर आने पर चूकते नही, सहयोग-सम्पर्क करते हैं और दलीय भावना को विकसित करने की भरसक चेष्टा करते हैं नकाब मे रहकर।

हमारे क्षेत्र म हम अच्छे-बुरे सनिष्ठ-अनिष्ठ ज्ञानी-अल्पज्ञ शिल्पी-अशिल्पी, सबको प्रवेश देते हैं क्योंकि हम मानवमात्र पर विश्वास करते हैं (यानी हम उस समय स्निग्ध भावलोक म रहते है)। लेकिन अपनी हैसियत और सुविधाएँ हमारे ध्यान मे नही रहती। हम अपने साथियो-सहयोगियो को नयी प्रणाली की दिशा म सम्यक विकास के लिए प्रेरित नही कर पाते। क्योंकि हमारे पास उनके शिक्षण प्रशिक्षण की पर्याप्त सुविधाए नही होती। आर्थिक तगी और वयक्तिक भाव-सकीर्णता के कारण हमारे कदम आगे नही बढ पाते। केवल अपने यहाँ के प्रयोगो का अनुभव कितना मसाला जुटा पायेगा?

सस्थाओ मे प्रयोग की स्वतत्रता नहीं रहती केवल कतिपय गण्यमान्य सस्थाओ को छोडकर। यहा भी नकाब पडा रहता है। कहने के लिए प्रयोग की स्वतन्त्रता रहती है किन्तु कदम-कदम पर अवरोध बना रहता है। संस्था के प्रधान या मुखिया की हर बात म अनुकूलता वाछनीय होती है। अमुक बातें उनके मनोनुकूल हो तभी अमल मे लाना चाहिए अन्यथा खतरे की घटी बजने का भय बना रहता है। यानी व्यक्ति-पूजा महत्त्व पाने लगी है। आर्थिक अभाव और उपकरणा की अपर्याप्तता तो इसमें मुख्य रूप से बाधक होती ही है।

नयी प्रणाली मे लगे साथियो को निरन्तर प्रेरित करने उन्हे योग्य निर्देशन देने प्रयोग म रुचि लेकर बढावा देने समस्त आवश्यक उपकरण और सहायता उपलब्ध कराने के लिए सक्षम और दृष्टि-पूत व्यक्ति सस्था मे होने चाहिए। उनके पास काफी समय हो सुदीर्घ अनुभव हो अन्य उत्तरदायित्वो मे वे पूर्णत मुक्त हो। लेकिन आज ऐसे व्यक्ति विरले ही दीखते हैं। हमारे देश म न तो क्षमता का अभाव है और न योग्य निर्देशको का। लेकिन वे प्राय समयाभावी और अन्य अनेकानेक उत्तरदायित्वो से घिरे रहते हैं जिस कारण प्रयोगो को स्वस्थ निर्देशन नही मिल पाता।

वैयक्तिक हित-विरोध, मानापमान, पद-लोलुपता, दूसरो के प्रति हीन भावना आदि ऐसे कुछ तत्त्व हैं, जो नयी प्रणाली की भावना को तोडते हैं, दिल को दिल से जोडते नही। फलत: बिखराव पैदा होता है। हम भी अपना मूल्यांकन करते नही और इन विघातक तत्त्वो से विरत होकर अपने कर्तव्य निभाते नही। बस, आम नागरिको की तरह हम भी वितर्क मे फँसकर कार्य म जडता पैदा करते हैं। आपस की निन्दा-स्तुति स उठकर हम अपने काय म तन्मय नही हो पाते।

अत आवश्यक है कि हम दूसरो का नही, अपना स्वस्थ मूल्यांकन करें, एक-दूसरे के प्रति विश्वास और सद्भावना पैदा करें, पुष्ट करें, प्रयोग के लिए आवश्यक सुविधाएँ मुहैया करें और प्रयोगकर्ताओं को प्रयोग की स्वतंत्रता दें (व्यक्तिपरक अवरोध न रखें), कमलपत्र की तरह अपने को और संस्थाओ को राजनीतिक जल-स्पर्श से सर्वथा मुक्त रखें, सफल-सक्षम-तत्त्वज्ञाता व्यक्तियो को जुटायें (तत्त्वज्ञाता से मेरा मतलब नयी प्रणाली की भावना को समझनेवाले व्यक्ति से है। तो ही नयी प्रणाली शीघ्र गति प्राप्त कर सकती है, अपने सीमित दायरे से निकलकर खुले मैदान मे प्रतिष्ठापित हो सकती है, विकास की दिशा ले सकती है।

—काली प्रसाद आलोक

तरुण शांति-सेना का राष्ट्रीय सम्मेलन

दिनांक २६, २७ मई '६६, स्थान बम्बई

भारतीय तरुण शांति सेना (इण्डियन यूथ पीस कोर) का प्रथम राष्ट्रीय सम्मेलन दिनांक २६ और २७ मई, '६६ को बम्बई मे होगा। राष्ट्रीय प्रश्नो मे दिलचस्पी रखनेवाले सभी छात्रो के लिए सम्मेलन खुला रहेगा। तरुणो की आकाक्षाओं को अभिव्यक्ति देने तथा छात्र-आन्दोलन को विधायक मोड देने के कार्यक्रमो की चर्चा होगी।

यह स्मरण रहे कि तरुण शांति-सेना को जनतंत्र, राष्ट्रीय एकता, धर्म-निरपेक्षता और विश्व-शान्ति के मूल्यो पर निष्ठा है और उसम जाति, सम्प्रदाय या स्त्री-पुरुष का कोई भेदभाव नही माना जाता।

- प्रवेश शुल्क रु० ५—००
- रहने की मुफ्त सुविधा
- दो दिन का भोजन-खर्च रु० १०—००
- शरीक होनेवाले के लिए रेल-रियायत की सुविधा।

प्रवेश-शुल्क भेजें तथा सम्पर्क करें

—सचालक, तरुण शांति-सेना, वाराणसी-१

स्थायी भाव और चरित्र

रामसूरत लाल

स्थायी भावो का आधार मूल प्रवृत्ति तथा संवेग है अर्थात् यह एक संवेग-जनित भाव है। अत स्थायी भाव की परिभाषा हम इस प्रकार दे सकते हैं— "किसी भी वस्तु के प्रति स्थायी भाव तभी हो सकता है जब कि हमारी मूल प्रवृत्तियाँ तथा संवेग उस वस्तु के चारो ओर स्थायी रूप से सुसंगठित हो जायें।" उदाहरणार्थ, बालक का पिता के प्रति आदर का स्थायी भाव। बालक अपने पिता का अपमान नही सह सकता। पिता से बार-बार प्रेम प्राप्त होता है। उसकी सुरक्षा की भावना तथा अन्य मूल प्रवृत्तियों की सन्तुष्टि का कारण पिताजी हैं। अत पिता को किसी कष्ट म देखकर बालक दुःखी हो जाता है।

स्थायी भाव का निर्माण

बालक जन्म के बाद जब बडा होने लगता है तो वह वातावरण के सम्पर्क मे अधिक आने लगता है और उसकी विचार-शक्ति मे विकास आने लगता है। वह वस्तुओं के बारे मे सोचने लगता है। मूल प्रवृत्तिया की सतुष्टि के लिए वह वातावरण के सम्पर्क मे बार-बार आने लगता है। अनुभव के आधार पर वस्तुओ के प्रति संवेगात्मक विचार सुसगठित रूप धारण कर लेते हैं और स्थायी भाव बन जाता है। उदाहरण के लिए बालक म देशभक्ति का स्थायी भाव तभी निर्मित होगा जब कि उस बार-बार अपने देश की महत्ता का ज्ञान कराया जाय। यह बताया जाय कि उसके देश की भौगोलिक स्थिति कितनी अच्छी है तथा उस देश के महा-पुरुषो के वीरतापूर्ण कार्य का वर्णन हो। इससे बालक का प्रेम अपने देश के प्रति बढ़ता जायगा और वह स्थायी रूप धारण कर लेगा। छोटे से लेकर ऊँचे स्थायी भावो का निर्माण इसी प्रकार होता रहता है।

स्थायी भावों में अस्थिरता नही होती। संवेग तो अस्थिर होते हैं, परन्तु जब स्थायी भाव बन जाता है तो वह शीघ्र समाप्त नही होता। स्थायी भाव के कारण मन्दिर के पास पहुँचने हो एक हिन्दू नतमस्तक हो जाता है।

नैतिकता के प्रति स्थायी भाव

अभी तक हमने देखा कि हमारे स्थायी भाव स्थूल पदार्थों की ओर थे, जो कि अनुभव के द्वारा स्वत होते रहते हैं। परन्तु शिक्षा की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि बालक के अन्दर नैतिक गुणों के प्रति स्थायी भाव उत्पन्न हो जायें। हमने ऊपर देखा कि किसी भी वस्तु के प्रति स्थायी भाव उत्पन्न करने के लिए बालक को उसका स्पष्ट ज्ञान होना चाहिए। बालक 'सत्यता' को ठीक से नहीं समझ पाता है। परन्तु अध्यापक का कर्तव्य है कि वह पहले हरिश्चन्द्र की कहानी बालकों को सुनायें। अन्त में यह बतायें कि हरिश्चन्द्र इसी गुण के कारण इतने महान् हुए। इस प्रकार बालक 'सत्यता' से प्रेम करने लगेगा और कुछ समय में 'सत्यता' के प्रति स्थायी भाव बन जायगा। इसी प्रकार यह भी ध्यान रखना चाहिए कि बालक का स्थायी भाव गुणों से हो, केवल व्यक्ति-विशेष से नहीं। पहले स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाना चाहिए। उदाहरणार्थ, श्री लालबहादुर शास्त्री जनता के प्रिय थे। बच्चों को समझाना चाहिए कि ईमानदारी' के गुण के कारण शास्त्रीजी इतने महान् बने। इस प्रकार बालक को ईमानदारी के प्रति प्रेम का स्थायी भाव बनेगा। बेईमानी की ओर घृणा का स्थायी भाव निर्मित होगा। इस प्रकार शिक्षक बालक को नैतिकता के विकास में सहायक हो सकता है।

आत्मगौरव का स्थायी भाव

व्यक्ति के जीवन में आत्मगौरव का स्थायी भाव सर्वोच्च स्तर का स्थायी भाव है। इसके निर्मित हो जाने पर बालक का आचरण इसी पर निर्भर हो जाता है। उसका व्यवहार इसीके द्वारा संचालित होने लगता है। मैग्डूगल ने इसे 'सभी स्थायी भावों का स्वामी' कहा है क्योंकि सभी स्थायी भाव इसीके चारों ओर संगठित हो जाते हैं।

आत्मगौरव के स्थायी भाव का निर्माण भी उसी प्रकार होता है, जैसे उपर्युक्त स्थायी भाव बनते हैं। हमने देखा कि किसी भी स्थायी भाव के निर्माण में सम्बन्धित वस्तु या गुण की जानकारी सर्वप्रथम होनी चाहिए। अतः बालक को 'आत्म' का ज्ञान होना आवश्यक है। यह अनुभव एवं उम्र की वृद्धि के साथ होता है। पहले बालक का ज्ञान शून्य होता है। 'जेम्स' का कथन है कि बालक ज्यों-ज्यों बढ़ता है, संसार की वस्तुओं का उसे ज्ञान होने लगता है। बालक देखता है कि वातावरण का उस पर प्रभाव पड़ता है। उसे सर्दी लगती है। पर उससे बचने के लिए वह गर्म कपड़े पहनता है। अर्थात् वह यह समझता है कि वह भी वातावरण के प्रभाव से बचने का प्रबन्ध कर सकता है। उसे अपने अस्तित्व का ज्ञान होने लगता है। वह समाज में अन्य व्यक्तियों के सम्पर्क में आता है। बालक जो भी कार्य करता है,

लोग उसकी आलोचना करते है। कुछ उसकी निन्दा करते है, कुछ प्रशसा। जिस पर बालक विश्वास करता है या जो उसके बहुत निकट है, उनकी बातों पर वह बहुत ध्यान देता है। यदि उसके शिक्षक और अभिभावक उसे एक ईमानदार बालक कहने लगें तो इस ईमानदारी का सम्बन्ध उसके 'आत्म' से हो जायेगा। वह अपने निकट के लोगो में इस गुण से वचित होने मे डरेगा और सतर्क रहेगा।

इस प्रकार बालक के अन्य स्थायी भाव एव सवेग उसके 'आत्म' के चारो ओर सुसगठित होने लगते हैं। तभी आत्मगौरव का स्थायी भाव जाग्रत हो जाता है। व्यक्ति इस आत्मगौरव की रक्षा करता है। कही उसके आत्मसम्मान को धक्का न लगे, इसमे वह सतर्क रहता है। बालक अपने आत्म' को एक आदर्श आत्म समझने लगता है तथा उसकी रक्षा करता है। समाज ने बालक के जिन गुणो की प्रशसा की उसका सम्बन्ध आत्म से होने ही बालक एक आत्म आदर्श का अनुभव करता है। वह इस आदश की रक्षा हेतु उन गुणो से वचित नही होना चाहता।

स्थायी भाव और शिक्षा

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो गया कि स्थायी भावो का जीवन मे कितना महत्त्व है। प्रारम्भ मे बालक का जीवन मूल प्रवृत्तियो से सचालित होता है, किन्तु वह ज्यो ज्यो बडा होता है उसका व्यवहार स्थायी भावो से प्रभावित रहता है। स्थायी भाव अनुभव से निर्मित होते हैं। शिक्षक का यह कर्तव्य है कि बालक मे नैतिक गुणो के प्रति स्थायी भाव उत्पन्न करे। उसे चाहिए कि बालक मे बडो के प्रति आदर भाव रखने का स्थायी भाव उत्पन्न करे। इसके लिए उसे इतिहास व साहित्य मे उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए। महापुरुषो के गुणो से प्रेम कराना अध्यापक के द्वारा ही सभव है। बालक मे उच्च आदश के गुण को निर्मित करें। इससे उसमे आत्मगौरव का स्थायी भाव बनेगा। शिक्षक को चाहिए कि वे बालक मे हीनता की भावना का उदय न होने दें। बालक की थोडी-सी गल्ती पर यह कह उठना कि—'तुम बडे अयोग्य और अभागे हो,'' बडा ही अमनोवैज्ञानिक है। हम बालक को समयानुसार प्रोत्साहित करना चाहिए। उसे कुछ उत्तरदायित्व के काय देकर उसमे विश्वास उत्पन्न करना चाहिए। इससे उसमे आत्मसम्मान के उच्च आदर्श का निर्माण होगा और उसका चरित्र ऊँचा उठेगा।

चरित्र

सामाजिक नियमो के अनुकूल व्यवहार को परिचालित करनेवाली मानसिक संरचना को चरित्र कहा जा सकता है। कुछ विद्वान् सकल्प-शक्ति तथा स्थायी भावो

के निर्माण को ही चरित्र कहते हैं। कुछ इसे आदतो का समूह कहते हैं। यदि इन परिभाषाओ को देखा जाय तो सभी एकागी हैं। चरित्र की व्याख्या तभी हो सकती है जब कि हम उपयुक्त सभी का सम्मिलित रूप लें। चरित्र एक ऐसा मानसिक संगठन है, जो सामाजिक व्यवहार को निश्चित करता है। रास ने इसे केवल 'संगठित आत्म' कहा है। मूल प्रवृत्तिया और स्थायी भावो का सगठन जो कि आत्मगौरव के स्थायी भाव का निर्माण रूप है, चरित्र है।

अच्छे एव दृढ चरित्र के लिए विश्वसनीयता का होना आवश्यक है। चरित्र का एक दृढ आदर्श होना चाहिए। अच्छे चरित्र म देखा गया है कि व्यक्ति दृढतापूर्वक कठिनाइयो म भी कार्य-मग्न रहता है। उच्च चरित्र के व्यक्ति को अध्यवसायी होना चाहिए। अच्छे चरित्र का व्यक्ति प्रसन्न, आशावादी व साहसी होगा। वह कठिनाइयो का सामना साहस स करता है और प्रसन्नतापूर्वक आशावादी दृष्टिकोण के साथ उन्नति के मार्ग पर बढता चला जाता है।

चरित्र के विकास मे सहायक तत्त्व

शिक्षा का मुख्य उद्देश्य चरित्र निर्माण करना है। अत बालक के उच्च चरित्र के विकास में सहायक होना हमारा पुनीत कर्तव्य है। हम नीचे उन तत्त्वो का वर्णन करेंगे, जिनके सहारे बालक के चरित्र का विकास किया जा सकता है। 'हर्बर्ट' ने तो सम्पूर्ण शिक्षा का अर्थ चरित्र का विकास ही माना है।

(१) चरित्र और मूल प्रवृत्तियाँ—बालक का प्रारंभिक जीवन मूल प्रवृत्तियो मे ही सचालित होता है। चरित्र के विकास का आधार मूल प्रवृत्तियाँ ही हैं। इन मूल प्रवृत्तियो का शोधन करना होता है। उदाहरण के लिए प्रबल काम प्रवृत्ति से व्यक्ति बलात्कार कर सकता है, परन्तु यदि उसके प्रवाह को समाजोपयोगी कार्यों, जैसे साहित्य से प्रेम, अध्ययन के प्रति उन्मुख कर दिया जाय तो व्यक्ति को इन भले कार्यों के लिए इसी प्रवृत्ति से शक्ति मिलेगी। अत चरित्रविकास में शिक्षको को बालक की मूल प्रवृत्तियो के शोधन के लिए प्रयास करना चाहिए।

(२) आदत—आदत यात्रिक है, अत चरित्र का विकास इस पर पूर्णरूपेण निर्भर नही है। परन्तु अच्छी आदतो के निर्माण से चरित्र के विकास मे सहायता मिलती है।

(३) स्थायी भाव—हमने ऊपर स्थायी भावो के ऊपर पर्याप्त प्रकाश डाला है। हमने देखा कि अच्छे गुणा के प्रति स्थायी भावो के निर्माण से बालक का व्यवहार ऊच्च होता है। उसके मूल प्रवृत्यात्मक तथा सवेगात्मक जीवन म सुधार हो जाता

है। आत्मगौरव के स्थायी भाव के निर्माण से बालक का जीवन एक आदर्श जीवन होता है जिसकी रक्षा के लिए वह अनेक कठिनाइयों का सामना करता है।

(४) चरित्र विकास में संकल्प शक्ति का स्थान—बालक में इस शक्ति को विकसित कर प्रोत्साहित करना चाहिए। विषय उसके सामर्थ्य के अनुसार ही पढ़ाये जाने चाहिए। बालक को आत्मसंयमी व क्रियाशील बनाना चाहिए जिससे अच्छे कार्यों के लिए शारीरिक सुख का वह त्याग कर सके।

(५) शारिरिक तत्व—बालक का स्वास्थ्य अच्छा होने के लिए उसके वातावरण में सुधार लाना चाहिए। अच्छे स्वास्थ्य से अच्छे चरित्र के विकास में सहायता मिलती है। अच्छे स्वास्थ्यवाला व्यक्ति संवेगों पर अच्छा नियंत्रण रख सकता है।

(६) मानसिक तत्व—बालक को मानसिक शक्ति के उचित विकास के लिए अवसर दिये जायें। उसे मानसिक योग्यतानुकूल शिक्षा मिले। तीव्र बुद्धि के बालकों में चरित्र के उच्च गुण सुगमता से विकसित हो सकते हैं।

(७) नैतिक शिक्षा—नैतिक शिक्षा आज की शिक्षा की सबसे बड़ी समस्या है। शिक्षा-आयोग (१९६४ ६६) ने तो नैतिक एवं धार्मिक शिक्षा को पाठ्य-विषय के अन्तर्गत रखने पर जोर दिया है। वास्तव में नैतिक शिक्षा से चरित्र-विकास में सहायता मिल सकती है। उदाहरणार्थ ऐतिहासिक कहानियों के द्वारा बालक को यह शिक्षा देनी चाहिए।

(८) निर्देश—निर्देश का बालक के जीवन पर बड़ा ही अच्छा प्रभाव पड़ता है। यदि शिक्षक और माता-पिता बालक को उत्साहित करें उसकी सफलता पर उसकी प्रशंसा करें तो बालक निश्चय ही उन्नति करेगा।

(९) अनुकरण—बालक अपने बड़ों की नकल करता है। अतः उसके समक्ष अच्छे व्यवहार करना चाहिए।

(१०) दण्ड एवं पुरस्कार—अधिक दण्ड देने से बालक में हीनता की भावना आती है। वह भय से अपनी प्रवृत्तियों को दबा लेता है जो भावना-ग्रंथियों का निर्माण करती हैं। ये भावना-ग्रन्थियाँ बालक के विकास में बाधक होती हैं। बालक के चरित्र-सुधार के लिए कहीं-कहीं कुछ दण्ड दिया जा सकता है। कठोर दण्ड देने में कोई लाभ नहीं।

बालक के अच्छे व्यवहार पर उसे पुरस्कार देना चाहिए। उसकी प्रशंसा कर उसे प्रोत्साहित करना चाहिए।

बालक को आवश्यकता से अधिक लाड़-प्यार भी नहीं करना चाहिए। ऐसा न हो कि बालक उद्दण्ड हो जाय और उसका सामाजिक विकास दोषपूर्ण हो जाय। बालक को उतना ही प्यार देना चाहिए जितने की आवश्यकता है। •

छुट्टियों में तरुणों के लिए राष्ट्र-निर्माण का कार्यक्रम

हर साल भारत के लाखों विद्यार्थियों को महीनों तक ग्रीष्मकाल की छुट्टियाँ मिलती हैं। लेकिन उनमें से विरले ही ऐसे होते हैं जो इन छुट्टियों का उपयोग अपने चरित्र-निर्माण तथा राष्ट्र-निर्माण के काम में करते हैं। क्या आप उनमें से एक बनना चाहेंगे ?

भारतीय तरुण शांति-सेना आपको इसका मौका दे रही है। इस साल मई और जून महीने में तरुण शांति-सेना की ओर से दो शिविर लिये जायँगे जिनमें आप यदि चाहें तो शरीक हो सकते हैं। दोनों शिविरों में भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों से चुने हुए छात्र छात्राएँ इकट्ठे होंगे साथ जियेंगे साथ निर्माण का काम करेंगे साथ अध्ययन करेंगे और साथ मनोरंजन करेंगे। भारत के कोने कोने से शिविरार्थी इकट्ठे होंगे। उनमें धर्म जाति भाषा और प्रांत का कोई भेद नहीं होगा। आप शिविर में शामिल होकर अपनी छुट्टियों का सदुपयोग कर सकते हैं।

प्रथम शिविर नगर के वातावरण में होगा और वह मुख्यत अभ्यास-शिविर होगा जिनमें शिविरार्थी छात्रों की समस्या के बारे में गहराई से सोचेंगे तथा दूसरा शिविर ग्रामीण वातावरण में होगा और वह मुख्यत श्रम-शिविर होगा जिसमें शिविरार्थी राष्ट्र-निर्माण के एक प्रत्यक्ष कार्यक्रम में शामिल होते हुए इस विषय पर अध्ययन करेंगे कि ग्राम-निर्माण के कार्यक्रम में छात्र क्या सहयोग दे सकते हैं।

शिविरों की जानकारी तथा आकर्षक अंग

आठवाँ अ० भा० तरुण शान्ति-सेना शिविर

दिनांक ११ मई से २५ मई '६९

स्थान बम्बई

(१) प्रतिदिन डेढ़ घंटे का श्रमदान।

(२) निम्न विषयों पर अधिकारी व्यक्तियों के व्याख्यान

(क) आधुनिक युग में गांधी का प्रसंगानुरूप महत्त्व,

(ख) विश्व-युवक आन्दोलन,

(ग) दूसरे महायुद्ध के बाद का विश्व।

(३) निम्नलिखित विषयो पर चर्चाएँ

(क) राष्ट्रीय एकता,

(ख) धर्म-निरपेक्षता,

(ग) लोकतन्त्र,

(घ) विश्व शान्ति ।

(४) वैविध्यपूर्ण मनोरजन कार्यक्रम ।

(५) सर्वधर्म प्रार्थना ।

नौवां अ० भा० तरुण शाति-सेना शिविर

दिनाक १ जून से २१ जून, '६९

स्थान गोविंदपुर, जि० मिर्जापुर (उ० प्र०)

(१) श्रम-योजना

इस शिविर मे जमीन के बाँध बाँधने तथा भूमि-सुधार के ठोस कार्यक्रम उठाये जायँगे जिससे ग्रामदानी ग्राम के आदिवासियो का स्थायी लाभ होगा ।

(२) प्रतिदिन ४ घटे का श्रमदान ।

(३) निम्न विषयो पर व्याख्यान तथा चर्चाएँ —

(क) राष्ट्रीय परिस्थिति,

(ख) राष्ट्र-निर्माण मे युवको का स्थान,

(ग) ग्राम-विकास के कार्यक्रम ।

(४) वैविध्यपूर्ण मनोरजन कार्यक्रम ।

(५) सर्वधर्म-प्रार्थना ।

दोनो शिविरो के साथ एक दिन का प्रवास भी आयोजित किया जायेगा । भोजन की व्यवस्था दोनो शिविरो मे नि शुल्क रहेगी । आवेदन-पत्र भरने की आखिरी तारीख पहले शिविर के लिए २० अप्रैल, '६९ तक, और दूसरे शिविर के लिए १० मई, '६९ तक होगी । शिविरो का आवेदन-पत्र एक रुपये का डाक-टिकट भेजने से मिल सकता है । इस सम्बन्ध में अधिक जानकारी निम्न पते से मँगवाइए

सचालक, तरुण शाति-सेना शिविर,
अ० भा० शाति-सेना मण्डल,
राजघाट, वाराणसी–१

आन्तर भारती श्रम-संस्कार छावनी, सोमनाथ

मई १९६८ मे आयोजित सोमनाथ श्रम-संस्कार छावनी ने देश के युवक-आंदोलन मे एक नयी दिशा का संकेत किया और अनेक नयी परम्पराओ को जन्म दिया। जब चारो ओर विध्वंस, निराशा और बिखराव था तब उसने रचना आशा और एकात्मता का नया दौर प्रारम्भ किया। देश के बारह सौ युवक इस राष्ट्रीय प्रकल्प मे किसी डिक्टेटर, अफसर, या टास्क मास्टर के आदेश से नही बल्कि अपनी उमग से सहभागी हुए। सोमनाथ के जगल म देश की मिट्टी से और मनुष्यो से प्यार करना उन्होंने सीखा। इस छावनी ने बीसवी शताब्दी के उस नवयुवक का दर्शन कराया, जो समूह की कार्यशक्ति मे विश्वास तो रखता है, किन्तु केवल भेडो की भीड मे स एक होकर नही रहना चाहता, जो देश के लिए कुछ करना चाहता है, किन्तु अपने ऊपर कोई लेबिल नही चिपकाना चाहता।

यह नवयुवा शब्दो और नारो से ऊब गया है। किन्तु वह ऐसे किसी मत्र और तंत्र की तलाश मे है, जो उसे यह बतलाये कि वह क्यो और कैसे जिये।

एक पीढी पहले देश की आत्मा मे एक महामत्र गूजा था—'छोडो भारत'! और अब तमाम बिखराव के बावजूद देश के हृदय से दूसरा मत्र उठता प्रतीत हो रहा है—'जोडो भारत'! किन्तु मत्र की सिद्धि के लिए तत्र आवश्यक होता है। इसी तत्र की खोज देश की नयी पीढी ने इस श्रम-सस्कार छावनी मे शुरू की।

देश का युवा मन खाली और अपाहिज मालूम हो रहा है। केवल घोषणाओ से उसकी रिक्तता भरी नही जा सकती। विध्वस उसे शक्तिशाली नही बना सकता। केवल आन्दोलन उसे काम मे नही लगा सकते। केवल सरकारी योजनाएँ उसकी कुठा को दूर नहीं कर सकती। किन्तु इस घटाटोप अंधकार मे, सोमनाथ प्रकाश की एक किरण बनकर उसके सामने आया। अपनी लघुता के दायरो को तोडकर उसने वहाँ अपनी महानता से साक्षात्कार किया।

यह छावनी 'श्रमदान' की नही, 'श्रम-संस्कार' की थी। वहाँ वह कुछ देने के अहकार से नही, बल्कि लेने की नम्रता से आया हुआ था। और फिर ऐसी छावनियो का एक सिलसिला शुरू हुआ।

शृङ्खला की अगली कड़ी

इस छावनी के अनुभव से लाभ उठाते हुए, कुछ विशेष संकल्पों के साथ, सोमनाथ में दूसरी अखिल भारतीय आन्तर भारती श्रम-संस्कार छावनी का आयोजन किया जा रहा है। ये संकल्प हैं—

• महाराष्ट्र की अपेक्षा देश के अन्य प्रांतों से, पिछली छावनी की तुलना में अधिक युवक-युवतियाँ सम्मिलित हों। देश के हर प्रान्त से कम-से-कम पचास शिविरार्थी इस छावनी में अवश्य उपस्थित रहें।

• इस बार शिविरार्थियों को मुक्त प्रवेश नहीं होगा। उनके आवेदन-पत्रों में दी गयी जानकारी के आधार पर उनका चुनाव किया जायेगा। चुनाव के बाद संयोजन-समिति उन्हें स्वीकृति-पत्र भेजेगी, तभी वे छावनी में शामिल हो सकेंगे।

• पिछले वर्ष की अपेक्षा छावनी के श्रम-कार्यों में अधिक विविधता होगी। पिछले वर्ष जब कि केवल धान की बाँधियाँ बनाने का काम हुआ, इस वर्ष नौतोड़ जमीन को खेती योग्य बनाने से लेकर उसकी सिंचाई के साधनों—जैसे बाँध, तालाब, कुएँ का निर्माण, और उत्पादित फसल के लिए गोदाम बाँधने तक के अनेक श्रम-प्रकल्प होंगे।

यह छावनी किसी प्रकार के सरकारी सहयोग से नहीं चल रही है। वह जनता का अपना स्फूर्त प्रयत्न है। हमें विश्वास है कि पिछले वर्ष की तरह इस छावनी में शामिल होनेवाले युवक-युवती भी अपने लिए एक संकल्प लेकर लौटेंगे और अपने-अपने क्षेत्रों में इसी तरह की श्रम-संस्कार छावनियाँ आयोजित कर इस आन्दोलन को दूर-दूर तक पहुँचायेंगे।

छावनी के संयोजन में व्यवस्था की दृष्टि से, दैनन्दिन कार्यक्रमों को पूर्ववत चार विभागों में बाँट गया है। प्रथम, चार घंटे शारीरिक परिश्रम; दूसरे, तकनीकी प्रशिक्षण; तीसरे, बौद्धिक कार्यक्रम और चौथे, कला-मनोरंजन।

श्रमकार्य के घंटों तथा दैनिक विधियों के अतिरिक्त छावनी का स्वरूप उन्मुक्त होगा। छावनी में अनुशासन होगा, किन्तु अपेक्षा यह रहेगी कि वह बाहरी दबाव से कम हो, स्वत स्फूर्त रूप में अधिक। चित्रकारी, संगीत, नाट्य जैसे व्यक्तिगत शौकों तथा कलाविस्तार के लिए अवसर रहेगा। बौद्धिक और तकनीकी-प्रशिक्षण जैसे कार्यक्रम पिछली छावनी की तरह ही ऐच्छिक, किन्तु अधिक सुगठित रहेंगे।

छावनी से पहले एक सप्ताह के लिए ५० से १०० चुनिन्दा युवक-युवतियों की एक अग्रगामी छावनी (पायोनियर्स कैंप) होगी। यह एक तरह से नेतृत्व-प्रशिक्षण-शिविर ही होगा, जो छावनी की व्यवस्था और श्रम-प्रकल्पों का प्रत्यक्षीकरण

प्रारम्भ कर देगा। यह अग्रगामी शिविर १४ मई से २० मई तक चलेगा। फिर छावनी का प्रारम्भ २१ मई से होगा जो ३१ मई तक चलेगी। छावनी में शामिल होनेवालों के दो वर्ग होंगे—शिविरार्थी और अतिथि। शिविरार्थियों को पूरी अवधि तक छावनी में उपस्थित रहना अनिवार्य होगा। उनके लिए रेल्वे-कनसेशन फार्म प्राप्त करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

श्रमकार्य के भी दो प्रकार होंगे—सामान्य और सांश्रमिक, जो करना चाहें वे 'पीस वेज वर्क' के आधार पर भी श्रमकार्य कर सकते हैं। बाजार भाव से उनके काम के दाम भोजन शुल्क काटकर चुकता किये जायेंगे—जैसे, १०० घनफीट (१० × १० × १) मिट्टी डालने के लिए दो रुपये दस पैसे।

छावनी में न केवल शिक्षित युवक-युवती, बल्कि खेतिहर और कारखानों के मजदूरों का भी स्वागत है। छावनी का सारा कामकाज हिन्दी और अंग्रेजी में साथ-साथ चलेगा। आवेदन-पत्रों के स्वीकार की अन्तिम तिथि १५ अप्रैल '६६ रखी गयी है।

यह निवेदन देश के सभी अंचलों में प्रचार प्रसार की अपेक्षा रखता है। वे, जो 'भारत-जोड़ो' के मन-साधक बनना चाहते हैं इस सन्देश के वाहक बनें। देश के लिए युद्ध करने के लिए धड़कनेवाले हर दिल, और फड़कनेवाले हर हाथ तक यह पुकार पहुँचे। मत, विचार, धर्म, भाषा प्रान्त का कोई बन्धन नहीं है। नवनिर्माण में, एकात्मता में निष्ठा रखनेवाली हर वृत्ति प्रवृत्ति तक इसे पहुँचाना है।

आवेदन-पत्रों के लिए लिखें—आन्तर भारती—आनन्दवन, वरोरा, जिला-चांदा (महाराष्ट्र) अथवा मुख्य संयोजक, आन्तर भारती श्रमसंस्कार-छावनी, महिलाश्रम, वर्धा (महाराष्ट्र)।●

सर्व सेवा संघ का आगामी अधिवेशन

मागली में हुई संघ प्रबन्ध समिति की बैठक में निश्चय किया गया कि आगामी सर्व सेवा संघ का अधिवेशन आंध्र प्रदेश में २५-२६-२७ अप्रैल '६६ को किया जाय। स्थान का निर्णय आंध्र के कार्यकर्ता साथी करेंगे। अनुमान है कि अधिवेशन तिरुपति में आयोजित होगा। उक्त अधिवेशन में सर्व सेवा संघ के नये अध्यक्ष का चुनाव तथा नयी कार्य-समिति का गठन भी होगा।

'नयी तालीम' मासिक का प्रकाशक-वक्तव्य

(न्यूजपेपर रजिस्ट्रेशन ऐक्ट (फार्म नं० ४, नियम ८) के अनुसार हरएक अखबार के प्रकाशक को निम्न जानकारी प्रस्तुत करने के साथ-साथ अपने अखबार में भी वह प्रकाशित करनी होती है। तदनुसार यह प्रतिलिपि यहाँ दी जा रही है। —सं०)

(१) प्रकाशन का स्थान	वाराणसी
(२) प्रकाशन की आवर्तता	माह में एक बार
(३) मुद्रक का नाम	श्रीकृष्णदत्त भट्ट
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	'नयी तालीम' मासिक, राजघाट, वाराणसी–१
(४) प्रकाशक का नाम	श्रीकृष्णदत्त भट्ट
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	'नयी तालीम' मासिक राजघाट, वाराणसी–१
(५) सम्पादक का नाम	धीरेन्द्र मजूमदार
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	'नयी तालीम' मासिक, राजघाट, वाराणसी–१
(६) समाचार-पत्र के संचालकों का नाम-पता	सर्व सेवा संघ (वर्धा) राजघाट, वाराणसी (सन् १८६० के सोसायटीज रजिस्ट्रेशन एक्ट २१ के अनुसार रजिस्टर्ड सार्वजनिक संस्था) रजिस्टर्ड नं० ५२

मैं श्रीकृष्णदत्त भट्ट यह स्वीकार करता हूँ कि मेरी जानकारी के अनुसार उपर्युक्त विवरण सही है।

वाराणसी, ता० २८-२ ६६

—श्रीकृष्णदत्त भट्ट
प्रकाशक

सर्व सेवा संघ की प्रबन्ध समिति द्वारा चेकोस्लोवाकिया की जनभावना का समर्थन

सांगली (महाराष्ट्र) में २७-२-'६९ को सर्व सेवा संघ की प्रबन्ध समिति ने अपनी बैठक में चेकोस्लोवाकिया की परिस्थिति के सदर्भ में एक प्रस्ताव पारित करते हुए कहा है कि अपनी लोकतांत्रिक स्वतंत्रता की नीति को कायम रखने के लिए सोवियत रूस तथा वारसा-सन्धि के देशों द्वारा की गयी आक्रामक कार्रवाइयों का चेकोस्लोवाकिया की जनता ने जिस बहादुरी के साथ अहिंसक प्रतिकार किया है, वह शांतिपूर्ण प्रतिकार के इतिहास में सुवर्ण-पृष्ठ बनकर जुड़ा है।

चेकोस्लोवाकिया की जनता को उसके मूलभूत मानव-अधिकारों से वंचित रखने की जो असह्य परिस्थिति सोवियत रूस सहित वारसा-सन्धि के देशों ने अपनी आक्रामक कार्रवाइयों द्वारा पैदा कर दी है, उसके कारण ही उन्हें मानवीय ज्योति जगाने के लिए आत्मदाह करने को मजबूर होना पड़ रहा है। इस परिस्थिति में सर्व सेवा संघ की प्रबन्ध समिति ने गहरी चिन्ता व्यक्त करते हुए चेकोस्लोवाकिया की जनता के साथ हमदर्दी जाहिर की है।

समिति ने यह राय जाहिर की है कि अपने देश में अहिंसा की शक्ति प्रकट करके ही हम चेकोस्लोवाकिया की जनता के मददगार हो सकते हैं। इस गंभीर परिस्थिति में और बावजूद सारे दबावों के वहाँ की सरकार ने अपनी नीति पर कायम रहने की जो दृढ़ता प्रकट की है, समिति ने उसकी सराहना की है।

अंत में प्रबन्ध समिति ने संयुक्त राष्ट्रसंघ की मानव-अधिकार समिति से अपील की है कि चेकोस्लोवाकिया की वर्तमान समस्या के सम्बन्ध में अविलम्ब कार्रवाई करे।●

आगामी सर्वोदय सम्मेलन

सर्वोदय समाज का आगामी सम्मेलन बिहार के राजगीर नामक स्थान पर २५-२६-२७ अक्तूबर '६९ को होगा। २१ अक्तूबर को प्रबन्ध समिति की बैठक और उसके बाद २२, २३, २४ को संघ-अधिवेशन होगा। इसी अवसर पर २६ अक्तूबर को राजगीर में जापान बौद्ध संघ की ओर से बौद्ध-स्तूप का उद्घाटन भी होगा। २५ को दोपहर के बाद सम्मेलन शुरू होगा। बिहारदान की घोषणा के सदर्भ में उक्त सर्वोदय सम्मेलन में आन्दोलन का नया क्षितिज स्पष्ट होगा, और एक नये ऐतिहासिक अध्याय का सूत्रपात होगा, ऐसी आशा की जा रही है।

सम्पादक मण्डल
श्री धीरेन्द्र मजूमदार—प्रधान सम्पादक
श्री वशीधर श्रीवास्तव
श्री राममूर्ति

वर्ष : १७
अक : ८
मूल्य : ५० पैसे

अनुक्रम

मार्च, '६६

*

निवेदन

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- 'नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा छ रुपये है और एक अक के ५० पैसे।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक-सख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- रचनाओ म व्यक्त विचारो की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट सर्व-सेवा-सघ की ओर से प्रकाशित अमल कुमार बसु; इण्डियन प्रेस प्रा० लि०, वाराणसी–२ में मुद्रित।

नयी तालीम : मार्च '६९
पहले से डाक-व्यय दिये बिना भजने की अनुमति प्राप्त
लाइसेंस न० ४६ रजि० सं० एल १७२३

हिंसात्मक खूनी क्रान्ति एवं गांधीजी

गांधीजी ने कहा था :

'आर्थिक समानता के लिए काम करने का मतलब है पूंजी और श्रम के बीच के शाश्वत सघर्ष का अन्त करना। इसका मतलब जहां एक ओर यह है कि जिन थोडे से अमीरो के हाथ में राष्ट्र की सम्पदा का कही बडा अश केन्द्रीभूत है उनके उतने ऊँचे स्तर को घटाकर नीचे लाया जाय वहा दूसरी ओर यह है कि अध-भूखे और नगे रहनेवाले करोडो का स्तर ऊचा किया जाय। अमीरों और करोडो भूखे लागो के बीच की यह चौडी खाई जब तक कायम रखी जाती है तब तक तो इसमें कोई सन्देह ही नही कि अहिंसात्मक पद्धतिवाला शासन कायम हो ही नही सकता। हिंसात्मक और खूनी क्रान्ति एक दिन हाकर ही रहेगी अगर अमीर लोग अपनी सम्पत्ति और शक्ति का स्वेच्छापूर्वक ही त्याग नही करत और सबकी भलाई के लिए उसमे हिस्सा नही बँटात।"

देश मे दगे फसाद और खून खराबी का वातावरण बढता जा रहा है। इसमे आर्थिक सामाजिक विषमता भी बडा कारण है। गाधीजी की उक्त वाणी और त पर्न आज अधिक ध्यान देने को बाध्य करती है। क्या देश के लोग विशषत अमीर समय के सकेत को पहचानेंगे ?

गाधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति (राष्ट्रीय गाधी जन्म शताब्दी समिति)
टुकलिया भवन कुन्दीगरों का भैरू जयपुर ३ (राजस्थान) द्वारा प्रसारित

आवरण मुद्रक मनहरवाल प्रस वाराणसी

अप्रैल १९६९

मेरी मातृभाषा म कितनी ही खामिया क्यो न हो, मैं अुससे अुसी तरह चिपटा रहूगा जिस तरह अपनी माकी छातीसे। वही मुझे जीवनदायी दूध दे सकती ह।

अग्रेजी आज सारी दुनियाकी भाषा बन गअी है। जिसलिअे मैं अुसे दूसरी जबानके तौर पर जगह दूगा— लेकिन विश्व विद्यालयके पाठ्यक्रममे, स्कूलोमे नही।

—मो० क० गाधी

अपनाना और नीति के कार्यान्वयन के लिए कदम उठाना सामयिक कदम तो है ही, साहसपूर्ण भी है और इसके लिए शिक्षा-मंत्री की जितनी भी सराहना की जाय, कम है।

परन्तु कदम जितना भी वांछनीय, सामयिक और साहसपूर्ण हो, उसे शिक्षा की दृष्टि से न तो व्यावहारिक ही कहा जा सकता है और न ठीक ही। और गलत कदम उठ गया है, ऐसा लगता है।

मैं यह नही कहता कि शिक्षा-मन्त्री नये है और उन्हे उन कठिनाइयो का अन्दाज नही जो इस लक्ष्य-पूर्ति के मार्ग मे आयेंगी। मैं यह भी नही कहता कि उन्होने इस विषय मे शिक्षा विभाग के विशेषज्ञो से राय नही ली होगी। जब जिम्मेवार व्यक्ति की हैसियत से उन्होने एक बात कही है तो सब कुछ पूछ-ताछ कर किया होगा ऐसा भी मानता हूँ। फिर भी समस्या के व्यावहारिक और शैक्षिक पहलुओ की समीक्षा तो होनी ही चाहिए, ताकि कदम अगर गलत और अव्यावहारिक है तो उसे वापस लिया जा सके अथवा उसमे सुधार और परिवर्तन किया जा सके।

यह योजना जूनियर हाईस्कूल स्तर पर कक्षा ६, ७ और ८ के लिए लागू होने जा रही है। यद्यपि घोषणा मे 'कक्षा पाँचवी से आठवी तक' कहा गया है, परन्तु मैं 'पाँचवी से' का मतलब 'पाँचवी के बाद' ही लगाता हूँ, क्योंकि उत्तर प्रदेश मे जूनियर बेसिक स्तर (अवर प्राथमिक शिक्षा) कक्षा १ से कक्षा ५ तक चलता है। यह प्राथमिक शिक्षा की पहली इकाई है। दूसरी इकाई, जिसे सीनियर बेसिक स्तर (उच्चतर प्राथमिक शिक्षा) अथवा जूनियर हाईस्कूल स्तर कहते हैं, कक्षा ६ से प्रारम्भ होकर कक्षा ८ तक चलती है। जहाँ कक्षा ६, ७, ८ उच्चतर माध्यमिक विद्यालयो (कक्षा ९ से कक्षा १०) के साथ संलग्न है वहाँ इन्हे पूर्व माध्यमिक स्तर भी कहा जाता है। आज भी उत्तर प्रदेश मे त्रिभाषा-सूत्र सीनियर बेसिक स्तर से लागू होता है और हम ऐसा मानते हैं कि शिक्षा-मन्त्री की यह नवीन घोषणा भी सीनियर [illegible]मिक स्तर के लिए ही है और दक्षिण की भाषाओं की पढ़ाई कक्षा ५ से नही, कक्षा ६ से प्रारम्भ होगी। अगर यह बात सही है तो तुरन्त इसकी घोषणा हो जानी चाहिए, जिससे एक बहुत बड़ी अशैक्षिक भूल का परिहार हो जाय—भूल इसलिए की इस प्रकार की नयी योजना शिक्षा के किसी नये स्तर से ही शुरू होनी चाहिए, बीच से नहीं।

उत्तर प्रदेश में इस समय लगभग पाँच हजार सीनियर बेसिक स्कूल है। लगभग तीन हजार उच्चतर माध्यमिक विद्यालय है, जिनमें भी सीनियर बेसिक कक्षाएँ (कक्षा ६, ७ और ८) भी चलती है। इस प्रकार लगभग आठ हजार स्कूलों में दक्षिण की भाषाओं की अनिवार्य पढ़ाई जुलाई १९६९ से प्रारम्भ होगी। अर्थात् इन्हीं ढाई तीन महीनों में आठ हजार अध्यापकों का प्रबन्ध करना है। सहज ही प्रश्न उठता है कि इतनी जल्दी इतने अध्यापक दक्षिण से आकर उत्तर प्रदेश के गाँवों में (यह भूलना नहीं चाहिए कि इनमें पाँच हजार से भी अधिक जूनियर हाईस्कूल गाँवों में ही हैं), जहाँ का वातावरण उनके लिए नितान्त भिन्न होगा क्या अध्यापन के लिए तैयार हो जायेंगे? अगर एक अध्यापक को कम-से कम दो सौ रु० भी प्रतिमास वेतन दिया गया तो आठ हजार अध्यापकों के लिए प्रतिवर्ष लगभग ढाई-तीन करोड़ रुपये चाहिए। क्या आसानी से उत्तर प्रदेश इस काम के लिए इतने अधिक धन का प्रबन्ध कर सकेगा? अगर कर भी देगा तो सीनियर बेसिक स्कूलों के अध्यापकों के वेतन-क्रम से इस नये अध्यापक के वेतन-क्रम से ताल-मेल कैसे बैठेगा? ये सारे प्रश्न हैं जिनका उत्तर उतना सरल नहीं है। इसीलिए मैं मानता हूँ कि सीनियर बेसिक स्तर पर अनिवार्य रूप से दक्षिण की एक भाषा पढ़ाने की योजना अव्यावहारिक है और घोषणा के पीछे भावुकता का हाथ अधिक है।

फिर सीनियर बेसिक स्तर पर अनिवार्य रूप से दक्षिण (अथवा किसी दूसरे अहिन्दी प्रदेश) की एक भाषा पढ़ाना शैक्षिक दृष्टिकोण से भी गलत है। इस तर्क के समर्थन में मैं कोठारी आयोग की संस्तुतियों को ही उद्धृत करूँगा। शिक्षा आयोग कहता है—'सन् १९५६ और १९६१ में जो त्रिभाषा-सूत्र तैयार किया गया था, जिसके अनुसार हिन्दी क्षेत्रों में छात्रों को एक और भारतीय भाषा पढ़ाने की राय दी गयी थी, उसने हिन्दी और अहिन्दी क्षेत्रों में भाषाओं के अध्ययन की दृष्टि से समानता लाने की चेष्टा की थी। यह निर्णय शैक्षिक की अपेक्षा राजनीतिक अधिक था।" (शिक्षा-आयोग ८-३१) इस त्रिभाषा-सूत्र को छठी कक्षा से लागू करने में जिस भारी बोझ की आवश्यकता पड़ी उसे कोई राज्य उठा नहीं पाया। हिन्दी क्षेत्रों में एक अनिश्चित आधुनिक भाषा के अध्य-

उत्तर प्रदेश के स्कूलों में दक्षिण की भाषाओं का अनिवार्य शिक्षण

"जुलाई से प्रारम्भ होनेवाले आगामी शिक्षासत्र मे उत्तर प्रदेश के स्कूलो म पांचवी कक्षा से आठवी कक्षा तक दक्षिण भारत की एक भाषा का अध्ययन अनिवार्य कर दिया गया है,' यह घोषणा उत्तर प्रदेश के शिक्षा मत्री डा० रामजीलाल सहायक ने राष्ट्रीय पाठ्य पुस्तक मडल की दिल्ली की ६ अप्रैल की बैठक मे की है। उन्होंने कहा है कि राष्ट्रीय एकता के आन्दोलन म उत्तर प्रदेश अग्रणी रहना चाहता है और यह उसी लक्ष्य की ओर एक कदम है। यह खबर प्रेस की है। इस विषय मे अभी राजाज्ञा निर्गत नही हुई है परन्तु शीघ्र होगी, ऐसा निश्चय है।

वर्ष : १७
अंक : ६

राष्ट्रीय एकता आज इस देश की बहुत बडी आवश्यकता है। स्वराज्य के बाद भारत में साम्प्रदायिकता, प्रातीयता जातिवाद, भाषावाद आदि जिन विघटनकारी प्रवृत्तियों ने सिर उठाया है उनको देखते हुए देश की राष्ट्रीय एकता के लिए हर सम्भव प्रयास करना चाहिए और इस प्रयास मे उत्तर प्रदेश अग्रणी रहे तो समस्या सुलझेगी, इसमें तनिक भी सन्देह नही। उत्तर प्रदेश मे, जो हिन्दी का गढ है, अगर अनिवार्य रूप स दक्षिण की अथवा अहिन्दी प्रदेशों की भाषाएँ पढी जायें तो राष्ट्रीय एकता सधेगी, इसमें भी सन्देह नहीं। अत इन भाषाओं को अनिवार्य . . . ने की नीति

यन के लिए छात्रों में कोई अभिप्रेरणा भी नहीं थी। अत. उत्तर प्रदेश मे तो आधुनिक भारतीय भाषाओं के नाम पर तीसरी भाषा के रूप मे सस्कृत ही पढ़ी जाती रही। इसे अहिन्दी प्रदेशों ने उत्तर प्रदेश की मक्कारी कहा और अपने प्रदेशों मे हिन्दी शिक्षण का विरोध किया। इन्ही कारणों से कोठारी-आयोग ने त्रिभाषा-सूत्र में सुधार सुझाया और राय दी कि "यद्यपि बहुत कम आयु मे ही बच्चों को दूसरी भाषा सिखाने के पक्ष मे तर्क दिये जा सकते हैं, लेकिन हमारे विचार से प्राथमिक स्कूलों के लाखो छात्रों को एक 'नयी' भाषा की शिक्षा देने के लिए योग्य शिक्षक की व्यवस्था करना बहुत दुष्कर काम है।" (८ · ३३-३) यह बोझ किसी भी राज्य से उठेगा नही। इसीलिए आयोग ने प्राथमिक स्तर पर, जिसमे जूनियर और सीनियर बेसिक, दोनों ही स्तर (कक्षा १ से ८ तक) शामिल हैं, केवल दो भाषाएँ पढाने की राय दी है। जूनियर बेसिक स्तर पर केवल अपनी मातृभाषा (या प्रादेशिक भाषा) के अतिरिक्त हिन्दी या अंग्रेजी। तीसरी भाषा को माध्यमिक स्तर से अनिवार्य बनायी जाय। आयोग सिफारिश करता है, "तीन भाषाओं के अध्ययन को अनिवार्य बनाने के लिए निम्न माध्यमिक स्तर (कक्षा ८ से १०— उत्तर प्रदेश मे कक्षा ६-१०) सबसे उपयुक्त प्रतीत होता है, क्योंकि इस स्तर पर छात्रों की सख्या कम होती है और बेहतर सुविधाओं और शिक्षकों का प्रबन्ध किया जा सकता है।" (८ ३३-४)

इसीलिए मेरा सुझाव है, और यही व्यावहारिक और शिक्षा के हित मे होगा, कि दक्षिण (या अहिन्दी राज्य) की भाषा अनिवार्य रूप मे उत्तर प्रदेश के उच्चतर हाईस्कूलों मे पढायी जाय। कक्षा ९ और १० मे यह अनिवार्य रहे और कक्षा ११ और १२ मे ऐच्छिक कर दी जाय।

एक दूसरी बात और है। शिक्षा-मत्री की जो घोषणा अखबारों मे निकली है उसमे केवल दक्षिण की एक भाषा को अनिवार्य रूप से पढाने की बात तो की गयी है, परन्तु उन्होंने उसी घोषणा मे यह सूचना भी दी है कि "राज्य मे तमिल, तेलगु, मलयालम, कन्नड और बगला के अध्ययन की व्यवस्था की जा रही है।" इन वाक्य मे लगता है कि शायद केवल दक्षिण की नहीं, किसी भी एक अहिन्दी राज्य की भाषा की पढाई की भी व्यवस्था की जा रही है। यदि

ऐसा है तो अच्छा है। अच्छा इसलिए है कि हिन्दी और अंग्रेजी के अलावा तीसरी कौनसी भाषा पढी जाय, इसमे निर्णायक कसौटी छात्र की अभिप्रेरणा ही होनी चाहिए। "किसी राज्य के सीमावर्ती भागो के लोगो मे सामान्यत सीमा के पार की भाषा के सीखने मे रुचि होती है और यह बखूबी अध्ययन की भाषा हो सकती है।" (शिक्षा-आयोग ८-३७)

मेरा विचार है कि अहिन्दी राज्यो की भाषा की शिक्षा के सम्बन्ध मे अभिप्रेरणा की यह नीति अधिक मनोवैज्ञानिक होगी और उत्तर प्रदेश के सीमावर्ती छात्रो को इस बात का मौका मिलना चाहिए कि वे तीसरी भाषा के रूप मे अपनी सीमा पार की पडोसी भाषा का अध्ययन कर सके। उदाहरणार्थ—अगर बुन्देलखड का रहनेवाला मराठी भाषा पढना चाहे तो क्या नही पढे? क्योकि बुन्देलखड के कुछ स्थानो पर मराठी वातावरण पर्याप्त है। बगला का अध्ययन भी इसी अभिप्रेरणा की कसौटी के कारण स्वीकार करना चाहिए इसलिए नही कि चूँकि दक्षिण की भाँति बगाल मे भी हिन्दी का विरोध है। परन्तु शिक्षा-मत्री की घोषणा से तो ऐसा ही लगता है कि जिन-जिन राज्यो मे हिन्दी का उग्र विरोध है उन्ही राज्यो की भाषाओ की अनिवार्य पढाई का प्रबन्ध किया जा रहा है। घोषणा के पीछे कोई शैक्षिक दृष्टि नही है।

एक और बात का ध्यान रखना है, चूँकि हम दक्षिण की भाषाओ के साथ उत्तर हिन्दुस्तान की एक बगला भाषा की पढाई की व्यवस्था भी कर रहे है, अत कही ऐसा न हो जाय की व्यवहार मे पढाई केवल बगला की ही रह जाय। बगला उत्तर हिन्दुस्तान की भाषा है। हिन्दी मे उसका बहुत साम्य है। बगाल दक्षिण की अपेक्षा उत्तर प्रदेश का अधिक निकट का पडोसी राज्य है, इसलिए छात्रो मे बगला सीखने की अभिप्रेरणा भी अधिक होगी। अत बगला का विकल्प रखने मे यह खतरा है, ऐसा स्वीकार करना चाहिए और अगर राजनैतिक कारण से सब कुछ करना है तो हिम्मत करके केवल दक्षिण की भाषाएँ ही रखनी चाहिए। —बशीधर श्रीवास्तव

सरकार-स्वतंत्र शिक्षा की बुनियादी बातें

काका कालेलकर

मैं शुरू से मानता आया हूँ कि शिक्षा और शिक्षा-शास्त्री अध्यापक सरकार के अंकुश में न हों। सरकार के हुक्म के मुताबिक सिखाना, सरकार की इच्छा के मुताबिक जीना ऐसी स्थिति शिक्षा शास्त्री की नहीं होनी चाहिए। जिस प्रकार हाईकोर्ट के न्यायाधीशों को सरकार नियुक्त करती है, सरकार से उन्हें वेतन मिलता है, फिर भी सरकार से वे बिल्कुल स्वतंत्र होते हैं, उसी प्रकार शिक्षा-तंत्र और शिक्षा देनेवाले व्यक्ति सरकार से स्वतंत्र होने चाहिए। यह नियम अथवा हमारा यह सिद्धान्त केवल विदेशी राज्य के लिए नहीं था, स्वराज्य में भी स्वराज-सरकार के हुक्म की तावेदारी शिक्षातंत्र और अध्यापक के लिए नहीं होनी चाहिए। यही आदर्श स्थिति है। क्या पढ़ाना, कैसे पढ़ाना, विद्यार्थियों को कैसे रखना और पढ़ाना

इस विषय में जैसे विदेशी सरकार का दखल न हो वैसे ही स्वदेशी सरकार का भी दखल न हो, ऐसा हम चाहते हैं। इसलिए युनिवर्सिटियाँ सब तरह से स्वतंत्र हों यही इष्ट है।

हम योरप आदि देशों का इतिहास पढ़ते हैं। एक जमाना था जब वहाँ के धर्मगुरु और उनका धर्मतंत्र वहाँ की शिक्षा को अपने अंकुश में रखते थे। 'सूर्य पृथ्वी के आसपास घूमता है या पृथ्वी सूर्य के आसपास घूमती है।' इसमें क्या पढ़ाना वह भी धर्मगुरु की मुनसफी पर था। यहाँ एक मजेदार किस्सा सुनाये बिना नहीं रहा जाता। अमेरिका में गुलामी नाबूद हुई और नीग्रो स्वतंत्र हुए और अपनी शालाएँ चलाने लगे तब की बात है। अनपढ़ गाँव के लोगों ने एक पढ़ा हुआ नीग्रो शिक्षक रखा और उसे शाला सौंप दी। गाँव के एक नीग्रो बूढ़े ने शिक्षक से पूछा, "मास्टरजी, पृथ्वी और सूर्य के बारे में आप क्या पढ़ायेंगे? कौन किसके आसपास घूमता है?" प्रजानिष्ठ शिक्षक ने जवाब दिया, "इस बाबत में मेरा कोई आग्रह नहीं है। आप लोग बहुमत से जो तय करेंगे वह मैं पढ़ाऊँगा। मैं जनमत में माननेवाला हूँ। वही सर्वोपरि होना चाहिए!!"

शिक्षा-विभाग की स्वायत्तता किस तरह की?

इसका अर्थ यह नहीं कि शिक्षा-शास्त्री गैर-जिम्मेदार हो। क्या कोई कहेगा कि शिक्षा-शास्त्री को सब प्रकार की छूट होनी चाहिए? वह चोरी करना सिखाये, व्यभिचार सिखाये, विद्यार्थियों को राष्ट्रद्रोही या समाजद्रोही बनाये, आलसी या परावलंबी बनाये, कुछ भी बनाये?

शिक्षा का तंत्र स्वायत्त होना चाहिए—'ऑटोनोमस' होना चाहिए, यह ठीक है। परन्तु वह तो सच्चे प्रजाहितैषी, मानव-कल्याणकारी और सच्चे शिक्षाशास्त्री के हाथ में ही होना चाहिए; गैर-जिम्मेदार, समाजहितद्रोही, सदाचार के शत्रु के हाथ में कभी नहीं होना चाहिए।

हमारे यहाँ परापूर्व से शिक्षा-तंत्र प्रजाहित की उपेक्षा करता आया है, इसलिए शिक्षा-शास्त्री प्रजाहितनिष्ठ न हों तो भी देश में उनकी चलती आयी है।

प्राचीन काल की शिक्षा के गुण-दोष

प्राचीन काल में जब विदेशी राज्य नहीं था, तब भी शिक्षा का काम ब्राह्मण या क्षत्रिय जैसे उच्च वर्णों के हाथ में ही था और वह स्वाभाविक था। उन्होंने लोभी बनकर अपना स्वार्थ नहीं साधा, धर्म और संस्कृति की उत्तम सेवा की। देश की सांस्कृतिक एकता उन्हीं के कारण है। जीवनोपयोगी ज्ञान के अनेक विषयों की छानबीन उन्होंने की। धर्म, तत्त्वज्ञान, मानसशास्त्र, योग, व्याकरण, भाषा-शास्त्र,

के पंचायत राज्य म जैसे सरकारी अमल्दार दखल दे सकते हैं पचो पर दबाव ला सकते हैं ऐसा नहीं होना चाहिए।

या तो कोई भी योजना भयमुक्त नही हो सकती। प्रजा के चारित्र्य म यदि कुछ शक्ति होगी, सवक यदि तेजस्वी होंगे तभी ऐसी स्वायत्तता ही आयदा नानो पामना, ज्ञान प्रचार और प्रजा-कल्याण कर सकेगी।

सफेदपोशो की भूल

हम प्रजाकल्याण की बात जब करते है तब हिंदू समाज के सफेदपोश मध्यम-वर्ग के लोगो को ही प्रजा समझने की गल्ती अब नही होनी चाहिए। जो अपने को एलाइट (elite) कहते हैं उन्हींके हाथो म अबतक ज्ञानोपासना हुई है। उनकी सेवा की हम उपेक्षा न करे। परन्तु इन सफेदपोश लोगो ने दूसरी कौमो के प्रति आत्मीयता या आदर नही दिखाया, या बहुत कम दिखाया इस कमी का उन्हाको प्रायश्चित करना है।

प्रजा या जनता के अंदर बहुसंख्यक सभी वर्गो का समावेश होना चाहिए। मनुष्य जाति के प्रति व मनुष्य हैं इसीलिए जिनके मन म आदरभाव है व ही सच्चे प्रजासेवक हो सकते हैं। निचले स्तर की जनता के प्रति अनादर और उपेक्षा यह हमारी संस्कृति का बडा दोष है। इसके लिए प्रायश्चित किये बिना हम टिक नही सकेंगे और आगे बढ भी नही सकेंगे।

भिन्न धर्मी लोगो के बीच जो परस्पर-अलगाव है यह भी हमारी राष्ट्रीय कम-जोरी है। भावनात्मक एकता विकसित करनी हो तो अलगाव दूर करके सब धर्मसमाजो को ओतप्रोत होने का प्रयत्न करना ही होगा। धर्मभेद स समाजभेद हर्गिज नही होना चाहिए।

फिर भी इस दौर के विरुद्ध यदि हम नवसंस्कृति का निर्माण नहीं करेंगे तो स्वराज्य में भी देश का नया विभाजन करने लगेंगे। यह भारी संकट टालना है तो उच्च नीच भाव और अन्याय दोनों दोषों को नाबूद करना ही होगा।

आज की परिस्थिति में यह काम राजनीतिक लोग नहीं कर पायेंगे। धर्म के अभिमानी लोग तो अन्याय पर ही जीते हैं। यह कभी किसीको अखरता भी न किसीको इसकी शरम है। स्व का अभिमान बढ़ाकर भिन्न धर्मी लोगों के प्रति अन्याय और अविश्वास जो रखता है वही धर्म का हितचिंतक है ऐसा आदर्श समाज में रूढ़ हुआ है।

ऐसे दोषों को इतना न दूर करना यही प्रजाकल्याण का मुख्य काम है।

लोगों में अज्ञान है रूढ़ि की दासता है संकुचितता है और स्वर्थीय जीवन के अभाव में जानवरों की टोलीरूपी 'वृत्ति है। यह दूर करने के प्रयत्न शिक्षा शास्त्रियों के द्वारा ही हो सकते हैं। इस आदर्श दृष्टि को सामने रखकर अध्यापक अपने जीवन में सुधार कर और ऐसे नवजीवन का दीपन अपने किया गया था और विद्यार्थिनियों को दें, यही आज का मुख्य काम है।

समाज में ज्ञान का प्रचार होता है उसके प्रमाण में कार्यकुशलता का विकास नहीं होता। शाब्दिक और वैचारिक विकास से ही लोग संतोष मानते हैं। आदर्शों का जीवन में विकास करने की बजाय केवल उन्हें ओढ़ लिया जाता है। और उतने से सब संतोष मानते हैं। यह भी एक बड़ा अपलक्षण है जो दूर होना चाहिए।

और अन्त में—स्त्री-पुरुष-समानता का आग्रह रखे बिना शिक्षा का विकास नहीं होगा और सामाजिक जीवन में आरोग्य नहीं आयगा।

आज की हालत में सामान्य हाईस्कूलों में और कालेजों में बिना स्त्री पुरुष के भेद के विद्यार्थियों को दाखिल करना चाहिए। तदुपरान्त स्त्रियों के लिए अलग संस्थाएँ भी होनी चाहिए। तभी निर्भयता से और शीघ्रता से प्रगति हो सकेगी।

शिक्षाशास्त्रियों को पूरी स्वाधीनता इस योजना के मुताबिक दी जायगी तभी समाज स्वराज्य को कायम रख सकेगा और दुनिया की सेवा करने लायक हो सकेगा।

इसमें भी यह बात सही है कि यदि नोन अलोना बन जाय तो उसका अलोनापन दूर करने का कोई और साधन है ही नहीं। इसलिए अध्यापकों को अपने चारित्र्य की ओर ध्यान देना चाहिए। चारित्र्यवान ज्ञाननिष्ठ प्रयोग-परायण और सर्वोदय में माननेवाले अध्यापकों के हाथ में ही भविष्य की उन्नति है।

[तारीख ७ १ ६६ को भावनगर, सौराष्ट्र में कालेजों के प्राध्यापकों के समक्ष दिये हुए भाषण का अंश। मूल गुजराती से।]

परिवार और पाठशाला की भाषा की भिन्नता

भाषा सीखने-सिखाने का यह सारा ढंग बहुत पुराना है और अनेक दृष्टियों से इसमें सुधार की अपेक्षा है। औपचारिक रूप में जिस परिनिष्ठित भाषा की शिक्षा दी जाती है, वह न्यूनाधिक मात्रा में भाषा के उन रूपों से भिन्न होती है, जो बालक अपने परिवार और परिवेश में सीखकर पाठशाला में आता है। सभी सुसंस्कृत और उन्नत भाषाओं की यह स्थिति है। हिन्दी के विशाल क्षेत्र में तो भाषा के व्यावहारिक प्रयोग में इतनी भिन्नता और विविधता है कि, उदाहरण के लिए, पश्चिमी राजस्थान और हरियाणा-पंजाब के ग्रामीण व्यक्ति और बिहार प्रान्त के पूर्णिया और भागलपुर के व्यक्ति के लिए अपनी-अपनी बोली में एक-दूसरे को समझना-समझाना असम्भव है। इसी प्रकार कांगडा के ग्रामवासियों का खंडवा के ग्रामीणों के साथ अपने परिवेश की बोली में व्यवहार करना कल्पनातीत है। जिस भाषा में इन सबका सम्पर्क करना अनिवार्य हो जाता है, वह भाषा निकट परिवेश की भाषा से भिन्न शहर की बोली है, अखबार की भाषा है, स्कूल, कचहरी, सभा-सोसाइटी की सुसंस्कृत भाषा है। सामूहिक नाम इन सब भाषा-भेदों का एक ही है—हिन्दी। इसलिए तथा इसलिए भी कि शहर की भाषा का सम्पर्क बालक को थोड़ा-बहुत शैशवकाल से ही मिलने लगता है, यह समझ लिया जाता है कि पाठशाला में जिस भाषा की शिक्षा दी जाती है—चाहे वह पाठशाला जैसलमेर जिले की हो, अथवा पूर्णिया जिले की, चाहे अम्बाला जिले की हो अथवा खंडवा जिले की—बालक की मातृभाषा ही है। शैक्षिक दृष्टि से यह गलत है।

भाषा-कौशल के अभाव का परिणाम

भाषा का अपेक्षित अधिकार प्राप्त करने के लिए यह जरूरी है कि लक्ष्य भाषा पर बालक के परिवेश की भाषा के व्याघात के प्रति सजगता हो और शिक्षक यह जानता हो कि उस व्याघात को दूर करने के उपाय क्या हैं। इसके अभाव में मातृभाषाओं का शिक्षण भी उचित रूप में नहीं होता, भाषा-शिक्षण के नाम पर विषय, व्याकरण या साहित्य का जो शिक्षण होता है, उसमें भाषा-कौशलों पर ध्यान नहीं दिया जाता, बल्कि केवल विषय-ज्ञान पर बल दिया जाता है। भाषा-शिक्षण की इस उपेक्षा का परिणाम हमारे सामने है। अब हमें अच्छे वक्ता बहुत कम दिखाई देते हैं, रोचक बातचीत में भाषा-प्रयोग के मनोरंजक प्रसंग कम सुनायी देते हैं, अच्छे और शुद्ध लेखन दुर्लभ होते जा रहे हैं और भाषा-प्रयोग के पढ़ने और सही समझने की क्षमता में शिथिलता बढ़ती हुई नजर आती है।

मातृभाषा के अतिरिक्त जब अन्य भाषा के रूप में भाषा-शिक्षण पर विचार करते हैं, तब उपर्युक्त त्रुटियाँ और अधिक स्पष्ट और चिन्ताजनक हो जाती हैं।

हिन्दी-भाषी क्षेत्र के विस्तार की सीमाओं को स्पर्श करनेवाली भाषाएँ—बंगला, उड़िया, मराठी, गुजराती, पंजाबी और कश्मीरी—अपने-अपने क्षेत्र के निकट की हिन्दी से इतनी अधिक मिलती-जुलती और परस्पर-प्रभावित दिखाई देती है कि प्रायः समझ लिया जाता है कि उन भाषाओं के बोलनेवालों के लिए हिन्दी इतनी सरल और सहज ग्रहणीय है कि उसके लिए विशेष परिश्रम करने और चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है। परिणाम यह होता है कि बंगला, गुजराती, मराठी आदि भाषा-क्षेत्रों में हिन्दी-शिक्षण के प्रति अपेक्षित सजगता नहीं रहती और भाषा के समझने, बोलने, लिखने और पढ़ने की मानक स्पष्टता और शुद्धता पर ध्यान नहीं दिया जाता। प्रयोग-विस्तार में भाषा के रूप में विविधता तो स्वभावतया आती ही है। एक दृष्टि से उससे भाषा की शक्ति भी बढ़ती है और उसे वांछनीय कहा जा सकता है। परन्तु यदि उसके कारण भाषा के सामान्य व्यापार, प्रेषणीयता में बाधा पड़े तो भाषा सीखने का मूल उद्देश्य ही नष्ट हो जाता है। यदि गुजराती भाषी की हिन्दी में इतना अधिक पश्चिमी राजस्थानी और गुजराती का प्रभाव हो कि वह बंगला भाषी के साथ, जिसकी हिन्दी में अत्यधिक बंगलापन बना रहे; सामान्य भाषा-व्यापार ही न कर सके तो दोनों का हिन्दी सीखना लक्ष्यहीन हो जायेगा और उन्हें किसी ऐसे सामान्य माध्यम की तलाश होगी, जिसके द्वारा व्यवहार करने में किसीको अधिक झिझक और बाधा का अनुभव न हो। यहाँ यह कहना भी आवश्यक है कि भाषा केवल मात्र विचार-विनिमय का साधन नहीं है, बल्कि उसके प्रयोग से प्रयोक्ता के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का बोध होता है, अच्छी या कम अच्छी भाषा-शैली का अनुकूल या अननुकूल असर पड़ता है और तदनुसार उद्देश्य की सिद्धि में सफलता या निराशा प्राप्त होती है।

िक कार्य बहुत कम, प्राय नगण्य रूप मे ही हो सका है। वहाँ भी भाषा-शिक्षण व्याकरण-ज्ञान, साहित्य-अध्ययन और विषय-प्रधान रूप मे ही प्राय चलता है। उच्च शिक्षा मे हिन्दी और अहिन्दी क्षेत्रो के पाठ्यक्रमो मे भी अपेक्षित अन्तर नहीं किया जाता, एक ही प्रकार के प्रश्न-पत्र, दोनो क्षेत्रो के महाविद्यालयो और विश्वविद्यालयो मे चलते है।

वैज्ञानिक भाषा-शिक्षण

भाषा-शिक्षण का आधुनिक काल मे, विशेष रूप से द्वितीय महायुद्ध के बाद, विश्व मे जैसा विकास हुआ है और उसे जो वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य प्राप्त हुआ है, उसे देखते हुए यह आवश्यक है कि हमारे देश मे भी इस अत्यन्त आवश्यक विषय के सम्बन्ध मे पुनर्विचार किया जाय तथा भाषा की शिक्षा को भाषा की शिक्षा के ही रूप मे नियोजित करने के उपाय किये जायें। प्रत्येक विषय के शिक्षण के लिए उस विषय की वैज्ञानिक, विश्लेषणात्मक और गम्भीर जानकारी की आवश्यकता होती है। भाषा के विषय मे अभी तक तथ्य की जो उपेक्षा हुई है, उस उपेक्षा को भाषा-विज्ञान और उसकी प्रयोज्य (एप्लाइड) शाखा ने मिटाने का यत्न किया है, परन्तु प्रयोज्य-भाषा विज्ञान और भाषा-शिक्षण का सम्बन्ध अभी, कम-से-कम हमारे देश म नही जुड सका है।अभी हमारा भाषा-शिक्षक भाषा-विज्ञान के प्रयोज्य पक्ष का उपयोग करने की क्षमता नही प्राप्त कर सका है। हमारे भाषा-विज्ञानियो ने भी भाषा-शिक्षण क प्रयोग को दृष्टि मे रखते हुए भाषा का परीक्षण, विश्लेषण और सामग्री-निर्माण का कार्य नही किया है। भाषा-विज्ञान के प्रयोज्य पक्ष और भाषा शिक्षण मे जैसा घनिष्ठ सम्बन्ध अपेक्षित है, उसे समझे बिना भाषा-शिक्षण को वैज्ञानिक रूप नही दिया जा सकता।

विभिन्न भाषा-क्षेत्रो मे अन्य भाषा क रूप मे हिन्दी-शिक्षण के क्षेत्र मे केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा ने जो कार्य किया है और आगे कार्य करने की जो योजना बनायी है, उसकी ओर भाषा-शिक्षण के प्रत्येक स्तर पर विचार और कार्य करनेवाले व्यक्तियो का समुचित ध्यान देने की आवश्यकता है। भाषा-शिक्षण की प्रविधि, सामग्री और उपकरणो क नवीनीकरण क साथ भाषा-शिक्षको क नवीनीकरण की अनिवार्य आवश्यकता है। भाषा-शिक्षको के प्रशिक्षण म भी आवश्यक परिवर्तन अपेक्षित है और साथ ही भाषा और साहित्य के उच्च स्तरीय पाठ्यक्रमो म मौलिक सुधार और संशोधन अपरिहार्य है।

भाषा-शिक्षण मे भाषा पर बल देना चाहिए, न कि विषय पर, साहित्य का भी भाषा-शिक्षण के माध्यम के रूप मे उपयोग होना चाहिए, साहित्यिक जानकारी देना अतिरिक्त लाभ के रूप मे समझना चाहिए। अभी स्थिति बिल्कुल उल्टी है,

यानी भाषा को साहित्य की जानकारी देने का माध्यम माना जाता है और यह स्थिति यहाँ तक पहुँच गयी है कि परीक्षण में प्रायः विषय-ज्ञान, साहित्यिक जानकारी का ही मूल्यांकन होता है, भाषा-प्रयोग के दोषों तक की उपेक्षा कर दी जाती है। सच तो यह है कि साहित्य शिक्षण का विषय ही नहीं है, यह तो आस्वादन का विषय है और साहित्यिक आस्वादन भाषा-कौशलों के अच्छे ज्ञान और उसकी पहचान तथा भाषा के समुचित संस्कार से ही सम्भव है। परन्तु यह विषय पृथक् और विस्तृत विचार की अपेक्षा रखता है।

माध्यम की भाषा का प्रश्न

शिक्षा के माध्यम के रूप में भाषा के प्रयोग की वास्तव में कोई मूल समस्या नहीं है, क्योंकि भाषा केवल एक साधन है, साध्य हैं विभिन्न विषय जिनकी जानकारी भाषा के द्वारा दी जाती है; परन्तु माध्यम की भाषा का प्रश्न वस्तुतः भाषा-शिक्षण से भी अधिक कठिन समस्या का रूप धारण करता रहा है। इतिहास से प्रमाणित है कि जनसाधारण की प्रचलित भाषाएँ अभी कल तक उस आदर और मान्यता से वंचित रही हैं, जो विशिष्ट और अधिकार-सम्पन्न वर्गों की, प्राचीन और विदेशी भाषाओं को मिलता रहा है। इंग्लैंड में सोलहवीं शताब्दी तक अंग्रेजी को कोई स्थान नहीं मिला था। लैटिन और फ्रेंच का अपेक्षाकृत अधिक सम्मान अठारहवीं शताब्दी तक रहा। हमारे देश में प्राकृत, अपभ्रंश और आधुनिक भाषाओं के प्रचलन के बावजूद संस्कृत का जो आदर रहा है, उसका प्रमाण आज भी मिलता है। निश्चित ही प्राचीन भाषाएँ अधिक संस्कार-युक्त और अभिजात-वर्गों की मान्य-भाषाएँ रही हैं। उन्हीं को शिक्षा में स्थान मिलता था, उन्हीं को शिक्षा का माध्यम बनाया जाता था।

प्राचीन काल में संस्कृत बहुत कुछ एकमात्र सम्मान और प्रतिष्ठा की भाषा थी, परन्तु मध्य-युग में अरबी और फारसी ने—अधिकांशतः फारसी ने—संस्कृत को राज-दरबारों और उनके प्रभाव-क्षेत्रों से बहिष्कृत कर दिया। संस्कृत केवल हिन्दू-धार्मिक क्षेत्र की भाषा रह गयी और इसी सदर्भ में उसमें साहित्य की भी यदाकदा रचना होती रही। वस्तुतः मध्य-युग में समाज, संस्कृति और फलस्वरूप शिक्षा में विभाजन की प्रवृत्ति पैदा हो गयी थी, क्योंकि विदेश की भाषा-संस्कृति ने सत्ताधिकार के साथ समाज के जीवन में प्रवेश किया था। मकतब-मदरसों और पाठशाला-विद्यापीठों में क्रमशः अरबी-फारसी और संस्कृत भाषाएँ शिक्षा के विषय और माध्यम के रूप में अपनायी जा रही थीं। वाणिज्य-व्यापार, गृह-कलह और मिशनरी ईसाइयों के माध्यम से जब देश पर अंग्रेजों का आधिपत्य हो गया, तब एक और समस्या उठ खड़ी हुई। अंग्रेजों ने अपने साम्राज्य के स्थायित्व की

दृष्टि से और कुछ भारतीय विचारकों और मनीषियों ने आधुनिकता-विज्ञान और प्रगति के प्रलोभन में अंग्रेजी भाषा को शिक्षा में प्रतिष्ठा का स्थान देना उचित समझा और उन्नीसवीं शताब्दी में ही संस्कृत और अरबी-फारसी को प्रगति-विरोधी और जड़ता-पोषक परम्परागत पाठशालाओं और मकतबों में सदा के लिए सीमित रखने और अंग्रेजी को शिक्षा और सामाजिक प्रतिष्ठा में सर्वोच्च स्थान देने की योजना कार्यान्वित हो गयी और इस योजना में देश की भाषाओं को अधिकारहीनों की निचली श्रेणी से ऊपर न उठने देने का भी पक्का प्रावधान कर लिया गया। अंग्रेजी भाषा शिक्षा का सबसे अधिक प्रतिष्ठित विषय बन गयी और उसने संस्कृत, अरबी-फारसी और आधुनिक भाषाओं को सबसे अधिक उपेक्षित विषय बना दिया। राष्ट्रीय आन्दोलन ने इस स्थिति में परिवर्तन लाने का प्रयत्न अवश्य किया, परन्तु राष्ट्रीय नेतृत्व पर अंग्रेजी का जादू कम नहीं था। यही कारण था कि अंग्रेजी भाषा ही, महात्मा गांधी के प्रयास के बावजूद सर्वोच्च स्तर पर ही नहीं, प्रादेशिक और प्रायः जिले के स्तर पर स्वतन्त्रता-आन्दोलन का माध्यम बनी रही। यह स्थिति आज भी निर्लज्जता के साथ बनी हुई है। आज भी राजनैतिक पार्टियों की भाषा अंग्रेजी है, सरकारी कामकाज अंग्रेजी हटाने का घनघोर आन्दोलन करनेवाली पार्टियाँ भी अपना कामकाज अंग्रेजी में चलाती हैं, किसान और मजदूरों के प्रतिनिधित्व का दावा करनेवाली पार्टियाँ भी अंग्रेजी से चिपकी हुई हैं।

दुहरे माध्यम का परिणाम

परन्तु ऐसा नहीं है कि राष्ट्रीय आन्दोलन ने अंग्रेजी के एकछत्र साम्राज्य को हिलाया न हो। कोई भी आन्दोलन जन-भाषाओं की सर्वथा उपेक्षा करके जनता के जीवन को स्पर्श नहीं कर सकता। सार्वजनिक माध्यम सभा, भाषण, अखबार, पत्र-पत्रिका आदि की सहायता के बिना सार्वजनिक आन्दोलन नहीं फैलाया जा सकता। परन्तु सर्वोच्च स्तर पर इन सार्वजनिक माध्यमों की भाषा अंग्रेजी ही रही है। विधान-सभाओं, लोक और राज्य-सभाओं के भाषणों में भले ही देश की भाषाओं का प्रयोग होता हो, इन सबका उच्चकार्य, नीति-निर्धारण, विधि-विधान और उच्च स्तरीय ही नहीं, प्रायः निम्नस्तर तक के राज-काज में आज भी अंग्रेजी का—तथाकथित अंग्रेजी का—जिसे अब बेशरमी के साथ भारतीय अंग्रेजी कहने का फैशन चल पड़ा है—खुले-आम प्रयोग होता है। इस दुहरे माध्यम ने देश के जीवन में पुनः विभाजन पैदा कर दिया है, अधिकार-प्राप्त और अधिकार-हीनों की भाषा में भेद है और फिर हम लोकतन्त्र और समाजवाद का दम भरते हैं।

विभाजन की स्थिति शिक्षा में भी है। वस्तुतः सामाजिक जीवन के विभाजन का उल्लेख यहाँ शिक्षा-क्षेत्र के विभाजन की शक्तियों को स्पष्ट करने के लिए ही

किया गया है। माध्यम के रूप मे अंग्रेजी और भारतीय भाषाएँ दोनों चल रही हैं; परन्तु स्थिति में अत्यधिक जटिलता है। सामान्य शिक्षा की दृष्टि से हिन्दी और अहिन्दी भाषी क्षेत्रों मे बहुत अन्तर है। हिन्दी भाषी क्षेत्र में मानविकी, कला और समाज-शास्त्रीय विषय की शिक्षा वैकल्पिक रूप में उच्च स्तर तक हिन्दी मे दी जाने लगी है, परन्तु अहिन्दी-भाषी क्षेत्रो मे अधिकांशतः माध्यमिक स्तर तक ही भारतीय भाषाओं को माध्यम बनाया गया है। परन्तु प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च स्तर तक पूर्णतः अंग्रेजी माध्यम भी सारे देश में चल रहा है, जिसका लाभ अधिक भाग्यवान और धनवान लोग ही उठा पाते है। इस प्रकार समाज को भाग्यवान अधिकार-प्राप्त और अभागे अधिकारहीनों के दो वर्गों में विभाजित करने का कार्य शिक्षा के द्वारा भी किया गया है और उसे रोकने के कोई कारगर और व्यावहारिक उपाय नहीं किये जा रहे रहे हैं, समस्या पर वाद-विवाद करने और योजनाएँ बनाने तक ही इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सामाजिक प्रश्न के प्रति जागरूकता दिखाई दे रही है।

माध्यम की उलटी गंगा

न जाने कितनी कमेटियों और कमीशनों के द्वारा यह सिद्धान्त बार-बार दुहराया गया है कि शिक्षा का माध्यम शिक्षार्थी की भाषा ही होनी चाहिए, यह न केवल वाञ्छनीय है, बल्कि अपरिहार्य है। परन्तु इतना होते हुए भी इस देश में अब भी गम्भीर बहस छिड़ती है कि उच्च शिक्षा का माध्यम बनाने की क्षमता अभी भारतीय भाषाओं मे नहीं आयी है, अभी अंग्रेजी को माध्यम बनाये बिना काम ही नहीं चल सकता। इस बहस मे यह सर्वथा भुला दिया जाता है कि विदेशी भाषाओं मे संचित ज्ञान-विज्ञान सुलभ करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि शिक्षा का ही नहीं, परीक्षा का माध्यम भी कोई एक विदेशी भाषा ही रहे। विदेशी भाषाएँ सीखना और जानना एक बात है, उन्हें माध्यम बनाना सर्वथा भिन्न। उच्च शिक्षा और अनुसंधान के लिए एक नहीं, एक से अधिक विदेशी भाषाएँ जानना जरूरी है। वास्तव में आज के युग मे बहुभाषीयता विद्वत्ता का ही नहीं, सुसंस्कार का भी लक्षण है, परन्तु इसके लिए यह किसी प्रकार आवश्यक नहीं है कि शिक्षा के माध्यम के रूप मे कोई विदेशी भाषा चलायी जाय। उच्चतम शिक्षा के स्तर पर यद्यपि माध्यम का प्रश्न गौण हो जाता है, पर उस गौण स्थिति मे ही नहीं, अपनी भाषा को माध्यम बनाने मे ही विषय-ज्ञान सम्यक् रूप मे सम्भव है, मौलिक चिन्तन तभी सम्भव है, जब आधारभूत भाषा अपनी भाषा हो। शिक्षा के माध्यम की आधारभूत भाषा होने पर ही उस भाषा में उपयोगी अनुवाद-कार्य भी हो सकता है। आजकल जो पुस्तकें अनूदित रूप मे निकलती है, उनकी प्रायः यह कहकर

आलोचना की जाती है कि उनकी भाषा कठिन है, वे बोधगम्य नहीं है, उनके द्वारा विषय का सही ज्ञान नहीं होता और उनके होते हुए भी अंग्रेजी की पुस्तकों के बिना काम नहीं चलता। यह स्थिति इसी कारण है कि जो भी थोड़ा-बहुत चिंतन होता है, वह माध्यम भिन्न होने के कारण अपनी भाषा द्वारा नहीं हो पाता और अनुवाद की भाषा परायी जान पड़ती है। इस विषय में वास्तव में उलटी चाल चली जा रही है। कहा जाता है कि पहले अनुवाद या मौलिक पुस्तकें अपनी भाषाओं में तैयार कर ली जायें तब माध्यम बदला जाय। यह उलटी गंगा बहाने के समान है। विज्ञान के इस युग में गंगा की धारा को उलटा जा सकता है, नहरों के रूप में यह किया भी गया है, पर बाँध या नहर का पानी गंगा-जल नहीं हो सकता। स्वाभाविक यह है कि पहले माध्यम बदला जाय, यह जोखिम उठाया जाय कि अध्यापक अंग्रेजी की पुस्तकों से ज्ञान संचित करके उसे भारतीय भाषाओं के शिक्षार्थियों के सम्मुख प्रस्तुत करें और इस प्रकार शिक्षार्थियों की जिज्ञासा और चिंतन-शक्ति को उद्बुद्ध करें तथा अपनी तैयारी के रूप में एकत्र सामग्री को ही बाद में पुस्तकों का रूप प्रदान करें। यह कार्य वस्तुतः परिश्रम-सापेक्ष है। अंग्रेजी के नोट शिक्षार्थियों के सामने पढ़ देने या रटकर उगल देने की अपेक्षा इस प्रक्रिया में अध्यापकों को अधिक मेहनत करनी पड़ेगी, सोचना और समझना भी पड़ेगा, तभी तो वे विद्यार्थियों को समझा सकेंगे और उन्हें सोचने-समझने के लिए प्रेरित कर सकेंगे। यदि यह जोखिम उठाया जाय तो जहाँ एक ओर कुछ अत्यन्त रोबीले अध्यापकों की कलई खुलेगी वहाँ कुछ नवीन प्रतिभाओं का भी उदय होगा।

आज प्रायः भारतीय भाषाओं की अक्षमता की बात कही जाती है। निश्चय ही यह बात स्वतंत्रता-पूर्व के उन "माडरेट", "लिबरल" नेताओं और अंग्रेजों जैसी बात है, जो कहा करते थे कि अभी भारत में स्वतंत्र होने की क्षमता नहीं है, अभी वह स्वतंत्रता का भार सँभाल नहीं सकेगा। भाषा की क्षमता अनुवाद तैयार करने और शब्द गढ़ने में नहीं बढ़ती। भाषा की क्षमता भाषा-भाषियों की क्षमता की द्योतक होती है और भाषा-भाषी अपनी भाषा को और स्वयं अपने को तभी क्षमतावान बना सकते हैं, जब वे उसका प्रयोग करें। पानी में उतरे बिना कोई तैरना नहीं सीख सकता।

भगवान करे, हमारे शिक्षकों, शिक्षा-शास्त्रियों, शिक्षा-नीति का निर्धारण करने वाले राजनीतिक शिक्षा-नेताओं को समझ-बूझ दे कि वे शिक्षा में भाषा के महत्त्व को समझकर देश की भौतिक और नैतिक प्रगति को तीव्र करने में योग दें। यदि समय रहते वे ऐसा न कर सके तो इस प्रक्रिया में देश की हानि होगी, समय और शक्ति का अपव्यय होगा और कौन जाने ऊँट किस करवट बैठेगा।•

युवक समाज के साझी कैसे बनें ?

आधुनिक युग के साझी होने के लिए हम एक विशेष प्रकार की कार्यकुशलता की आवश्यकता है। वह है विज्ञान की समझ की अनुभूति और उससे लाभ उठाने की योग्यता। हम यह अच्छी तरह समझना होगा कि तकनीकी कुशलता उन्हें आज के समाज का लाभदायक साझी बना सकती है, न कि नारेबाजी। आगरा नगरी के प्रमुख निर्माता अकबर महान ने योग्य व्यक्तियों को अपनी राजधानी में इकट्ठा किया था। शक्तिशाली शासक होने के साथ-साथ जनकल्याण में उनकी विशेष रुचि थी। यहीं पर राजा टोडरमल के कुशल शासन प्रबन्ध तथा शिल्पकारों की अनुपम हस्तकला के साथ-साथ बीरबल के चातुर्य तानसेन के संगीत रहीम खानखाना के दोहों और अबुल फजल की शायरी को पूरा-पूरा प्रोत्साहन मिला था। इस प्रकार आगरा ज्ञान संस्कृति और मानवीय चातुर्य एवं कौशल का प्रमुख स्रोत रहा।

एक महत्वाकांक्षी समाज को किसी कार्य को प्रभावशाली ढंग से थोड़े काल में पूरा करने की क्षमता से लाभ पहुँचता है न कि केवल ज्ञान से। ज्ञान का प्रयोग करने की क्षमता बड़ी जरूरी है। इसके बिना केवल किसी चीज का ज्ञान होना काफी नहीं। क्षमता अथवा कुशलता की चर्चा करते हुए मुझे अभी हाल में पढ़े एक विश्वविख्यात विचारशील समालोचक की भारत-सम्बन्धी धारणा का ध्यान आता है। उक्त समालोचक ने हमारे देश को एक ऐसी आवश्यक भूमि बतलाया है जहाँ पर है अकथनीय कार्य-शिथिलता और कार्य-कुशलता की कमी। मुझे इन शब्दों से तीखा आघात लगा किन्तु जब मैं व्यथा से पुनः सचेत हुआ तो मुझे आभास हुआ कि उसने भी अपने देश में कार्य-कुशलता के विकास की समस्या का जिक्र किया है। उच्च स्तर की निपुणता के बिना हम सही ढंग से प्रगति न कर सकेंगे।

तकनीकी युग में शिक्षा

शिक्षा का तकनीकीप्रधान जगत् में क्या स्थान है या होना चाहिए इसके बारे में कहना असंगत न होगा। हमारे उद्योगों का काफी विकास हुआ है। सरकार की नीति औद्योगिक विकास को प्रोत्साहन देने की है और विकासशील उद्योगों को नजर में रखते हुए विज्ञान और तकनीकी की उन्नति की ओर भी पूरा ध्यान है। चीनी और पाकिस्तानी हमलों के बाद से आत्म-निर्भरता पर अधिक जोर है। दैनिक समाचार-पत्रों में प्रायः रोज ही किसी-न-किसी उद्योग-संस्थान द्वारा अपना निर्यात सम्बन्धी सफलताओं के विज्ञापन देखने को मिलते हैं। मुझे खुशी है कि कुछ अर्से से निर्यात को बढ़ाने के लिए विशेष प्रयत्न किये जा रहे हैं। न केवल आयात कम

बरले पर रात है कि हमारी बनी चीजों का निर्यात भी बढ़ रहा है। यद्यपि पूंजी भुगतान की समस्याओं में निबटने के लिए निर्यात को कई गुना अधिक बढ़ाना होगा फिर भी यह सन्तोष की बात है कि हमारे देश में बनी मशीनें भी बाहर जा रही हैं।

शिक्षा में तकनीकी

तकनीकी प्रगति का मार्ग कोई सुगम नहीं है उसके लिए बहुत सूझ-बूझ और परिश्रम की आवश्यकता है। मैं नहीं कह सकता कि हमने तकनीकी विकास को गतिशील बनानेवाले सभी अवयवों को अच्छी तरह समझा है या नहीं और उसके लिए उचित वातावरण बनाने का पूरा प्रयत्न किया है तथा अपनी शिक्षा प्रणाली को उचित मोड़ दिया है। मैं पहले भी इस समस्या के कुछ पहलुओं की चर्चा की है और आज फिर तकनीकी के लिए आवश्यक अंगों के विषय में कुछ कहना चाहता हूं। सर्वप्रथम तकनीकी ज्ञान जिस पर टेक्नालाजी आधारित होती है इसमें ज्ञान का अर्जन और नये ज्ञान का विकास दोनों ही आते हैं। दूसरा तकनीकी विकास को बढ़ाने के लिए समाज के अन्दर अनुकूल वातावरण और जनता में सम्पन्नता की भावना। तीसरा राजनैतिक और प्रशासनिक प्रोत्साहन। चौथा पूंजी व सामग्री जुटाना। निर्मित चीजों की खपत के लिए वितरण और बाजार व्यवस्था का अनुभव। और भी जरूरी बातें हैं जैसे—कर्मियों की शिक्षा आयोजन और संचालन-व्यवस्था की कुशलता और सबसे बढ़कर किसी काम को बीड़ा उठाने की भावना। ये सारी बातें महत्त्वपूर्ण हैं और इनमें से एक भी पहलू के कमजोर पड़ने पर तकनीकी का अस्तित्व और प्रगति भी कमजोर पड़ जायेंगे।

यह सब जानते हैं और यह एक बड़े सतोष की बात है कि पिछले बीस वर्षों में हमारी शिक्षा के क्षेत्र में विशेषकर वैज्ञानिक तथा तकनीकी के क्षेत्र में वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद्, परमाणु-शक्ति संस्थान और सुरक्षा-विज्ञान संस्थाओं आदि की स्थापना और विकास से वैज्ञानिक अनुसंधान का क्षेत्र काफी विस्तृत हुआ है। विश्वविद्यालयों में अनुसंधान के उच्च केन्द्र स्थापित हुए हैं और उनमें काफी सुविधाएं दी गयी हैं। पिछले दस-पन्द्रह वर्षों में औद्योगिक विकास के लिए तकनीकी और व्यावहारिक अनुसंधानों की काफी वृद्धि हुई है।

तकनीकी समाज के लिए आवश्यक कुशलता

आधुनिक औद्योगिक प्रणाली का आधार विशेषज्ञता है। तकनीकी पर आधारित आधुनिक उद्योग की स्थापना और संचालन के लिए विविध कार्य कुशलताओं की आवश्यकता है। केवल एक बड़ी संख्या में इंजीनियर स्नातकों के होने से

ही औद्योगीकरण मे वृद्धि नही होगी, बल्कि बेकारी की समस्या बडी हुई है। इसलिए जाहिर है कि आधुनिक औद्योगिक प्रणाली बनाये रखने और विकास के लिए जिस कुशलता और योग्यता की जरूरत है, वह हममे अभी भी पूर्ण रूप से नहीं आयी है। शिक्षा-संस्थानो से उत्तीर्ण स्नातक मूलभूत मानवीय साधन है। आप क्षमा करें, यदि मैं यह कहूँ कि वे एक प्रकार से कच्ची सामग्री के समान है। उनको उन कुशलताओ और योग्यताओ मे भी दक्ष करना होगा, जो कि आधुनिक ढाँचे के बनाने और विकसित करने के लिए आवश्यक है।

प्रगति-सम्पन्न देशों और हमारे देश के बीच जो तकनीकी खाई-सी दीख पडती है, इसका विशेष कारण है—कुशलताओं और योग्यताओं का अभाव। तकनीकी खाई से प्रतिभा-निष्क्रमण बढ़ता है, जिसे 'ब्रेन ड्रेन' कहते हैं। 'ब्रेन ड्रेन' से तकनीकी खाई पनपती है और तकनीकी खाई से 'ब्रेन ड्रेन'।

आर्थिक दृष्टि से शायद भारतवर्ष आज अधिक शिक्षा की समस्या से पीडित है। यह एक प्रकार से अनिवार्य है। हमारे बहुत-से राज्यो के बजट मे शिक्षा यदि सबसे महत्त्वपूर्ण नही तो एक बडा अग तो अवश्य ही है। दुर्भाग्यवश हमारी आर्थिक प्रगति उतनी नहीं हुई, जितनी शिक्षा मे वृद्धि। परिणामत. शिक्षा के प्रसार के मुकाबिले मे नियुक्ति के स्थानों की गति बहुत पिछडी हुई है। फलत हमारी बेकार जनशक्ति काफी बढ़ती जा रही है। चूँकि वैज्ञानिकों, इन्जीनियरों और डाक्टरों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय माँग है, इसलिए उन्हे बाहर अवसर मिल जाते है। लेकिन अन्य विषयो मे शिक्षा प्राप्त करनेवालो का, जो काफी बडी सख्या मे है, क्या होगा ? मुझे तो ऐसा लगता है कि बेरोजगारो की यह बढती हुई संख्या आनेवाले दिनो मे आज की अपेक्षा कही एक बडी समस्या उपस्थित न कर दे।

उत्पादनोन्मुखी शिक्षा-प्रणाली की आवश्यकता

इस समस्या को हम कुछ हद तक सुलझा सकते हैं अगर शिक्षा-प्रणाली पर हम और अधिक गौर करें तथा उन कुशलताओ और योग्यताओ की दिशा मे कुछ करें जो उत्पादन की दृष्टि से सार्थक हैं। अमेरिका और इंग्लैण्ड-जैसे विकसित देशो मे भी यह भावना अग्रसर है कि सीमित तकनीकी शिक्षा उद्योगो मे काम करने के लिए पर्याप्त नहीं है। शायद हमे भी इसी दृष्टि से सोचना पडे। मैं अमेरिका के स्टैनफोर्ड और इंग्लैण्ड के लोबरो टेक्नालाजी विश्वविद्यालयों मे होनेवाले प्रयोगो की ओर ध्यान दिलाऊँगा। इन दोनो ही विश्वविद्यालयों मे शिक्षा को वास्तविक उत्पादन के साथ मिला देने की कोशिश की गयी है। जो औद्योगिक उत्पादन में लगे हुए हैं, उन्हे भी शिक्षा जारी रखने की सहूलियत दी जाती है, जिससे कि वे अपने ज्ञान और अपनी कुशलता को बढ़ाते रहे। व्यवस्थापन की शिक्षा के साथ

उत्पादन का व्यावहारिक पक्ष भी जोड़ दिया गया है। इस सम्पूर्ण योजना की व्यवस्था उद्योग की सहकारिता के साथ की गयी है। औद्योगिक संस्थानों में शिक्षा के अलावा विद्यालयों के आसपास कारखाने भी है। यहाँ कारखाने मशीनें भी देते हैं। इस योजना मे शिक्षित उम्मीदवारों को काम पर भी रख लेते है। स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय के पास स्वयं अपना एक औद्योगिक संस्थान है, जहाँ स्नातकों को उस विषय में शिक्षा दी जाती है, जिसकी कि उद्योग को व्यापारिक उत्पादन के लिए जरूरत हो। इन दोनों ही योजनाओं में औद्योगिक प्रबन्ध से सम्बन्धित शिक्षा भी दी जाती है। क्या इस तरह की व्यवस्था अपने देश मे कम-से-कम प्रयोगमात्र नहीं की जा सकती ? तकनीकी संस्थान और इंजीनियरिंग विद्यालय, उद्योग के सहयोग से उनके क्षेत्र से सम्बन्धित ऐसी योजनाओं में भाग ले सकते हैं, और न केवल स्नातकीय स्तर पर, बल्कि तकनीकी स्तर पर भी उसी प्रकार की शिक्षा-व्यवस्था को अपनाया जा सकता है।

उद्योग में प्रबन्ध-कुशलता की महत्ता

मैंने प्रबन्ध-कुशलता की चर्चा की थी। एक आधुनिक उद्योग के लिए सफल प्रबन्ध उतना ही महत्त्वपूर्ण है, जितना कि पूंजी और श्रम। मेरे ख्याल में हमारे देश की बहुत-सी कमियाँ प्रबन्ध और संचालन की कमियों के कारण हो सकती हैं। ये कमियाँ राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के स्तर पर और भिन्न-भिन्न उद्योगों के स्तर पर हो सकती है। यूरोपीय अर्थव्यवस्था के अनेक आधुनिक विशेषज्ञों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि विश्व में अमरीकी उद्योगों की श्रेष्ठता का कारण प्रबन्ध-कुशलता है। उनका कहना है कि साधारण धारणा के विपरीत बात यह है कि अमरीका प्रबन्ध-कुशलता के कारण, न कि तकनीकी अग्रता के कारण आगे बढ़ा हुआ है। वह प्रबन्ध-कुशलता की खाई है, तकनीकी स्तर की नहीं। उद्योग और व्यवसाय में आधुनिक प्रबन्ध के तरीकों को प्रयोग में लाकर अपनी आर्थिक स्थिति को सशक्त बनाने के लिए यूरोपीय नेता और चिंतक बहुत-से सुझाव रख रहे है।

भारतवर्ष में साधारणतः उद्योगों के संचालन में प्रशिक्षित प्रबन्ध-कुशल व्यक्ति कम हैं। कुछ अर्से से कहीं-कहीं औद्योगिक संस्थानों में ऐसे लोग बढ़ते जा रहे हैं, मगर तब भी कुल मिलाकर देश मे उनकी संख्या कम है। एक विख्यात अर्थशास्त्री ने लिखा है कि पारिवारिक प्रबन्ध-प्रणाली खत्म होती जा रही है, अब तो 'टेक्नोक्रेट' का युग आ गया है, जो देश इसे नही अपनायेगा, वह पिछड़ा रह जायेगा।

मेरा विचार है कि इस प्रकार का परिवर्तन हमारे देश में भी जरूर होगा।

(आगरा विश्वविद्यालय के ३० नवम्बर, १९६८ के दीक्षात-समारोह पर दिये गये भाषण से।)

नयी शिक्षा का आधार : आत्मपरिष्कार

आचार्य रजनीश

मनुष्य के प्राण भर रखना चाहते हैं। लेकिन कुछ ऐसा है कि प्राण भरते ही नहीं और जीवन रोज-रोज अधूरा-अधूरा, खाली और रिक्त मालूम होता है। अर्थहीन मालूम होता है दौड़। सब उपाय व्यर्थ मालूम होते हैं। सब श्रम किसी रेगिस्तान में खो गया मालूम होता है। कहीं पहुँचते हुए मालूम नहीं होते। दौड़ते हैं जीवन भर, और कहीं नहीं पहुँच पाते हैं। कोई उपलब्धि नहीं कोई परिणाम नहीं। कहीं कोई मंजिल नहीं मिलती। और ऐसा मनुष्य का जीवन हो तो मौलिक समस्या, बुनियादी प्रश्न है मनुष्य के सामने—क्या हम उसे पूर्ण कर लेंगे ? और भर लेने की कला में दीक्षित कर सकते हैं ? और जो शिक्षा यह न कर पाती हो वह शिक्षा मनुष्य को और भी विषादयुक्त करेगी, 'फ्रस्ट्रेशन' से भर देगी, क्योंकि जितना शिक्षित मनुष्य होगा उसमें हृदय के पात्र को भरने की उतनी ही तीव्र लालसा होगी। उतने ही उद्दाम वेग में अपने हृदय को भरने के लिए वह दौड़ेगा। इसीलिए पिछली सदी में हमारी सदी ज्यादा विक्षिप्त मालूम पड़ती है। इसमें पिछली सदियों का कोई गौरव नहीं।

जितनी शिक्षा उतनी ही विक्षिप्तता

पिछली सदियाँ अशिक्षित थीं। अतीत का कोई गौरव नहीं है कि वे लोग दौड़ और होड़ में थे। हम ज्यादा दौड़ और होड़ में हैं। शिक्षा बढ़ी है। जिस मुल्क में जितनी ज्यादा शिक्षा है उतनी ही विक्षिप्तता बढ़ गयी है। अमरीका सबसे ज्यादा शिक्षित मुल्क है तो सबसे ज्यादा पागल भी। प्रतिदिन अमेरिका में १५ से ३० लाख लोग मानसिक विकारों का इलाज करवाते हैं। और ये सरकारी आँकड़े हैं और आप जानते हैं कि सरकारी आँकड़े कभी भी सच नहीं होते। न्यूयार्क में तीन प्रतिशत लोग बिना दवा लिये रात में सो नहीं पाते। उन्हें यह विश्वास कठिन होता है कि लोग बिस्तर पर कैसे जाते हैं और किस तरह सो जाते हैं। न्यूयार्क के मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि आनेवाली सदी में इस सदी के पूरा होते ही बिना दवा लिये ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं होगा, जो सो सके।

शिक्षा बढ़ती है, सभ्यता बढ़ती है तो आदमी रुग्ण क्यों हो जाता है? विक्षिप्त क्यों हो जाता है? कोई कारण होगा। शिक्षा में कोई बुनियादी भूल होगी। जिस बुनियादी सवाल को हल करना चाहते हैं उसका शिक्षा से सम्बन्ध है, बल्कि हो सकता है जिस बीमारी को हम दूर करना चाहते हैं हमारी ऐसी शिक्षा हो जो इस बीमारी को बढ़ाती हो। और, मैं आपसे निवेदन करना चाहूँगा कि वह बढ़ती है। और तब हम दूसरे कारण खोजते हैं। नयी पीढ़ियाँ खराब हो गयी। कलियुग आ गया। लोगों का चरित्र गिर गया। यह हो गया, वह हो गया। हम दूसरे कारण खोजते हैं और असली कारण की ओर ध्यान भी नहीं देते।

जिसे हम शिक्षा कहते हैं, वह मनुष्य की बीमारी को घटानेवाली नहीं, बढ़ानेवाली है। और यह शिक्षा आज की ही है ऐसा मत सोचें। यह शिक्षा हमेशा से ऐसी ही है। फर्क जो पड़ा है, वह शिक्षा की बुनियाद और ढाँचे में नहीं पड़ा है। शिक्षा का सामूहिक विकास हुआ है। जनता शिक्षित हुई, अधिकतर लोग शिक्षित हुए हैं। बहुजन लोग शिक्षित होते जा रहे हैं। जो लोग पिछली सदी में शिक्षित थे उनके साथ भी वही रोग थे, जो आज सारे लोगों के साथ हैं। और जिस दिन सारी पृथ्वी शिक्षित होगी उस दिन ऐसा प्रतीत होने लगेगा कि पृथ्वी एक बड़ा पागलखाना हो गयी।

जितनी महत्वाकांक्षा उतनी ही रिक्तता

बात यह है कि मनुष्य का हृदय महत्वाकांक्षा को प्रदीप्त करने से कभी नहीं भर सकता। जितनी महत्वाकांक्षा विस्तृत होगी, मनुष्य उतना ही रिक्त और खाली होगा। और शिक्षा महत्वाकांक्षा बढ़ाती है। पहले दिन से हम बच्चों को महत्वाकांक्षा का जहर पिलाना शुरू कर देते हैं। पहली कक्षा में ही उन बच्चों से अपेक्षा करते हैं कि प्रथम आओ। दूसरों को पीछे छोड़ो, तुम आगे हो आओगे तो पुरस्कृत होगे और सम्मानित होगे और जो पीछे छूट जायगा वह अपमानित दीन-हीन रास्ते के किनारे खड़ा हो जायगा। हम क्या सिखा रहे हैं? हम सिखा रहे हैं कि जीवन का सूत्र है प्रथम होना। जीसस क्राइस्ट ने एक अद्भुत बात कही। क्राइस्ट ने कहा—धन्य है वे लोग, जो अन्तिम खड़े होने में समर्थ हैं! और हमारी पूरी शिक्षा का एक ही स्वर है, धन्य है वे लोग जो प्रथम खड़े होने में समर्थ हैं! या तो जीसस क्राइस्ट पागल थे या हम पागल हैं। और इसके बीच तीसरा कोई विकल्प नहीं। अन्तिम खड़े होने के मूल्य (वैल्यू) को हमारी शिक्षा नहीं सिखाती। तो फिर इस शिक्षा से कुछ भी नहीं पैदा होनेवाला है, क्योंकि प्रथम होने की दौड़ ही मनुष्य को विक्षिप्त करने की दौड़ है। लेकिन एक यही मूल्य मालूम होता है कि प्रथम स्थान प्राप्त कर लिया तो सब कुछ प्राप्त कर लिया। इस प्रथम होने को थोड़ा समझ लेना जरूरी है।

हीनता की भावना की भयानकता

क्या आपने कभी सोचा है कि ३० बच्चों की कक्षा में एक बच्चा प्रथम हो जाता है, तो एक बच्चा प्रथम होता है इतना ही नहीं, २९ बच्चे प्रथम नहीं हो पाते हैं? कभी ध्यान किया है कि एक बच्चा प्रथम होकर आनन्दित और उत्साह से भर जाता है, तो २९ बच्चे जो प्रथम नहीं हो पाये हैं वे किस चीज से भर जाते होंगे? वे दुःख से, विषाद से, 'फ्रस्ट्रेशन' से, चिन्ता से भर जाते हैं। तो पूरे मुल्क में २०-२५ लोग प्रथम होने का आनन्द उठा लेंगे और शेष बहुजन समाज दुःखी हो जायगा, चिन्तित हो जायगा, पीड़ित हो जायगा। कुछ थोड़े लोग प्रथम होने का सुख और फूलमालाएँ पा लेंगे, और शेष सारे लोग हीनता और दीनता में, 'इन्फीरीऑरिटी' से भर जायेंगे। और क्या आपको पता है कि जो आदमी अपने भीतर हीनता का अनुभव करने लगता है, जो समाज उसे दीन-हीन होने को मजबूर करता है उस समाज से वह बदला लेकर रहेगा, उसका प्रतिशोध लेकर रहेगा।

हिंसक शिक्षा से अहिंसक समाज नहीं बनेगा

वे बच्चे, जो मकान तोड़ रहे हैं और बसें जला रहे हैं और शिक्षकों का अपमानकर रहे हैं, हीनता का प्रतिशोध और बदला ले रहे हैं। यह पीछे छूट गये लोगों का क्रोध है। यह प्रथम नहीं हो पाये लोगों का वैमनस्य है। और वह व्यवस्था जो एक को प्रथम करती हो उन २९ की कीमत पर, जो १ को आगे लाती हो, २९ के बलिदान पर वह सारी शिक्षा हिंसात्मक है, व्हायलेण्ट है। उस शिक्षा से कभी कोई प्रेमपूर्ण समाज और व्यक्ति पैदा नहीं हो सकता। इन लोगों का कसूर नहीं है। ये बच्चों की भूल नहीं है। यह भूल पूरी शिक्षा के ढाँचे के ही गलत और पागल होने की है। लेकिन पिछली सदी में इसका पता नहीं चल सका, क्योंकि ये छोटे प्रमाण में था। बड़ा जन-समूह अशिक्षित था। और थोड़े से ही लोग पागल भी हो जाते थे तो इतनी बड़ी भीड़ में उनका पता भी नहीं चल सकता। अब भीड़ शिक्षित हो गयी है। अब आदमी पागल हो तो उनका पता चलना बहुत जरूरी हो गया है।

अतीत की मिथ्या

यह सवाल आज का नहीं है, अनेक लोग यह सोचते हैं कि पहले सब ठीक था अब गलत हो गया है। वे कोई वजह नहीं बता सकते गलत हो जाने की। कौन कहता है कि पहले सब ठीक था? किसने कहा आपको? बुद्ध ढाई हजार साल पहले हुए। ये लोगों को क्या समझा रहे हैं? वे लोगों को समझा रहे हैं कि चोरी मत करो, हिंसा मत करो, बेईमानी मत करो, हत्या मत करो। यदि लोग अच्छे

थे तो य शिक्षाएँ किसको दी जा रही थी ? क्या बुद्ध का दिमाग खराब था कि लोग तो अच्छे थे और वे लोगों को समझा रहे थे कि अच्छे हो जाओ ? दुनिया में पुरानी-से-पुरानी किताब जो हमारे बीच में है, ६५०० वर्ष पुरानी है। उस किताब की अगर भूमिका पढ़े तो ऐसा मालूम होता है कि आजकल ही किसीने लिखी है। आज तक दुनिया में ऐसी कोई किताब नहीं है जिनमें लिखा हो कि आजकल के लोग अच्छे है। है कोई किताब ? सारी दुनिया में, किसी भी युग की और किसी भी सदी की ? किसी शिक्षक ने कहा है आज तक ? महावीर ने, क्राइस्ट ने, कृष्ण ने कन्फ्यूशियस ने, किसान यह कहा है कि आजकल के लोग अच्छे हैं और धन्यभाग हमारे, जो इस सदी में पैदा हुए ? आज तक सभी शिक्षक यह कहते रहे—अभागे हैं हम लोग, जो इस सदी में पैदा हुए है ! पहले के लोग अच्छे थे। यह अतीत कब था ? यह अतीत की मिथ्या हम धोखा देता है। वर्तमान कहीं आकाश से नहीं उतरता है। वर्तमान अतीत को शृङ्खला है। हम जो आज हैं, हम उस आदमी के फल है, जो कल था। हम उसीके वृक्ष पर लगे हुए पत्ते और फल हैं। जो आदमी कल था उसकी हम संतान हैं। उसी शृङ्खला की अगली कड़ी है हम हमारी बुनावट और हमारा बनाव और हमारा व्यक्तित्व उससे पैदा हुआ है। जो रोग हम पकड़े हुए हैं, हो सकता है कि वह पूरी तरह प्रकट हुआ है आज, लेकिन वह रोग कल भी मौजूद था और कल भी विकसित था। उसके कीटाणु हमेशा मौजूद थे।

आज की यह सारी दुर्व्यवस्था और दुर्भाग्य मनुष्य के अतीत के पूरे दुर्भाग्य और दुर्व्यवस्था का प्रमाणित करता है। वह उससे भिन्न नहीं है। उसका पूरा परिणाम उसके क्लाइमेक्स में है। वही धारा अपनी पूरी जगह पहुँच गयी है। जो गंगा हिमालय से निकलती है वहाँ छोटी दिखाई पड़ती है, वहाँ पहचानना मुश्किल होता है कि यह गंगा है वही जब सागर मे मिलती है तो बहुत बड़ी हो जाती है और पहचानना बहुत सरल हो जाता है कि यही गंगा है। लेकिन वही जो हिमालय से निकलती है जो सागर में मिलती है, वही गंगा है। आज गंगा बड़ी हो गया है। लेकिन वही गंगा हजारों साल से धीमे-धीमे बहती रही है। उसके अन्दर धाराएँ बहती रही हैं। आज उसने विराट रूप ले लिया है। आज हम पागल हो गये है, घबड़ा गये है। अतीत को हम पहचान नहीं पाते हैं। और जिस बीमारी को जिसके मूल कारण को हम पहचान नहीं पाते है उसे हम दूर भी नहीं कर सकते।

महत्वाकाक्षा का ज्वर

मनुष्य की आज तक की सारी शिक्षा ही गलत रही है क्योंकि सारी शिक्षा

के केन्द्र पर है महत्वाकांक्षा (ऐम्बिशन) का ज्वर हावी रहा। जैसे शरीर ज्वरग्रस्त होता है वैसे मन भी ज्वरग्रस्त किया जा सकता है। जब हम बच्चों को सिखाते हैं कि प्रथम हो जाओ तब हम उन्हें क्या सिखा रहे हैं? हम उन्हें सिखा रहे हैं कि दूसरों को पीछे करने में आनंद अनुभव करो। मतलब क्या है इस बात का? जो आदमी प्रथम है, क्या उसको प्रथम होने की खुशी है? नहीं उसकी खुशी २९ लोगों को दुखी करने में है और यह संख्या जितनी बड़ी होगी ३० की जगह ३ हजार, उसकी खुशी और बढ़ जायगी। ३० हजार होंगी तो उसकी खुशी और भी बढ़ जायगी और ३० लाख होंगी तो उसकी खुशी और भी बढ़ जायगी। और कक्षा में वह अकेला हो तो उसकी खुशी फीकी हो जायगी। अगर *वह अकेला ही है कक्षा का विद्यार्थी और प्रथम आ जायें तो उसे कुछ भी खुशी* नहीं होगी। लेकिन हम यही तो सिखाते हैं और फिर जब सारे जीवन में प्रथम होने की दौड़ शुरू होती है तो हम घबराने लगते हैं। और जो प्रथम होने का ही एकमात्र मूल्य समझता है, सफल होने को, सुफल होने को नहीं प्रथम होने पर *ही जिस जीवन के सारे पुरस्कार मिलते हैं, रेकगनिशन मिलता है वह आदमी* कैसे देखे कि किसकी लाश पर पैर रखकर और किसके कंधे को किसके सिर पर यात्रा करनी पड़ी? अगर इस सबका हिसाब रखे तो दिल्ली नहीं पहुँच सकता। प्रथम नहीं हो सकता।

तो प्रथम होने की कोशिश में बहुत जरूरी है कि हम लोगों को सीढ़ियाँ बनायें, उन पर पैर रखें और उनसे आगे निकल जायें। आदमी का एक ही उपयोग है कि वह सीढ़ी का काम दे दे और कोई उपयोग नहीं। और जहाँ सारे मुल्क में ही हर आदमी दूसरे आदमी को सीढ़ी बनाना चाहता है वहाँ अगर जीवन एक अंतर्द्वंद्व, एक संघर्ष, एक हिंसा हो जाय तो किसको दोष देने जाते हैं? कलियुग को? बिगड़े हुए लोगों को? ये तो सहज परिणाम हैं और रोग का हम पहचानते ही नहीं।

डाक्टर राधाकृष्णन् शिक्षक से राष्ट्रपति हो गये तो सारे मुल्क में शिक्षकों ने शिक्षक-दिवस' मनाना शुरू कर दिया। एक शिक्षक-दिवस पर भूल से कुछ लोगों ने मुझे भी बुला दिया। मैंने उनसे कहा कि मेरी समझ में नहीं आती यह बात कि एक शिक्षक राष्ट्रपति हो गया तो उसमें शिक्षकों का कौनसा सम्मान है। इससे बड़ा और अपमान क्या हो सकता है?

प्रथम होना हिंसा है

एक राष्ट्रपति किसी दिन छोड़ दे दिल्ली और आ जाय यहाँ और कहे कि हम महाविद्यालय में शिक्षक होंगे तो उस दिन शिक्षक-दिवस' मनाना और सम्मान

बनाते हैं। शायद जगत् में सभी चीजें चक्कर में चलती हैं—चाँद-तारे भी, सूरज भी, पृथ्वी भी। आदमी का मन भी गोल चक्कर में भ्रमण करता है। प्रथम होने की दौड़ कभी सफल नहीं हो पाती। दूसरे असफल हो जाते हैं, सफल कभी कोई हो नहीं पाता। दुखी सब हो जाते हैं, सुखी कभी कोई हो नहीं पाता। क्या महत्वाकांक्षा सिखानेवाली शिक्षा मनुष्य के हृदय के पात्र को कभी भर सकेगी? नहीं।

शिक्षक कहते हैं, शिक्षा-शास्त्री कहते हैं कि अगर हम महत्वाकांक्षा न सिखायें तो आदमी बढ़ेगा ही नहीं, दौड़ेगा ही नहीं। दौड़ने के लिए तोड़ा चाहिए, दौड़ने के लिए बुखार चाहिए। दौड़ने के लिए गरमी चाहिए। दौड़ने के लिए होड़ चाहिए। किसीको पीछे करने की कल्पना और कामना चाहिए। किसीको पराजित करने का वेग चाहिए। नहीं तो कोई आदमी दौड़ेगा नहीं। प्रत्येक आदमी अपनी-अपनी जगह खड़ा रह जायगा।

एक कुत्ते की दिल्ली-यात्रा

एक कुत्ते ने एक बार काशी से दिल्ली की यात्रा शुरू की। अब जमाना बदल गया। पहले लोग दिल्ली से काशी जाते थे। अब लोग काशी से दिल्ली जाने लगे। आदमियों के अखबारों को सड़क पर पड़ा देखकर कुत्तों को भी खबर लगी कि हम दिल्ली जाना जरूरी है। उनमें जो नेता था, उसने कहा—मित्रो, मैं जाता हूँ दिल्ली, दिल्ली लेकर ही रहूँगा। कुत्तों ने उसका बड़ा स्वागत किया और विदा कर दी। और दिल्ली के कुत्तों को खबर कर दी कि हमारे मित्र और नेता जाते हैं। उनके लिए सर्किट हाउस में व्यवस्था करना। एक महीना लग जायगा, क्योंकि वे यात्रा पैदल ही करनेवाले हैं। वे किसी यान वगैरह को पसंद नहीं करते। पैदल ही चलते हैं। पुराने भारत का रिवाज है। वे वैसे ही पैदल चलते हैं। पुरानी संस्कृति है। एक महीना लग जायेगा। लेकिन दिल्ली के कुत्ते हैरान हो गये कि काशी का कुत्ता ७ दिन में ही दिल्ली पहुँच गया। लंबा था मार्ग। ७ दिन में कैसे तय किया होगा? वे सब पूछने लगे, ७ दिन में कैसे दिल्ली पहुँच गये? एक माह का मार्ग था। उसने कहा, मैं सोचता था, महीना लग जायेगा, लेकिन ७ दिन में ही दिल्ली आ गया। आ क्या गया, लाया गया। पहुँचाया गया हूँ, क्योंकि एक गाँव के कुत्ते मेरा दूसरे गाँव तक पीछा करते थे। वे छोड़कर जा भी नहीं पाते थे कि दूसरे गाँव के कुत्ते मेरा पीछा करते थे। मुझे कहीं बीच में विश्राम का मौका ही नहीं मिला। लेकिन इतना कहते-कहते ही उस कुत्ते के प्राण निकल गये। दिल्ली तो पहुँच गया; लेकिन मर गया बेचारा दिल्ली पहुँचकर। दिल्ली कब्र बनती है पहुँचनेवाले की। दिल्ली बड़ा कब्रिस्तान है। उस कुत्ते की भी कब्र बन गयी। लेकिन महीने की

यात्रा ७ दिन म पूरी हो गयी क्योंकि एक त्वरा थी। बुखार था। चारों तरफ म लोग उसके पीछे लगे थे। हम आदमी के साथ भी यही करते हैं। हम आदमी को भी किसी तरह दिल्ली पहुँचा देना चाहते हैं मंजिल पर पहुँचा देना चाहते हैं। तो दौडाओ उसको महत्त्वाकाक्षा जगाओ कि दूसरे निकल जा रहे है तू सो जायेगा। एक क्षण भी खोना उचित नहीं है। देखना नहीं सब आगे जाते है। तू खडा रहा कि गया। तू दौड। वह देखता है कि जो पहुँचता ह आगे उसकी फूलमालाएँ बनती जाती है। उसकी प्रतिष्ठा बनती है। अखबार म उसके फोटो पीछे के पेज से पहले पेज पर आने लगते हैं। देखता है चारों तरफ यह हो रहा है तो उसके भीतर भी जगता है बुखार। वह भी भागना शुरू कर देता है। फिर जो उसम पहले पहुँच गये ह कहते हैं—इतनी हिंसा नहीं इतनी होड नहीं। जो प्रथम हो जाते हैं वे पीछे के लोगों को समझाते हैं कि पीछे रहो पीछे रहने म भी बडा सुख है। यह उनकी आत्म रक्षा का उपाय है यह सेल्फ-डिफेन्स है। नेता अनुयायियों म कहते हैं कि अनुयायी रहना बडी गौरव की बात है। राजनेता कहते हैं कि शिक्षक का बडा मान है और माँग करते हैं दोनों मत। जिन तरकीबों म वह आगे पहुँच जाता है उन्हीं तरकीबों को वह स्वयं तोडने लगता है ताकि दूसरे न पहुँच जाय। जिन सीढियों से उनकी यात्रा होती है उन्हीं सीढियों को पहुँचनेवाला तोडने लगता है, ताकि दूसरे न पहुँच जाय। लेकिन दूसरे भी अंधे नहीं है। उनको भी दिखाई पडता है कि दूसरे किन तरकीबों से आगे पहुँच गये है। वे भी पहुँचना चाहते है और बचपन म ही पहुँचने के लिए उनके प्राणों म प्रविष्ट कराया जाता है—महत्त्वाकाक्षा का ज्वर। प्रत्येक व्यक्ति समाज और राष्ट्र इसीसे पीडित है

सूरज पर जितनी गरमी है पृथ्वी पर उतनी हो सकती है उद्जन बम के विस्फोट से। एक उद्जन बम का परिणाम होता है ४० हजार वर्गमील पर। दस करोड डिग्री गरमी उत्पन्न हो जाती है। क्या पौधे बचेंगे? कीडे मकोडे बचेंगे? कुछ भी बचेगा? अगर परमात्मा भी अबतक बच गया हो तो उसके भी बचने की सम्भावना नहीं। यह महत्वाकांक्षा का अन्तिम फल है।

जगत्गुरु की महत्वाकांक्षा भी एक बीमारी

राष्ट्र सभी प्रथम होना चाहते हैं। रूस भी, अमरीका और चीन भी, और भारत भी और पाकिस्तान भी। सभी प्रथम होना चाहते हैं। और प्रथम होना चाहते हैं, न मालूम किन-किन ढंगों से। नशा एक-सा है। रोग एक है। भारत हजारों वर्षों से कहता है कि हम जगद्गुरु हैं सारी दुनिया के। यह भी प्रथम होने की बीमारी का एक हिस्सा है। और कुछ भी नहीं, यह बीमारी जरा सौम्य है। यह बुखार जरा तेज नहीं है, थोडा धीमा है लेकिन है वही बुखार। क्यों आप जगत्गुरु होना चाहते हैं? सामान्य होना काफी नहीं है? जगद्गुरु ही होंगे और बडा मजा यह है कि कोई कहे या न कहे, आप खुद ही डंका पीटते फिरते हैं कि हम जगद्गुरु हैं। पागल होने का लक्षण है यह। जगद्गुरु होने का लक्षण नहीं है यह। लेकिन यह बीमारी सबको है। सारी दुनिया में है। एक एक आदमी को है एक-एक जाति को है, एक-एक राष्ट्र का है।

प्रयाग की त्रिमूर्ति

अनेक नाम हैं नेताओं के लेकिन तीन नाम अगर हम लें जो सर्वोपरि हैं सबके मन म—महामना माल्वीयजी प० जवाहरलाल नहरू और राजर्षि ट न। ये ये अपने प्रयाग की प्रयाग के लिए त्रिमूति ही कहलायेंगे। अपने हिंदू धम म एक त्रिमूर्ति प्रसिद्ध हैं—ब्रह्मा शिव विष्णु ऐस ही आधुनिक जमाने म प्रयागदत्त त्रिमूर्ति हैं। टडनजी की सवाएँ विविध क्षत्र म हुई हैं। आजादी की लडाई मे उन्होंने जो सहन किया आजादी की प्राप्ति के बाद पालियामट के अन्दर उन्होंने जो काम किया पालियामट क बाहर काग्रेस म जो काम किया वह सब मशहूर है और उसीके कारण भारत क महान् नेताओं म उनका एक स्थान बना। इसके अलावा वह रचनात्मक क्षेत्र म भी बहुत रुचि रखते थे और बहुत काम उन्होंने इस क्षत्र मे किया। आप लोग जानते ही हैं कि, जस यहा पर सर्वेन्ट्स ऑफ इण्डिया सोसायटी गोखले की स्थापित की हुई एक शाखा है उसीके नमूने पर लाला लाजपत राय ने एक पीपुल्स सोसायटी बनाया था जिसम रचनात्मक सवा करें भारत को ऐसी कल्पना थी। और उनके लिए थोडा मानदेय अल्प ही, देने की योजना थी बिल्कुल गोखले के नमूने पर उसके टन्डनजी एक सदस्य थे और लालबहादुर शास्त्री भी उसीम थे। लालबहादुर शास्त्री न उसम बडा योग, कुशल योग दिया—इधर टंडनजी उधर जवाहरलाल नहरू। उन सबके विचारो म कुछ बातो मे कोई मतभेद होते हुए दोनो का सम्पक रखना दोनो का प्रेम हासिल करना यह कुशलता उन्होंने दिखायी। वह सब हम लोगो की आख के सामने हुआ है।

उन्होंने हिन्दी को एक विशेष स्थान देना चाहा और यह सोचा कि आज नहीं कल, कभी सारे राष्ट्र की सत्ता के लिए हिन्दी उपस्थित होगी और सबके लिए हिन्दी उपयोगी साबित होगी ऐसा स्वरूप हिंदी का हो और वह नागरी लिपि में लिखी जाय यह उनका आग्रह था। बहुत लोगों का गलत ख्याल है कि वे उर्दू के खिलाफ थे, ऐसा है नहीं। उनके कई भाषण मैंने सुने हैं। उनके भाषणों में जो हिन्दी बोली जाती थी उनमें काफी उर्दू शब्द आते थे और जो उर्दू शब्द हिन्दी में पच गये हैं और हिन्दी की शोभा जिन उर्दू शब्दों ने बढ़ायी है उन शब्दों को कायम रखने के पक्ष में वे थे उनके बहिष्कार के पक्ष में नहीं थे। वे स्वयं उत्तम उर्दू जानते थे। इतना ही नहीं बल्कि उन्होंने फारसी भाषा का भी उत्तम अध्ययन किया था, यहाँ तक कि फारसी में वे बोल भी सकते थे और फारसी के अनेक महान कवियों के साहित्य का उन्होंने अध्ययन किया था। यह सारा मैं इसलिए कह रहा हूँ कि हिन्दी भाषा का उनका जो आग्रह था, उसमें उर्दू इत्यादि का कोई द्वेष नहीं था, बल्कि वे मानते थे और ठीक मानते थे कि उर्दू हिन्दी का ही एक प्रकार है और हिन्दी की सुन्दरता उर्दू से बढ़ती है, तो वह हिन्दी के लिए अच्छी चीज है ऐसा वे मानते थे। मुसल्मान लोग उर्दू सीखें पाठशाला में उसमें उनको कोई विरोध नहीं था वे जरूर सीखें लेकिन जहाँ तक राष्ट्रभाषा का ताल्लुक है वह राष्ट्रभाषा नागरी में लिखी जाय यह उनका आग्रह था। और मैंने कहा कि मैं इससे सहमत हूँ और पहले भी सहमत था।

नागरी लिपि एकता-साधक है बर्नार्ड शा का सपना

यह सोचने की बात है भारत के लिए कि हिन्दी जितनी मदद करेगी एकता के लिए उससे नागरी लिपि कम नहीं ज्यादा ही मदद करेगी ऐसा मेरा अनुभव है। मुझे अनेक भाषाएँ सीखने का मौका मिला है—भारत की बहुत सारी भाषाएँ सीखी हैं। उन्हें सीखने के लिए अनेक लिपियों का अध्ययन करना पड़ा, जिसके कारण मेरी आँखों पर परिणाम हुआ—अच्छा नहीं, बुरा परिणाम और परिणामस्वरूप मेरी आँखों को तकलीफ भी हुई है लेकिन फिर भी वे सारी लिपियाँ मैंने सीख ली और उन भाषाओं में जो सर्वोत्तम साहित्य है उसका परिचय करने का योग्य बहुत मौका मुझे मिला है। तो मैं कह सकता हूँ कि नागरी लिपि से बढ़कर वैज्ञानिक लिपि मैंने दुनिया में पायी नहीं।

हिंदुस्तान में तो खैर अनेक लिपियाँ हैं। वे नागरी के करीब-करीब हैं नागरी में से ही थोड़ा बहुत फर्क करके बनी हुई है। लेकिन यूरोप की जो लिपियाँ हैं वे भी यूरोपियन लैंग्वेज के लिए उत्तम नहीं हैं। आज जो अंग्रेजी लिखी जाती है रोमन लिपि में—अंग्रेजी के लिए भी वह अच्छी नहीं—ऐसा ख्याल बर्नार्ड शा का था

क्यों नहीं चलना चाहिए? प्रान्तिक सरकार, दिल्ली की सरकार से पत्र-व्यवहार करे, एक प्रान्तिक सरकार, दूसरी प्रान्तिक सरकार से हिन्दी में पत्र-व्यवहार करे—यह सारा क्यों न करे नागरी में और हिन्दी में, और यहाँ माध्यम हिन्दी क्यों न रखा जाय? युनिवर्सिटी वगैरह में हिन्दी क्यों न चले? और यह सारा उनका एक प्राथमिक कार्य उन्होंने अपने सामने रखा है कि कम-से-कम इसमें तो हो ही जाना चाहिए। और जबतक यह नहीं होता, हम किस मुँह से दूसरों से कहेंगे कि भाई, तुम भी जरा हिन्दी सीख लो।

बहुतों का खयाल है कि दक्षिण भारत के लोग हिन्दी के खिलाफ हैं, ऐसा है नहीं। तमिलनाडु और बंगाल, इन दो प्रान्तों में जो भाषाएँ चलती हैं वे बहुत उत्तम हैं, सम्पन्न भाषाएँ हैं, इसमें कोई शक नहीं। उन भाषाओं का अध्ययन करने का मौका मुझे तो मिला ही है। दक्षिण के लोग हिन्दी सीखने के लिए तैयार नहीं हैं, ऐसा मेरा अनुभव नहीं। परन्तु प्रतिक्रिया होती है, अगर हम बहुत ज्यादा आग्रह इधर रखते हैं। और हिन्दीवाले कभी-कभी ऐसे आलसी बन जाते हैं कि हिन्दी के अलावा और कुछ सीखते नहीं—और मुफ्त में यह राष्ट्राभिमान! माँ ने सिखा दी हिन्दी भाषा, बस हो गया—राष्ट्राभिमान। एक कौड़ी का खर्चा नहीं हुआ, परिश्रम थोड़ा भी करना नहीं पड़ा, एकदम ऐसे ही हम राष्ट्राभिमानी बन गये। और दूसरे लोगों से हम कह रहे हैं कि वे सीखें हमारी भाषा। तो इस प्रकार से आग्रह रखते हैं आलस्य रखकर।

एक सादी बात। और भाषा तो छोड़ दीजिए, मराठी लीजिए। मराठी की लिपि नागरी है। यानी जिस लिपि में हिन्दी लिखी जाती है उसी लिपि में मराठी लिखी जाती है। लेकिन हम लोगों ने बचपन से तुलसी रामायण पढ़ी, आपमें से कितने लोगों ने तुकाराम पढ़ा? (इसका उत्तर आया कि नहीं पढ़ा) क्यों नहीं पढ़ा? अपनी हिन्दी है, राष्ट्रभाषा है, चलती है, अपने को क्या जरूरत है दूसरी भाषा सीखने की। और हिन्दी और मराठी में फर्क भी कितना? एक मराठी पद्य मैं आपको सुनाऊँ तुकाराम का—

निच शुद्ध तरी, शत्रु मित्र होती
व्याघ्रही न खाती सर्प तया।

'चित्त शुद्ध तरी'—अगर चित्त शुद्ध है तो शत्रु मित्र होते हैं अथवा उसके शत्रु मित्र बनते हैं और, 'व्याघ्रही न खाती'—ऐसे निर्वैर पुरुष को, शुद्ध चित्त, पुरुष को शेर भी नहीं खा सकते और न सर्प ही उसको काट सकते हैं। अब उसका संस्कृत में कहता हूँ—'चित्त शुद्ध तर्हि शत्रु मित्र भवति''—यह हो गया संस्कृत। और मराठी—

चित्त शुद्ध तरी, चित्त शुद्ध तहि

'शत्रु मित्र होती शत्रु मित्र भवति

अब मैं आपसे पूछूंगा कि आपको क्या यह सीखने में मुश्किल हो जायगा? वही चित्त, वही शुद्ध वही शत्रु वही मित्र वही सारे संस्कृत शब्द। बाप की स्टेट, ये हमारे बाप की स्टेट सब इस्तमाल करते हैं—शब्द वहां और लिपि वही। पुस्तक खोल दी पढ़ना शुरू किया। अब करना क्या पडेगा लेकिन फिर भी सीखना नहीं कोई। खैर सीखते हैं तो मालूम नहीं लेकिन मैं पूछूंगा कि यहां कितने लोगों ने मराठी पढ़ी है? तात्पर्य यही है कि हम थोड़े आलसी बन जाते हैं हिन्दी लोग वह ठीक नहीं। अगर हम अपना यह आग्रह छोड़ेंगे तो दक्षिण के लोग सीखने को तैयार होंगे।

वैदिक काल की ईनिंग

हिन्दी के सिलसिले में मैंने एक व्याख्यान दिया था दक्षिण भारत (तमिलनाडु) में जब मैं घूम रहा था पदयात्रा में। और तमिलनाडु में लगभग एक साल मैं घूमा हूं। तो एक जगह मैंने विद्यार्थियों को समझाया। घंटा भर बोला सब लोगों ने शान्ति से बात सुन ली। मैंने कहा देखो क्रिकेट का मैच (गेम) जो है सारे भारत में उसमें एक ईनिंग होती है। ऐसी ईनिंग हुई है वैदिक काल में वैदिक ऋषि दक्षिण में गये जैन दक्षिण में गये बौद्ध दक्षिण में गये। तो ये जैन और बौद्ध विचार उत्तरी हिन्दुस्तान से दक्षिण हिन्दुस्तान में गये। यह उत्तरी हिन्दुस्तान की ईनिंग हो गया। उसके बाद दक्षिण हिन्दुस्तान की ईनिंग शुरू हुई। शंकराचार्य, रामानुज माध्व और वल्लभ—ये सारे दक्षिण भारत से उत्तर भारत में आये। और उन्होंने अपने विचार यहां दे दिये। और यहां तक उनका प्रभाव पड़ा कि आपके उत्तम-से-उत्तम महान् पुरुष हिन्दी के—कौन इनमें बड़कर नाम लिया जायगा कबीर और तुलसीदास—दोनों स्वामी रामानन्द के शिष्य और रामानन्द रामानुज के। अब रामानुज का प्रभाव कबीर और तुलसीदास पर पड़े, यह कोई सामान्य बात थी क्या? इतना प्रभाव उनका पड़ा तो उनकी ईनिंग चली यहां पर। शंकर का प्रभाव ज्ञानेश्वर महाराज पर पड़ा महाराष्ट्र में और बंगाल में विवेकानन्द, रामकृष्ण पर पड़ा, तो ठीक इसी प्रकार से दक्षिण भारत की ईनिंग हो गयी। तो कैसे हो गयी? क्या आधार मिला उसको संस्कृत भाषा का आधार मिला।

(हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग में २० दिसम्बर '६८ को राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडनजी की प्रतिमा के अनावरण-समारोह के अवसर पर दिये गये भाषण से।)

ग्रीष्मावकाश के उपयोग का प्रश्न

काशिनाथ त्रिवेदी

मार्च-अप्रैल, '६६ मे वार्षिक परीक्षाओ के निपटने पर देश के लाखो विद्यार्थियो और उनके गुरुजनो के सामने ढाई-तीन महीनो के लम्बे अवकाश के उपयोग का प्रश्न खडा होगा। हर साल इन दिनो मे यह प्रश्न खडा होता है, पर बहुत कम जगहो मे लोग इसका जवाब खोजने की खबरदारी रखते है।

अकसर होता यह है कि विद्यालयो और विश्वविद्यालयो मे पढनेवाले लाखों नहीं, करोडो छात्र-छात्राओ का दो-ढाई से लेकर तीन-साढे तीन महीनों का यह अत्यन्त मूल्यवान समय यो ही बरबाद हो जाता है। उसका व्यवस्थित और सुसंयोजित उपयोग करने की कोई व्यवस्था और पहल कही से हो नही पाती। यदि इस दिशा मे शिक्षा-संस्थाओ के कर्ता-धर्ता और छात्र-सघो के मुखिया गम्भीरता से सोचें और व्यापक समाज-सेवा अथवा राष्ट्र-सेवा के लिए गरमी की छुट्टियों का उपयोग करने की दृष्टि मे कुछ अच्छे, आकर्षक कार्यक्रम निश्चित करें, तो देश के गाँवों और शहरों मे सामूहिक रूप से सेवा, शिक्षण और निर्माण के विविध काम हाथ मे लेने और उन्हे पूरा करने की एक जोरदार लहर समूचे देश मे उठ सकती है।

हमारे नौजवानो मे देश और समाज के लिए काम करने का उत्साह और उमंग तो है, पर काम की व्यवस्थित योजना के अभाव मे वे अपने अभिक्रम से कुछ कर नहीं पाते और उनका कीमती समय यो ही नष्ट हो जाता है।

हम सबके सौभाग्य से सन १९६९ का वर्ष देश मे और दुनिया मे गाधी-शताब्दी के निमित्त से 'गाधी-वर्ष' के रूप मे मनाया जा रहा है। लोक-सेवा, लोक-शिक्षण और लोक-सुधार के छोटे-बडे अनेक काम शुरु हुए है। २२ वर्षो की

सम्पादक मण्डल
श्री धीरेन्द्र मजूमदार—प्रधान सम्पादक
श्री वंशीधर श्रीवास्तव
श्री राममूर्ति

वर्ष १७
अंक ९
मूल्य ५० पैसे

अनुक्रम

अप्रैल ६९

निवेदन

- नयी तालीम का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- नयी तालीम का वार्षिक चन्दा छः रुपये है और एक अंक के ५० पैसे।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक-संख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट सर्व-सेवा-संघ की ओर से प्रकाशित, प्रमल कुमार बसु इण्डियन प्रेस प्रा० लि०, वाराणसी-२ में मुद्रित।

नयी तालीम : अप्रैल '६९

पहले से डाक-व्यय दिये बिना भजने की अनुमति प्राप्त

लाइसेंस न० ४६ रजि० स० एल १७२३

गाधी-शताब्दी कैसे मनाये !

★ आर्थिक व राजनैतिक सत्ता के विकेन्द्रीकरण और ग्राम स्वराज्य की स्थापना के लिए ग्रामदान-आन्दोलन म योग दें।

★ देश को स्वावलम्बी बनाने और सबको रोजगार देने के लिए खादी, ग्राम और कुटीर उद्योगो को प्रोत्साहन दें।

★ सभी सम्प्रदाया वर्गो भाषावार समूहो में सौहार्द स्थापना तथा राष्ट्रिय एकता व सुदृढता के लिए शाति-सना को सशक्त करें।

★ शिविर, विचार-गोष्ठी, पदयात्रा वगैरह में भाग लेकर गाधीजी के सदेश का चितन-मनन और प्रसार करें, उस जीवन में उतारें।

गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति (राष्ट्रीय गांधी-ज म शताब्दी-समिति) दुकनिया भवन कुन्दीगरों का भैरू जयपुर ३ (राजस्थान) द्वारा प्रसारित

आवरण मुद्रक खण्डलवाल प्रस वाराणसी

श्रद्धांजलि अंक
मई १९६९
सारा भारत मेरा कुनबा
हर भारतीय मेरा सगा

डा० जाकिर हुसैन

जो इनसान था वह भगवान मे मिला और जाते-जाते हमारे लिए इनसानियत की एक मिसाल छोड गया। गुणो की जिस थाती पर मनुष्य-जाति जिन्दा है, उसमे कुछ जोडकर वह गया।

कौन मरा? मात्र भारत का राष्ट्रपति, या एक ऊँचा इनसान, जो आजादी की लडाई मे लडा, जिसने बच्चो को प्यार किया, और उन्हे इनसान बनाने की कोशिश की, जो धर्म का पाबन्द था लेकिन उन्माद से मुक्त रहा, जिसने ऊँचा से ऊँचा पद पाया लेकिन उसके मद से अलग रहा उसने जीवन के अनेक उतार चढाव देखे लेकिन जो कभी इनसान को भूला नही और उसने कभी अपने भगवान को छोडा नही?

विपन्नता और वैभव, दोनो मे जो अन्त तक अपनी मनुष्यता को बचाये रख सका, वह साधारण मनुष्य नही था। 'पूरा भारत मेरा कुनबा, और हर भारतीय मेरा सगा"—जो बचपन से बुढापे तक इस मन्त्र के सहारे धर्म और राजनीति के तूफानो मे अडिग खडा रह सका वह केवल मुसलमान नहीं था। वह यह सब तो था ही, पर कुछ और भी था। यह 'कुछ और' ही तो है जो लाखो की आँखो मे आँसू लाता है, और याद बनकर दिलो मे छिपकर बैठ जाता है। इस 'कुछ और' के ही कारण सदियो बाद जब मनुष्य अपनी पुरानी

वर्ष : १७
अंक : १०

धरोहर को टटोलता है तो उसे उसमे मौजूद पाता है। हृदय के धन का कभी क्षय नही होता।

भारतीय हृदय इक्कीस साल पहले गाधी के गाधीत्व को पूरे तौर पर नही पहचान सका, उसे कुछ समय लगेगा जाकिर हुसैन के बडप्पन को पहचानने मे। हमारा हृदय आज भी हिन्दू है, मुसलमान है, ऊँच है, नीच है, उत्तरी है, दक्षिणी है। वह अभी विशुद्ध भारतीय नही हुआ है। हम मनुष्य होते हुए भी मनुष्यता से दूर है लेकिन यह सौभाग्य है कि इस दूरी को पार करनवाले हमारे बीच एक के बाद दूसरे आते गये, और हमे दिखाते गये कि दूरी तो है लेकिन ऐसी नही है जो पार न की जा सके। डा० जाकिर हुसैन उन लोगो मे थे जिन्हे यह दूरी पार करने की कभी कोशिश नही करनी पडी। उनके जीवन मे दूरी कभी थी ही नही। तभी तो हिन्दू-प्रधान राष्ट्र मे एक मुसलमान को राष्ट्रपति होने का गौरव मिला। जाकिर हुसैन के व्यक्तित्व मे हिन्दू और मुसलमान, दोनो अपने बीच की दूरी भूलकर एक हो गये थे।

अगर डा० जाकिर हुसैन केवल राष्ट्रपति होते तो इतिहास की अनेक सूचियो मे से एक मे पड रहते, लेकिन उन्होने तो इस देश के करोडो के हृदय मे अपना स्थान युग-युग के लिए सुरक्षित कर लिया है।

—राममूर्ति

× × ×

डाक्टर जाकिर हुसैन इस ससार मे नही रहे। वे गाधीजी की बेसिक शिक्षा के पुरोधा थे। सन् १९३७ मे बेसिक शिक्षा की मूर्ति मे प्राण-प्रतिष्ठा करने के लिए जिस दिन गाधीजी ने उनको वर्धा बुलाया, उसी दिन वे अचानक पूरे हिन्दुस्तान मे विख्यात हो गये। वैसे भी डाक्टर जाकिर हुसैन एक स्वतन्त्रचेता शिक्षा-शास्त्री थे। उन्होने सन् १९२० मे ही गाधीजी की पुकार पर कुछ दोस्तो के साथ अलीगढ का कालेज छोड दिया था और राष्ट्रीय शिक्षा के प्रणयन के लिए जामिया मिलिया की स्थापना की थी।

पश्चिम के शिक्षा-जगत् मे उस समय तक 'थ्री आर्स' की दकियानूस शिक्षा-पद्धति के स्थान पर अनेक प्रगतिशील प्रणालियो का प्रणयन हो चुका था। वहाँ के शिक्षा-आकाश मे रूसो, पेस्तालॉजी, फ्रायबल, माण्टे-सरी और डिवी जैसे प्रकाशमान नक्षत्र जगमगाने लगे थे। हाथ से

काम करके सीखने का सिद्धान्त शिक्षा-जगत् में स्वीकृत हो चुका था। शिक्षा मजबूती से मनोविज्ञान के पथ पर अग्रसर हो चुकी थी। डाक्टर जाकिर हुसैन विदेशों में तीन वर्ष तक रहकर इस प्रगतिशील नयी शिक्षा के सिद्धान्तों में निष्णात होकर लौटे और उनके श्रेष्ठ तत्त्वों का चयन कर जामिया मिलिया (जो उस समय तक अलीगढ़ से दिल्ली आ गयी थी) में भारत के प्राचीन आश्रमों में कुलगुरुओं की भाँति ओखला के शान्त तपोवन में कुलपति की हैसियत से अध्ययन-अध्यापन का काम करने लगे थे।

अतः उनको वर्धा शिक्षा सम्मेलन का सभापति बनाकर उनका जो आदर किया गया वह एक राष्ट्र प्रेमी प्रगतिशील शिक्षाविद का आदर था। इसके बाद तो डाक्टर जाकिर हुसैन का नाम बेसिक शिक्षा के साथ इस प्रकार सम्पृक्त हो गया कि अनेक लोग उन्हें बेसिक शिक्षा का 'प्रणेता' ही मानने लगे और यह तथ्य है कि आगे बेसिक शिक्षा की जो इमारत बनी वह उस पाठ्यक्रम की बुनियाद पर ही खड़ी हुई जो जाकिर हुसैन समिति' ने तैयार की थी।

वास्तव में इस पाठ्यक्रम में डाक्टर जाकिर हुसैन ने गांधीजी की नयी तालीम को पश्चिम के 'क्रियात्मक' स्कूल के व्यावहारिक सिद्धांतों के प्रकाश में ही गढ़ा था। बुनियादी तालीम गांधी-दर्शन का निचोड़ है और बुनियादी शिक्षा का प्रणयन गांधीजी ने युग को अपने सपनों के संसार के अनुकूल बनाने के लिए किया था। परन्तु बेसिक शिक्षा इतनी क्रान्तिकारी थी और शिल्प के माध्यम से समस्त शास्त्रीय शिक्षा देने और स्वावलम्बन के उसके सिद्धान्त इतने नवीन थे कि पाश्चात्य शिक्षा में दीक्षित शिक्षा-शास्त्री उन्हें स्वीकार नहीं कर सके और प्रारम्भ से ही उनका विरोध हुआ। इन विरोधियों का उत्तर दिया डाक्टर जाकिर हुसैन ने। उन्होंने पश्चिम के क्रियात्मक स्कूल (एक्टिविटी स्कूल) और योजना-पद्धति (प्रोजेक्ट पद्धति) के अपने गहरे अध्ययन के बल पर बुनियादी शिक्षा को आज के युग के अनुकूल बनाने की कोशिश की। उन्होंने इसे प्रोजेक्ट पद्धति के चार सोपानों—(१) अभिप्रेरणा, (२) नियोजन, (३) कार्यान्वियन और (४) मूल्यांकन—के चौखटे में फिट किया और उसे व्यावहारिक बनाने के लिए उसका एक पाठ्यक्रम तैयार किया। इस प्रकार उन्होंने बेसिक शिक्षा को सन्तुलित, व्यावहारिक रूप दिया।

जाकिर साहब उन व्यक्तियों मे थे जो मानते थे कि अगर बेसिक शिक्षा के दर्शन की बात छोड भी दी जाय तो इस पद्धति के मनोवैज्ञानिक आधार इतने दृढ है कि अगर उसका ठीक-ठीक कार्यान्वयन किया गया तो राष्ट्र की शिक्षा-पद्धति मे आमूल परिवर्तन होगा और बुनियादी शिक्षा से राष्ट्र की आवश्यकताओ की पूर्ति सम्भव होगी।

जब आनेवाले स्वतत्र भारत ने 'गाधीवाद' मे आस्था खो दी तो बुनियादी शिक्षा की आत्मा भी उसकी पकड मे नही आयी। बुनियादी शिक्षा का रूप विकृत हो गया। और तब डाक्टर जाकिर हुसैन को कहना पडा कि देश में राष्ट्रीय बुनियादी शिक्षा का जिस प्रकार कार्यान्वयन हो रहा है वह एक धोखाधडी है। यह एक व्यथित आत्मा की पुकार थी जो अनसुनी कर दी गयी। राष्ट्र की शिक्षा-पद्धति आज भी पहले जैसी ही निकम्मी है और एक ऐसी समस्या बन गयी है जिसका कोई हल दिखाई नही देता।

डाक्टर जाकिर हुसैन अब इस दुनिया मे नही रहे। वे भारतीय शिक्षा-जगत् के सूफी सन्त थे। पूर्व और पश्चिम की शिक्षा मे जो श्रेष्ठ और वरेण्य है, उसका उनमे मिलन हुआ था। साधारण शिक्षक से वे इस महान देश के राष्ट्रपति बने। उन्हे खोकर राष्ट्र ने बहुत कुछ खोया है और बेसिक शिक्षा-परिवार ने अपना मुखिया खो दिया है। हम उनकी भोली और पवित्र आत्मा की शान्ति के लिए भगवान से प्रार्थना करते है।

—वंशीधर श्रीवास्तव

श्रद्धांजलियाँ

उन्होंने शिक्षा को पक्षपात की प्रवृत्तियों से बचाया

जयप्रकाश नारायण

"मैं शायद यह गुस्ताखी की बात कहने के लिए माफ कर दिया जाऊँगा कि इस ऊँचे ओहदे के लिए मुझे जिन अनेक अनेक वजहों से चुना गया, उनमें से एक खास वजह यह है कि मेरा ताल्लुक अपने मुल्क के लोगों की तालीम से रहा है।" ये उद्‌गार भारत के तीसरे राष्ट्रपति ने अपने प्रारम्भिक भाषण के दौरान जाहिर किये थे।

यह एक अनोखी बात है कि जब डा० जाकिर हुसैन को मुल्क के सबसे ऊँचे ओहदे के लिए चुना गया तो उन्होंने अपना हवाला एक शिक्षक के रूप में दिया। वे जानते थे कि पिछले २० वर्षों में मुल्क में शिक्षकों का पेशा सत्ता की खींचातानी के कारण अपनी इज्जत खो चुका था। लेकिन डा० जाकिर हुसैन के लिए शिक्षा का पेशा उनकी जिन्दगी थी। इसलिए नहीं कि उन्हींके शब्दों में वे भी "सियासी आसमान के चमकदार सितारे की तरह चमक नहीं सकते थे", बल्कि इसलिए कि "शिक्षा राष्ट्रीय उद्देश्य-सिद्धि का प्रधान औजार है।" और, मुल्क की शिक्षा का गुण राष्ट्र के गुण के साथ अविभाज्य रूप में जुड़ा हुआ है, यह बात डाक्टर जाकिर हुसैन ने अपने उद्‌घाटन-भाषण में ही कही थी।

अफसोस की बात है कि इस देश की शिक्षा सरकार की इस हद तक आश्रित हो गयी है कि वह राष्ट्रीय उद्देश्य नहीं, बल्कि राजनीति का औजार बन गयी है। और, जैसे-जैसे मुल्क की राजनीति तेजी से ढलान की ओर फिसलती जा रही है वैसे-वैसे शिक्षा भी गिरती जा रही है।

आजादी की लड़ाई के दिनों में ऐसी हालत नहीं थी। यह दुर्भाग्य है कि आजादी की लड़ाई के दिनों में सामने आनेवाली चुनौतियों के मुकाबिले के लिए लोगों में जिस ढंग की निःस्वार्थ सेवा, सबकी मिलीजुली कोशिशों और कठिन काम करने की विशेषताओं का दर्शन होता था वह आजादी के बाद नहीं दिखाई पड़ी। उस जमाने में "राष्ट्रीय शिक्षा" के लिए लोगों द्वारा जगह-जगह जो कोशिशें की गयी वे अपने आप में नमूना हैं। जामिया मिल्लिया की मिसाल उस जमाने की

कोशिशों का एक प्रशसनीय उदाहरण है। और जामिया मिल्लिया की कहानी जैसे डाक्टर जाकिर हुसैन की जिन्दगी की ही कहानी है।

एक नन्हा-सा बीज बढ़ते-बढ़ते बरगद से विशाल वृक्ष का रूप धारण कर लेता है। आदमी की जिन्दगी में भी ऐसा ही होता है। आदमी के अन्दर एक छोटी सी चिनगारी है जो उस ऊँचे करतब की ओर ले जाती है। अगर आदमी के भीतर वह छोटी सी चिनगारी न पैदा होती तो वह औरों के लिए अनजान ही बना रह जाता। डा० जाकिर हुसैन के बारे मे भी ऐसा ही हुआ।

मेरी जिन्दगी का वह पहला फैसला था जो मैंने खूब समझ-बूझकर किया था। शायद वही एक फैसला है जो वाकई मैंने कभी अपनी जिन्दगी में लिया है, क्योंकि उसमें से ही मेरी बाद की जिन्दगी का बहाव फूट निकला।" उपरोक्त शब्दों में जाकिर साहब ने अपनी उस जिन्दगी का जिक्र किया है जब उन्होंने अलीगढ़ में एक नवजवान शिक्षक-छात्र की हैसियत से अपने-आपको सभी चीजों से अलग करके असहयोग आन्दोलन में कूद पड़ने का फैसला किया था। असहयोग आन्दोलन सन् १९२० में गांधीजी द्वारा शुरू किया गया पहला राष्ट्रव्यापी आन्दोलन था। ऊपर ऊपर से ऐसा लगता है कि जाकिर साहब ने बात कुछ बढ़ा चढ़ाकर कही है, लेकिन जो लोग उस नव जागरण के जमाने में मौजूद रहे हैं और जिन्होंने भावना के जोरदार बहाव में पड़कर नहीं बल्कि खूब सोच समझकर और दिल टटोलकर उस जमाने की प्रेरणाओं को अंगीकार किया था, वे ही इन शब्दों का अर्थ समझ पायेंगे।

सन् १९२१ के जनवरी के दिन थे। उन दिनों आत्मा को आलोकित करने-वाले असहयोग आन्दोलन की धारा में मैं खुद कूदने की तैयारी कर रहा था उस समय के अपने निजी अनुभव की बात कहूँ तो कहना चाहिए कि उस जमाने ने मेरे भीतर ऐसी चाभी भर दी जो तब से लेकर आज तक बराबर मुझे आगे बढ़ाती जा रही है।

तो, अलीगढ़ का निर्णय ही वह बीज था, जिससे भारत के तीसरे राष्ट्रपति का आविर्भाव हुआ। उस प्रारम्भिक बीजरूपी निर्णय के अभाव में डा० जाकिर हुसैन शायद अनजान आदमी तो नहीं रहते लेकिन वे उस जमाने के उन बहुतेरे पढ़े-लिखे हिन्दुस्तानियों में से होते जो आमतौर पर प्रचलित अच्छी आमदनीवाली नौकरियों या पेशे में लगकर सन्तुष्ट रहते हैं। लेकिन, अपने उस फैसले पर चलते नवजवान जाकिर साहब ने अपनी जिन्दगी को आजादी की लड़ाई राष्ट्रीय शिक्षा कुर्बानी, और गरीबी के लिए समर्पित कर दिया।

डा० जाकिर हुसैन और विनोबा

भारत के तीसरे राष्ट्रपति के चुनाव के समय पहली बार राजनैतिक दलों में आपसी मतभेद पैदा हुआ। उस मतभेद के कारण एक ऐसे पद के लिए पक्षपात की राजनीति का खेल खेलने की नासमझ कोशिश की गयी जिस पद का महत्त्व ही इस बात में है कि वह हर तरह के पक्षपात से ऊपर की चीज है। हालांकि डा० जाकिर हुसैन की उम्मीदवारी का फैसला चुनाव के जरिए हुआ, लेकिन उनकी पूरी जिन्दगी इस बात का सबूत है कि वे हमेशा सोच-समझकर हर तरह के पक्षपात से अलग रहे।

डा० जाकिर हुसैन के जीवनी-लेखक श्री ए० जी० नूरानी ने उनकी जिन्दगी के इस पहलू को प्रकाशित करनेवाले कई उदाहरणों का उल्लेख किया है, जैसे कि जामिया मिलिया को कांग्रेस और मुस्लिमलीग के आपसी द्वन्द्व का अखाड़ा बनाने से बचाने की उनकी सफल चेष्टा, अन्तरिम सरकार के बनने पर उनको उसमें उस समय तक शामिल न होने की हिचकिचाहट जबतक कि मुस्लिमलीग उसके लिए राजी न हो जाय, और अन्त में अलीगढ़ विश्वविद्यालय के उपकुलपति के चुनाव के समय उनकी यह शर्त कि जबतक अलीगढ़ विश्वविद्यालय की चुनावसभा

(कोर्ट) उनके पक्ष में सर्वसम्मत प्रस्ताव नही करती तबतक वे उपकुलपति का पद स्वीकार नहीं करेंगे।

यह उनकी सफलता का एक प्रमाण था कि उन्होंने शिक्षा को पक्षपात की उत्तेजना से तो अलग रखा, लेकिन राष्ट्रीयता की मूल धारा और आजादी की लड़ाई से नहीं। जामिया की रजत जयन्ती के अवसर पर १७ नवम्बर १९४६ में उन्होंने एक ही मंच पर एक ओर जवाहरलाल नेहरू, मौलाना अबुल कलाम आजाद, और दूसरी ओर मुहम्मद अली जिन्ना और लियाकत अली खान जैसे बड़े राजनैतिक प्रतिद्वन्द्वियों को इकट्ठा करके अपनी सफलता का जीता-जागता प्रमाण प्रस्तुत किया था।

उस दिन डाक्टर जाकिर हुसैन ने जो भाषण दिया था वह जल्दी भुलाने लायक नही। वह ऐसा समय था जब कि साम्प्रदायिक दंगों की लहर पूरे देश मे फैल रही थी। एक शिक्षक की हैसियत से बोलते हुए उन्होंने कहा था—

"यह आग एक महान राष्ट्र मे सुलग रही है। इस आग के रहते हुए उदारता और समझदारी के फूल कैसे खिलेंगे? जानवरो की दुनिया मे रहकर आप इनसानियत को कैसे बचायेंगे? यद्यपि ये शब्द बहुत तीखे हैं, लेकिन आज की बिगड़ती हुई हालत में इससे ज्यादा तीखे शब्द भी नरम ही मालूम होंगे। हम लोग जो कि नये लोगों को इज्जत देने का वादा कर चुके हैं, अपने अन्दर महसूस होनेवावाली तकलीफ को किस तरह जाहिर करें यह समझ मे नही आना; जब कि हम देखते हैं कि बेगुनाह और मासूम बच्चे भी इस खौफनाक दहशत के असर से सुरक्षित नही हैं। किसी भारतीय कवि ने कहा है कि हरेक बच्चा जो इस दुनिया मे आता है वह यह पैगाम लाता है कि खुदा ने अभी तक इनसान का भरोसा नही खोया है। लेकिन क्या हमारे मुल्क के लोगों का अपने आप पर से इतना भरोसा उठ गया है कि वे इन कलियों के खिलने के पहले ही उन्हे कुचल देने की ख्वाहिश रखते हैं!"

और तब, विशिष्ट आमंत्रितो को "राजनैतिक आसमान के सितारो" के विशेषण से सम्बोधित करते हुए उन्होने मन को उद्वेलित करनेवाली आवाज मे कहा था—"खुदा के लिए एक जगह बैठिए और नफरत की इस आग को बुझाइए। यह पूछने का समय नही है कि इसके लिए कौन जिम्मेदार है और इसके कारण क्या है? आग फैलती जा रही है। मेहरबानी करके आप इसे बुझायें। इस समय सवाल यह नही है कि किस कौम पर मरने का खतरा मँडरा रहा है और किस पर नही। हमें इस बात का चुनाव करना है कि हम सभ्य इनसानो जिन्दगी पसन्द

[शेष पृष्ठ ४७५ पर]

भारतीय इस्लाम की सर्वश्रेष्ठ देन

सुरेश राम

राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन की अचानक विदाई से सारे देश को बहुत बड़ा धक्का लगा है। हमने अपने राष्ट्रपति के अतिरिक्त बहुत कुछ खोया है। वे एक महान् सत्पुरुष थे। सचमुच वे भारतीय इस्लाम के सर्वश्रेष्ठ देन थे। सच्चे मुसलमान होने के साथ-साथ उन्होंने भारतीय शास्त्रों और संस्कृति का उज्ज्वल अंश सहज भाव से अपने में आत्मसात कर लिया था। उनका जीवन मानो इस्लाम और हिन्दुत्व का अनोखा संगम था।

एक आदर्श नागरिक

डा० जाकिर हुसैन उन विरले विभूतियों में से थे जो भीतर और बाहर से सबके साथ समरसता महसूस करते थे और पूरी सच्चाई के साथ उसे अपने जीवन में लगातार उतारते रहे। *निर्भीकता और निष्ठा के साथ वे मानव-मात्र की समानता* का, विशेषकर भारतीय गगन के तले रहनेवालों की एकता का प्रतिपादन करते थे। और उन लोगों को समझाने अथवा चेतावनी देने से कभी नहीं चूकते थे, जो छोटे और बड़े या ऊँचे और नीचे के फेर में पड़े रहते थे। यही कारण है कि उनको कभी न तो उन उग्र राष्ट्रवादी हिन्दुओं का विश्वास हासिल हुआ, जो हिन्दू राष्ट्र की स्थापना का स्वप्न देखते हैं और न उन कट्टर सम्प्रदायवादी मुसलमानों का, जो जोर-जबर्दस्ती से अपने पुराने एकबाल को फिर से हासिल करने के मनसूबे बनाते रहते हैं। जब आचार्य विनोबाजी ने कुरआन के उत्तम अंशों का संकलन कर 'कुरान-सार' के नाम से प्रकाशित कराया तो कुछ मुस्लिम मित्रों को यह अच्छा नहीं लगा कि कुरान जैसे सम्पूर्ण ग्रन्थ में से कुछ छाँटा जाय, मगर डा० जाकिर हुसैन ने दिल जोड़ने की दिशा में एक उत्तम प्रयास के तौर पर इसका स्वागत किया। सब धर्मों की एकता के—जो कहने में तो बड़ी आसान है, मगर उसे अमल में उतारना टेढ़ी खीर है—वे साकार प्रतीक थे। सच्चे अर्थों में वे एक भारतीय नागरिक थे, जिनमें किसी तरह का पक्षपात या संकोच नहीं था।

भारत उनका घर

जाकिर हुसैन साहब को गुलाब बहुत प्यारे थे। बड़ी मेहनत से वे इनकी बागवानी करते थे। उन्होंने एक नयी किस्म का गुलाब पैदा किया, जिसे भूतपूर्व

राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् का नाम दिया और उन्हें भेंट मे पेश भी किया। गुलाब के बारे मे उनकी जानकारी अपना सानी नही रखती। जैसे वे गुलाब के शौकीन थे वैस गुलाब जसा उनका दिल भी था। किसी सभा या मजलिस मे वे आकर्षण के केन्द्र बन जाते थे। पद या अधिकार की तमन्ना ने उन्हे कभी नही सताया और इसी कारण से सत्ता देवी ने उनको अपनाया और ससार के सबस बडे प्रजातंत्र के सर्वोच्च आसन पर उन्हे बिठाया। जैसा उन्होंने १३ मई १९६७ को राष्ट्रपति होने के अवसर पर कहा था सारा भारत उनका घर था और उसके सारे निवासी उनका परिवार।

महान शिक्षायोगी

तेईस साल की उम्र मे १२ अक्तूबर १९२० को अलीगढ मे बापू के एक प्रवचन ने उनके जीवन का बदल दिया। उन्होंन सरकारी नौकरी का प्रलोभन छोड दिया। सौ बरस पुरानी ब्रिटिश शिक्षा-पद्धति के विरुद्ध विद्रोह किया और एक मित्र को साथ लेकर ओखला मे जाकर बैठ गये जहा उन्होंने एक नया स्कूल खोल दिया। उस स्कूल ने अब जामिया मिल्लिया इस्लामिया नामक विश्वविद्यालय का रूप ले लिया है (जहाँ गत ५ तारीख को राष्ट्रपति की मय्यत को दफनाया गया) जो शिक्षा म अपने ढंग की अनोखी सस्था है। २२ वर्ष तक डा० जाकिर हुसैन साहब इसके उपकुलपति रहे और इस पौधे को बनाया और सवारा। वे एक महान् कोटि के शिक्षाविद थे जिनकी सूझ बूझ और दूरदर्शिता अद्भुत थी। बापू की अद्वितीय दृष्टि ने इस शिक्षा शास्त्री को माग लिया और उन्होंने नयी तालीम को चलान का उत्तरदायित्व डाक्टर साहब के सुपुर्द किया। इससे इनकी ख्याति देश भर म हो गयी। और जिस निष्ठा और कुशलता स उन्होंने हिन्दुस्तानी तालीम सघ की अध्यक्षता का पद सभाला उससे वे शिक्षा जगत् म लोकप्रिय हो गये।

जाकिर साहब को यह बडा दुख था कि देश म नयी तालीम का प्रयोग ईमानदारी स नही किया गया। शायद बुढ़ापे ने उनके अन्दर की पुरानी क्रान्तिकारिता को दबा दिया और वे स्वय वह कीमत चुकाने स हिचकते रहे, जिससे सरकार उनका दद समझती और उनकी बात मान लेती। आज भी पुरानी शिक्षा प्रणाली जारी है और भारत जसा शायद ही कोई देश होगा जहाँ शिक्षा शिक्षित को जनता स एकदम अलग कर देती है। स्वतत्र भारत का वह सबस बडा अभिशाप है। आगे चलकर जब भारत के शासको म इसको दूर करन की सुबुद्धि और हिम्मत आयगी और इसकी जगह नयी तालीम शुरू करेंगे तो राष्ट्रपिता महात्मा गाधी के साथ डा० जाकिर हुसन का नाम भी सम्मान स लिया जायगा।•

भारतीय संस्कृति के प्रतीक: डा० जाकिर हुसैन

रंगनाथ रामचन्द्र दिवाकर

डा० जाकिर हुसैन की मृत्यु भारत के लिए एक गहरा आघात है। जाकिर साहब उन महान देशभक्तों में से थे जिन्होंने अपना सारा जीवन राष्ट्र की सेवा में अर्पित कर दिया था। वह एक महान शिक्षाशास्त्री व सुंदर मानव थे। वे सादगी और सज्जनता के श्रेष्ठतम आदर्श थे।

शिक्षा राष्ट्रनिर्माण का बुनियादी साधन है। इसे हम शिक्षक और शिक्षाविद् के रूप में डा० जाकिर हुसैन के जीवन का मुख्य स्वर कह सकते हैं। हम किसी भी मानदण्ड से देखें भारतीय गणतंत्र के राष्ट्रपति महापुरुष रहे हैं। उन्होंने इस उच्च पद की प्रतिष्ठा और शोभा में सदा ही वृद्धि की है। राजगोपालाचारी डा० राजेन्द्र प्रसाद तथा डा० राधाकृष्णन् ने विभिन्न क्षेत्रों में भारत के सार्वजनिक जीवन तथा इतिहास में जो योगदान दिया है वह सर्वोच्च मानदण्डों से मूल्यांकन करने पर भी अमूल्य सिद्ध होता है। डा० जाकिर हुसैन ने भी जो कि कभी उच्च पद या सत्ता के इच्छुक नहीं रहे, कुछ ही समय के अंदर यह सिद्ध कर दिया था कि वे भी उपयुक्त राष्ट्रपतियों की महान परम्परा को जारी रख सकते थे।

इससे पूर्व उपराष्ट्रपति व राज्यसभा के सभापति के रूप में तथा उससे पूर्व बड़े महत्वपूर्ण तथा विपुल जनसंख्यावाले बिहार राज्य के राज्यपाल के रूप में डा० जाकिर हुसैन अपना स्थान बना चुके थे। परन्तु उनके प्रशासकीय जीवन से कहीं अधिक महत्वपूर्ण उनकी उपलब्धियाँ पाण्डित्य, शिक्षा, तथा ग्रंथलेखन के क्षेत्र में रही हैं। उन्होंने कभी ख्याति की इच्छा नहीं रखी तथा शिक्षा के क्षेत्र में रहने के कारण वह अत्यधिक प्रचार तथा जनता की दृष्टि में आने से वंचित रहे। इस कारण मानव-व्यवहार में कुशलता, गहनता तथा कोमलता विकसित कर सके। इन सद्‌गुणों के कारण आज वह जिस पद पर थे, उसको स्वीकार करके उन्होंने उस पद का ही सम्मान बढ़ाया है।

जीवन का मुख्य स्वर

डा० जाकिर हुसैन से भेंट करने पर हमारे मन मे क्या भावनाएँ उठती थीं, उसको एक शब्द या कुछ शब्दो म वणन करना कठिन ही नही, बल्कि असभव है। अनायास ही हमारा ध्यान उनके समर्पित जीवन की ओर चला जाता है। सघर्ष, सेवा तथा बलिदान स पूण उनके महान जीवन म एक ही स्तर विशेप रूप से दिखाई देता था जो कि इस देश के विभिन समुदायो को शिक्षा देने, उनके सास्कृतिक स्तर को ऊँचा उठाने तथा सच्चे भारतीय नागरिक के रूप म उनके उत्तरदायित्व के प्रति उनको सचेत करने के गौरवपूण प्रयास का स्वर था। भारत विभिन धर्मों तथा भाषाओवाला एक प्राचीन देश है, जिसमे विभिन पंथ और सप्रदाय हैं परन्तु सबम 'सुसस्कृत सह-अस्तित्व' है। यह एक सुसस्कृत जनता का सह-अस्तित्व है। ऐसे देश के नागरिक के लिए यह सबसे बडी प्रशसा की बात है।

बहुत बार यह भावना अवश्य आती है कि 'वन्य पशुओ से पूण जगत म तुम मानवता की रक्षा कैसे कर सकते हो?' क्याकि हम अपनी चारो ओर धम, सम्पर्क भाषा इत्यादि क्षुद्र प्रश्नो पर लोगो को पागलपन के साथ झगडते देखते हैं। ऐसे समय म इस देश के नवयुवको को एकता और परिश्रम का सदेश देकर डा० जाकिर हुसैन ने साहस का काम किया तथा इससे उनकी अतदृ ष्टि का परिचय मिलता है। आज देश मे जो बहुत सारी समस्याएँ हमारे सामने हैं, उनका वणन करते हुए वह कहते थे कि यह एक अभिशप्त देश है, पर आखिर यह हमारा देश है। हम यहां रहना है और यही मरना है। यही कारण है कि यह देश हमारे साहस की कसौटी होगा हमारी योग्यताओ को चुनौती देगा तथा हमारे प्रेम की परीक्षा करेगा। मेरा विश्वास है कि विनाश से हमारी मुश्किल आसान नही होगी, विनाश तो पहले ही काफी हो चुका है। *दश को हमारे खून की नही, बल्कि हमारे पसीने की जरूरत है। उसे परिश्रम की घोर परिश्रम की तथा मौन परिश्रम की* जरूरत है।

जामिया का महान प्रयत्न

यह स्वर आज इस क्षण भी कितना सच्चा है? यह और भी शक्तिशाली प्रतीत होता है जब हम इसे स्वय डा० जाकिर हुसैन के उस अथक परिश्रम के सदभ मे देखते हैं जो उन्होंने अपने विद्यार्थी जीवन से ही शिक्षा के क्षेत्र मे किया। कहा जाता है कि उन्होंने केवल एक निणय सन् १९२० म किया था कि अलीगढ की ब्रिटिशनियत्रित शिक्षा-सस्था स असहयोग करूँगा। गाधीजी तथा अली बधुओ न स्वतत्रता-संग्राम के लिए आह्वान किया। जामिया मिलिया के रूप मे एक वीर-गाथा

के बीज बोये गये। एक विद्रोही छात्र किस प्रकार एक सर्वोच्च स्तर का प्रौढ शिक्षाविद् बन गया इसका इतिहास जानने के लिए हमें उन महान राष्ट्रीय शिक्षण-संस्था जामिया मिल्लिया का संघर्षपूर्ण इतिहास देखना पड़ेगा, जो इस्लाम एवं भारतीय राष्ट्रवाद के समन्वय का सबसे महान प्रयत्न है। प्रसिद्ध तुर्की पत्रकार अदिब ने सन् १९३५ में इस संस्था के उद्देश्यों का वर्णन करते हुए कहा था कि इस संस्था के दो उद्देश्य हैं—प्रथम, मुस्लिम नवयुवकों को भारतीय नागरिकों के रूप में अपने अधिकारों तथा कर्तव्यों का ज्ञान कराना और द्वितीय, मुस्लिम आचार-विचार का हिन्दू धर्म से समन्वय। मैंने जितनी मुस्लिम शिक्षण-संस्थाएँ देखी हैं उनमें गांधीवादी आन्दोलन के सबसे निकट वही है।

डा० जाकिर हुसैन तथा उनके दो महान साथियों, डा० मजीद तथा श्री अदिब हुसैन साहब को इस संस्था के निर्माण में कितनी परीक्षाओं तथा संघर्षों से गुजरना पड़ा, उसका इतिहास रोमांचकारी है, कई बार यह परीक्षा का प्रलोभन के रूप में आयी कि *राष्ट्रवाद और गांधी का मार्ग छोड़ दो, तो जामिया को आर्थिक मदद मिलेगी*। परन्तु प्रलोभन में आने के विपरीत जामिया के कितने ही अध्यापक स्वतंत्रता-संग्राम के दौरान जेल भेजे गये थे। इस संस्था के अध्यापकों में श्री जी० रामचन्द्रन् भी रहे हैं तथा देवदास गांधी वहाँ पढ़े थे। गांधीजी अंत तक जामिया मिल्लिया को अपनी संस्था मानते रहे।

लोकप्रियता का रहस्य

जामिया के लिए उन्होंने जो बलिदान तथा घोर परिश्रम किया, अच्छे तथा प्रेरणादायक अध्यापक बनाने के लिए उन्होंने जो दीर्घ साधना की, गांधीजी की नयी तालीम के बुनियादी सिद्धान्तों के प्रति उन्होंने जो निष्ठा रखी तथा सबसे बढ़कर राष्ट्र-सेवा की जो भावना उनमें कूट-कूटकर भरी हुई थी, उसीके परिणामस्वरूप डा० जाकिर हुसैन को भारत का सर्वोच्च सम्मान प्राप्त हुआ। यद्यपि उनके चुनाव से पूर्व कुछ विवाद से वातावरण में धुन्ध छा गयी थी, परन्तु कुछ ही समय में डा० जाकिर हुसैन ने यह सिद्ध कर दिया कि उन विवादों में शक्ति को नष्ट करना कितना क्षुद्र था। इस पद की गरिमा तथा शोभा उन्होंने प्रदान की। जो संक्षिप्त, पर अत्यंत महत्वपूर्ण भाषण विविध अवसरों पर वह देते रहे, उनके साथ सदैव रहनेवाली शिष्टता और नम्रता ने उनको ऊँच-नीच, गरीब-अमीर, सबमें लोकप्रिय बना दिया था। अपने पूर्ववर्ती राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् के समान जाकिर हुसैन ने भी यह सिद्ध कर दिया था कि एक अच्छा अध्यापक मानवता का एक अच्छा शिक्षक हो सकता है और सर्वोच्च पद की शोभा बढ़ाने के साथ-साथ लोगों के हृदय में भी अपना स्थान बना सकता है।●

अपने ऐबों पर नजर कर !

श्रीकृष्णदत्त भट्ट

बात है सन् १९६२ की।

विनोबाजी की पुस्तक रूहुल कुरान (कुरान सार) छप रही थी। हम सबकी इच्छा हुई कि डाक्टर जाकिर हुसैन साहब से उसकी भूमिका लिखायी जाय। उन दिनो वे गवर्नर थे बिहार राज्य के।

हमारे भाई जान अहद फातमी (सम्पादक भूदान-तहरीक) ने जाकिर साहब से इसके लिए प्रार्थना की। दो पत्र भी लिखे।

× × ×

कुरान शरीफ के अनमोल मोतियो का सचयन। और सो भी विनोबा जसे सन्त पुरुष के द्वारा!

और उस अमूल्य कृति की भूमिका का प्रश्न

कौन न कृतकृत्य हो उठेगा ऐसी सम्मानजनक फर्मायिश से ?

पर जाकिर साहब उसकी भूमिका—उसका मुकद्दमा उसका पेश लफ्ज नही लिख सके नही लिख सके।

आखिर क्यो ?

× ×

गीता प्रवचन मे विनोबा कहते हैं—

महाभारत मे तुलाधार वश्य की कथा है। जाजलि नामक ब्राह्मण तुलाधार के पास ज्ञान प्राप्ति क लिए जाता है। तुलाधार उससे कहता है—भया इस तराजू की डडी को सदा सीधा रखना पडता है। इस बाह्य कम को करते हुए तुलाधार का मन भी सीधा सरल हो गया। छोटा बच्चा दुकान मे आ जाय या जवान आदमी उसकी डडी सबके लिए एक-सी रहती है। न ऊँची न नीची।

तराजू की डडी स तुलाधार को समवत्ति मिली।

सेना नाई बाल बनाया करता था। दूसरो के सिर का मल निकालते-निकालते उस भान हुआ—देखो मैं दूसरो के सिर का मैल निकालता हूँ परन्तु क्या खुद

कभी अपने सिर का, अपनी बुद्धि का, भी मैल मैंने निकाला है ?' ऐसी आध्यात्मिक भाषा उस कर्म से सूझने लगी। खेत का कचरा निकालते-निकालते कर्मयोगी को खुद अपने हृदय की वासना-विकाररूपी कचरा निकालने की बुद्धि उपजती है।

कच्ची मिट्टी को रौंद रौंदकर समाज को पक्की हँडिया देनेवाला गोरा कुम्हार उससे यह शिक्षा लेता है कि मुझे भी अपने जीवन की हँडिया पक्की बना लेनी चाहिए। इस तरह वह हाथ में थपकी लेकर 'हँडिया कच्ची है या पक्की ?' यों सतो की परीक्षा लेनेवाला परीक्षक बन जाता है।'

× × ×

तो जाकिर साहब के सामने जब 'रूहुल कुरान' का मसविदा पेश हुआ तो व भी जीवन की गहराई में उतर पड़े।

मनुष्य जब आत्म-विश्लेषण करता है, अपने दिल के भीतर झाँकता है, अपनी असलियत पर गौर फरमाता है तो उसकी रूह काँप उठती है। दम्भियों और पाखण्डियों की बात छोड़िए। वे तो दुनियादारी के चक्कर में रहते हैं और रात-दिन ऐब को हुनर दिखलाने की कोशिश करते हैं। दोषों को गुण बताने की चेष्टा में लगे रहते हैं। कहा है–

एब यह है कि करो ऐब, हुनर दिखलाओ,

वर्ना याँ एब तो सब फर्दाबशर करते हैं।

मनुष्य अपनी गलती को गलती नहीं मानना चाहता। अपने दोष को दोष नहीं मानना चाहता। अपनी कमी को कमी नहीं मानना चाहता। कहेगा झूठ, उस पर मुलम्मा चढ़ायेगा सच का। करेगा गलत काम, कोशिश करेगा यह बताने की कि वह सही ही कर रहा है। खुद अन्याय करेगा, पर बतायेगा इस तरह कि दूसरा अन्याय कर रहा है।

और यदि कभी मान भी लिया कि गलती हुई तो कह देगा कि 'To err is human—'मनुष्यमात्र से गलती होती है। मैं भी उसका अपवाद नहीं।

× × ×

पर साधकों का, जिज्ञासुओं का, महापुरुषों का तरीका ही दूसरा होता है। अपने राई जैसे जरा से दोष को वे पहाड़ जैसा बड़ा मानते हैं। गांधी से छोटी-सी भूल होती तो वे उसे 'Himalayan Blunder'–'हिमालय जैसी भूल' बताते। उसके लिए सच्चे जी से पश्चात्ताप करते।

जाकिर साहब का भी यही तरीका था।

विनोबाजी की 'रूहुल कुरान' उनकी आँखों के आगे थी और वे जीवन की गहराइयों में उतर जाते।

'कहाँ कुरान शरीफ की नसीहतें और कहाँ मैं ?

एक दिन, दो दिन, चार दिन—यह संघर्ष चलता रहा।

आखिर २४ फरवरी ६२ को उन्होंने अपने दिल की हालत कागज पर उतार कर भाई जान फातमी साहब के पास रवाना ही कर दी। पत्र क्या है—

कागज पै रख दिया है कलेजा निकालकर।

लिखा उन्होंने—

राजभवन, पटना
ता० २४ २ '६२

मुकरमी जनाब फातमी साहब

अस्सलाम अलैकुम।

दोना नवाजिशनामे[1] मिले। यादफरमाई का शुक्रिया और ताखीरे[2] जवाब की माजरत कबूल फरमाइए। मैंने विनोबाजी का इन्तेखाबे कुरान मजीद गौर से देखा। बहुत अच्छा है। इससे मुस्लिम और गैरमुस्लिम, सब कुरान की तालीम को आसानी से समझ सकेंगे। खुदा उनकी सई[3] मशकूर[4] फरमाये।

मुकद्दमा[5] या पेश लफ्ज लिखने की बहुत कोशिश की। मगर कुछ न बन सका। रह रहकर यह खयाल कि तालीमात[6] कुरानी की तामील[7] मे क्या-क्या कोताहियाँ[8] मुझसे सरजद होती है और अपनी जिन्दगी उस नक्शे से कितनी दूर है जो कुरान चाहता है कुछ लिखने की हिम्मत नहीं करने देता। किसी दूसरे को अपनी इस कैफियत[9] का समझाना दुश्वार[10] है। मगर यकीन फरमाइए कि सच है और बावजूद कोशिश के उसने कुछ न लिखने दिया। उम्मीद है कि आप मेरी माजूरी[11] को समझ सकेंगे और मुझे माफ फरमा देंगे।

अगर बात विनोबा तक पहुँच चुकी है तो उनसे भी माफ करा देंगे। मेरे दिल मे उनका जो इहतराम[12] है उसे बआसानी लफ्जो मे बयान नही कर सकता। मसौदे रजिस्टर्ड डाक से बीमा करके वापिस करता हूँ।

—मुखलिस
सही—जा० हु०

पिछले दिनों जब 'रूहुल कुरान' वाली फाइल उलट रहा था तो जाकिर साहब का यह खत पढ़कर आँखें भर आयी। कितने ऊँचे पवित्र और नम्र थे हमारे ये राष्ट्रपति जो कहते थे—

---

१ कृपापत्र, २ विलम्ब, ३ पराक्रम, ४ यशस्वी, ५ भूमिका, ६ शिक्षा उपदेश, ७ व्यवहार ८ कमियाँ ९ हालत, १० कठिन, ११ विवशता, १२ आदर।

"……रह-रहकर यह ख्याल कि तालीमात कुरानी की तामील में क्या-क्या कौताहियाँ मुसम सरजद होती हैं और अपनी जिन्दगी उस नक्शे से कितनी दूर है, जो कुरान चाहता है, कुछ लिखने की हिम्मत नहीं करने देता है।"

× × ×

धर्मग्रन्थ सभी लोग पढते हैं।

मन्त्र, स्तोत्र, भजन भी लाखों करोड़ों लोग जपते हैं, पाठ करते हैं, गुनगुनाते हैं।

पर जीवन की गहराइयों में कितने लोग उतरते हैं?

मनुष्य जब जीवन के भीतरी पर्दे पर नजर डालता है, तब न उसे पता चलता है कि वह कहाँ है? उसकी असली तस्वीर क्या है कैसी है—

तभी न उसके रोम रोम से यह आवाज उठती है—

बुरा जो देखन मैं चला बुरा न दीखा कोय।
जो दिल खोजा आपना मुझसा बुरा न कोय॥

आत्म विश्लेषण ही मनुष्य को ऊपर उठा सकता है पापी को धर्मात्मा बना सकता है। नीच को ऊँच बना सकता है। असन्त को सन्त बना सकता है। अपवित्र को पवित्र बना सकता है। दुष्ट को साधु बना सकता है।

बाहर में हम चाहे जितने बड़े ऊँचे पवित्र माने जाते हों, उससे क्या बनना-बिगड़ना है! बात तो है भीतर की। हमारा दिल कैसा है? हमारा हृदय कैसा है? वस्तुतः हम हैं कैसे?

हमारे भीतर काम क्रोध लोभ मोह मद, मत्सर के विकार ठूस-ठूसकर भरे हैं। इन विकारों पर कभी हमारी दृष्टि जाती है?

जी नहीं, इनकी तरफ हम फूटी आँख भी ताकना नहीं चाहते।

तब तो हो चुका हमारा उद्धार!

× × ×

हम यदि सच्चे अर्थ में मनुष्य बनना चाहते हैं, अपने भीतर मानवीय गुणों का विकास करना चाहते हैं, अपनी आज की शोचनीय हालत से ऊपर उठना चाहते हैं, सच्चे जिज्ञासु साधक, भक्त या ज्ञानी बनना चाहते हैं, तो हम अपने हृदय की गहन गुफा में उतरना ही पड़ेगा।

अपने भीतर जो बुराइयाँ भरी पड़ी हैं, जो कमियाँ भरी पड़ी हैं, उन्हें दूर किये बिना, हृदय को शुद्ध और पवित्र, निर्मल और निर्विकार बनाये बिना गति नहीं।

आइए हम जाकिर साहब की अलविदा के इन क्षणों में उनसे आत्मविश्लेषण की शिक्षा लें अपने दिल को धो धोकर माज माजकर स्वच्छ और पवित्र बनायें। अपने को हम निर्विकार बनायें।

अपने ऐबों पर नजर कर अपने दिल को पाक कर,
क्या हुआ गर खल्क में तू पारसा मशहूर है।

जिस क्षण से हम अपने दिल को पाक करने के पराक्रम में जुट जायेंगे उसी क्षण से हमारा जीवन पवित्र से पवित्रतर उच्च से उच्चतर और उत्तम से उत्तमतर होता चलेगा। इसमें रत्तीभर भी सन्देह नहीं।●

डा० जाकिर हुसैन : जीवन परिचय

अच्छे अध्यापक की विशेषताएँ

स्व० डा० ज़ाकिर हुसैन

मनुष्य के मानसिक जीवन का प्रदीप सदा किसी दूसरे मानसिक जीवन से प्रकाश पाता है। जीवन की रहस्यमयी बातों में खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग बदलता है, और यों हर एक मनुष्य किसी दूसरे का अनुयायी—सिखानेवाला—बतानेवाला और बनानेवाला होता है।

दो प्रकार के लोग उनकी विशेषताएं

कुछ लोगों का स्वाभाविक झुकाव स्वयं अपनी ही ओर होता है। उनमें शक्ति की लालसा, कमाई का लालच, जमा करने और ढेरी लगाने की लत, लालच, हविस और अपनी बात को औरों से मनवाने की चाह होती है। कुछ तबियतों का झुकाव अपनी तरफ नहीं, औरों की तरफ होता है। उनमें हमदर्दी, संवेदना, मेल-मिलाप, उदारता, दूसरों को सहारा देने और मदद पहुँचाने की इच्छा क्रियात्मक होती है। किसीको हर चीज की खोज लगाने और हर बात की तह तक पहुँचने की धुन होती है। कोई दुनिया के बनानेवाले और पालनकर्ता परमात्मा के ध्यान में डूबा हुआ है, कोई अपने को उसकी परम सत्ता में लीन करने, दूरी को दूर करके तादात्म्य प्राप्त करने और मुक्ति पाने की लगन रखता है। कोई चीजें बनाता, बिगाड़ता और नयी-नयी ईजादों में अपने मन की तसल्ली देता है। आदमियों की इस भीड़ में अध्यापक को कहाँ ढूँढें, और इन भाँति-भाँति के व्यक्तियों में अच्छे अध्यापक को कहाँ से पकड़ निकालें ?

इस सवाल के जवाब में इस बात से मदद मिलेगी कि हम यह देखें कि जिस काम को आदमी करना चाहता है, जिन मान्यताओं में उसका विश्वास है, जिन विशेषताओं का वह मनुष्य है या बनना चाहता है, वे किस तरह पूरी हो सकती हैं ? कुछ विशेषताएं सिर्फ चीजों में आकर पूरी होती हैं। इनका साधक हमेशा चीजों के पीछे दिखाई देगा। उदाहरण के लिए, आदमी की भौतिक आवश्यकताओं

पर बस अपने कारखाने का ठप्पा लगा देना काफी समझते हैं, और असली धातु को बदलने की जगह मुलम्मा कर देने को तैयार रहते हैं। सच्चे अध्यापक के लिए तो जरूरी है, कि वह दूसरों से प्रेम करता हो, उसके दिल में आदमियों में आदमी होने के नाते प्यार हो। आप इन सच्चे विद्वानों, अच्छे अध्यापकों पर नजर डालिए, तो इनमें बहुत से गम्भीर धार्मिक लोग दिखलाई पड़ेंगे, रूप-सौंदर्य के पारखी कलाकार भी दृष्टिगोचर होंगे। लेकिन ये विशेषताएँ इनकी मानसिक बनावट में बेल-बूटे हैं। ताना-बाना तो वही, पर इनमें सेवा का चाव और मानव मात्र के प्रति प्रेम विशेषतः होता है।

अध्यापक के जीवन-ग्रंथ के मुखपृष्ठ पर 'विद्या' नहीं लिखा होता बल्कि 'प्रेम' शीर्षक होता है। उसे मानव मात्र से प्रेम होता है, समाज से प्रेम होता है, समाज में जो विशेषताएँ विद्यमान हैं—उनसे प्रेम होता है, उन नन्हीं नन्हीं जानों

अच्छा अध्यापक एक छोटी सी घटना से, एक छोटी सी बात से, एक साधारण सी क्रिया से, चेहरे के रंग से, आँखों से, यानी अभिव्यक्ति के साधारण ढंग से ही पूरे आदमी की वास्तविकता का पता लगा लेता है। कोई ऐसी प्राकृतिक और आन्तरिक शक्ति होती है, जो उन नन्हें नन्हें झरोखों से झाँककर आत्मा के छिपे हुए तथ्यों को देख लेती और समझ लेती है।

से मुहब्बत होती है, जो आगे चलकर उन विशेषताओं को अपनानेवाली हैं। इनमें जहाँ तक और जिन प्रणालियों से उन विशेषताओं की पूर्ति का साधन होता है, वह उनमें योग देता है। इसी काम में वह मानसिक सन्तोष और आत्मिक शान्ति उपलब्ध करता है।

अच्छे अध्यापक की सबसे पहली और सबसे बड़ी पहचान यही है, कि इसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति बच्चों और नवयुवकों के विकासोन्मुख व्यक्तित्वों की ओर होती है। उन्हीं में रहकर इसे सन्तोष मिलता है, उनके बिना दुनिया में यह परदेशी की तरह भटकता फिरता है। वह सिर्फ मदरसे के समुदाय ही में अध्यापक नहीं होता, बल्कि हर समय इसका मन अपने शिष्यों में ही अटका रहता है। अध्यापक के इस प्रेम का उल्लेख करना बड़ा कठिन है। संभवतः इसमें और बहुत-से सामान्य भाव सम्मिलित हों, सम्भव है कि आत्मसम्मान की आकांक्षा भी इसके मन में जग उठी हो, सम्भव है कि बच्चों का मन हाथ में लेने, अपने प्रति उनका स्नेह और शील प्राप्त करने की इच्छा भी इसमें विद्यमान हो, यानी थोड़ी-सी स्वार्थपरता भी हो।

यह सिद्धान्त एक अच्छे अध्यापक ही का हो सकता है। बुद्धिमान लोग इसे मूर्खता समझें, मूर्खता ही नहीं और इसे बचपन बतायें तो यह सचमुच बचपन है और जबतक अध्यापक में यह बचपन है तबतक वह बच्चों के मन के भेद जानता है और इनके जीवन में बराबर मिल जुलकर रह उनकी और ले जा सकता है। जिस अध्यापक में यह बचपन नहीं होता वह बच्चों के मन की बोली नहीं समझता, न उन्हें अपनी बात समझा सकता है। नादानी से जिधर कदम उठता है तो कुछ-न कुछ कुचल डालता है कुछ-न-कुछ तोड़ डालता है अध्यापक में बहुत अधिक चिंतनशीलता और गहरा पाण्डित्य इसके बचपन को कम कर देता है वह पहले से अधिक विद्वान या वह चीज बन जाता है जिसे शिक्षा विशारद कहते हैं पर अध्यापक वह पहले से बुरा होता है।

अच्छे अध्यापक की क्षमता

हाँ मैंने अध्यापक की जो सबसे पहली पहचान बतायी कि उसे बच्चों और नवयुवकों से स्वाभाविक लगाव और ममता हो और वह बच्चों में बच्चा बन सके तो यह है पहली और जरूरी चीज मगर सिर्फ यही काफी नहीं हर अच्छे अध्यापक में इसका होना जरूरी है पर हर वह व्यक्ति जिसमें यह विशेषता हो अच्छा अध्यापक नहीं होता। उसमें स्नेह के इस सामंजस्य को एक विशेष रूप से कार्यान्वित करने की क्षमता भी होनी चाहिए यह क्षमता अभ्यास और परिश्रम से बढ़ सकती है मगर होती है यह भी प्राकृतिक और ईश्वर प्रदत्त उसे उत्तम विद्याओं से भी सहायता मिलती है शिक्षा और मनोविज्ञान के सिद्धांत जान लेने से भी काम निकलता है। मगर सब बात तो यह है कि अच्छे अध्यापक में बच्चे के व्यक्तित्व को समझने की प्राकृतिक क्षमता होनी चाहिए जब कोई क्रिया करती हुई बदलती हुई सजीव वस्तु पर प्रभाव डालना चाहे जैसा कि अध्यापक चाहता है तो पहले उस वस्तु का समझना बहुत ही आवश्यक है। अच्छे अध्यापक में यह विशेषता होनी चाहिए जो एक अच्छे नाटककार अच्छे उपन्यासकार या अच्छे इतिहासकार में होती है कि वह एक छोटी-सी घटना से एक छोटी-सी बात से एक साधारण-सी क्रिया से चेहरे के रंग से आँखों से यानी अभिव्यक्ति के साधारण ढंग से ही पूरे आदमी की वास्तविकता का पता लगा लेता है। मनोविज्ञान के सामान्य सिद्धान्त यहाँ आकर धोखा देते हैं और बाधक बन जाते हैं। कोई ऐसी प्राकृतिक और आन्तरिक शक्ति होती है जो उन सब हेर-फेर झरोखों से झाँककर आत्मा के छिपे हुए तथ्यों को देख लेती और समझ लेती है। अच्छे अध्यापक की दूसरी पहचान यह है कि उसमें यह आंतरिक शक्ति हो और अनुभूति की सजग तीव्रता भी।

मगर समझ लेना और जान लेना भी तो काफी नहीं। समझकर, जानकर ठीक प्रकार से प्रभावित करने की क्षमता भी तो होनी चाहिए। निदान के बिना इलाज नहीं होता, लेकिन किसीको खाली निदान आता हो और इलाज न आता हो, तो वह भी लाभ नहीं कर सकता। अध्यापक में बड़ी प्रत्युत्पन्नमति होनी चाहिए कि सामने का समझते ही प्राय बिना सोच विचार किये उचित उपाय उसकी समझ में आ जाय। किताबें पत्थर बच्चों पर प्रभाव डालनेवाले सोच-विचार ही करते रहते हैं और किसी समस्या और उसकी युक्ति की अनगिनत किताबी कोशिशों के गोरख धंधे में भटकते ही रहते है। लेकिन एक अच्छा अध्यापक अपनी स्वाभाविक चतुरता से उचित उपाय ढूंढ लेता है। कभी हँसकर, कभी नाराज होकर, कभी तारीफ करके, कभी नरमी में, कभी लज्जित करके, कभी उकसाकर, कभी युद्ध रोककर कभी अपनी तरफ खींचकर, कभी अपने से दूर करके, कभी बुराइयां बतलाकर, और कभी आँख बचाने से यह अपना काम कर लेता है। इन सब मौकों के लिए किताबों में निर्देश दिये होंगे, क्योंकि किताबों में अब सब-कुछ लिखा हुआ है। पर जिस वक्त काम पड़ता है तो 'लाल किताब' के देखने का मौका नहीं मिलता, और अगर इसका कोई सामान्य निर्देश याद भी हो, तो इसको उस विशेष समस्या पर लागू करना भी तभी सम्भव होता है, जब कि अध्यापक में यह स्वाभाविक चतुरता (टैक्ट) पहले से ही मौजूद हो।

सुधारकों और पैगम्बरों की तरह अध्यापक को बने बनाये व्यक्तित्वों से वास्ता नहीं पड़ता, बल्कि उसका सम्बन्ध उनसे होता है, जो अभी बन रहे हैं। सुधारक और पैगम्बर तो बने-बनाये व्यक्तित्वों से अपना काम ले लेते हैं। ये उन विश्वासों, परम्पराओं इरादों और विचारों का सेवक बना देते हैं, जिनके प्रचार या सस्थापन के लिए ये आये है। जो इन्हें कत्ल करने निकलते हैं, ये उनके जीवन की दिशा ही बदलकर उन्हें अपने विरोधियों के लिए काल बना देते हैं। जो पहले एक तरफ झुकता था उसका सिर अब दूसरे के सामने झुका देते है। अध्यापक का सम्बन्ध होता है अविकसित व्यक्तियों से। उसे अपने शिष्य के बननेवाले व्यक्तित्व की प्रवृत्ति को समझना और उसके विकास के साधनों का अनुमान करना पड़ता है, और उस चरम उन्नति पर पहुँचाने में योग देना होता है। न केवल मानसिक दृष्टि से ये साधन दिखाई देते हैं क्योंकि आदमी के जीवन में न जाने कितना अविवेक का अंश मिला है, न केवल अन्तःप्रेरणा और सहज-बुद्धि पर ही अध्यापक भरोसा कर सकता है। यहां बस सहज-बुद्धि और अन्तःप्रेरणा को मिलाने की आवश्यकता होती है।

अच्छा अध्यापक उन विभिन्न साँचों से परिचित होता है जिनमें प्राय आदमी का शील (सीरत) ढलता है और इन आम जानकारियों के साथ बच्चे की विशेष स्थिति का अध्ययन उसे ठीक नतीजे पर पहुँचा सकता है। इसलिए उपयुक्त विशेषताओं के अतिरिक्त अच्छे अध्यापक में ठीक प्रकार से अध्ययन करने की निपुणता भी होनी चाहिए अन्यथा वह अपने शिष्य के पूरे व्यक्तित्व को परख नहीं कर सकता और उसकी सर्वतोमुखी उन्नति में पूरा योग नहीं दे सकता।

इस अध्ययन में प्राय स्वयं अध्यापक का बना बनाया व्यक्तित्व ही बाधक बन जाता है। आदमी बेजान चीजों की खोज तो स्वतंत्र रूप से कर सकता है पर वास्तव में उसके ही शरीर का अध्ययन (मुशाहिदा) निरपेक्ष रूप में करना कठिन है तो मन और आत्मा का अध्ययन भला कम निरपेक्ष रूप में हो सकता है? इसके लिए तो हरदम खुद अपने से लड़ना और अपने को दबाना होता है। मेहनती और कुरुचिपूर्ण सीधे और उद्दण्ड शीलवान् और अशिष्ट समझदार और रोनी सूरत—सबको एक ही तरह उदासीनता के साथ देखना कोई सरल काम नहीं। मगर अच्छे अध्यापक का काम भी सरल नहीं होता और यह गौरव हरएक को तो प्राप्त भी नहीं हो सकता।

अध्यापक का असली काम

अध्यापक का असली काम शील (सीरत) का निर्माण करना है और सारी शिक्षा का मूल उद्देश्य भी यही होता है कि वह बच्चे की विचार-शक्ति और उसकी कार्य-शक्ति को किसी सीधी राह पर डाल दे और उचित सिद्धान्तों के अनुसार—अच्छी प्रवृत्तियों के द्वारा उसके शील में एकाग्र दृढ़ता उत्पन्न कर दे। जो व्यक्ति अध्यापक बनकर शिक्षा का यह काम पूरा करे उसे स्वयं भी तो मालूम होना चाहिए कि वह शील को किस राह पर डाले। स्वयं उसके शील का भी तो कोई खास रंग और स्वयं उसके जीवन का भी तो कोई खास ढंग होना चाहिए। उसके प्रभाव से बच्चे में एकाग्रता (यकसूई) तो तब ही पैदा होगी जब कि स्वयं उसमें भी एकाग्रता हो। जो खुद थाली के बैंगन की तरह इधर उधर लुढ़कता हो वह दूसरों को एक दिशा में कब चला सकेगा? शील की एकरूपता (यकसूई) के विभिन्न अंगों पर बहस करने का यह अवसर नहीं है। बस इतना कहना काफी है कि ऊँचा शील उसीको प्राप्त होता है जिसके निश्चय में कुछ दृढ़ता हो जिसका परामर्श हितकर हो जो उचित आदेश दे सके और जिसमें विवेक भी हो जिसकी बात में कुछ मधुरता हो और जो दूसरे की स्थिति को इस मधुरता के कारण सहज

ही में समझ सके। फिर जिसमें उन गुणों या विशेषताओं के लिए--जिन्हें यह विशेषताएँ समझता है—उत्साह और उमंग हो। अच्छे अध्यापक के लिए भावुकता-प्रधान जीवन में उदारता भी होनी है, गम्भीरता और दृढता भी। इसकी आत्मा में सत्य और सत्यता, रूप और सौन्दर्य, नेकी और पवित्रता, न्याय और स्वतंत्रता के प्रदर्शन (मजाहिरे) से—एक गर्मी पैदा हो जाती है, जिससे वह दूसरे दिलों को गरमाता है, और जिसमें तपा-तपाकर अपने शिष्यों के शील को खरा बनाना है।

शासक और शिक्षक का भेद

यहाँ एक बात स्पष्ट कर देना अच्छा है। वह यह कि अध्यापक अपने शिष्यों के शील को अपने प्रभाव से जो रंग-रूप देता है, उसमें शायद किसीको हुकूमत करने, शक्ति आजमाने, और जबरदस्ती करने का आभास मिले। क्योंकि हुकूमत करनेवाले भी दूसरों के इरादों को अपने अधीन बनाते है, और अध्यापक भी दूसरे के जीवन को अपने सपनों पर चलाने का प्रयत्न करता है, और दूसरों से अपने इरादे पूरे कराता है। लेकिन यह धोखा है। बात यों नहीं है। अच्छे अध्यापक में तो सत्ताधारियों और शासकों की प्रकृति का लेशमात्र भी नहीं होता। उसमें और इनमें जमीन और आसमान का अन्तर है। शासक सब्र करते है, यह सब्र करता है; वे मजबूर करके एक-ही राह पर चलाते है, यह आजाद छोडकर साथ लेता है; एक के साधन है शक्ति और जबरदस्ती, दूसरे के हैं मुहब्बत और खिदमत, एक का कहना डर से माना जाता है, दूसरे का शौक से; एक हुक्म देता है, दूसरा सलाह; वह गुलाम बनाता है, और यह साथी।

अध्यापक और माँ

अच्छा अध्यापक एक अच्छा प्रवक्ता भी होता है, और ऐसी ही बहुत-सी छोटी-छोटी और विशेषताएँ भी रखता है। मगर इसकी सबसे बडी विशेषता यही है कि इसके जीवन की जड स्नेह की अजस्र धारा से अभिसिंचित होती है। इसलिए यह वहाँ आशा लगाता है जहाँ दूसरे जी छोड देते है; वहाँ डटकर रहता है, जहाँ दूसरे थक जाते हैं, इसे वहाँ प्रकाश दिखाई देता है, जहाँ दूसरे अन्धेरे की शिकायत करते हैं। यह जीवन के उत्कर्ष को भी देखता है, लेकिन इसकी वजह से उनके उत्कर्ष को भूल नहीं जाता, और बड़े की महत्ता के साथ-साथ यह छोटे के महत्व की भी उपेक्षा नहीं करता। यह महापुरुषों का-सा महान आदर्श सदा अपनी आँखों के सामने रखता है, मगर नादान और बेबस बच्चे की ओर से जब सारी दुनिया निराश हो जाती है, तो बस दो ही व्यक्ति ऐसे हैं, जिनके मन में अन्त तक आशा बनी रहती है—एक उसकी माँ और दूसरा अच्छा अध्यापक।•

गांधीवादी समाज-शिक्षा

के० एस० आचार्लु

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद गांधीजी ने देश के सामने जो प्रमुख उद्देश्य रखा वह था अहिंसा के आधार पर समाज की पुनर्रचना करना। स्वराज्य प्राप्ति उनके लिए राजनैतिक उद्देश्य की प्राप्ति का साध्य मात्र नहीं था वरन् व्यक्तिगत व सामाजिक अच्छे जीवन को उपलब्ध करने का साधन मात्र था। गांधीजी एक समाज की रचना करना चाहते थे जिसमें न दरिद्रता हो न अभाव हो न शोषण हो वरन् व्यक्ति के विकास के विपुल साधन उपलब्ध हों।

यह अभिमत रचना निम्नोक्त विधियों से लायी जानी थी

१ ग्रामीण समाज की आर्थिक-सामाजिक उन्नति हो इसमें गांवों का सहयोग हो, उनमें सामूहिक उन्नति के प्रति उत्तरदायित्व व सामाजिक न्याय व सुरक्षा की भावना पनपे।

२ ग्राम समाज की सहायता करना ताकि वे अपने परिश्रम से आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक उत्थान कर सकें स्वयं की विकास-योजना बना सकें व उन्हें कार्यान्वित कर सकें।

३ यह देखना कि ग्रामीण उनके जीवन की आवश्यकताओं—भोजन वस्त्र, निवास स्वास्थ्य व शिक्षा इत्यादि—को पूर्ण कर सकें, साथ ही आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन व वितरण हो स्थानीय साधनों का उपयोग हो सके, क्षेत्रीय स्वावलम्बन हो यन्त्रों व कार्य-विधि में ऐसा सुधार हो कि न तो मानव-श्रम का शोषण हो न काम में लगे लोग बेकार हो जायें।

इस प्रकार की व्यापक क्रान्ति तभी हो सकती है जब कि लोगों ने इसे स्वेच्छा से स्वीकार किया हो तथा स्वयं इस परिवर्तन को लाने के लिए प्रयत्नशील हों। इसी दृष्टि से लोक-शिक्षण अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न बन जाता है।

इस समस्या की गहनता का तब अन्दाज हो सकता है जब कि कुछ मुद्दों का जो ग्रामीण समाज से सम्बन्ध रखते हों, अध्ययन किया जाय।

गांव की परिस्थिति

ग्रामीणों में लाखों लोग ऐसे रोगों से ग्रस्त हैं जो कि उनके स्वास्थ्य या जीवनी शक्ति को सोखते रहते हैं तथा उनकी शक्ति व कार्य करने की इच्छा को समाप्त करते रहते हैं। लाखों अवनतोन्मुखी कृषि पर निर्भर हैं या फिर भूमि में भूमिहीन श्रमिकों या हिस्सेदारी के तौर पर बंधे हुए हैं। अनुपस्थित जमींदार इस असहाय अवस्था में उनका शोषण करता रहता है। प्राकृतिक साधनों के गैरजिम्मेवाराना विनाश के कारण क्रमशः जंगलों का नाश, भूक्षरण, बाढ़ व नदियों-नालों का मिट्टी से भर जाना तथा पुनः बाढ़ व विनाश—यह दूषित क्रम चलता ही रहता है। कई कुशल कारीगर जो जूता बनाने, कपड़ा बुनने, मिट्टी व बर्तन बनाने, लकड़ी व पत्थर में नक्काशी करने के काम में लगे हुए थे, फैक्टरी के बने सस्ते सामान से स्पर्धा न कर सकने के कारण या तो व्यवसाय की खोज में चले गये या परम्परागत धन्धा छोड़ बैठे। दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति यह है कि लोग इसे भाग्य का फल मानते हैं, एक अमिट दुर्निवार कारण मान बैठे हैं। उन्हें पता नहीं कि न तो इस दुर्दशा को ईश्वरप्रदत्त माना जा सकता है, न यह अनिवार्य ही है। लोग इतने आलसी, निरुद्यमी परमुखापेक्षी हो गये है कि वे हर काम सरकार के माध्यम से करवाना चाहते हैं। सारी परिस्थिति बदल सकती है, और जीवन ज्यादा अच्छा हो सकता है, यदि लोग सजग हो जायें। कोई कारण नहीं कि दरिद्रता, अशिक्षा, रोग, आर्थिक शोषण, अभाव—ये किसी समाज के अंग बने ही रहें। स्थिति में परिवर्तन लाना हो तो उसके लिए एक नयी दृष्टि, नया निश्चय, प्रयत्न व सहयोग की आवश्यकता है।

प्राचीन काल के गाँव

हमारी आज की-सी दुर्दशा अतीत में कभी नहीं रही। हमारा इतिहास ही दूसरा रहा है। सदा से ही भारत गाँवों का देश रहा है। एक जमाने में ये ही गाँव हमारी शक्ति, सुरक्षा व सुख के गढ़ थे तथा उनमें पर्याप्त स्वतंत्रता थी, स्वावलम्बन था। इतिहास की खोजें सिद्ध करती हैं कि भारत का पुराना गौरव उसके राजाओं व शासनकर्ताओं के कारण नहीं, वरन् लोगों के उपक्रम व निश्चय तथा एक सुबद्ध सुसंगठित, आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था के कारण था। प्राचीन काल का भारत एक परम साहसी, विपुल सम्पत्तिशाली राष्ट्र रहा। यह स्थिति अंग्रेजों के आगमन तक रही, उसके बाद गाँव की आर्थिक व्यवस्था विघटित हो गयी व गाँव शोषण के वैध लक्ष्य हो गये।

इसीलिए, इसी प्राचीन ग्रामीण संस्कृति की विरासत के आधार पर, गांधीजी इस निश्चय पर पहुँचे कि स्वराज्य का वास्तविक अर्थ गाँवों का नवनिर्माण है, ग्रामस्वराज्य यानी अहिंसा का जीता-जागता स्वरूप।

गांधीजी की कल्पना का ग्रामस्वराज्य

गांधीजी की कल्पना के अनुसार, ग्रामस्वराज्य का अर्थ है, शोषण-विहीन, विकेन्द्रित ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था, सहयोग, सबके लिए पूर्ण रोजगार, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति वस्त्र, भोजन व निवास के क्षेत्र में ग्राम को स्वावलम्बी बनाने के लिए काम करेगा। गांधीजी ने कल्पना की थी कि गाँव छोटे-छोटे गण (रिपब्लिक्स) हों, जो कृषि व उद्योग में आत्मनिर्भर हों व अपने-आप में पूर्ण इकाई हो सकें। प्रत्येक ग्रामीण की शिक्षा, जन्म से मृत्युपर्यन्त की, नयी तालीम के आधार पर हो, प्रत्येक गाँव अपना भोजन व आवश्यक कपास उगावे। उसके अपने चरागाह होंगे। यदि अतिरिक्त भूमि हुई तो द्रव्य उपज उगायी जा सकेगी लेकिन मादक वस्तुएँ नहीं, जैसे—तम्बाकू, अफीम, गांजा। बालकों व प्रौढ़ों के लिए गाँव का अपना सामुदायिक केन्द्र होगा, रंगमंच होगा, स्कूल होगा। सभी मुद्दों का निश्चय ग्रामसभा का होगा, वह भी लोगों की राय से (बहुमत से नहीं, वरन् उनकी वास्तविक इच्छा पहचान कर)। गाँव में शान्तिसेना होगी। गाँव के मकान स्थानीय साधनों से बने होंगे, परन्तु आजकल जैसे अन्धेरेवाले, बन्द हवावाले नहीं। प्रत्येक घर में एक छोटा सब्जी व फल का बगीचा होगा। गाँव में एक पूजा-स्थान होगा, बाजार होगा, सहकारी दुग्धशाला होगी तथा नयी तालीम की शाला होगी। झगडों को निपटाने की न्याय-पंचायत होगी। न कोई आलसी होगा, न कोई विलास में पड़ा रहेगा। यह ग्राम-स्वराज्य का नारा था, जो गांधीजी ने देश के सामने रखा था।

संसदीय जनतंत्र की सीमाएँ

प्रश्न उठता है कि अब ग्रामस्वराज्य लाने की इस द्वितीय क्रान्ति की क्या आवश्यकता है जब कि एक समुचित वैध जनतांत्रिक सरकार केन्द्र में है, जो कि ऐसे संविधान के आधार पर चल रही है जो कि आदर्श है व ऐसी परिस्थितियों में सहयोग के आधार पर मनुष्य-मस्तिष्क निर्माण कर सकता है। यह सही है कि हमारे यहाँ जनतंत्र है, परन्तु जनतंत्र प्रतिनिधित्व का है यानी हमारे अधिकार हमने सौंप दिये हैं। जनतंत्र की वास्तविक पहचान यह है कि लोग इच्छित परिवर्तन को अपने प्रयास से लावें, इस हेतु अपने में शक्ति उत्पन्न करें तथा अपनी समस्याओं को हल करें। बिना लोकशक्ति के कोई समाज जीवित नहीं रह सकता। अनुभव ने सिद्ध कर दिया है कि हमारी संसदीय जनतांत्रिक प्रणाली, जो दलगत राजनीति के आधार पर कार्य करती है जो कि केवल सत्ता हथियाने का खेल मात्र है, वह गांधी के सपनों का स्वराज्य तो नहीं ला सकती।

सर्वविदित है कि हमारी राष्ट्रीय सरकार ने, जिसके कन्धों पर नये समाज के निर्माण का भार था, संविधान में उल्लिखित इस उद्देश्य की प्राप्ति का साधन पंच-वर्षीय योजनाओं, सामुदायिक विकास व पंचायती राज को बनाया। परन्तु पंचायती राज के नियमोपनियम ऊपर से बनकर आये, अतएव सत्ता उन लोगों के हाथों में रही, जो कि दिल्ली में बैठे थे। इसके परिणामस्वरूप स्पर्द्धा व दलगत झगड़े जो दिल्ली में थे गाँव में प्रतिबिम्बित होने लगे। गाँव-स्तर पर न तो विचार ही हुआ, न योजना ही बनी। सबसे प्रमुख समस्या भूमि की है, उसको तो छुआ तक नहीं गया। अब स्थिति इतनी गिर गयी है कि सभी यह अनुभव कर रहे हैं कि पंचायती राज गिर जायगा यदि उसे केन्द्र से नहीं संभाला गया। सामुदायिक विकास की प्रयोजनाओं ने निम्न स्थिति के लोगों तथा साधनहीनों का कोई भला नहीं किया; उनका लाभ तो साधन-सम्पन्न लोगों ने ही उठाया। यहाँ तक कि भारत के प्रमुख राष्ट्रनिर्माता, नेहरू भी इन परिणामों को देखकर निराश हुए बगैर नहीं रहे तथा कहा कि राष्ट्र को नयी प्रेरणा व मार्गदर्शन के लिए गांधी की ओर मुड़ना होगा।

सर्वोदय की क्रान्ति कैसे होगी ?

गांधीजी को इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं था कि लोगों को जो स्वराज्य मिला वह वह स्वराज्य नहीं है जिसके संघर्ष का नेतृत्व उन्होंने किया था। इसलिए उनके मन में एक और क्रान्ति की आवश्यकता थी, जनसाधारण के लिए आर्थिक, सामाजिक, नैतिक, अहिंसात्मक क्रान्ति। यह सर्वोदय की क्रान्ति केवल एक ही विधि से हो सकती है, यानी लोकशक्ति जगाकर। सच्ची क्रान्ति तब होती है जब कि लोगों के मन में क्रान्ति के विचार जगें व उनमें नये मूल्यों का सृजन हो। यही गांधीवादी सर्वोदय-क्रान्ति का विचार विनोबा के ग्रामदान आन्दोलन में प्रतिबिंबित हो रहा है।

ग्रामदान एक आर्थिक-सामाजिक क्रान्ति है, जिसमें ग्रामसमाज का प्रमुख बल व उत्तरदायित्व जाग्रत होकर ग्रामसमाज का विकास करेगा। यह क्रान्ति लोगों पर इस बात के लिए जोर डालती है कि उन्हें अपनी समस्याएँ अपने बल-बूते पर ही हल करनी है, उनका कल्याण उन्हीं के हाथों में है, राजनैतिक दलों के नेताओं के नहीं, न शासन के हाथों में।

एक आधुनिक प्रकाशन में रावर्ट थियावाल्ड ने बताया है कि दरिद्रता का निराकरण व्यक्ति व समाज में उद्देश्य जाग्रत कर किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में जनतंत्र का आधार लोगों का उसमें सीधा भाग व सर्वसम्मत निर्णय होना चाहिए। इस प्रकार के नये जनतंत्र के लिए नयी मानवीय तकनीक चाहिए, नये प्रकार का शिक्षण चाहिए।

प्रसिद्ध समाजशास्त्रवेत्ता पाल गुडमन लिखते हैं भागीदारी का जनतन्त्र एक माँग है कि हमारे जीवन को प्रभावित करनेवाले निर्णयों में हमारा भी भाग हो हम भी कुछ कह सकें। यह उस पद्धति के विरोध में है जिसमें निर्णय ऊपर से आते हैं सामाजिक अभिप्रेरीकरण होता है सामूहिक व राजनैतिक केन्द्रीकरण होता है अनुपस्थित स्वामित्व तथा सामूहिक प्रसार माध्यमों द्वारा निर्माण को बदला जाता है या अमूर्त वाद के लिए अनुकूल बनाया जाता है भागीदारी का जनतन्त्र एक सामाजिक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त पर आधारित है वह यह है कि जो लोग किसी एक काम में लगे हैं वे ही भली-भाँति जानते हैं कि उसे कैसे किया जाय। सम्भावना यही है कि यह स्वतन्त्र निर्णय अवश्य ही दक्षतापूर्ण खोजपूर्ण सुन्दर व सबल होगा। प्रवृत्तिमूलक व आत्मविश्वासपूर्ण होने से इसका सहयोग अन्य समूहों से बिना अधिक ईर्ष्या या चिन्ता के होगा बिना हिंसात्मक अविचार के या दबाने की इच्छा के होगा। इस प्रकार की समाज रचना ही आत्मविकासशील होती है हम सभी काम करके ही सीखते हैं तथा नागरिकों को शिक्षण देने की विधि यही है कि वे जैसे भी हैं उन्हें शक्ति प्रदान करो। (न्यूयार्क टाइम्स १४ जुलाई ६८) जाज वेनगो का कथन है कि विभाग प्रबन्ध में सत्ता एवं उत्तरदायित्व के वितरण में काम अधिक अच्छा होगा लोगों की समझ अच्छी होगी इसके कारण स्वतन्त्रता बढ़ेगी काम में लग जाने की भावना का विकास होगा।

ग्रामदान की विशेषताएं

ग्रामदान का रहस्य है—भिन्न भिन्न प्रकार के हृदयों को मिलाना—जिनकी रुचियाँ अलग-अलग हैं मनोवृत्तियाँ अलग हैं। गाँव में श्रमिक व जमींदार व्यापारी व महाजन के आपसी सम्बन्ध अविश्वास लोभ व शोषण के आधार पर बने होते हैं। ग्रामदान इस परिस्थिति को बदल देना चाहता है। वह सभी को ग्रामसभा में लाकर एकसूत्र में बाँधता है जिसमें श्रमिक अपना श्रम देते हैं जमींदार अपनी जमीन व महाजन अपने धन का अंश। प्रत्येक के थोड़े थोड़े स्वार्थ त्याग से सामाजिक क्रान्ति की धारा बह निकलती है। ग्राम-समाज सक्रिय होकर परिस्थितियों की वास्तविकता को समझने लगता है अपने आपके लिए सोचने के प्रति अग्रसर होता है तथा अपने सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए सोचने लगता है। इस भाँति वह नये मनोभावों मनोवृत्तियों व मूल्यों को ग्रहण करता है। यह सब होता है मन की भावना से किसी बाह्य आदेश या निर्देशन से नहीं। यह सृजनात्मक-परिवर्तन केवल शिक्षा के द्वारा ही हो सकता है। इसी दृष्टि से समाज-शिक्षण का मूल्य बहुत बढ़ जाता है।

समाज-शिक्षा की परिभाषा

वास्तव मे हमे यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि 'समाज-शिक्षण' से हमारा तात्पर्य क्या है ? इस आन्दोलन के प्रारम्भ मे प्रौढ़-शिक्षा का अर्थ होता था प्रौढ़ों में निरक्षरता का अन्त करना । परन्तु आजकल प्रौढ़-शिक्षा का अर्थ व्यावहारिक होता जा रहा है। कोठारी कमीशन (१९६६) ने इसकी परिभाषा करते हुए इसका उद्देश्य यह बतलाया है कि इसके द्वारा प्रत्येक प्रौढ को आत्म-विकास, जीवन-समृद्धि, व्यावसायिक दक्षता तथा सामाजिक-राजनैतिक जीवन मे भाग लेने की योग्यता प्राप्त होनी चाहिए। इसकी विधि होगी प्रौढ़ो की निरक्षरता खत्म करना, निरंतर शिक्षण, पत्राचार सत्र तथा पुस्तकालय का उपयोग । इस धारणा के आधार पर कि निरक्षरता राष्ट्र व समाज के विकास मे बाधक है, कमीशन ने इस बात पर बल दिया है कि प्रौढ़-शिक्षण व साक्षरता को राष्ट्रीय विकास-कार्यक्रमो मे प्रथम स्थान देना चाहिए। साक्षरता-कार्यक्रम व्यावहारिक (फक्शनल) होना चाहिए ।

मूल शिक्षण की परिभाषा

यूनेस्को ने एक नये पारिभाषिक शब्द का प्रयोग प्रारम्भ किया—मूल शिक्षण (फडामेण्टल एजुकेशन), जिससे उनका तात्पर्य यह है—एक ऐसा सामान्य शिक्षण जो कि अविकसित प्रदेशों के लोगों को अपनी समस्याओं को समझने मे सहायता कर सके, उन्हें नागरिकों के अधिकार-कर्तव्यो का भान करा सके। क्योंकि इसमें समझने पर जोर दिया गया, अतएव एक अधिक व्यापक व्याख्या-शब्द "समुदाय-शिक्षण" प्रयोग मे आने लगा, जिसका अर्थ न केवल नये ज्ञान, कौशल व मनोवृत्तियों के आधार पर व्यवहार-परिवर्तन है, वरन् उन्हें इस बात को सीखने मे सहायता की जाती है कि वे अपने आप की सहायता कैसे कर सकें ।

इन व्यापक व विस्तारपूर्वक शब्दो, पारिभाषिक व व्याख्यात्मक नाम-निरूपण के उपरान्त भी कार्यक्रम मूल रूप में वही है—निरक्षरता का उन्मूलन, साक्षरता-कार्यकर्ताओं का प्रशिक्षण तथा प्रबन्ध व व्यवस्था सम्बन्धी इतर बातें। परन्तु ये सभी विधियाँ व कार्यक्रम मूल प्रश्न को अछूता ही छोडे हुए हैं। ये गांव के उच्चतर जीवन को गतिमान करनेवाले तत्त्वो को बढावा नहीं देते ।

हिन्दुस्तानी तालीमी संघ की एक मीटिंग (पूना १९४५) मे गांधीजी ने अपने उद्देश्यों की इस प्रकार व्याख्या की थी—"जीवन के द्वारा जीवन की शिक्षा।" समाज-शिक्षण का उद्देश्य है, मनुष्य की मूल आवश्यकताएँ पूर्ण हों, वह दूसरों के जीवन के बारे मे अपना दायित्व समझे व जीवन को समृद्ध बनाये। गांधीजी ने नयी तालीम को नवीन समाज-व्यवस्था की रचना मे अग्रदूत के रूप मे देखा, जिसका

प्रभाव बहुत आगे जानेवाला था। उनके मतानुसार शिक्षा जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त चलनेवाली थी। नयी तालीम का उद्देश्य था नयी समाज-रचना, जिसका आधार था सहयोगी कार्य, सभी की भलाई के लिए। शिक्षा का अर्थ है एक विशेष प्रकार का जीवन जीना तथा इसी जीने के साथ सीखना कि कैसे सहकारी जीवन के द्वारा जीवन की मूल आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकती है। इस प्रकार नयी तालीम "समाज-शिक्षण" के उस मूल विचार के लगभग निकट आ जाती है, जिसका अर्थ केवल निरक्षरता-उन्मूलन नहीं, वरन् व्यक्ति का विकास है, जिसमें वह अपने आत्म-सम्मान को जगा सके, अपनी गरिमा को पहचान सके व उसमें आत्मविश्वास पनपे।

इस प्रकार देखा जाय तो गांधीजी का समाज-शिक्षण एक आर्थिक व सामाजिक क्रान्ति है, जिसमें लोगों का दृष्टिकोण बदलता है व वे अहिंसा के आधार पर नये मूल्यों की रचना करते हैं। इसका अर्थ यह है कि ग्राम-स्वराज्य की प्राप्ति के लिए धनवान और गरीब, जमींदार व बटाईदार, जनसाधारण व वर्ग-विशेष, सभी अपने-अपने स्वामित्व का, अपनी योग्यताओं का व अपने कौशल का समुदाय के कल्याण के लिए उपयोग करते हैं।

सर्वोदय-कार्यकर्ताओं द्वारा इस प्रकार के शान्त व विनम्र प्रयोग सैकड़ों गाँवों में चल रहे हैं। कई स्थानों पर कुछ उपलब्धियाँ हुई हैं व समग्र विकास के कार्य हुए हैं। जमींदारों ने भूमिहीनों को वितरण हेतु भूमि दी है गरीब किसान महा-जनों के चंगुल (ऋणग्रस्तता) से मुक्त हुए हैं। ग्रामसभा की स्थापना हुई, जिसने सारे ग्राम के कल्याण का कार्य उठाया है। ग्राम-कोष की स्थापना हुई है, लघु सिंचाई-कार्य हुए हैं, स्वास्थ्य-सुधार अभियान हुए हैं, पीने के कुएँ बने हैं, न्याय की पंचायतें बनी हैं, सर्वोदय-पात्र व शान्ति-सेना की स्थापना हुई है। अम्बर चरखे चालू किये गये हैं प्रवृत्तिमूलक शिक्षा प्रारम्भ की गयी है। इस प्रकार ग्रामदान द्वारा ग्राम-पुनर्निर्माण कार्य की सम्भावनाएँ परिलक्षित होने लगी हैं।

ग्रामदान के मूल आधार

ग्रामदान की शान्त सामाजिक क्रान्ति में प्रभावशाली समाज-शिक्षण की क्षमताएँ भरी पड़ी हैं। उद्योग, कृषि, शान्ति-सेना, ग्रामसभा के कार्य के माध्यम से, समाज-शिक्षा की व्यवस्था करने से लोगों में विकास की भावना जगेगी, सहकारिता के भाव उत्पन्न होंगे, उत्पादन बढ़ाने की इच्छा जगेगी व सामाजिक जिम्मेवारी बढ़ेगी। ग्रामदान आन्दोलन एक जीवित रहने का कार्यक्रम है, जिसका आधार है सम्पूर्ण शिक्षण द्वारा राजनैतिक, सामाजिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण करना, गाँव के जनतंत्र की जड़ें मजबूत करना, आत्मविश्वास व स्वावलम्बन पनपाना। ग्रामदान समाजविज्ञानवेत्ताओं व समाज-शिक्षणशास्त्रियों के लिए एक चुनौती है।•

वैज्ञानिक दृष्टिकोण की आवश्यकता

सरलादेवी

सारी दुनिया के साधारण मनुष्यो का मूल स्वभाव और आकाक्षाएँ एक ही हैं—ये शान्ति से अपने परिवारो को पालकर शान्ति से ही रहना चाहते हैं। लेकिन सरकारो का स्वभाव—विशेषकर बहुमत और अल्पमत पर आधारित सरकारो का स्वभाव भी—एक ही है। समझ मे नही आता है कि ये सरकारें क्यों जनता को कठपुतली की तरह नचाना चाहती हैं? दुर्भाग्यवश लगभग सारी दुनिया मे जनता सरकार के द्वारा फैलायी हुई गलफहमियो म फँस जाती है। शायद यह इसलिए सम्भव होता है कि प्र म और रेडियो सरकारो, राजनीतिज्ञो और पूजीपतियो के हाथो म रहते हैं। ये लोग अपनी सत्ता और सम्पत्ति को सुरक्षित रखने के लिए जनता को भुलावे म डाल देते है।

धर्मों के दो अश

जिस प्रकार पहाड की चोटी तक पहुँचने के लिए भिन्न भिन्न दिशाओ स भिन्न-भिन्न माग होते है, लेकिन आखिर मे ये सब माग चोटी तक पहुँचते हैं इसी प्रकार विभिन्न-विभिन्न धम भी विभिन्न विभिन्न नामो से ईश्वर को पुकारते है, लेकिन वह ईश्वर एक ही है। इसी प्रकार सब धर्मों मे दो अंश होते हैं, एक स्थायी जो हमेशा के लिए सही रहता है, और दूसरा अस्थायी, जो विशेष व्यावहारिक परिस्थितियो मे लाभदायक होता है, लेकिन जो बदलती हुई परिस्थितियो के अनु-सार बदलना चाहिए, ऐसा माना गया है। दुर्भाग्यवश जब धम किसी पुरोहित वग के हाथ मे पहुँचता है तब ज्यादातर उसका शाश्वत अंश लुप्त हो जाता है। और लोग अस्थायी अंश से चिपक जाते हैं। इसमे विभिन्न धम मुख्य रूप से एक होने पर भी ऐसा मालूम होता है कि ये भिन्न हैं, बल्कि परस्पर-विरोधी भी हैं। विनोबा जी जो आजकल सब धर्मों का सार प्रकाशित कर रहे हैं, यह इस बात को समझने के लिए एक बहुत आवश्यक तथा उपयोगी दिशा-निर्देश है।

राची के एक भाई ने एतराज उठाया कि हिन्दू धर्म मे और ईसाई और मुस्लिम धर्मों मे किसी प्रकार का मेल-मिलाप नही हो सकता है। मुस्लिम, ईसाई और यहूदी धर्मों की जड पुराने सुसमाचार (ओल्ड टेस्टामेंट) मे है, और इसमें लिखा है कि तुम्हे गाय का मास खाना चाहिए, जहाँ हिन्दू धर्म मे गाय को गो-माता के रूप मे पूजते हैं, और कोई भी उसका मास नही खाता है।

एस भ्रामक दृष्टिकोण की सफाई करना बहुत आवश्यक है। वास्तव म उपरोक्त दोनो दृष्टिकोण प्राकृतिक परिस्थिति की वजह से उत्पन्न हुए हैं, और इस परिस्थिति का सही चित्रण कहा भी नही जा सकता है।

आहार की नैसर्गिक परख

सर्वप्रथम हमें यह समझने का प्रयत्न करना चाहिए कि मनुष्य के शरीर की बनावट मासाहार के उपयुक्त है या निरामिष आहार के ? मनुष्य की आँतें घास खानेवाले पशुओ की आँतों की तरह लम्बी हैं। गोश्त की बनिस्बत वनस्पति को हजम करने म बहुत ज्यादा समय लगता है, इसलिए घास खानेवाले पशुओ की आँतें लम्बी होती हैं। मास खानेवाले पशुओं की आँते छोटी होती है, क्योंकि पाचन-रस मिलने के बाद मास बहुत जल्दी हजम होने लगता है, और यदि वह ज्यादा देर तक आँतो मे जमा रहता है तो सडने लगता है।

मास खानेवाले (शिकारी) पशुओ के दाँत तीखे और मास फाडने के लायक होते हैं। घास खानेवाले जानवरों के दाँत दूसरे किस्म के होते हैं। मनुष्य के दाँत घास खानेवाले जानवरों के दाँतो जैसे लगते हैं। मनुष्य के मुँह मे गोश्त फाडने लायक दाँत नही हैं। इससे स्पष्ट है कि निसर्ग की दृष्टि से मनुष्य निरामिषाहारी प्राणी है।

यहूदियो की भौगोलिक परिस्थिति

यहूदी लोग शुरू मे रेगिस्तान मे रहनेवाले ग्वाले थे। रेगिस्तान मे कहीं-कहीं नखलिस्तान होते हैं, जहाँ पानी पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध होता है। वहाँ पर खजूर और अंजीर के साथ-साथ अनाज भी पैदा हो सकता है, लेकिन लोग ऐसे नखलिस्तानो मे बहुत देर तक नही रह पाते हैं। उन्हे ज्यादा समय चारे की खोज मे रेगिस्तान मे घूमते ही रहना पडता है। वहाँ पर मनुष्य के खाने के लायक कुछ पैदा नहीं होता है, और जानवरों का चारा भी मिलना दुर्लभ ही होता है। अपने पशुओ (ऊँट, भेड, बकरी) का दूध, दही और पनीर खाते हैं। लेकिन पशुओ मे नर दूध भी नहीं देते हैं, बच्चे भी नहीं देते हैं, और चारा उन्हे चाहिए। अत नर के पालने से अल्प चारे पर एक बोझ पडता है। इसके साथ घी, दूध और पनीर से मनुष्य की खुराक पूरी नहीं होती है। जानवरो को मारकर खाना एक

उपाय हो सकता था, लेकिन मनुष्य का स्वभाव गोश्त खाने के अनुकूल नहीं है। इसके सिवाय, जो जानवर हमारे बीच पैदा हुए हैं और जिन्हें हमने बचपन से ही प्रेम से पाला हो, उन्हें मारकर खाना भी अच्छा नहीं लगता है। इसलिए मनुष्य और जानवरों की खुराक के दृष्टिकोण से मास खाने के प्रति एक धार्मिक आदेश की आवश्यकता थी। वह मिल गया। यहोवा ने आदेश दिया कि 'खुर' वाले जानवरों को मैंने मनुष्य की खुराक के लिए पैदा किया है, ऐसा हम बाइबिल में पढ़ते हैं।

परिस्थिति-परिवर्तन का प्रभाव

बाद को जब यहूदी लोग 'वायदा के देश' (Promised land) में बस गये, तो उनका गर्व था कि वहाँ 'दूध और शहद की नदियाँ' बहती हैं। उन्होंने बहुत गर्व से उस देश को आबाद करके, उसमें अन्न और फल के उत्पादन को खूब बढ़ाया। उस परिस्थिति में खुराक के बारे में, धीरे-धीरे उनके विचार बदल रहे थे, यह सन पाल की उस उक्ति में स्पष्ट है कि 'यदि तुम्हारा गोश्त खाना तुम्हारे पड़ोसी को बुरा लगता हो, तुम गोश्त मत खाओ।' यानी उस देश में तब कुछ लोग गोश्त नहीं खाते थे, यह इससे स्पष्ट है। वैसे ही खुरवाले जानवरों में भी ईसाई लोग नर को खाते हैं, मादा को नहीं खाते हैं। मुस्लिम लोग ज्यादातर रेगिस्तानी देशों में रहे हैं, इसलिए वे स्वभावतः ज्यादा गोश्त खाते हैं। लेकिन इन सब कौमों में भी कोई भी घोड़े का मास नहीं खाता है। उसका मुख्य कारण यह होगा कि घोड़े और घोड़ी, दोनों वहाँ वाहन के काम में आते है।

भारत की परिस्थिति भिन्न थी। यह एक बहुत विशाल देश है। यहाँ की पुरानी सभ्यताएँ नदी के किनारे बसी हुई थीं। नदियों के किनारे अनाज, तरकारी, फल-फूल पैदा करना आसान और सहज था। चरागाह काफी था। कृषि में बैल का उपयोग होता था। गोमाता से दही, दूध, घी मिलता था। कृषि के लिए बैलों की आवश्यकता थी। अतः धर्म का उपदेश हुआ कि गाय को मारना पाप है।

नयी चुनौतियाँ

आजकल हमारे देश की परिस्थिति बदल गयी है। भूमि पर आबादी का दबाव है, आमदनी देनेवाली फसलों का प्रसार बढ़ता जा रहा है, जंगल कट गये हैं, और अनियमित वर्षा, अतिवृष्टि या अल्प वृष्टि की वजह से हमारे सब पशुओं के लिए चारा मिलना कठिन हो गया है। उन सब कारणों से आजकल गोपालन धार्मिक नहीं, बल्कि व्यावसायिक कार्य हो गया है।

बूढ़ी गायों को कौन पालेगा? यह परिस्थिति गोवध आन्दोलन करनेवालों के लिए एक बड़ी चुनौती है। क्या 'गोवध-बन्द' आन्दोलन करनेवाले अपने-अपने

घर म एक-एक बूढी गाय पालने को तयार हैं ? क्या वे गाय के दूध और गाय के घी के व्रत को पालकर भैंस का घी या वनस्पति को छोडने को तैयार हैं ? क्या गोभक्त नस्ल-सुधार क दृष्टिकोण से अच्छे साँड, पौष्टिक चारा इत्यादि दूध बढाने वाली योजनाओ के प्रसार के सिलसिले म सक्रिय हैं ? क्या य बूढ गाय-बैलो क लिए जगलो मे गौ-सदनो की स्थापना, तथा उसके साथ उनके मृत शरीरो के एक एक अग का सदुपयोग करने की दृष्टिकोण स कुछ सोच रहे हैं ? या गोमाता को बुढापे म धीरे-धीरे भूखो मरना पडेगा ?

आजकल की गायो की गिरी हुई हालत म यदि हम गोरक्षा करना चाहते हैं गोवश को बचाना चाहते हैं तो एक ही उपाय है और वह यह है कि भारत म गो उपासना के द्वारा गोपालन म स्पष्ट और शुद्ध आर्थिक लाभ हो। आजकल गोपालन म आर्थिक हानि है—आर्थिक दृष्टिकोण से लोग भस को पालते है गायो को सिर्फ इसलिए पालते हैं कि उन्हे उनके बछडो की आवश्यकता है। जबतक गोपालन म आर्थिक हानि कायम रहती है तबतक हम किसी प्रकार म गाय को बुरी तरह मरने से या कटने मे नही बचा सकते हैं।

विश्व परिस्थिति का सकेत

आर्थिक दृष्टिकोण स मासाहारी खुराक पैदा करने के लिए ज्यादा जमीन और ज्यादा पानी की आवश्यकता होती है बनिस्बत शाकाहारी खुराक के। इसलिए दुनिया में बढती हुई आबादी और पानी की घटती हुई मात्रा को देखते हुए लगता है कि अब दुनिया को ज्यादा-से-ज्यादा शाकाहार की ओर बढना पडेगा।

मासाहार और शाकाहार के बीच जो धार्मिक' भेद दिखाई देते हैं वे वास्तव म धार्मिक नही हैं। ये भेद इसलिए खडे होते हैं कि हमने धर्मों के अस्थायी अंश को स्थायी माना और उस चेतना दृष्टि स नही बल्कि जड दृष्टि स ही देखा है।

हिन्दू लोगो के सामने यह चुनौती है कि यदि वे गोवध को रोकना चाहते हैं तो उन्हे गाय का आर्थिक नुकसान उठाना पडेगा, और गो-उपासना को एक लम्बी गम्भीर और सगठित योजना बनानी पडेगी। उन्हे इस बात को भी याद रखना चाहिए कि हिन्दू धर्म माननेवालो म भी कई ऐसी जातियाँ हैं जो परम्परा स गोश्त खाती है। सब गोश्त खानेवाली जातियो के सामने भी यह चुनौती है कि दुनिया की वर्तमान नैसर्गिक परिस्थिति म गोश्त खाना कहाँ तक उचित है ?

यह प्रश्न वास्तव म आर्थिक और व्यावहारिक है न कि धार्मिक या साम्प्रदायिक। यदि इस वृत्ति से सब प्रश्नो पर विचारने की आदत बने तो दुनिया म बहुत कम ऐसे विषय रहेंगे जिन पर मौलिक मतभेद रहने की संभावना है।•

गांधीजी को तमिल भाषा सिखानेवाले

श्री रा० शंकरन् से एक भेंट

गुरुशरण

गांधीजी के पुण्यधाम सेवाग्राम में अन्तेवासियों का एक शिविर आयोजित हुआ तो शंकरन्जी से अनायास भेंट हो गयी। पन्द्रह साल पहले सेवाग्राम में मैं जब विदेशियों को हिन्दी सिखाने का काम करता था तो वह हिन्दीवालों को तमिल भाषा सिखाने का काम मुझसे भी अधिक रुचि से किया करते थे।

कल के मद्रास और आज के तमिलनाडु प्रदेश के तंजौर जिले के नागपट्टणम नामक स्थान में सन् १९०१ में उनका जन्म हुआ। सन् १९१९ तक इण्टर की पढ़ाई, फिर पाँच साल वहीं जन्म-स्थान पर शिक्षक रहे। उसके बाद आठ साल तक बम्बई की विभिन्न व्यापारिक कम्पनियों में एकाउण्टेण्ट का काम करते रहे। तदनन्तर पाँच साल तक बम्बई में और फिर पाँच साल तक मद्रास में हिन्दी-प्रचार का काम करने के बाद सन् १९४२ से शंकरन्जी सेवाग्राम में ही रह रहे हैं। बीच में सन् १९५० से १९५३ तक कुछ समय शरणार्थियों के बीच सेवाकार्य के लिए फरीदाबाद गये, पर वहाँ से आकर सेवाग्राम में ही रहकर शिक्षण-कार्य करते रहे और अब ६८ वर्ष की अवस्था में नौकरी से निवृत्त होने के बाद भी तमिल सिखाने की सेवा में तन, मन, और धन, तीनों से प्रवृत्त हैं।

प्रश्न : गांधीजी को आपने तमिल कैसे सिखायी ?

उत्तर : सन् १९३१ से १९३६ तक मैं बम्बई में हिन्दी-प्रचार का काम करता था। उसी समय सन् १९३५ में "मणिभवन" में अपने कार्यकर्ताओं को लेकर गांधीजी से मिलने गया। उन्होंने केवल १० मिनट का समय दिया। हम लोगों की

हिन्दी-सेवा से वे प्रसन्न हुए और कहा कि अच्छा काम है, लगातार करते रहना चाहिए। तभी से उनसे परिचय हो गया।

इन्दौर के साहित्य-सम्मेलन में मैं गांधीजी के साथ था। उस समय इस बात पर जोर दिया गया था कि ऐसी हिन्दी होनी चाहिए जो आम लोगों में बोली जाय और समझी जाय तथा देवनागरी और उर्दू, दोनों लिपियों में लिखी जाय।

बम्बई में भारतीय साहित्य परिषद् बनी तो मैं श्री के० एम० मुशी के सम्पर्क में आया। उन्हीं दिनों 'सेवासदन' नाम की फिल्म बनाने के लिए मुशी प्रेमचन्द बम्बई आये हुए थे। उन दिनों मेरा उनका काफी साथ रहा। पूरे एक साल तक हम दोनों अक्सर मिलते रहे।

बम्बई के बाद मैं मद्रास आया और सन् १९३७ से १९४२ तक, ५ साल मद्रास रहा। उन दिनों हमारी हिन्दी-पढ़ाई की क्लास बहुत लोकप्रिय हो गयी थी। *बालासाहब खेर भी पढ़ने आते थे। उनका लड़का भी उनके पास बैठकर पढ़ता था।* उन्होंने पाँच परीक्षाएँ भी पास कीं। बाद में तो वे मंत्री हो गये थे। फिर भी उनके मन में हिन्दी-प्रेम आखिर तक रहा। आजकल दक्षिण में जो हिन्दी-विरोध है, वह केवल राजनीतिक है। सामान्य लोग हिन्दी की कद्र करते हैं। मद्रास में कवि मेरे पास पढ़ता था। श्रीमती एम० एम० सुब्बालक्ष्मी हिन्दी सीखती थीं, बाद में तो वह सिनेमा-जगत् की ऊँची कलाकार हुई। हिन्दी-प्रचार के साथ-साथ मुझे हिन्दीवालों को तमिल सिखाने की प्रेरणा हुई और फिर गांधीजी जैसे तमिल सीखनेवाले मिले, तो क्या कहना !

प्रश्न गांधीजी ने तमिल भाषा किस तरह सीखी ? उन्हें क्या कठिनाइयाँ आयीं ?

उत्तर : वर्धा में जब नयी तालीम का काम शुरू हुआ तो श्री आर्यनायकम्जी मुझे यहाँ ले आये। मैं सेवाग्राम में २५ जुलाई १९४२ को आया। १ अगस्त १९४२ को गांधीजी सेवाग्राम में 'नयी तालीम भवन' का उद्घाटन करने आनेवाले थे। तब मैं यहीं था।

सन् १९४६ में आशादेवी आर्यनायकम् के साथ शरणार्थी-कैम्प में फरीदाबाद गया। वहाँ भी नयी तालीम का काम शुरू किया। उसके बाद फिर सेवाग्राम लौट आया। तब से यहीं पर हूँ।

सन् १९४४ के अक्तूबर माह में गांधीजी ने अपने व्यस्त कार्यक्रमों में से एक माह का समय निकाला और कहा कि आधा घण्टा रोज तमिल भाषा सीखेंगे। तो मैं उनका तमिल-शिक्षक बना। वह तमिल पहले से थोड़ी-सी जानते थे। उसको पढ़ने के साथ-साथ उन्होंने लिखने का अभ्यास बढ़ाया। सन् १९४६ में जब दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की हीरक जयन्ती मनायी जानेवाली थी तो गांधीजी

मद्रास गये। वहाँ वे २० दिन रहे और मुझे भी साथ ले गये। उस समय मेरी उनके साथ निकटता आयी। उनके साथ ट्रेन में जाते समय दान में मिले पैसे की जिम्मेदारी तथा सूत की गुण्डियाँ आदि रखने का काम मेरे जिम्मे था।

गांधीजी ने सन् १९४५ में एक बहुत बड़ी बात शुरू की कि वह जब भी मद्रास के लिए पत्र लिखते थे तो प्राय मुझे बुलाकर तमिल म लिखने को कहते। वे तमिल बोल लेते थे, समझ भी लेते थ। पर लिखाते तमिल भाषा-भाषी से थ। जिना साहब को जब कभी पत्र लिखाना होता तो हमेशा उर्दू मे लिखाते थे। भिन्न-भिन्न भाषाओ म उनका पत्र-व्यवहार चला करता था।

प्रश्न : गांधीजी को सिखाने के बाद, क्या अभी भी आपकी तमिल सिखावन चल रही है ?

उत्तर : सेवाग्राम-वर्धा के जिज्ञासु कार्यकर्ताओ को तमिल सिखाते समय मेरे पास १२ पाठ तैयार हो गये थे। उनका संग्रह करके उन्हें टाइप कराया और कुछ मित्रो को वे पाठ दिये तो लोगो को बहुत पसन्द आये। जब मैं वाराणसी के ग्राम-इकाई विद्यालय के 'आडिट' के लिए गया तो सन् १९६४-६५ म वहाँ भी तमिल पाठ पढाये। सिद्धराज ढड्ढा तथा कुछ अन्य कार्यकर्ता हमारे तमिल पाठ मे आया करते थे। पढाते-पढाते धीरे-धीरे पुस्तक ही तैयार हो गयी। **काकासाहब कालेलकर ने उसकी प्रस्तावना लिखी। गांधी स्मारक निधि ने उसे छपाने के लिए ६०० रु० की आर्थिक सहायता दी। राष्ट्रपति जाकिर हुसैन ने उसकी प्रशंसा की और २५० रु० भेजे।**

केंद्रीय हिंदी निर्देशनालय दिल्ली मे भी मैंने तमिल पाठ पढाये। विनोबाजी को भी तमिल सिखाने का मुझे सौभाग्य मिला है। आज भी जब विनोबाजी से भेंट होती है तो मुझे देखते ही वे तमिल म बात करते हैं। इस तरह हिन्दीवाला को तमिल सिखाने का काम आज भी कर रहा हूँ।

शकरनजी से जो भेंट-वार्ता चली, उसमे उनके कर्तृत्व के साथ-साथ उनके व्यक्तित्व का भी सहज परिचय आ जाता है। उनकी लगन और निष्ठा निस्सदेह अनुकरणीय है कि ६८ साल की उम्र मे भी वे निरन्तर अपनी धुन मे लगे हुए हैं, जिसे देखकर मेरे जैसे आलसी आदमी को भी तमिल सीखने की प्रेरणा हुई और यह विश्वास हुआ कि तमिल भाषा सीखी जा सकती है। उत्तर भारत के लोगो ने गुलामी के दिनो म तो दक्षिण की भाषाए नही ही सीखी, पर आजादी मिलने के बाद भी उस ओर ध्यान नहीं दिया। यदि गांधीजी की बात मानकर उत्तर भारत म दक्षिण की भाषाएँ सीखने का सिलसिला नित नूतन बढता तो आज स्थिति दूसरी ही होती।●

सम्पादक के नाम चिट्ठी

उत्तरप्रदेश में तमिल सिखाने की योजना

इस विचार का मन मे आना ही एक शुभ लक्षण है कि उत्तर भारत मे, खास-कर हिन्दी प्रान्तो के स्कूलो मे दक्षिण की एक भाषा सिखायी जाय। हिन्दी के प्रति घोर विरोध और राजनैतिक दाँव-पेंच के कारण यह सद्‌विचार आया। फिर भी अमल मे लाने के बारे मे सच्चाई से कोई कार्य किया जायेगा, ऐसा नही दीखता था। अब उत्तरप्रदेश के शिक्षा-मंत्री की एक घोषणा अखबारो मे निकली है कि 'आगामी जुलाई से उत्तरप्रदेश के स्कूलो मे दक्षिण की एक भाषा अनिवार्य रूप से सिखायी जायेगी।'

दक्षिण भारत के चारो प्रान्तो मे वहाँ की काग्रेसी सरकार ने सन् १९३७ मे स्कूलो मे हिन्दी की अनिवार्य पढ़ाई शुरू की। आज ३२ साल बाद प्रतिक्रिया के रूप मे उत्तरप्रदेश मे दक्षिण की भाषाओ का आदर होने लगा है। भारतीय सर्वांगीण एकत्व को मानकर हिन्दी का प्रचार शुरू हुआ। क्या वह एकत्व केवल राजनीतिक एकत्व ही रहे?

दक्षिण भारत मे हिन्दी को अनिवार्य करते समय से ही विरोध भी शुरू हुआ था। उस विरोध का काग्रेसी सरकार ने अपने दण्डबल से सामना किया। उसी नीति ने सन् १९६७ मे काग्रेस को पूरी तरह से नष्ट-भ्रष्ट किया। लोगो को बड़ा अचरज होता है, लेकिन इसमे अचरज की कोई बात नही है, वहाँ के काग्रेस का सबसे कमजोर कार्यक्रम हिन्दी का था।

जरा सोचिए तो सही, स्कूलो मे बच्चो पर हिन्दी को लादा गया। हिन्दी के लिए अलग शिक्षक रखे गये। दूसरे सब शिक्षक हिन्दी के प्रति उदासीन रहे। चारो तरफ अग्रेजी का प्रभुत्व था, ऐसी हालत मे हिन्दी शिक्षण मे तेज कैसे आता? इस 'अनिवार्य हिन्दी शिक्षण' से हिन्दी कमजोर हुई और साथ-साथ उसे राजबल से चलानेवाली काग्रेस भी कमजोर हुई। हवा के एक झोंके मे उसका सारा-का-सारा ढाँचा बालू के महल जैसा गिर गया।

दूसरा भी एक पहलू है जिस पर तटस्थ भाव से विचार करना है। डी० एम० के० दल का हिन्दी का विरोध एक निमित्त मात्र था। वे भारतीय एकत्व को भी नही मानते थ। उनके दिल मे द्वेष और स्वार्थ था। सारे देश के स्वराज्य की कल्पना उनम नही थी। आश्चर्य की बात तो यह है कि इस विरोध के बारे म किसीने गाधीजी से सलाह-मशविरा नही किया। किसीको भी यह चिन्ता नहा थी कि इस अनिवार्य हिंदी के कारण न केवल पैसे और श्रम दोनों बरबाद होते थे, बल्कि एक तरह का दभ चारो तरफ फैल रहा था।

सब प्रान्तों मे हिंदी प्रचार हुआ। क्या उससे हिन्दी समर्थ हो सकी? इस क्षेत्र विस्तार मे हिंदी भाषा भाषी ने क्या कुछ पराक्रम दिखाया? भारत की सब प्रमुख भाषाओं को सीखने के लिए अंग्रेजी म पुस्तकें पिछली शताब्दी मे ही तयार हो गयी। तमिल का व्याकरण सन् १८५५ म लन्दन म छपा। उसीकी मदद से गाधीजी ने सन् १८९३ मे तमिल सीखी थी।

सन् १८७५ के करीब श्री काल्डवल ने दक्षिण की चारो भाषाओं का तुलना त्मक व्याकरण अंग्रेजी म लिखा। कमजोर रोमन लिपि म भारतीय भाषाओं का रूपान्तर करने के तरीके निकाले गये।

देश स्वाधीन हुआ तो हिंदी का बोलबाला शुरू हुआ। लेकिन सवाल यह था कि क्या हिंदी द्वारा भारतीय भाषाओं को सीखने की उपयोगी पुस्तकें उपलब्ध हैं? सारी जिम्मेवारी केन्द्रीय सरकार पर छोड़कर हिन्दी प्रात के नेतागण हिन्दी साम्राज्य का स्वप्न देखते रहे! समूचे भारत के भिन्न भिन्न प्रादेशिक गाँवो के नाम तथा स्त्री-पुरुषों के नाम इन दोनों को देवनागरी मे ठीक-ठीक लिखना हो तो काफी समय और मेहनत लगेगी। नामो को अंग्रेजी ने जसे बिगाडा उसी तरह हिंदी ने अपना लिया। अंग्रेज साम्राज्यवादी थे। देश गुलाम था। लेकिन स्वतत्र देश मे यह लापरवाही कस चल सकती है?

ऐसी परिस्थिति म आज एक शिक्षा मत्री अपने प्रात म स्कूलो म दक्षिणी भाषाओं के प्रवश करने का शुभारम्भ करना चाहते हैं यह खबर आशाजनक है और मोहक भी। उसके लिए एक व्यावहारिक योजना लेखक ने बनायी है। आव श्यकता है कि उस पर विचार-विनिमय हो और यथाशीघ्र अमल भी हो। उत्तर प्रदेश का अनुकरण करके अन्यान्य प्रान्त भी यह कार्यक्रम हाथ मे ले सकते हैं।

उत्तरप्रदेश के किसी एक-दो स्थान (लखनऊ इलाहाबाद) मे वहाँ के हाई स्कूल क स्थानीय शिक्षकों की मई और जून महीने मे ही तमिल सिखाने की व्यवस्था की जाय।

शिक्षकों के लिए तमिल के प्राथमिक शिक्षण हेतु नागरी लिपि और हिन्दी भाषा में फिलहाल एक किताब तैयार है। इसी पुस्तक को तमिल लिपि में भी प्रकाशित किया गया है, ताकि तमिल भाषा का परिचय होने के बाद उसकी लिपि भी आसानी से सीखी जा सके। और पुस्तकों के लिए भी मैटर तैयार है।

उपर्युक्त दोनों किताबों के अध्ययन के पश्चात् उन शिक्षकों को तमिल के विशेष ज्ञान के लिए मदुराई युनिवर्सिटी में तीन महीने के लिए भेज सकते हैं। उस युनिवर्सिटीवालों ने ऐसी मदद करने के लिए अपनी तैयारी बतायी है।

शिक्षकों के प्रशिक्षण केन्द्रों में भी तमिल सिखाने की व्यवस्था की जाय और इसके लिए तमिलनाडु के ही कुछ शिक्षकों को बुलाया जाय। इस तरह तमिल सीखे हुए शिक्षकों को भी सुविधानुसार कुछ समय के लिए मदुराई में प्रशिक्षण दिलाया जाय। दक्षिण भारत में हिन्दी को अनिवार्य करते समय इसी बात पर ध्यान नहीं दिया गया कि प्रशिक्षण केन्द्रों में भी हिन्दी दाखिल हो।

नागरी लिपि द्वारा तमिल सीखने के बाद तमिल लिपि द्वारा तमिल भाषा सिखना आसान होता है, ऐसा अनुभव से सिद्ध हुआ है। इसलिए दोनों लिपियों में किताबें तैयार करवाकर प्रकाशित करवाने की व्यवस्था की गयी है।

—रा० शंकरन्
तमिल-नागरी प्रचार केन्द्र सेवाग्राम, वर्धा (महाराष्ट्र)

[पृष्ठ ४४० का शेष]

करते हैं या बबरता की। खुदा के नाम पर ऐसा न होने दीजिए कि इस मुल्क में सभ्यता की बुनियादें ही नष्ट भ्रष्ट हो जायें।"

मैंने उनके शब्दों का विस्तार से इसलिए उद्धृत किया है कि उनका सन्देश आज भी तरोताजा है और आज के राजनीति के आकाश के सितारों को भी उनके मानवीय और राष्ट्रीय कर्तव्यों के प्रति सजग रखने की जरूरत है।

जो इतना सक्रिय, सृजनशील, शिष्ट, निर्भय, सत्यवादी, समर्पित और राष्ट्र द्वारा मान्य था ऐसे आदमी की जिन्दगी की कहानी वस्तुतः सबके लिए प्रकाश और बल का स्रोत है। (मूल अंग्रेजी में)

(श्री ए० जी० नूरानी द्वारा लिखित डा० जाकिर हुसैन की जीवनी की प्रस्तावना।)

सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष : श्री एस० जगन्नाथन्

लोकसेवक की परिभाषा में यह कहा गया है कि लोकसेवक वह है जो अपना अधिकांश समय भूदान-ग्रामदान आन्दोलन को दे। श्री एस० जगन्नाथन जो हाल ही में सर्व सेवा संघ के नये अध्यक्ष संघ के तिरुपति अधिवेशन में चुने गये हैं का सारा ध्यान इस आन्दोलन की ओर लगा हुआ है। वे इस आन्दोलन में इतने तन्मय हो गये हैं कि स्वप्न में भी इस आन्दोलन को साकार करने के प्रयत्न किया करते हैं। उनकी मुख्य चिन्ता भूमिहीनों की समस्याएं हैं। वे स्वप्न देखनेवाले व्यक्ति नहीं हैं बल्कि वे एक ऐसे व्यक्ति हैं जिनका क्रिया में पूर्ण विश्वास है। अर्जुन के बारे में कहा जाता है कि जब उनके गुरु ने उनसे निशाना लगाने के पूर्व यह पूछा कि तुम क्या देख रहे हो तब अर्जुन ने कहा था कि सिर्फ मछली की आँख, जिस पर निशाना लगाना है और कुछ नहीं। श्री जगन्नाथन् में उसी अर्जुन की छाप है जो ग्रामदान आन्दोलन में सिर्फ अपने लक्ष्य को ही देखते हैं उनका ध्यान जरा भी विचलित नहीं होता। वे अपने लक्ष्य से कभी विचलित नहीं होते। आन्दोलन के प्रति उनकी इस गहन निष्ठा ने ही उन्हें आन्दोलन में लगे उनके सभी साथियों के इतने निकट ला दिया है।

वे अपने-आपको आन्दोलन के प्रत्यक्ष काय में लगा एक कायकर्ता मानते हैं। जब उन्होंने गांधीग्राम की स्थापना रामचन्द्रन् दम्पत्ति के साथ की तब उनका मुख्य काय कायकर्ताओं का सगठन खडा करना था। कायकर्ताओं के इसी सगठन से वे प्रेरणाएं और नयी स्फूर्ति ग्रहण करते जाते हैं। उनमें नेताओं का दिखावा नहीं है। उन्होंने कायकर्ता और जनता का तादात्म्य साधा है और यही उनके विश्वास तथा शक्ति का स्रोत है।

रामेश्वरम् के पास रामनाथपुरम् जिले के सेंगरपनाई नामक छोटे से गाँव के एक सम्भ्रान्त परिवार में आपका जन्म सन् १९१४ में हुआ था। १८ वर्ष की अवस्था में जब वे अमेरिकन कालेज मदुराई में इन्टरमीडिएट के छात्र थे उन्होंने अपने जीवनक्रम का फैसला कर लिया। उन्होंने कालेज छोड़ दिया और

एस० जगन्नाथन्

स्वतंत्रता-संग्राम मे कूद पड़े। परिणाम स्वरूप उन्हें जेल भी जाना पड़ा। उन्हें अपने कालेज के बगल में एक शराब की दुकान पर धरना देने के आरोप मे तीन महीने की जेल की सजा हुई। जेल से लौटने के बाद अपने अभिभावकों की इच्छा के विरुद्ध, जो यह चाहते थे कि वे अपना अध्ययन जारी रखें वे तिरुपत्तूर मे क्रिस्तकुल आश्रम में चले गये। यहीं से उनका पत्र-व्यवहार गांधीजी से शुरू हुआ। बाद में वे बंगलोर आ गये और वहाँ के छात्रों में सक्रिय रूप से काम किया उनके ग्रीष्मकालीन शिविरों का संचालन किया। वे दीन सेवा संघ के विकास में भी सहायक रहे जो एक फलती-फूलती संस्था के रूप में आज काम कर रही है। बंगलोर में उन्होंने छात्रों के साथ काम किया। उससे प्रेरित होकर वाइगाई नदी के तट पर मदुराई में उन्होंने एक छात्रावास चलाया जिसमें मुख्यतया हरिजन छात्र थे। सन् १९४२ के आन्दोलन मे आप और भी सक्रिय हुए। फलस्वरूप उन्हें कई बार जेल जाना पड़ा। जेल में उनका सम्पर्क राष्ट्र के कई राजनैतिक नेताओं और रचनात्मक कार्यक्रमों में भाग लेनेवाले कार्यकर्ताओं से हुआ, जिससे उनके विचारों में गहराई आयी।

स्वतंत्रता के बाद वे रचनात्मक कार्यक्रमों में लग गये और गांधीग्राम की स्थापना मे श्री जी० रामचन्द्रन् और डाक्टर सौन्दरम् की सहायता की। उनका योगदान यह था कि उन्होंने कार्यकर्ताओं के विकास के निर्माण में सहयोग दिया और किसानों के संगठन गांधी किसान संघ की स्थापना की।

भूदान-आन्दोलन जब ग्रामदान चरण पर पहुँचा, तब श्री जगन्नाथन् अगली कतार में थे। उन्होंने सम्पूर्ण तमिलनाडु की यात्रा ही नहीं की, वरन् ग्रामदान आन्दोलन को मदुराई और तिरुनेलवेली जिलों में व्यापक बनाया। श्री जगन्नाथन् के मन में सामाजिक न्याय के प्रति जो सम्मान था, उसीने मंदिरों के महन्तों द्वारा किये जानेवाले अत्याचारों के विरोध में आन्दोलन खड़ा किया, जिससे उन्हें वील्लम पट्टी में सत्याग्रह करना पड़ा। उस क्षेत्र के सभी किसानों ने इस सत्याग्रह में

भाग लिया। समय समय पर होनेवाली भूदान ग्रामदान की पदयात्राओं ने विशेष कर सर्वोदय-पथ मे श्री जगन्नाथन् का किसानो के साथ निकटतम सम्पर्क कराया। ग्रामदान-तूफान की चुनौती ने तमिलनाडु के सर्वोदय कार्यकर्ताओ को एक बार पुन सक्रिय कर दिया और उन्होंने श्री जगन्नाथन् के नतृत्व म प्रान्तदान का सकल्प किया। तब से तमिलनाडु म सघन प्रयत्न चल रहा है और सफलता भी मिल रही है। एक के बाद दूसरे गाव का ग्रामदान घोषित हो रहा है। श्री जगन्नाथन् कठिन परीक्षा की घडियों से गुजरे है और सदव अपने को अधिक प्रतिभावान् और दृढ सिद्ध किया है।

उनके प्रयत्नो का आज यह परिणाम सामने आ रहा है कि कार्यकर्ताओं का आन्दोलन जनसामान्य का आन्दोलन बन रहा है।

उनके आत्मज भूमिकुमार एक कालेज म अध्ययन कर रहे हैं और उनकी आत्मजा सत्या एक नर्सरी स्कूल म है। [अनु —विक्रमादित्य सिंह, मूल अंग्रेजी से]

'नयी तालीम' का विशेषांक

'नयी तालीम' का अगला अंक विशेषांक होगा, जो जून तथा जुलाई के अंकों को मिलाकर संयुक्त रूप मे जुलाई मे प्रकाशित होगा। पाठको मे निवेदन है कि जून का अंक अलग से प्रकाशित नही किया जायगा।

विषय

विकासशील भारत की शैक्षिक व्यूह-रचना

इस विषय के अन्तर्गत आर्थिक विकास और शिक्षा-सम्बन्धी निम्नलिखित मुद्दो पर पाठ्य-सामग्री प्रकाशित करने का प्रयास होगा—

१. पिछड़ेपन की व्याख्या

२ आर्थिक विकास के उद्देश्य

३. आर्थिक विकास के लिए आवश्यक राजनीतिक, सामाजिक और तकनीकी पृष्ठभूमि

४. असमानता, अज्ञान, और असतोष तथा पिछड़ेपन मे इनकी भूमिका

५. राष्ट्रीय आर्थिक विकास में कृषि और ग्रामीण समाज की भूमिका

६. राष्ट्रीय आर्थिक विकास मे शिक्षित जन-शक्ति की भूमिका

७ शैक्षिक व्यूह-रचना की रूपरेखा

सम्पादक मण्डल
श्री धीरेन्द्र मजूमदार—प्रधान सम्पादक
श्री वशीधर श्रीवास्तव
श्री राममूर्ति

वर्ष : १७
अंक : १०
मूल्य : ५० पैसे

अनुक्रम

मई, '६९

निवेदन

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- 'नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा छ रुपये है और एक अंक के ५० पैसे।
- पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक-संख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- रचनाओं म व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट सर्व सेवा संघ की ओर से प्रकाशित प्रमल कुमार बसु; इण्डियन प्रेस प्रा० लि०, वाराणसी–२ मे मुद्रित।

नयी तालीम : मई '६९
पहले से डाक-व्यय दिये बिना भजने की अनुमति प्राप्त
लाइसेंस न० ४६ रजि० स० एल १७२३

गाधी-शताब्दी कैसे मनायें !

★ आर्थिक व राजनैतिक सत्ता के विकेन्द्रीकरण और ग्राम-स्वराज्य की स्थापना के लिए ग्रामदान-आन्दोलन में योग दें।

★ देश को स्वावलम्बी बनाने और सबको रोजगार देने के लिए खादी, ग्राम और कुटीर उद्योगो को प्रोत्साहन दें।

★ सभी सम्प्रदायो, वर्गो भाषावार समूहो में सौहार्द-स्थापना तथा राष्ट्रीय एकता व सुदृढता के लिए शांति-सेना को सशक्त करें।

★ शिविर, विचार-गोष्ठी, पदयात्रा वगैरह में भाग लेकर गाधीजी के सदेश का चिंतन-मनन और प्रसार करें, उसे जीवन में उतारें।

गाधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति (राष्ट्रीय गाधी जन्म शताब्दी समिति) टुंकलिया भवन कुन्दीगरों का भैरू जयपुर ३ (राजस्थान) द्वारा प्रसारित

आवरण मुद्रक खण्डेलवाल प्रेस, वाराणसी

विशेषांक
जून-जुलाई, १९६९

गाधीजी का इस जगह पश्चिम की विचार-धारा से बुनियादी मतभेद था। उनके लिए साध्य थे जीवन के मूल्य सत्य और अहिंसा। शिक्षण उन मूल्यो को जीवन म चरितार्थ करने के लिए साधन था, और, विकास शिक्षण की अनिवार्य निष्पत्ति था (प्रोडक्शन वाई प्रोडक्ट आव एजूकेशन)। नयी तालीम उनकी इसी कल्पना पर आधारित है। गाधीजी के लिए जीवन एक सम्पूर्ण डिजाइन था, और मनुष्य उसका चेतन निर्माता और कलाकार। वह मनुष्य के मुकाबिले अन्य किसी चीज को प्राथमिकता नहीं दे सकते थे। गाधीजी मानते थे कि मूल्यो को सामने रखकर भारत योजनापूर्वक अपने विकास, शिक्षण, सगठन और तकनीक की रूप रेखा स्थिर कर सकता है।

तीन

आज सन् १९६९ है। स्वराज हुए २२ साल बीत गये। इन वर्षों में बहुत कुछ हुआ, और नहीं भी हुआ। जो कुछ हुआ वह कम नहीं हुआ। लेकिन बहुत बड़ी एक कमी यह रह गयी कि जो हमने किया उससे हमारे हाथ ऐसी कुंजी नहीं आयी जिससे हम आगे के लिए रास्ता निकाल सकें।

क्या कारण है कि आज हम अपनी जनता को इतनी निराश और असहाय पाते हैं? यह नहीं दिखाई देता कि देश २२ साल का जवान है। इसके विपरीत दिखाई यह देता है कि देश समय से पहले बूढ़ा हो चला है जो अपनी विफलताओं पर अपना सिर धुन रहा है। जनता और सरकार, जैसे दोनों की दो दुनिया हो गयी है। अविश्वास और अनास्था का राज है। समाज जैसे है ही नहीं। अगर है तो उसने अपनी समस्याओं को पहचानने की वृत्ति भी खो दी है हल करने की शक्ति की तो बात ही क्या? सरकार के पास पैसा है। वह साधन जुटा सकती है लेकिन कोई भी सरकार वह शक्ति कहाँ से लायेगी जो कठिनाई को अवसर बना देती है जो हर पराजय में पुरुषार्थ और मृत्यु में जीवन को प्रतिष्ठित कर देती है?

देश के हमारे युवक और युवतियाँ हमसे नाराज हैं—बेहद नाराज हैं। इतने नाराज हैं कि आत्मघात तक उतारू हैं। उनकी शिकायत है कि हम बड़ों ने उनके भविष्य के साथ खिलवाड़ किया है। वे पूछते हैं 'यह कौनसी व्यवस्था है जिसमें हमारे साथ इन्साफ नहीं है, हमारे लिए इज्जत नहीं है, हमारे ईमान के लिए अवसर नहीं है?' इसी तरह के सवाल छोटे किसान, दस्तकार, मजदूर, भूमिहीन, हरिजन, आदिवासी सब पूछ रहे हैं। वोट मिलने के बाद अब स्त्रियाँ भी पूछने लगी हैं।

चार

आज जो लाखों विद्यार्थी शिक्षा पा रहे हैं वे परीक्षा पास करने के बाद क्या करें? जो बेकार बैठे हैं वे किस काम में लगें? समाज में जो विषमता के शिकार हैं वे कहाँ जायँ?

इन प्रश्नों का उत्तर किसके पास है? सरकार के पास वादे हैं, उत्तर नहीं। जो बड़े हैं उनके पास उपदेश हैं, समाधान नहीं। वादे और उपदेश से किसका पेट भरेगा? उत्तर न पाकर गुस्सा और अधिक बढ़ता है और तब मनुष्य धीरज छोड़ कर बदला लेने पर उतारू हो जाता है। आज देश में वही हो रहा है। देश की जनता देश से बदला ले रही है।

वर्ष : १७
अक : ११-१२

शिक्षण और विकास : समस्या क्या है ?

रामभूर्ति

एक

• समस्या यह है कि भारत को शिक्षण भी चाहिए और विकास भी। ये दोनो चीजें हर देश को चाहिए। जहाँ तक पश्चिम के देशो का सम्बन्ध है, उन्होने इस समस्या को पिछली दो शताब्दियो म अपने ढंग से हल किया है। नयी टेकनालाजी, उद्योगीकरण और व्यापार को केन्द्र म रखकर उन्होने अपनी खेती, उद्योग, बाजार, सैनिक-संगठन, राजनैतिक किया, शिक्षण, लोककल्याण आदि सबको उसके इर्द गिर्द विकसित किया है। उन्होंने एक पूरी नयी सभ्यता ही बना डाली है। उनकी इस रचना मे विकास साध्य है और शिक्षण साधन। लेकिन पश्चिम मे जो ऐतिहासिक परिस्थिति थी वह भारत मे नहीं है। परिस्थिति से विकास की दिशा स्थिर होती है।

गाधीजी का इस जगह पश्चिम की विचार धारा से बुनियादी मतभेद था। उनके लिए साध्य थे जीवन के मूल्य सत्य और अहिंसा। शिक्षण उन मूल्यों को जीवन म चरितार्थ करने के लिए साधन था, और, विकास शिक्षण की अनिवार्य निष्पत्ति था (प्रोडक्शन बाई प्रोडक्ट आव एजूकेशन)। नयी तालीम उनकी इसी कल्पना पर आधारित है। गाधीजी के लिए जीवन एक सम्पूर्ण डिजाइन था, और मनुष्य उसका चेतन निर्माता और कलाकार। वह मनुष्य के मुकाबिले अन्य किसी चीज को प्राथमिकता नही दे सकते थ। गाधीजी मानते थे कि मूल्यो को सामने रखकर भारत योजनापूर्वक अपने विकास, शिक्षण, सगठन और तकनीक की रूप रेखा स्थिर कर सकता है।

दो

अगर हम अपने देश के सदभ म शिक्षण और विकास के प्रश्न पर सन् १६४७ मे विचार करने बैठते तो कुछ दूसरी ही बातें सामने आतीं। झण्डे का बदलना, जमींदारी का टूटना, प्रशासन और शिक्षण का राष्ट्रीय आकाक्षाओ की पूर्ति का माध्यम बनना ये तीनो काम साथ-साथ होते। लेकिन यह सब नही हुआ। झण्डा बदला, और जमीदारी टूटी लेकिन प्रशासन नहीं बदला, और शिक्षण नही बदला। अंग्रेजी जमाने मे प्रशासन और शिक्षण विदेशी हितो के साधन थे, और स्वतत्रता होने पर भी वे विदेशी परम्परा का ही निर्वाह करने के लिए ज्यो-के त्यो छोड दिये गये। सिर्फ इतनी बात नयी हुई कि ऊँची कुर्सियो पर हमारे नेता मिनिस्टर बन कर बैठ गये और सरकारी अधिकारी जहाँ थे वहा रहने दिये गये।

विकास के लिए भी हमने इतना ही सोचा कि देश अपना है और हम उसके मालिक हैं इसलिए हमे अपने देश का विकास करना है। लेकिन कैसे करना है, इसे सोचने की हमने जरूरत ही नही समझी। हमारे नेताओ ने पहले से मान रखा था कि विकास का जो नमूना पश्चिम ने अपने लिए तैयार कर रखा है उस पर चलना और देश को उस पर चलाना स्वतंत्र सरकार का काम है। स्वतंत्रता की लडाई के जमाने म गाधीजी तथा अनेक कार्यकर्ताओ ने राष्ट्रीय जीवन के जो मूल्य विकसित किये थे तथा ग्राम-और गरीबी प्रधान भारत के विकास के लिए जो कार्यक्रम स्थिर किये थे वे ताक पर रख दिये गये। कहा गया कि पिछडे भारत को दौडकर दुनिया के दूसरे देशो के साथ होना है। वक्त कहाँ कि हम मुडकर पीछे देखें? नतीजा यह हुआ कि यत्र पूजी सविधान के साथ-साथ हमने विकास की योजना भी इम्पोर्ट कर ली। बडे बडे निर्माण होने लगे। कम्यूनिटी डेवलपमेण्ट चालू हो गया। सरकार देश के विकास म जुट गयी। कृतज्ञ जनता स्वराज के सुखो की प्रतीक्षा करने लगी।

तीन

आज सन् १९६९ है। स्वराज हुए २२ साल बीत गये। इन वर्षों मे बहुत कुछ हुआ, और नहीं भी हुआ। जो कुछ हुआ वह कम नही हुआ। लेकिन बहुत बडी एक कमी यह रह गयी कि जो हमने किया उससे हमारे हाथ ऐसी कुजी नहीं आयी जिससे हम आगे के लिए रास्ता निकाल सकें।

क्या कारण है कि आज हम अपनी जनता को इतनी निराश और असहाय पाते हैं? यह नही दिखाई देता कि देश २२ साल का जवान है। इसके विपरीत दिखाई यह देता है कि देश समय से पहले बूढ़ा हो चला है, जो अपनी विफलताओं पर अपना सिर धुन रहा है। जनता और सरकार, जैसे दोनो की दो दुनिया हो गयी है। अविश्वास और अनास्था का राज है। समाज जैसे है ही नही। अगर है तो उसने अपनी समस्याओ को पहचानने की वृत्ति भी खो दी है, हल करने की शक्ति की तो बात ही क्या? सरकार के पास पैसा है। वह साधन जुटा सकती है, लेकिन कोई भी सरकार वह शक्ति कहाँ से लायेगी जो कठिनाई को अवसर बना देती है, जो हर पराजय मे पुरुषार्थ और मृत्यु मे जीवन को प्रतिष्ठित कर लेती है?

देश के हमारे युवक और युवतियाँ हमसे नाराज हैं—बेहद नाराज हैं। इतने नाराज हैं कि आत्मघात तक उतारू हैं। उनकी शिकायत है कि हम बडों ने उनके भविष्य के साथ खेलवाड किया है। वे पूछते हैं "यह कौनसी व्यवस्था है जिसमे हमारे साथ इन्साफ नही है, हमारे लिए इज्जत नही है, हमारे ईमान के लिए अवसर नहीं है?" इसी तरह के सवाल छोटे किसान, दस्तकार, मजदूर, भूमिहीन, हरिजन, आदिवासी, सब पूछ रहे हैं। वोट मिलने के बाद अब स्त्रियाँ भी पूछने लगी हैं।

चार

आज जो लाखो विद्यार्थी शिक्षा पा रहे हैं वे परीक्षा पास करने के बाद क्या करें? जो बेकार बैठे है वे किस काम मे लगें? समाज मे जो विषमता के शिकार हैं वे कहाँ जायें?

इन प्रश्नो का उत्तर किसके पास है? सरकार के पास वादे हैं, उत्तर नही। जो बडे हैं उनके पास उपदेश हैं, समाधान नही। वादे और उपदेश से किसका पेट भरेगा? उत्तर न पाकर गुस्सा और अधिक बढ़ता है, और तब मनुष्य धीरज छोड़कर बदला लेने पर उतारू हो जाता है। आज देश मे वही हो रहा है। देश की जनता देश से बदला ले रही है।

पांच

बाईस वर्षों बाद यह सोचना भूल है कि शिक्षण अलग चलेगा, विकास अलग होगा, राजनीति अपने ढंग से बढ़ेगी, और बाजार अपनी राह जायगा। अगर हमारा अबतक का अनुभव यह बताता हो कि हमने सही दिशा छोड़ दी है, तो साहसपूर्वक अब भी हम सही दिशा पकड लेनी चाहिए, और उस पर दृढ़ता के साथ चलना चाहिए। केवल पैर नही चलेगा, पूरा शरीर चलेगा। सारे अंग साथ चलेंगे। इसीका नाम है समग्र क्रान्ति। इस समग्र क्रान्ति का दर्शन गाधीजी के रचनात्मक कार्य मे था। उस योजना मे देश की प्रतिभा और परिस्थिति का आधार था। मनुष्य उसका केन्द्र था। इसलिए सफलता निश्चित थी।

एक अर्थशास्त्री ने विकास के प्रसग मे एक बार गाधीजी से कहा था "भारत पूंजी मे गरीब देश है (इण्डिया इज ए कैपिटल पुअर कंट्री)।" गाधीजी ने उत्तर दिया था 'नही, भारत श्रम मे धनी देश है (इण्डिया इज ए लेबर रिच कंट्री)।" इन दो वाक्यो से स्पष्ट है कि हम किधर जाना चाहिए था और हम किधर चले गये।

आज हम ऐसी जगह पहुंच गये हैं जहां एक ओर देश के करोडो अशिक्षित श्रमिक देश के विकास से बहिष्कृत हैं, और दूसरी ओर लाखो शिक्षित युवक-युवतियां विकास के लिए बेकार हैं क्योंकि इस पढाई ने उन्हे न सोचने लायक छोडा है, न हाथ से कुछ करने लायक। लेकिन न हम पढाना बन्द कर पा रहे हैं, और न विकास के नये नये नारे लगाना। यह एक अजीब सकट है।

छ

बात यह है कि राष्ट्रीय जीवन मे शिक्षण और विकास का अनुबन्ध नहीं है। न शिक्षण को विकास से प्रोत्साहन मिल रहा है, और न विकास को शिक्षण से पोषण। प्रश्न यह है कि यह अनुबन्ध कैसे कायम किया जाय, और कौन करे? क्या यह काम सरकार के कानून से, और सरकार के आदमियो से, हो सकेगा? स्वय सरकार भी नही मानेगी कि होगा। इस काम के लिए सचमुच इस ५२ करोड के लोकतंत्र के 'लोक' की शक्ति चाहिए। लेकिन वह 'लोक' अभी सोया हुआ है। जब वह जगेगा तो अपनी समस्याओ से जूझने का रास्ता निकाल लेगा। लेकिन तबतक? क्या वे भी सोये रहेंगे जो जगे हुए अपनी आंखो के सामने सब कुछ देख रहे हैं? कुछ शिक्षको, कुछ विद्यार्थियो, कुछ विद्यालयो को तो आगे आना ही चाहिए। जो आगे बढना चाहे उन्हें आगे बढाने मे सरकार पूरी मदद करे, इतनी अपेक्षा तो उससे है ही।

सात

आगे बढ़ना एक बात है, और सही दिशा मे आगे बढ़ना बिल्कुल दूसरी। विकास 'उतना ही नही है जितना हम जानते हैं, और न तो शिक्षण उतना ही है जितना हम चलाते हैं। विद्यार्थी को छोड़कर विकास नही, और नागरिक को छोड़कर शिक्षण नही, शिक्षण और विकास के इस अनुबंध को छोड़कर अब गुजर नहीं।

प्रश्न है कि इस अनुबन्ध को अमल म कैसे लाया जाय? क्या कोई ऐसी प्रक्रिया नही निकाली जा सकती जिसमे हर गाँव, हर कारखाना, हर कार्यालय, लाक-शिक्षण (पीपुल्स फंक्शन एजूकेशन) का 'कम्पस' भी बन जाय? खेती मे बीज आदि के सुधारो के कारण ग्रामीण जनता 'विज्ञान' को चाहने लगी है। इस चाह का लाभ उठाकर उसे बहुत-सा दूसरा ज्ञान भी दिया जा सकता है, और मालिक-मजदूर के नय सम्बन्धो की भूमिका म समग्र विकास की नयी दिशाएँ सुझायी जा सकती हैं। इसी तरह हर विद्यालय को विकास और समाज की सेवा की इकाई बनान की बात भी सोची जा सकती है, सोची जानी चाहिए। विद्यालय को जिम्मेदारी लेनी चाहिए कुछ गाँवो की, कुछ महल्लो की। सेवा के कार्यों की कमी नही है। चाहिए सेवा की वृत्ति और श्रम। जो विद्यालय खुद विकास का जीवन नही अपनायेगा वह समाज के विकास की शक्ति नहीं पैदा कर सकेगा।

समस्या है समस्या को समझने की, और जब समझ मे आ जाय तो समाधान को लागू करने की। यह प्रयत्न समस्या को समझने का है, और समाधान की दिशाएँ तय करने का। अभी यह भी नही हो पाया है। •

विश्लेषण

- सामान्य आदमी क्या करे ?
- पिछड़ापन : विकास और शिक्षण की समस्या
- नारी-जीवन की वर्तमान भूमिका और अपेक्षित तालीम की शिक्षा
- यह असन्तुलित विकलांगी विकास या पिछड़ापन ?
- पिछड़ेपन की पृष्ठभूमि में असमानता, अज्ञान और असन्तोष
- राजनीति, शिक्षण और विकास
- राष्ट्रीय विकास में कृषि और ग्रामीण समाज की भूमिका

सामान्य आदमी क्या करे ?

दादा धर्माधिकारी

आज हम सबके सामने यह सवाल है कि सामान्य आदमी 'मैन आन दी स्ट्रीट' क्यों है ? इसे 'मैन आन दी स्ट्रीट' क्यों कहा गया ? आखिर रास्ते पर वह आदमी होना चाहिए, जिसे कहीं जाना हो। रास्ता किसी-न-किसी मकसद के लिए, मंजिल के लिए होता है, रास्ता अपने-आप में कोई मुकाम नहीं है। तो फिर यह रास्ते पर जो आदमी है वह कौनसा आदमी है ? 'मैन आन दी स्ट्रीट' वह है, जिसको कोई ठौर-ठिकाना नहीं है, जो रास्ते पर है, लेकिन जिसे कहीं जाना नहीं है। 'मैन आन दी स्ट्रीट' का मुँह किस तरफ है ? जो रास्ते पर होगा वह किसी-न-किसी तरफ मुखातिब होगा, लेकिन यह ऐसा है कि जिसका किसी तरफ मुंह नहीं है, सिर्फ रास्ते पर है। रास्ते पर इसलिए है कि उसके लिए और कहीं जगह नहीं है। क्या इसके लिए हमारी सोसाइटी में, हमारे समाज में कोई जगह है, यह सवाल है। हम यह चाहते हैं कि जो 'मैन आन दी स्ट्रीट' है उसकी समाज में इज्जत हो, समाज में उसकी कद्र हो, उसका रुतबा हो। यह कैसे हो सकता है, यह सवाल हमारे सामने है। आज का जो समाज है इसकी बुनियादों को जबतक नहीं बदलते तबतक यह नहीं हो सकता।

आज जो रास्ते पर है उसके लिए कोई जगह है ही नहीं। उसको वोट देने का हक है। दिल्ली के तख्त पर उसकी हुकूमत है। वह अगर चाहेगा तो इंदिराजी कुर्सी पर बैठेंगी और नहीं चाहेगा तो नहीं बैठ सकेंगी। यह होते हुए भी वह रास्ते पर क्यों है, उसका कोई ठौर क्यों नहीं है ? यह सवाल आज दुनिया भर के सब देशों के सामने है और दुनिया के नवजवानों को यह प्रश्न परेशान कर रहा है।

हमारे देश में बहुत बड़े साधु हुए, ऋषि हुए, मुनि हुए, पैगम्बर हुए, भगवान् के अवतार हुए, लेकिन इस 'मैन आन दी स्ट्रीट' का मसला जहाँ पर पहले था आज भी वहीं है। इसका मतलब यह है कि इस मसले को हल करने के लिए उस 'मैन आन दी स्ट्रीट' को ही पहल करनी होगी। उसीके पराक्रम से अगर यह जमाना बदलेगा तो उसकी हालत सुधरनेवाली है; नहीं तो, अब उसके लिए कोई जगह नहीं है। यह जो 'मैन आन दी स्ट्रीट' कहलाता है, यह जो 'कामन मैन' है उसीकी हुकूमत का नाम 'लोकतंत्र' है। लोकतंत्र में उस साधारण मनुष्य की हुकूमत है, जिसको आज आप 'कामन मैन' कहते हैं, 'मैन आन दी स्ट्रीट' कहते हैं। मैं उसे सामान्य मनुष्य नहीं कहता हूँ। इसकी वजह आप लोगों के सामने थोड़े में कहता हूँ।

'स्ट्रीट' पर आज दो तरह के आदमी हैं। एक वे हैं, जो रास्ते पर और चौराहों पर अपनी ताकत से, अपनी लाठी से, दहशत से हुकूमत कायम करना चाहते हैं। इनको 'स्ट्रीट कार्नर सोसाइटी' कहते हैं। दूसरे वे हैं, जो साधनहीन हैं, जिनके पास जीविका का कोई साधन नहीं है। इनका सवाल आज दुनिया भर के सब लोगों के सामने है। इसके दो तरह के जवाब सोचे गये। एक जवाब यूरोप और अमेरिका ने सोचा और दूसरा जवाब रूस और चीन ने सोचा। ये दोनों इसके जवाब हैं, जो आज दुनिया में हमारे सामने मौजूद हैं। अमेरिका ने क्या किया? यह जो साधारण मानव है, इसको वोट तो दे दिया, आजादी तो दी, लेकिन उस आजादी के साथ इज्जत नहीं दी। नौबत यह है कि जिसके पास डंडा है वह वोट छीन ले और जिसके पास पैसा है वह वोट खरीद ले। समाज में इज्जत की जगह पैसे और डंडे ने ले ली। इस डंडे का नाम है 'स्ट्रीट कार्नर सोसाइटी'। अबतक 'स्ट्रीट कार्नर सोसाइटी' में सिर्फ गाँव के गुंडे होते थे, लेकिन अब उसमें पढ़े-लिखे लोग हैं, विद्वान हैं, प्रोफेसर हैं, बाबू हैं, वकील हैं, डाक्टर हैं, ये सब लोग धीरे-धीरे 'स्ट्रीट कार्नर सोसाइटी' में शामिल हो रहे हैं।

साधारण मनुष्य आज समाज के कल और पुर्जे बने हैं, जिसे 'टेक्नालाजिकल पैराडाइज' कहते हैं। 'टेक्नालाजिकल पैराडाइज' समाज वह है, जिसमें कल-कारखाने बहुत-से हो गये हों, यंत्र बहुत-से हो गये हों। यह बहुत बड़ा सवाल है कि ये सारे यंत्र आखिर किसके लिए हैं? जब पहले-पहल यंत्र दाखिल हुए तो कहा गया कि 'आयरन हार्स' आ गया। लोहे का घोड़ा मनुष्य को कहाँ ले जा रहा है? उसको कहाँ पहुँचना था और कहाँ ले जा रहा है, यह बुनियादी सवाल है और इसका जवाब जबतक नहीं दिया जायगा, तबतक यह, जो 'मैन आन दी स्ट्रीट' है, फैसला नहीं कर सकेगा कि आखिर पहुँचना कहाँ है।

साधारण मनुष्य की व्याख्या

पहले हुकूमत ऐसे आदमी के हाथ में थी, जिसके पास पैसा था, जिसने तालीम पायी थी। धीरे-धीरे सत्ता 'डेमॉस' के हाथ में आयी, जिसे आप 'कामन मैन' कहते हैं। लेकिन यह 'डेमॉस' भीड़ के पीछे चलने लगा—ऐसी भीड़, जिसमें बहुत-से आदमी हैं।

मेरा निवेदन यह है कि जबतक भीड़ का राज रहेगा, तबतक मानव का राज नहीं होगा। भीड़ और व्यक्ति, दोनों अलग हैं। भीड़ में हजारों सिर होंगे, लेकिन दिमाग नहीं। आज हम लोगों ने यह मान लिया है कि जिस तरफ भीड़ ज्यादा हो

उस तरफ लोकतंत्र जा रहा है। लेकिन हमको सोचना यह होगा कि लोकतंत्र मे जो लोग हैं वे मानव हैं। और ऐसे मानव हैं, जिनके हाथ मे हुकूमत नही है। जिसके हाथ मे हथियार है वह सिपाही है, जिसके हाथ मे पैसा है वह साहूकार है, जिसके हाथ मे सत्ता है वह सरकार है। ये तीनो जिसके हाथ मे नही है वह है साधारण मनुष्य ! इस साधारण मनुष्य का 'रोल' क्या हो, भूमिका क्या हो, यह प्रश्न है।

अब दुनिया भर के नवजवान इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि यह जो समाज मे नाटक खेला जा रहा है, इसका नायक 'कामन मैन' होना चाहिए। अबतक नायक कौन रहा है ? कोई पैगम्बर रहा है, साधु रहा है, राजा-महाराजा रहा है, कोई वीर रहा है, लेकिन 'कामन मैन' नही रहा है। 'कामन मैन' अबतक इतिहास का विषय रहा, लेकिन इस 'कामन मैन' ने इतिहास नही बनाया। अब जरूरत इस बात की है कि समाज मे 'कामन मैन' का 'रोल' हो, यह इतिहास का विधाता बने।

पश्चिम की समस्या

विज्ञान के इस युग मे सामान्य मानव के लिए कोई 'रोल' ही नही रह गया। यूरोप मे, अमेरिका मे, 'हिप्पीज', 'बीटल्स' वगैरह हैं। ये सारे इससे तंग आ गये हैं कि वहाँ मानव के लिए कोई काम ही नही रह गया, मानव के लिए कोई 'रोल' नही रह गया। आखिर मनुष्य जीये तो किसलिए ? उसको पुरुषार्थ के लिए कोई अवसर नही है, किसी प्रकार का कोई सुयोग नही रह गया है। सभी का यंत्रीकरण हो जाने पर फिर मानव क्या करे, यह सवाल रह जाता है। पश्चिम मे फुर्सत की समस्या है। हमारे यहाँ फुर्सत का सवाल नहीं है, बेकारी का सवाल है। 'आटोमेशन' और 'साइबरनेशन' तक जहाँ 'टेक्नालॉजी' पहुँच गयी है वहाँ 'यंग मैन' के सामने दो सवाल हैं। अगर सारे काम यंत्र करते हैं तो मैं क्या करूँ ? दूसरी चीज है अति तृप्ति। मनुष्य अघा गया है। खाने-पहनने के लिए उसके पास इतना है कि अब उसे पता नही चलता है कि उसके साथ क्या करें। सामानो मे मानव खो गया। इतनी कुर्सियाँ हैं कि बैठने के लिए मनुष्य नही हैं। आप थोडी देर के लिए मानें कि घनश्यामदास के पास १०० मोटरें हो गयी। लेकिन वह तो एक ही मोटर मे एक ही सीट पर बैठेगा। आपके पास अगर १० सूट हैं, तो उनको पहनने के लिए मौके ढूँढने होंगे। कोई तो मौका ऐसा हो कि सूट पहनें। पश्चिम के मानव को यह समस्या है। उनकी एक क्रान्ति वहाँ शुरू हो गयी है। दूसरी क्रान्ति सन् १९६८ मे फ्रास के विद्यार्थियो ने की, जिसमे 'कामन मैन' शामिल है। उनका कहना है कि 'कामन मैन' को आपने खाना दे दिया, कपडा दे दिया और मकान दे दिया तो अब उसके मन मे आजादी की आकाक्षा नहीं रही। आपको अपने

समाज के लिए कुछ पैक हार्सेस चाहिए थे वह आपने बना लिये। वे खा-पीकर सुखी हो गये। मानव के नाते उनका कोई 'रोल' नहीं रहा। यह वहाँ का सवाल है।

वर्तमान परिस्थिति

हमारे यहाँ तो मनुष्य का वक्त भी खाली है और पेट भी खाली है। इसके लिए न कारखानों में जगह है, न खेती में और न दफ्तरों में। यहाँ का पढ़ा-लिखा आदमी भी इस 'कामन मैन' में शामिल हो गया है। अब चित्र क्या है? चित्र यह है कि अबतक अपने देश में और दूसरे देशों में भी जितने दंगे हुए, उन सबमें आपने सुना होगा कि कौनसे लोग ज्यादा-से-ज्यादा शामिल हैं? उसमें ज्यादातर आर्टस् स्कूल के विद्यार्थी हैं। मेडिकल, इंजीनियरिंग और टेक्निकल स्कूल के छात्र और छात्राएं कम हैं। यह क्या है? इसलिए कि ये जो आर्टस के विद्यार्थी हैं, इनको थोड़ा 'ह्यूमैनिटीज' का शिक्षण दिया जाता है और जो टेक्निकल स्कूलों में हैं उन्हें 'आयडियालाजी' का उतना शिक्षण नहीं दिया जाता है।

टेकनालाजी' में काम के लिए मनुष्य होता है, मनुष्य के लिए काम नहीं होता है। इसीलिए 'टेकनालाजी' में मनुष्य का 'रोल' नहीं रह जाता है। आपने अगर मुनाफे के लिए यन्त्रीकरण किया है, तो मुनाफे के लिए जो काम होंगे, उन कामों के लिए जितने मनुष्यों की आवश्यकता होगी, उतने मनुष्यों को आप बनायेंगे, उनको आप शिक्षण देंगे और जो उसके लिए आवश्यक नहीं होंगे वे बेकार रह जायेंगे।

वस्तुतः इस विज्ञान के युग में मानवता का मूलभूत सवाल यह है कि इसके मूल्य क्या हों। मनुष्य के लिए संयोजन होगा या 'प्लैनिंग' में ठीक बैठाने के लिए मनुष्य तैयार किया जाय? यह सवाल आज यूरोप-अमेरिका को सता रहा है। यही कारण है कि एक मनुष्य का एक वोट होते हुए भी आज वह 'मैन आन दी स्ट्रीट' है।

आज दुनिया में विज्ञान ने यह संभावना पैदा कर दी है कि कोई भूखा और नंगा न रहे। आज इतना अन्न पैदा हो सकता है कि दुनिया में किसीको भूखा रहने की जरूरत नहीं है। आज इतने कपड़े हो सकते हैं कि नंगा रहने की जरूरत नहीं है। यह होते हुए भी आज दुनिया में मनुष्य भूखा नंगा और बेकार क्यों है? इसका कारण यह है कि उत्पादन जो होता है वह वितरण के लिए नहीं होता है, वह विक्रय के लिए होता है, चीज उसको मिलेगी जो खरीद सकता है, उसको नहीं मिलेगी जो खरीद नहीं सकता। चाहे चीजें दुनिया में जितनी बढ़ जायें। आज अमेरिका में इतना अन्न है कि वे लोग खा नहीं सकते। आपने यह सुना होगा कि वे अन्न समुद्र में फेंक देते हैं लेकिन भूखों को नहीं देते। अब उसे भूखे

राष्ट्रों को क्यों देते हैं ? उनके लिए यह भी एक 'इनवेस्टमेंट' है। उनकी इस खैरात के पीछे अन्तर्राष्ट्रीय 'राजनीति' है। अमेरिका में अन्न अधिक है मनुष्य कम हैं, जमीन अधिक है। कारखाने मे ज्यादा चीजें बनती हैं तो अपने-आप इन चीजो का वितरण क्यों नही होता ? इसलिए नहीं होता कि वितरण का आधार खरीद है। जबतक वितरण का आधार खरीद रहेगी तबतक साधारण मानव का रवैया समाज मे बदलनेवाला नही है।

समाज कौन बदलेगा ?

जिस समाज म आप और हम आज रहते है उस समाज म बनानेवाले की कोई इज्जत नही है बरतनेवाले की इज्जत है। आपसे कोई पूछे कि जूता कितने म खरीदा तो आपने बताया कि चालीस रुपये म। इसमे आपका सम्मान बढेगा लेकिन उस जूते को बनानेवाले की कोई इज्जत नहीं। जिसके हाथ म तलवार है उसकी इज्जत होगी, उसको बनानेवाले की नही। जो अच्छा-से-अच्छा कपडा पहनता है उसकी इज्जत होगी लेकिन कपडा बनानेवाले की नहीं। इसका कारण यह है कि बरतनेवाला खरीद सकता है। इज्जत खरीदनेवाले की है। इस निजाम को बदलना है। लेकिन कौन बदलेगा यह सवाल है। इसका जवाब मार्क्स ने दिया कि वह बदलेगा, जिसको बदलने की जरूरत है। जो समाज म सुख से जी रहा है उसको समाज बदलने की क्या जरूरत है ? वह तो चाहेगा कि जसा समाज है वैसा बना रहे। भगवान से रोज प्रार्थना करेगा कि हे ईश्वर, जैसी दुनिया आज है वसी रहे। जिस दुनिया म रोज नये मकान बना सकते हैं और किराये पर दे सकते हैं जिस दुनिया मे नयी चीजें खरीदी जा सकती हैं और उन चीजो को महँगे दामो म बेच सकते हैं ऐसी दुनिया को बनाये रख। आज होता यह है कि जो मजबूरी म है वे खरीदे जा सकते हैं। पूजीवादी समाज म दुखी मानव खरीदा जा सकता है और इसीका नाम भ्रष्टाचार है। जिस समाज म चीजें खरीदनेवाले की ही गिनती है वह समाज भ्रष्ट है।

एक बार मैंने विनोबा से कहा कि चोरबाजारी बढ गयी है काला बाजार जोरों पर है। तो उन्होंने कहा कि बाजार सफेद कब रहा ? बाजार का तो यह नियम है कि चीज उसको मिलेगी जो ज्यादा-से-ज्यादा कीमत दे सकता है उसको नहीं जिसको ज्यादा-से-ज्यादा जरूरत है। बाजार मे प्रतिद्वन्द्विता होती है। हमारा समाज बाजार पर खडा है। हमारे मंदिरो म मस्जिदो म भी बाजार है। जिस समाज मे हर चीज खरीदी जा सकती है ऐसे समाज की बुनियादो को बदलना होगा। और बदलने की जिसको जरूरत है वह बदलेगा। लेकिन जिसको जरूरत है वह खरीदा जा सकता है। यह अनुभव हुआ अमेरिका का और फ्रास तथा जर्मनी का। इसलिए

आज यहाँ जो समाज बदलने की कोशिश हो रही है, उसम उन लोगो का यह कहना है कि उसम श्रमिक और बुद्धिमान, दोनो हों। बुद्धिमान वह है जिसकी बुद्धि खरीदी न जा सके। जिसकी बुद्धि खरीदी जा सके वह बुद्धिमान नहीं, बुद्धिजीवी है। आज एसे बुद्धिमानो की आवश्यकता है, जो अपनी बुद्धि बेचने के लिए तैयार न हो, जिनको तलवार से डराया न जा सके साहूकार अपने पैसो से खरीद न सके और हाकिम अपने हुक्म से तैनात न कर सके। ऐसे जो लोग होंगे उनके भरोसे ही समाज बदलने की शक्ति होगी।

आपने देखा कि मानव की शान्ति के लिए विनोबा आगे आया, कोई मजदूर नही आया। लेकिन विनोबा को आगे क्यो आना पडा ? मजदूरो के काम के घंटे कम हो जाते हैं वेतन बढता है सब सुविधाएँ हो जाती हैं तो वह सुखी हो जाता है। तब वह शान्तिकारी नही रहता। उसको समाज के बदलने की जरूरत नही होती। समाज बदलने की जरूरत उसको होती है जिस मनुष्य की बुद्धि म स्वतन्त्रता की आकाक्षा होती है, जिसको इसान की शान की फिक्र होती है।

भूख का जवाब अन्न कारखाना नहीं

आज हमारे देश म सबसे अहम् मसला भूख का है। इस भूख का जवाब है अन्न। भूख का जवाब कारखाना नही है। दुर्गापुर म, भिलाई म, अहमदाबाद मे कारखाने हैं लेकिन इन कारखानो से भूख का मसला हल नही होता। कारखानो स जो चीजें पैदा होती हैं वे भूख का जवाब नही होतीं। भूख का जवाब है जमीन। इसलिए इस देश मे अगर समाज की बुनियाद को बदलना हो तो जहाँ भूख का जवाब है वहाँ से शुरुआत करनी होगी। यह भी कहने की जरूरत नही है कि खेती मे पैदा होनेवाली हर चीज भूख का जवाब नही है। जैसे सौंफ, मिर्च तम्बाकू आदि चीजें भूख का जवाब नहीं हैं।

आपमे से हर कोई कहेगा कि अन्न सस्ता होना चाहिए हर चीज सस्ती मिलनी चाहिए। तो किसान पूछेगा कि हमारा क्या होगा ? इस सवाल के दो ही जवाब हो सकते हैं। एक तो, अन्न सारा यत्रो से पैदा हो, मनुष्यो की जरूरत ही न रहे। मैं इसके लिए भी तैयार हूँ। जो लोग इसमे एतराज करेंगे वे सही होंगे। लेकिन मेरी एक शत होगी। अगर इस देश मे यत्रो से अन्न तैयार हो जाता है तो ठीक है लेकिन शत यह है कि अन्न सबको मिले, जिसको भूख है, चाहे वह खरीद सके अथवा नही। इतना काम तो यत्र नही दे सकेगा कि सबको काम मिले। इस देश मे कोई भी बडे-से-बडे नेता से लेकर छोटे-से-छोटे नेता तक, काग्रस से लेकर कम्युनिस्ट तक, कोई आज यह नही कहता है कि यत्र से हम इस समस्या का हल कर लेंगे।

फिर दूसरा जवाब यही रह जाता है कि अन्न उपजाने की प्रेरणा के लिए ऐसा इन्तजाम हो जिसमे जमीन, औजार और मेहनत का दाम न हो। आज इसके सिवाय कोई चारा नही है। इस तरह का इन्तजाम करना होगा। इस इन्तजाम का नाम विनोबा ने 'ग्रामदान' रखा है। मतलब इतना ही है कि मेहनत हर एक को होगी, लेकिन वह मेहनत सबकी मानी जायेगी। आप इसे ग्रामीकरण कह लीजिए। जबतक यह नही होगा तबतक देश विकास नही कर सकेगा। जिस देश म १०० म से ७०–८० लोग खेती पर निभर हैं जिस देश म भूख की समस्या मुख्य समस्या है, और लोकतत्र को हम कायम रखना चाहते हैं तो समाज-परिवतन का कोई ऐसा तरीका खोजना होगा जिसमे इस साधारण मानव का 'रोल' रहे।

मैंने आपके सामने दो चीजें रखी। एक चीज कि यह 'मैन आन दी स्ट्रीट' कौन है। यह वह है जिसका कोई ठौर-ठिकाना नही है। अगर हम चाहते हैं कि समाज म इसकी कोई इज्जत हो तो सबसे पहले जरूरत है कि इसका समाज मे कोई उपयोग हो, समाज म इसका कोई 'रोल' हो। यह रोल कैसे आ सकता है? इसके लिए मैंने दो चीजें आपके सामने रखी। आपके सामने एक चीज यह रखी कि यह तब होगा जबकि बँटवारा बिक्री की बुनियाद पर नही होगा। उत्पादन उपयोग के लिए होगा इतना ही काफी नही है बटवारा जरूरत की बुनियाद पर होगा। दूसरी चीज यह रखी कि इस तरह की परिस्थिति पैदा करने के लिए कौन प्रस्तुत होगा। जिसके पास सारी चीजें मौजूद हैं, जिन्दगी की सारी चीजें प्राप्त हैं, उसको कोई जरूरत नही है कि समाज बदले। जरूरत उसको है जो बेकार है गरीब है, भूखा है लेकिन बेकार को, गरीब को, भूखे को अन्न मिल जाता है, थोडा-सा काम मिल जाता है तो फिर उसे आजादी की फिक्र नही रह जाती। इसलिए उसके साथ उनको शामिल होना होगा, जिनको आज भी ये चीजें मिलती हैं लेकिन आजादी की कीमत जो लोग जानते हैं। इन दोनो को मिलकर क्रान्ति करनी होगी, तभी उसम से साधारण मनुष्य का समाज निकलेगा।

राँची १३–६–६६

पिछड़ापन : विकास और शिक्षण की समस्या

रामसूर्ति

(१) विकास का गुण

१ प्राय यह समझा जाता है कि विकास का अर्थ आर्थिक निर्माण है। गरीब देश के लोगो के सामने हर वक्त अपनी गरीबी का सवाल तो रहता ही है इसलिए विद्वानो और विशेषज्ञो की यह बात मान्य हो जाती है कि गरीबी का मुख्य कारण यह है कि गरीब देश विकास के लिए काफी पूजी नही लगा पाता। यह सत्य है कि पूजी के बिना विकास नही हो सकता लेकिन यह मानना भी बहुत बडी भूल है कि पूजी से ही विकास हो जायेगा। पिछडेपन के कारणो की और गहराई से समझने की जरूरत है। इस प्रश्न का उत्तर ढूंढना चाहिए कि क्या कारण है कि लोग अपने ही विकास के लिए आवश्यक पूजी नही इकट्ठा कर पाते? जो पूजी उनके पास मौजूद है उसे भी क्यो नही लगा पाते?

२ अब यह महसूस किया जाने लगा है कि पैसे से बडी पूजी मनुष्य स्वय है। उसे बनाने की ओर अबतक बहुत कम ध्यान दिया गया है और जब दिया भी गया है तो डाक्टर इंजीनियर खेती-विशेषज्ञ आदि तैयार करना काफी मान लिया गया है। यह सही है कि विकास के लिए इनका होना अनिवार्य है लेकिन इनका होना ही काफी नही है। अनुभव यह बता रहा है कि एक पिछडा हुआ समाज वास्तव मे पिछडा हुआ समाज है जिसका एक पहलू है आर्थिक गरीबी। पिछडापन सम्पूर्ण है हर क्षेत्र म है। विकास को रोकनेवाला सबसे बडा कारण है गरीब देश का पूरा सामाजिक ढाँचा—उसकी विषमताए उसके आपसी भेदभाव और अलगाव। इनके कारण असंख्य लोगो की प्रतिभा और उनका अभिक्रम कभी उभर ही नही पाता और यह कमी केवल डाक्टर इजीनियर बनाने से दूर नही होती। विकास के लिए हुनर (कौशल स्किल)—असख्य प्रकार के हुनर—आवश्यक हैं लेकिन उससे भी अधिक महत्त्व है लोगो की दृष्टि (आउटलुक) बदलने का। यह लोक-शिक्षण का काम है।

इस दृष्टि से प्रश्न उठता है कि क्या हमे गरीबी की अवधारणा मे दिमाग की गरीबी भी नही जोडनी चाहिए और धन म सजनात्मक वृत्ति को भी नही गिनना चाहिए जिसके बिना विकास सभव नही है? एच० जी० वेल्स का कहना कितना ठीक था कि सभ्यता शिक्षण और प्रलय के बीच दौड है (सिविलिजेशन इज ए रेस बिटवीन एजूकेशन एण्ड कटेसट्राफी)।

३. विकास धीरे-धीरे और टुकड़ों में नहीं होता। धीरे-धीरे की सलाह पराजय की सलाह है और खतरनाक सलाह है। यह एक निर्मम सत्य है कि गरीबी और पिछड़ापन एक दुष्चक्र है। गरीबी स्वयं गरीबी का कारण है। समस्या है कि यह दुष्चक्र कैसे टूटे, कहाँ टूटे? हमारी आँखें इस बात से खुलनी चाहिए कि इतनी अधिक अंतर्राष्ट्रीय सहायता मिलने पर भी गरीब देशों में कितने कम लोगों का और कितने कम क्षेत्रों का विकास हुआ है। यह स्थिति धीरे-धीरे चलने से दूर नहीं होनेवाली है। इसके लिए एक व्यापक, समग्र, तेज कार्यक्रम (क्रैश प्रोग्राम) चाहिए। इसका अर्थ यह है कि इतने अधिक लोग शिक्षण, ट्रेनिंग, प्रोत्साहन, सहायता, संगठन के वृत्त के भीतर जल्द-से-जल्द आ जायें कि अर्थनीति को प्रभावित कर सकें और समाज को प्रयोजन और नयी दिशा दे सकें।

कोई समाज एक सीमा के बाहर पूंजी और विशेषज्ञ नहीं हजम कर सकता। इसलिए पूंजी और विशेषज्ञों के लिए चिन्ता के साथ-साथ यह चिन्ता भी होनी चाहिए कि समाज की पचाने की शक्ति भी (ऐब्जार्बिंग कैपेसिटी) बढ़ती चले।

४ विकास-योजनाओं को आँकने की कसौटी सिर्फ यही नहीं है कि भूख कितनी कम हुई, या बीमारी कितनी घटी। भूख मिटाना और बीमारी कम करना जरूरी तो है ही, किन्तु भूख और बीमारी घटाने का काम इस प्रकार किया जाना चाहिए कि साथ-साथ एक पुष्ट, न्यायपूर्ण और उदार समाज का निर्माण होता चले। पिछड़े समाजों का विश्लेषण करने पर पता चलता है कि इन गुणों का अभाव पिछड़ेपन का बहुत बड़ा कारण होता है।

५ समग्र दृष्टि से देखने पर *विकास की निम्नलिखित मुख्य आवश्यकताएँ* सामने आती हैं

- पूँजी।
- टेक्निकल ज्ञान और अभ्यास।
- साक्षर जनता जिसमें अच्छी तरह शिक्षित लोगों का एक ठोस समुदाय हो।
- काफी हद तक सामाजिक न्याय।
- सक्षम की सरकार।
- विकास की सही दृष्टि और भूमिका।

(२) सम्बन्धों का सवाल

६ गरीबी, अज्ञान और बीमारी गरीबी के कारण भी हैं, और परिणाम भी। वास्तव में उन सबका सहअस्तित्व है। इनके होने से मनुष्य अपनी पूरी ऊँचाई तक नहीं पहुँच पाता, और न तो अपने समाज के लिए ही जितना करना

चाहता है कर पाता है। कम लोग हैं जो अपनी मनुष्यता को कायम रखते हुए ज्यादा दिन तक कष्ट झेल सकें। जरूर कष्ट मे तपकर कुछ लोग ऊँचा उठते है, लेकिन अधिकाश लोगो का कष्ट मे पतन हो जाता है, और जो थोडे साहसी होते भी हैं उनकी सख्या घटते-घटते बहुत थोडी रह जाती है। इसका अनुभव उन लोगो ने अपने जीवन म किया होगा जो लम्बे कष्ट या लम्बी बीमारी मे गुजरे होंगे, और जिन्होंने अपने को समझने की कोशिश की होगी। हमे यह मानकर चलना चाहिए कि कष्ट-सहन चरित्र निर्माण के लिए अच्छा नही है। यही बात अधिकार, प्रशसा, वैभव के लिए भी कही जा सकती है। लेकिन गरीबी और अमीरी मे एक अन्तर है। अमीर कभी अपनी अमीरी को छोडकर ऊपर भी उठ सकता है, लेकिन गरीब नही। एशिया, अफ्रीका, दक्षिणी अमेरिका के करोडो लोगो के सामने कोई विकल्प नही रह गया है।

७ मनुष्य अपने भीतर के मन और बाहर की परिस्थिति के मेल से चलता है। उसके विकास की बुनियाद यह है कि उसमे काम करने, और प्यार करने की साथ-साथ क्षमता होनी चाहिए। काम तो कुछ-न-कुछ सभी करते हैं, और कई लोग दिमाग मे समाज विरोधी विष भरकर भी असाधारण क्षमता के साथ काम करते हैं। होना यह चाहिए कि काम सक्षम भी हो और सर्जनात्मक भी। क्षमतापूर्ण कार्य और स्नेहपूर्ण सम्बन्ध साथ-साथ जरूरी हैं। प्रेम मे और चाहे जो है लेकिन इतना तो है ही कि हम उस प्रेम को प्रेम नही कहेंगे जिसमें इस नीयत से किसीसे प्रेम किया जाय कि उससे हमारी किसी सवेगात्मक भूख की तृप्ति होगी। प्रेम अपने मे तृप्ति है। उसका इतना ही अर्थ है कि हमसे अलग एक व्यक्ति है जिसके लिए हमारा दिल उमडता है। हमारी आज की सभ्यता मे काम और प्रेम के इस समन्वय का अभाव है। हमारी आर्थिक पद्धति ने जीवन के सहज और सुखद सम्बन्धो को तोड दिया है।

८ आज के पिछडे देश उन्नत देशो की अपेक्षा कही तेज गति से उन्नति करने की कोशिश कर रहे हैं। एक दिशा मे तेजी के साथ आगे बढ जाने की कोशिश म उन्होंने अपने सम्बन्धो के ताने-बाने को ढीला कर दिया है, कही-कही बिलकुल तोड दिया है।

९ सतोषजनक सामाजिक सम्बन्धो का विकास से बहुत गहरा सम्बन्ध है। जहाँ यह सही है कि अत्यधिक प्रतिद्वद्विता सम्बन्धो को तोड देती है, वहाँ यह भी सही है कि अपर्याप्त व्यक्तिवाद से सर्जनात्मक वृत्ति कुठित हो जाती है। इतना व्यक्तिवाद तो होना ही चाहिए जिससे मनुष्य अपने गुण और कौशल का अपने ढग से प्रयोग कर सके।

हाँ, यह आवश्यक है कि वह अपने समाज के हितों और आवश्यकताओं के प्रति जागरूक हो। विकास में दो सिद्धान्त आधारभूत हैं: एक, समता। दो, सामाजिक न्याय।

समता का इतना अर्थ तो हो ही कि सबके लिए अवसर और सामाजिक संरक्षण की समानता हो।

न्याय का आधार उचित पुरस्कार है। पुरस्कारों में इतनी विषमता न हो कि धन या सामाजिक हैसियत की अत्यधिक खाई पैदा हो जाय।

(३) शिक्षण विकास की कुंजी

१० जैसा पहले संकेत किया जा चुका है, पिछड़े समाज का सबसे बड़ा लक्षण यह है कि पिछड़ापन एक दुष्चक्र बन गया है। उदाहरण के लिए, चूंकि लोगों में अज्ञान है इसलिए वे गरीब हैं, वे गरीब हैं इसलिए बीमार हैं, वे गरीब भी हैं और बीमार भी, इसलिए उनकी उत्पादन शक्ति बहुत कम है, इसलिए वे दिनोंदिन और अधिक गरीब होते जाते हैं। अक्सर यह होता है कि गरीबी और दीनता के कारण उनकी ओर ध्यान तभी जाता है जब उनका दमन या शोषण करना होता है, अन्यथा वे समाज में उपेक्षित रहते हैं। नतीजा यह होता है कि पिछड़े देश की अधिकांश जनता राष्ट्रीय जीवन की धारा से बहिष्कृत-सी हो जाती है और उसका विकास में कोई योगदान नहीं हो पाता। इसलिए मानना पड़ेगा कि पिछड़ापन एक नाम है मनुष्य-शक्ति का सही और पूरा इस्तेमाल न होने की स्थिति का।

११ इस स्थिति का एक कारण यह है कि पिछड़े देशों में लोक-शिक्षण पर ध्यान बहुत कम दिया जाता है। जो कुछ पैसा शिक्षण पर खर्च होता है वह स्कूली शिक्षण में लगता है, प्रौढ़ों के शिक्षण पर नहीं। लेकिन शिक्षण पर विचार करते समय यह तय कर लेना चाहिए कि पिछड़े देश में शिक्षण की क्या दिशा होगी, यानी शिक्षण में ज्यादा जोर 'कन्ज्यूमर' शिक्षण पर दिया जायगा या 'इन्वेस्टमेण्ट' शिक्षण पर। तात्कालिक लाभ देनेवाले शिक्षण के साथ-साथ अगर व्यक्ति के जीवन को स्थायी और सर्वांगीण समृद्धि देनेवाला शिक्षण भी नहीं मिलेगा तो समाज नहीं बनेगा।

१२ अगर हम मनुष्य-शक्ति के सही उपयोग को सामने रखकर विकास की बात सोचें तो आज जो कुछ हो रहा है उससे कहीं भिन्न बातें सामने आयेंगी। विकास का पारम्परिक 'आर्थिक' दृष्टिकोण गलत सिद्ध हो चुका है, क्योंकि सामाजिक और मानवीय कारणों की उपेक्षा की गयी है।

विकास के लिए यह अनिवार्य है कि पिछड़ेपन के दो कट्टर शत्रुओं से पीछा छुड़ाया जाय। वे हैं: १ पारम्परिक प्रमाद (ट्रेडिशनल इनर्शिया), २ विषमता

चाहता है कर पाता है। कम लोग हैं जो अपनी मनुष्यता को कायम रखते हुए ज्यादा दिनो तक कष्ट झेल सकें। जरूर कष्ट मे तपकर कुछ लोग ऊँचा उठते हैं, लेकिन अधिकाश लोगो का कष्ट मे पतन हो जाता है और जो थोडे साहसी होते भी हैं उनकी सख्या घटते घटते बहुत थोडी रह जाती है। इसका अनुभव उन लोगो ने अपने जीवन म किया होगा जो लम्बे कष्ट या लम्बी बीमारी से गुजरे होंगे, और जिन्होंने अपने को समझने की कोशिश की होगी। हमे यह मानकर चलना चाहिए कि कष्ट-सहन चरित्र-निर्माण के लिए अच्छा नही है। यही बात अधिकार, प्रशसा, वैभव के लिए भी कही जा सकती है। लेकिन गरीबी और अमीरी म एक अन्तर है। अमीर कभी अपनी अमीरी को छोड़कर ऊपर भी उठ सकता है, लेकिन गरीब नही। एशिया अफ्रीका, दक्षिणी अमेरिका के करोडो लोगो के सामने कोई विकल्प नही रह गया है।

७ मनुष्य अपने भीतर के मन और बाहर की परिस्थिति के मेल से चलता है। उसके विकास की बुनियाद यह है कि उसमे काम करने, और प्यार करने की साथ साथ क्षमता होनी चाहिए। काम तो कुछ-न-कुछ सभी करते हैं, और कई लोग दिमाग मे समाज-विरोधी विष भरकर भी असाधारण क्षमता के साथ काम करते हैं। होना यह चाहिए कि काम सक्षम भी हो और सजनात्मक भी। क्षमतापूण काय और स्नेहपूण सम्बध साथ साथ जरूरी हैं। प्रेम मे और चाहे जो है लेकिन इतना तो है ही कि हम उस प्रेम को प्रेम नही कहेंगे जिसमे इस नीयत से किसीसे प्रेम किया जाय कि उससे हमारी किसी सवेगात्मक भूख की तृप्ति होगी। प्रेम अपने मे तृप्ति है। उसका इतना ही अर्थ है कि हमसे अलग एक व्यक्ति है जिसके लिए हमारा दिल उमडता है। हमारी आज की सभ्यता मे काम और प्रेम के इस समन्वय का अभाव है। हमारी आर्थिक पद्धति ने जीवन के सहज और सुखद सम्बधो को तोड दिया है।

८ आज के पिछडे देश उन्नत देशो की अपेक्षा कही तेज गति से उन्नति करने की कोशिश कर रहे हैं। एक दिशा मे तेजी के साथ आगे बढ जाने की कोशिश म उन्होंने अपने सम्बधो क ताने-बाने को ढीला कर दिया है, कहीं-कहीं बिलकुल तोड दिया है।

९ स्तोपजनक सामाजिक सम्बधो का विकास से बहुत गहरा सम्बन्ध है। जहाँ *यह सही है कि अत्यधिक प्रतिद्वद्विता सम्बन्धो को तोड देती है वहाँ यह भी सही है कि* अपर्याप्त व्यक्तिवाद स सजना मक वृत्ति कुठित हो जाती है। इतना व्यक्तिवाद तो होना ही चाहिए जिससे मनुष्य अपने गुण और कौशल का अपने ढग से प्रयोग कर सके।

हाँ, यह आवश्यक है कि वह अपने समाज के हितों और आवश्यकताओं के प्रति जागरूक हो। विकास में दो सिद्धान्त आधारभूत हैं एक, समता। दो, सामाजिक न्याय।

समता का इतना अर्थ तो हो ही कि सबके लिए अवसर और सामाजिक संरक्षण की समानता हो।

न्याय का आधार उचित पुरस्कार है। पुरस्कारों में इतनी विषमता न हो कि धन या सामाजिक हैसियत की अत्यधिक खाईं पैदा हो जाय।

(३) शिक्षण विकास की कुंजी

१० जैसा पहले संकेत किया जा चुका है पिछड़े समाज का सबसे बड़ा लक्षण यह है कि पिछड़ापन एक दुश्चक्र बन गया है। उदाहरण के लिए, चूँकि लोगों में अज्ञान है इसलिए वे गरीब हैं, वे गरीब हैं इसलिए बीमार हैं वे गरीब भी हैं और बीमार भी, इसलिए उनकी उत्पादन-शक्ति बहुत कम है इसलिए वे दिनोंदिन और अधिक गरीब होते जाते हैं। अक्सर यह होता है कि गरीबी और दीनता के कारण उनकी ओर ध्यान तभी जाता है जब उनका दमन या शोषण करना होता है अन्यथा वे समाज में उपेक्षित रहते हैं। नतीजा यह होता है कि पिछड़े देश की अधिकांश जनता राष्ट्रीय जीवन की धारा से बहिष्कृत-सी हो जाती है और उसके विकास में कोई योगदान नहीं हो पाता। इसलिए मानना पड़ेगा कि पिछड़ापन एक नाम है मनुष्य-शक्ति का सही और पूरा इस्तेमाल न होने की स्थिति का।

११ इस स्थिति का एक कारण यह है कि पिछड़े देशों में लोक शिक्षण पर ध्यान बहुत कम दिया जाता है। जो कुछ पैसा शिक्षण पर खर्च होता है वह स्कूली शिक्षण में लगता है, प्रौढ़ों के शिक्षण पर नहीं। लेकिन शिक्षण पर विचार करते समय यह तय कर लेना चाहिए कि पिछड़े देश में शिक्षण की क्या दिशा होगी, यानी शिक्षण में ज्यादा जोर 'कन्ज्यूमर' शिक्षण पर दिया जायगा या 'इन्वेस्टमेण्ट' शिक्षण पर। तात्कालिक लाभ देनेवाले शिक्षण के साथ-साथ अगर व्यक्ति के जीवन को स्थायी और सर्वांगीण समृद्धि देनेवाला शिक्षण भी नहीं मिलेगा तो समाज नहीं बनेगा।

१२ अगर हम मनुष्य-शक्ति के सही उपयोग को सामने रखकर विकास की बात सोचें तो आज जो कुछ हो रहा है उससे कहीं भिन्न बातें सामने आयेंगी। विकास का पारम्परिक 'आर्थिक' दृष्टिकोण गलत सिद्ध हो चुका है, क्योंकि सामाजिक और मानवीय कारणों की उपेक्षा की गयी है।

विकास के लिए यह अनिवार्य है कि पिछड़ेपन के दो कट्टर शत्रुओं से पीछा छुड़ाया जाय। वे हैं १ पारम्परिक प्रमाद (ट्रेडिशनल इनर्शिया), २ विषमता

मे विश्वास करनेवाले थोड़े-से लोगों का समाज पर निरंकुश शासन । इसके लिए यह जरूरी है कि नयी चेतना और नये मूल्यावाले अधिक-से-अधिक लोग सामने आयें और समाज म अपनी क्षमता और निष्पक्षता स अपना वजन पैदा करें । जब समाज का ढाँचा दूषित होता है तो आर्थिक पिछड़ापन तो होता ही है, साथ ही प्रशासन, खेती, श्रमिक आदि सब निकम्मे हो जाते हैं । स्वय शिक्षण-पद्धति, जो विकास योजना की रीढ है, निकम्मी हो जाती है । स्पष्ट है कि पिछड़ा देश वर्षों तक चलनेवाली स्कूली शिक्षा की प्रतीक्षा नहीं कर सकता । इसलिए जरूरी हो जाता है कि समाज म जो भी क्षमता, कौशल, शक्ति आदि आज फौरन मौजूद है उन्हें ही बढाने की कोशिश की जाय । यह मान लिया जाय कि स्कूली शिक्षण विकास के कई साधनो में से एक—एक ही—है ।

१३ इस तरह विकास-योजना के हम नीचे लिख मुख्य तत्त्व गिना सकते हैं .

१ सबस पहले लोगों मे मनोवैज्ञानिक दृष्टि स यह विश्वास पैदा करना कि विकास वाछनीय ही नही, सभव भी है। इस भावना के हृदय म घुस बिना मनुष्य का पुरुषार्थ नही जगगा । लोगो को लगना चाहिए कि वे अपन बच्चो को असमय मरने स बचा सकते है, ज्यादा खाना प्राप्त कर सकते हैं, और वे एक प्रगतिशील देश के नागरिक हैं ।

२ खेतिहर देश मे खेती पर विशेष ध्यान नितात आवश्यक है क्योंकि वहाँ की जनता का जीवन और संस्कृति खेती से अनेक रूपो में जुटी हुई है । खेती के अन्तर्गत ये बातें हैं

एक, यह जाना जाय कि लोग अच्छी खेती की ओर मुड़ें इसके लिए किन प्रेरणाओं की आवश्यकता है ।

दो, शिक्षण के विभिन्न स्तरो पर विज्ञान और खेती का ज्ञान कैसे दिया जाय ।

तीन, स्वय खेतिहरो को शिविरो आदि के द्वारा खेती का शिक्षण दिया जाय ।

चार, खेती म विशेषज्ञ होने के लिए स्कूली सर्टिफिकेट पर जोर न दिया जाय ।

पाँच, खेतिहर मजदूरो के लिए खेती से बचे समय म निर्माण के कामो की व्यवस्था की जाय । ऐस कामो की ग्रामीण क्षेत्रो मे कमी नही है ।

३ उद्योग मे तीन चीजें जरूरी हैं

एक श्रमिकों के लिए आवास, स्वास्थ्य शिक्षण की व्यवस्था।

दो मजदूर-सगठनो को प्रोत्साहित किया जाय उन्हे कट्रोल करने की कोशिश न की जाय।

तीन काम करते करत ऊँची ट्रेनिंग दी जाय ताकि श्रमिक अपनी क्षमता बढाकर उन्नति कर सकें।

४ सरकार की ओर से जोर डाला जाय कि हर कारखाने मे हर तरह के श्रमिक या व्यवस्थापक के लिए आगे के शिक्षण की व्यवस्था अनिवार्य रूप से कारखाने की ओर से की जाय।

५ इसी तरह प्रौढ शिक्षण का व्यापक पैमाने पर प्रबन्ध हो ताकि नागरिकता का स्तर ऊचा उठे। विशेष रूप मे बेकार पडी हुई स्त्री-शक्ति के सदुपयोग की बात सोची जाय।

६ माध्यमिक शिक्षण म कई सुधारो की ओर तत्काल ध्यान दिया जाय जसे

धधे के और तकनीकी कोर्स,

शिक्षक प्रशिक्षण

प्राथमिक शिक्षण के तेज विस्तार के कारण पैदा हुई समस्याओ का अध्ययन,

विश्वविद्यालयो की ओर से करेस्पाण्डेंस कोर्स की व्यवस्था ताकि अधिक-से-अधिक लोग लाभान्वित हो सकें।

७ यह ध्यान देने की बात है कि पिछडे देश को शुरू मे विश्वविद्यालय या बहुत ऊँचे स्तर के विद्यालय खोलने की प्रतिद्वन्द्विता से बचाना चाहिए। विश्व का ज्ञान लोगो के पास पहुँचाने की व्यवस्था की जाय, न कि विश्वविद्यालयो की सख्या बढायी जाय।

१४ पिछडा देश सोचेगा, योजना बनायगा, और आगे बढने की कोशिश करेगा, लेकिन उसे कुछ-न कुछ जोखिम उठानी ही पडेगी। ऐसे देश म राजनीति कभी-कभी ऐसे रास्ते पर जोर देती है जो आत्मघाती होता है। उसस बचना चाहिए। नये रास्तो की सतत तलाश, और आगे बढने का दृढ सकल्प ही विकास की कुजी है।

—एडम कुर्ले कृत 'एजुकेशनल स्ट्रेटजी फार डेवलपिग सोसाइटीज' के आधार पर।

नारी-जीवन की वर्तमान भूमिका और अपेक्षित तालीम की दिशा

क्रान्तिबाला

आज मनुष्य ने चाँद पर घर बसाने की योजना बनाकर अपने अरमानो की ऊँचाई का उद्घोष कर दिया है। अपनी बुद्धि के सहारे इहलोक ही नही, परलोक के सुखो को भी ला उतारने का दावा वह अति प्राचीन काल से करता आया है। सुख-प्राप्ति की इस दौड मे वृद्ध और जवान, शिक्षित और अशिक्षित, गरीब और अमीर, सब शामिल हैं। लेकिन सुख की इस दौड को दु ख के द्वन्द्व म बदल देनेवाली चीज है आपसी प्रतिद्वन्द्विता और छीना झपटी की चेष्टाएँ। इसी चेष्टा म हर आदमी अपने को दूसरो से अलग रख विशिष्ट बनने की अनेक योजनाएँ छोटे-बडे पैमाने पर बनाता है। पथ, पक्ष, वाद, आदि इस अलगाव के विभिन्न रूप हैं। परिणाम यह है कि सुख की चाह मे उलझाव की एक भयकर स्थिति समाज म पैदा हो गयी है।

सम्बन्ध का आधार ?

जब किसी उलझाव का सुलझाव पकड से बाहर हो उठता है तब चतुर्मुखी प्रतिभा-सम्पन्न मनीषी कोई नया सिरा ढूँढने का इशारा करते हैं। कुछ इसी तरह का सकेत गाधी ने दिया और प्रचलित कोणो से भिन्न कोण जीवन को देखने का सुझाया। यह भिन्न कोण क्या है ? 'अलगाव' की जगह 'लगाव' के बिन्दु से जीवन को देखना, विशिष्ट' की जगह 'सब' का नया जीवन-मूल्य विकसित करना।

'सब' के इस मूल्य को व्यक्ति का सस्कार बनाने की प्रक्रिया को नाम दिया 'नयी तालीम'। नयी तालीम के 'सब' मे अमीरी गरीब साथ है, शिक्षित-अशिक्षित साथ हैं वृद्ध-युवक साथ हैं सवर्ण अवर्ण साथ है तो एक जिज्ञासा होती है, कि क्या स्त्री-पुरुष भी साथ हैं ? क्यो नहीं, भाई-बहन, माँ-बेटा, बाप-बेटी, पति-पत्नी के रूप मे स्त्री पुरुष साथ ही तो हैं। यह उत्तर मिलता है। फिर भी प्रश्न रह जाता है कि क्या स्त्री स्त्री के नाते पुरुष पुरुष के नाते भी साथ है ? ऐसा साथ जिसको किसी आवरण की, परम्परा की, आवश्यकता न हो ? जिसका आधार मात्र मानवीय हो, सख्यता हो ?

आधार का प्रश्न उठते ही हमारे शास्त्र, धर्म, संस्कार, मान्यताएँ परम्पराएँ एक अटकाव ला देते हैं। एक विस्मय, एक भय पैदा कर देते हैं। बिना किसी परम्परागत मान्यतावाले सम्बन्ध म समाज के तथाकथित व्यवस्थाप्रिय लोगो

को नयकर अनीति और अराजकता का दर्शन होने लगता है। अनीति और अराजकता का यह काल्पनिक भय खडा कर सम्पूण मानव के अर्धांग को नि सत्व बनाने और दबा देने से क्या शान्ति, व्यवस्था और विकास सम्भव है ?

मुक्ति की आकाक्षा नयी जकड मे

स्वतंत्र भारत की परतंत्र नारी इस दबाव को महसूस करने लगी है। वह इससे मुक्त होना चाहती है। लेकिन मुक्ति की दिशा नही सूझती, तो मुक्त-भोग को ही वरण कर लिया है। धन, यौवन, रूप, और बुद्धि बाजार मे उसकी मुक्ति की प्रेरणा के प्रतिद्वन्द्वी बनकर खडे हैं। बाजार का यह चौराहा इसे उसके मातृत्व से ही मुक्त किये दे रहा है। उसका प्रेम, उसका समर्पण, उसकी निष्ठा, उसकी सहिष्णुता, उसके सतीत्व का लोप होता जा रहा है। मुक्त जीवन के भ्रम मे वह देह के बन्धन मे जकडती जा रही है। आज की शिक्षित और स्वतत्र महिला को अपने नख-शिख के बनाव-ठनाव का जितना ख्याल दूसरो की खातिर करना पडता है, उतना अशिक्षित महिला को नही। शिक्षण और सभ्यता का आज का पैमाना यह साज-सज्जा, अग प्रत्यग का उभार निखार और चटकाव-मटकाव हो रह गया है। एक शिविर म पीएच० डी० की छात्रा को कहते सुना, "यहाँ तो कपडे लाने बेकार हो गये।" "क्यो भई, पहनो न, कोई रोकता है क्या ?" "क्या पहनें, कोई देखनेवाला भी है ?

इस चकाचौंध के बीच एक मिनट ठहरकर सोचना पडता है कि मुक्ति की जो चाह थी, वह किसम ? दबाव से ? दबाव जो स्त्री के ऊपर पुरुष का है, दबाव जो मानवता पर पशुता का है, अगर उससे मुक्ति की चाह थी, तो इस प्रयास म उसके चित्त पर के दबाव समाप्त हुए, घटे या और बढ ही गये ? अपने जीवन के सत्व को, व्यक्तित्व के अस्तित्व को उसने स्वीकारा या नकारा ? मुक्ति के इस अभियान म उसको पुरुष का भय बढा या घटा ? ये सवाल भारत ही नही, विश्व की नारी के सामने हैं।

इस अप्रिय तथ्य से कौन इन्कार करेगा कि बावजूद सह-शिक्षण के, कन्धे-से-कन्धा मिलाकर हर क्षेत्र मे स्त्री का आगे आना सम्भव नहीं हुआ है। य भय, ये दबाव घटे नहीं, बढे हैं। आज अकेली लडकी न परिचितो मे निश्चिंत है, न अपरिचितो म, उसकी सुरक्षा न घर म है, न बाहर, उसके लिए न फर्स्ट क्लास का सफर निरापद है, न थड क्लास का, रूप और धन से भिन्न उसके व्यक्तित्व का गौरव न धर्म को मान्य है, न शिक्षण को। राज्य और व्यापार का तो आधार ही है रूप और धन।

इस परिस्थिति के दर्द से पीडित एक स्वर—"हम समझ नही पाती कि हम 'आउट आफ डेट' अच्छे हैं, या वह जो 'अपटूडेट' हैं। "बात क्या है ?" "तरक्की करते-करते पति ऊँचे पद पर पहुँच गये, उनके दिमाग ऊँचे हो गये, रहन-सहन का दर्जा ऊँचा हो गया, उनके सामने हम पिछड रहे हैं।" "जब आपको अपने पिछडेपन का एहसास होता है तो क्यो नही उसे छोड देतीं, रूढियो को क्यो पकड रखा है ?" "क्या कहती हो, रूढि ? अरे, तो क्या क्लब मे जाकर बीयर और शराब पीने लगें, मर्दों की कमर मे हाथ डालकर नाचने लगें। हमारे साहबो की यही तो जिन्दगी हमारे सामने है।" अगर इस 'अपटूडेट जिन्दगी' म रुचि लेकर और भी जानने की कोशिश करें तो मालूम होगा कि स्कूल-कालेजो की प्रधानाचार्या तक अफसरो को लडकियाँ भेंट करती हैं। यह नजराना पेश होता है विद्यालय की तरक्की के लिए, वह अफसर होता है समाज की व्यवस्था बनाये रखने के लिए, यह पत्नी होती है, इस सबको आजन्म बर्दाश्त करने और अपने पति की तरक्की के लिए ऊँचे अधिकारी का मनोरजन करते हुए अपना पातिव्रत्य ढोने के लिए। शिक्षण के इन सौदो, तरक्की के इन मूल्यो और नारी के प्रति भोग के इन दृष्टिकोणो को रखकर इन्सान अपना कौनसा विकास करना चाहता है ?

विकास या अध पतन ?

अगर यह सीढी विकास की नही है, अध पतन की है, तो इसके प्रति विद्रोह कौन करेगा ? विद्रोह की ताकत कहाँ से आयेगी ? रूप, यौवन और धन की ढेरी मे से ? भय, अविश्वास और सन्देह की नीतियो मे से ? या इस घिनौने पातिव्रत्य मे से ? यह पातिव्रत्य, जो नारी-जीवन को नि सत्त्व बनानेवाला अभिशाप सिद्ध हो रहा है, स्त्री को सिर से उतारना ही पडेगा।

जो शास्त्र, समाज, वातावरण, परिवार अपनी कन्या के लिए विवाह और पातिव्रत्य को किसी भी कीमत पर जीवन का अनिवार्य अग मानता है, वह क्यो नारी के घिनौने व्यापारो को सिर्फ स्वीकार ही नही करता है बल्कि खुद ही उसे चलाता भी है ? एक ओर देवी कहकर पूजता और दूसरी ओर नरक का दरवाजा कहकर धिक्कारता क्यो है ? आज की नारी को अपने ऐसे भक्तो प्रशसको, आराधको से चाहे वह निकट सम्बन्धी ही क्यो न हो, जूझने की हिम्मत करनी होगी। कभी-कभी नये खून म जोश आता है, लेकिन 'तजे कंत बृज बनितन', धर्म-क्षेत्र मे मोह-ग्रस्त हुए अर्जुन की स्थिति मे पड जाता है। 'जब अपने ही विरोध करते है तो सहा नहीं जाता।'

मैं उन सबके सामने एक ही सवाल रखती हूँ कि 'सहा नही जाता' कहकर तुम्हारा घुटना टेकना सहना नही तो और क्या है ? जब इस स्थिति को अपमानित

होकर सह सकती हो तो, इससे मुक्त होने का दर्द ममस्थान क्या नहीं सह सकती ? वह सहना जीते-जीते मरण है, यह सहना मरते दम तक जीना है। उस सहने में हम नरक का द्वार बने रहते हैं, इस सहने में सर्जन का दरवाजा खोलते हैं। अपनी सहन-शक्ति को हमें मानवता के ध्वस में से निकालकर नयी रचना में लगाना है, शान्ति हमारे अन्दर है ही, उसे धन, रूप और यौवन के छिछले वैभव से निकाल प्रेम, पुरुषार्थ और विश्वास की नयी राह पर लाना है।"

हो सकता है पुरुषार्थ को धन का और प्रेम को रूप का सामना करना पड़े, इन नये मूल्यों को कुचलने और दबा देने के षडयन्त्र किये जायँ, आज के सम्बन्धों की दीवालें लड़खड़ा जायँ, कुटुम्ब की चहारदीवारी टूटे और भीतर का सब बाहर आ जाय, दाम्पत्य की कड़ियाँ भी खुल जायँ ! सम्भव है लड़कियों के सामने अविवाह की स्थिति पैदा हो जाय, पर दृढ़ संकल्प होना होगा कि प्रत्येक अरुचिकर स्थिति को *स्वीकारेंगे, पर दासत्व नहीं, परवशता नहीं। अपने अस्तित्व का लोप और व्यक्तित्व* की हत्या में भागीदार नहीं बनेंगे। तय करना ही होगा कि शिक्षण के सह को कीचड़ में से निकालकर जीवन में स्थापित करेंगे, केवल आर्थिक, राजनैतिक ही नहीं वरन् सांस्कृतिक, सामाजिक और धार्मिक मूल्यों को भी सहजीवन की नींव पर ही विकसित करेंगे। आज एक व्यक्ति दूसरे के सामने है, साथ नहीं। स्त्री-पुरुष सह-जीवी नहीं, संरक्षित है। इसीलिए भ्रमित है। कन्धे-से-कन्धा मिलाने का हौसला भी हृदय को हृदय से मिलने नहीं देता। तरह-तरह के भय सामने खड़े होते हैं।

सही है कि हृदय मिलाने के पहले हृदय में प्रेम और विश्वास की पूँजी जमा करनी होगी, आज के खाली दिलों को लेकर मिलाने भी जायेंगे तो टकरायेंगे। हमारी बुद्धि समृद्ध है, बाहर से भी हम समृद्ध हैं, पर अन्तर खोखला है। इसे निर्भयता, दृढ़ता और विश्वास से ओतप्रोत करना होगा। इन्सान इन्सान के बीच के स्वामित्व की भूमिका को हटाकर सख्यत्व की प्रतिष्ठा करनी होगी। तब गान्धी को कल्पना का एक दिल मानव भारत ही नहीं, विश्व की समस्याओं का मुकाबिला कर सकेगा, तब वह चाँद पर ही नहीं, ब्रह्म में भी वास करेगा।

अपेक्षित है दिल की समृद्धि बढ़ानेवाली शिक्षा, पुरुषार्थ जगानेवाली शिक्षा, सहजीवन के लिए ही जीवन देनेवाली शिक्षा। यह शिक्षा आज की प्रतिद्वन्द्विता, परीक्षा और परतंत्रता की शिक्षा से एकदम भिन्न होगी !

शान्तिबाला—संस्थापिका संचालिका, जीवनभारती, सिकंदराराऊ, अलीगढ़।

यह असंतुलित विकलांगी विकास या पिछड़ापन ?

रामचन्द्र राही

विकास की बात होती है तो अनायास निगाहें भारत के विशाल आंगन में फैल जाती हैं और तब भारत की एक ऐसी तस्वीर सामने आ खड़ी होती है जिसमें कलकत्ता, बम्बई, मद्रास और दिल्ली जैसे महानगर अपनी विराट काया में विकास का अद्यतन पैमाना समाये हुए होते हैं, और रौंद, मुसहरी, देवरी, रीगा-जैसे गाँव भी होते हैं जो विकास के नहीं, अविकास के यानी पिछड़ेपन के निम्नतम स्तर निर्धारित करने में सहायक होते हैं। इस विराट दर्शन से थककर निगाहें शिथिल हो जाती हैं, तब भी, कुछ दृश्य अटके रह जाते हैं पलकों में। ये दृश्य एकसाथ पिछड़ेपन, विकास की आकांक्षा, दिशा तथा उसके पैमाने की ओर संकेत करते हैं।

• बिहार का एक सर्वोदय आश्रम। सुदूर जंगल में बसे एक गाँव का करीब ८-९ साल का लड़का आया है इलाज में। सूखी हड्डियों पर काली चमकदार चमड़ी, आँखों में पीलापन, शरीर के अनुपात में सिर की गोलाई कुछ अधिक बड़ी, और गुब्बारे-सा फूला हुआ पेट। साथ खाने बैठता है तो मुझ ३० साल के जवान से दूना भात खा जाता है, फिर भी आँखों में तृप्ति के नहीं, अतृप्ति के ही भाव झलकते हैं, बार-बार रसोईघर की ओर ताकता और हर अंदर से बाहर आनेवाले आदमी से कुछ पाने की आशा लिये हुए सकुचाता-सकुचाता अपनी कोई माँग पेश करता है। डाक्टर की हिदायत उसे बार-बार सुनायी जाती है कि इससे अधिक खाने पर रोग से मुक्ति नहीं मिलेगी और वह हर बार सिर नीचे गड़ाकर लगभग खाली थाली में ताकने और कभी-कभी जूठे हाथ की उँगलियाँ चाटने लगता है। परोसनेवाले को कुछ-न-कुछ थाली में डालना ही पड़ता है और तब उसके चेहरे पर आयी क्षण भर की चमक देखते ही बनती है। न जाने कितनी पीढ़ियों की घनीभूत अतृप्ति के बीच तृप्ति के कुछ लमहे इस पीढ़ी के लिए! मन कहता है, दवाखाने का डाक्टर भला इसको क्या रोग-मुक्त करेगा, उसे तो शायद मर्ज क्या है और कितना पुराना है इसका एहसास भी न हो।

• उत्तरप्रदेश के एक ऐतिहासिक नगर की मुख्य सड़क का एक नुक्कड़। एक मजदूर लगातार दरोगा को भद्दी से भद्दी गालियाँ बकता जा रहा है। बीच-बीच में घोषणा भी करता है—'साला, हम भी वोट देकर सरकार बनाता है, तुम क्या तुम्हारे बाप भी वोट के लिए हमारे सामने हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाता है। बीच-बीच

मे वह जोर-जोर से हाथ-पांव पटकता है। चार और मजदूर उसे पकडकर दबाये हुए हैं। फिर भी उसमे न जाने कहां से बला की ताकत आ गयी है! सबसे अपने को छुडाकर एक ओर भागने को होता है कि उस ऊँचे चबूतरे से नीचे औंधा गिरता नाक और मुँह से खून बहने लगता है। पूछने पर पता चलता है कि उसकी कमाई इधर एक साल से कुछ अधिक होने लगी है। लेकिन बुरी सगत मे पड गया है। दारू खूब पीता है और सडको-चौराहों पर बडे घर की बहू-बेटियो पर 'बोली कसता' है। आज पुलिसवाले पकड ले गये थे दरोगा के पास, उसने दो-तीन हण्टर जमा दिये हैं, तब से हो पागल की तरह बक्झक रहा है।

"क्या बताऊँ साहेब, दूर देहात मे इसका भरा-पूरा परिवार है। आया था तो इतना सीधा-सादा, नेक और ईमानदार, कि हम लोग सोचते थे कि यह शहरी जिन्दगी के लायक नही। लेकिन तब इसकी जेब मे इतने पैसे नही रहते थे, जितने आज रहते हैं। अब पैसा क्या कमाने लगा कि आदमी से शैतान हो गया।" मैं वहां अधिक देर ठहर नही पाता, तेजी से आगे बढ जाता हूँ।

× × ×

• मैं जिस मुहल्ले मे रहता हूँ वहाँ के कुछ रईस और रईसी की आकाक्षा पालनेवाले लोग बरसात के मौके पर मुहल्ले के बीचो-बीचवाले तिराहे पर हर साल कजरी, कव्वाली आदि कार्यक्रमो का आयोजन किया करते हैं। कार्यक्रम रात के १०-११ बजे से शुरू होता है और सुबह के ८-८३, और कभी-कभी १०-११ बजे तक चलता है। उन दिनो रात मे न तो पास-पडोस मे कोई सो पाता है, न कोई काम कर पाता है, इसलिए अक्सर जब वह आयोजन शुरू होनेवाला होता है तो मैं कही बाहर जाने का कार्यक्रम बना लेता हूँ। इसी तरह के एक बहाने का कार्यक्रम पूरा करके एक बार वापस लौटा तो देखा कि सुबह के आठ बजे भी पूरी उमंग के साथ वह आयोजन चल रहा है।

एक मोटे थुल्थुले बदनवाली अधेड उम्र की नर्तकी मच पर कजली गा रही है। उसके हाव-भाव म अश्लीलता की कोई कमी नहीं है, और ८-१० साल के छोटे बच्चो से लेकर ६०-७० साल के बडे-बूढो तक सबके सब पूरी तन्मयता से उसमे मजा से रहे हैं।

तभी एक सफेद बालोवाले रईस-से दीख रहे सज्जन अपनी नाक की नोक तक लटक आये पतले फ्रेम और मोटे शीशेवाले चश्मे को जरा हाथ से संभालकर १२-१३ साल की एक लडकी की ओर घूरते हुए कहते हैं "बाईजी, बीच-बीच मे ऊ जवन चटकार चटनी हौ इहो के स्वाद मिलत रहे के चाही।" मैं अपनी आँखों

मे देख रहा हूँ कि यह मासूम लड़की अलसायी-सी उठ खड़ी होती है और उस अधेड़ नर्तकी की तरह अश्लील प्रदर्शन के सीखे हुए पाठ दुहराने लगती है। दर्शक-मण्डली मे एक नयी रौनक-सी आ जाती है।

'वाह-वाह, चमेली तो गुलाबो से भी अधिक खुशबूदार है!" एकसाथ कई लोग रुपये-दो रुपये के नोटो के साथ अपने मन का कीचड उछालते हैं। और मेरे लिए और अधिक देर तक वहाँ ठहरना असम्भव हो जाता है।

× × ×

• इटारसी जक्शन पर मद्रास जानेवाली डीलक्स एक्सप्रेस आकर रुकती है। मैं तीसरे दर्जे के वातानुकूलित डब्बे के सामने जाकर खड़ा होता हूँ, जिसमे बैठने की गद्दीदार कुर्सियाँ होती हैं। पहले तो मेरे बहुत मामूली लिबास को देखते ही कण्डक्टर फटकार देता है "यह 'एयर कण्डीशण्ड' डब्बा है देखते नही?" "देखता हूँ, लेकिन दर्जा तीसरा है, यह भी तो दिखाई दे रहा है?"—मैं प्रश्न मे ही जवाब देता हूँ। "लेकिन इसमे पैसे अधिक लगेंगे।" "मै चुकाने को तैयार हूँ!" और तब मुझे अन्दर घुसने की इजाजत मिलती है। अदर मेरी आँखें ढूँढ रही हैं कि क्या सचमुच इसमे कोई मेरी तरह तीसरे दर्जे का भी यात्री है! कोई नजर नही आता। बाहर गर्मी है, लेकिन डब्बे के अन्दर कुछ ठडक-सी महसूस होती है। चादर बाहर नही है। इसलिए थैले से गमछा निकालकर कान पर लपेट लेता हूँ, और पहनी हुई धोती का एक हिस्सा ओढ लेता हूँ।

मुझे इस लिबास मे देखकर दो-तीन बच्चे खिलखिलाकर हँस पडते है। एक नन्ही गुड़िया-सी बिटिया अपने माँ बाप का ध्यान मेरी ओर आकर्षित करने के लिए कहती है "ममी, डैडी, लुक देअर, हाऊ वण्डरफुल! लुक्स लाइक ए मकी।" और मम्मी-डैडी मेरी ओर क्षणभर ताककर अपनी खीसे निपोड लेते है! गाडी की रफ्तार तेज हो गयी है, और अबतक मैं पूरे डब्बे के आकर्षण का केन्द्र बन चुका हूँ। बच्चे बार-बार मेरी ओर ताकते, और विचित्र प्रकार की नकलें उतारते है। मेरी सीट की चार-पाँच कतार पीछे बैठे एक सरदारजी कुछ गुस्से म बडबडाते हैं, "कैसे-कैसे 'अनकल्चरड' लोग पाय जाते हैं इस हिन्दुस्ता म! ऐसा लगता है कि इस देश म सभ्यता नाम की कोई चीज कुछ है ही नही। यूरोप मे तो!"

"कितना 'बैड इम्प्रेशन' बेबीज के लिए 'क्रीयट' कर रहा है यह ब्रूट!"— सरदार जी के बगल मे बैठे एक दूसरे सज्जन फुसफुसाते है। मुझे लगता है कि आजाद भारत की किसी गुलाम बग्घी का कैदी बन गया हूँ।

मेरी पलकों मे रेती के बारीक कण चुभने लगते है। इन दृश्यो से मैं मुक्त होना चाहता हूँ, लेकिन हो नहीं पाता। पिछड़ेपन, और विकास के कुछ सदर्भ अजीब विसगतियो के साथ चित्त पर छा जाते हैं।

भूख और भूख

जहाँ भूख-ही-भूख है, पीढियो स जो पेट की ज्वाला जल रही है, वह कभी बुझी नही। तन का लहू निचुडता रहा मन के भाव सूखते रहे। जहाँ सबसे पहली और (फिलहाल) सबके आखिरी माँग है 'भात की, कभी कोई दूसरी आकाक्षा पैदा भी होनी है तो इस भूख की आग म जल जाती है, वहाँ के पिछडेपन की व्याख्या क्या की जाय, और उनके विकास की व्यूह-रचना क्या हो? अगर उनसे पूछा जाय जो इस परिस्थिति मे मरते जीते हैं तो उनका एक हो जवाब मिलेगा—कोई योजना करनी है तो ऐसी करो कि भरपेट भात मिले। ठीक भी है, भरपेट भात तक नही मिले तो इससे बढकर क्या होगा पिछडापन और इसे दूर करने की योजना से बढकर विकास की कौनसी होगी दूसरी योजना?

आज की जो परिस्थिति है, उसम तो ये भूखे लोग पेट भरने के लिए कस्बो, बाजारो, नगरो, और महानगरो की खाक छानते हैं। तन (श्रम, सौंदर्य या प्रतिभा) बेचते हैं, पेट भरता है, लेकिन भूख फिर भी भेष बदलकर लौट आती है और भी विकराल बनकर। इस भूख स कोई दारू पीकर, कोई नर्तकी के अश्लील प्रदर्शनो म खोकर, कोई 'डिप्लोमेट' या अन्य किसी कीमती अग्रेजी नशे की बोतलो मे डूबकर और इसी तरह के न जाने कितने साधनो-प्रसाधनो के सहारे मुक्त होना चाहता है, लेकिन अतृप्ति है कि बढती ही जाती है, घटने का नाम नही लेती। यह भूख तनिक सभ्य और आकर्षक बनती है तो सत्ता लिप्सा का रूप धर लेती है, और जब फैलकर युद्ध की चण्डिका बन जाती है तो पूरी मानवता कराह उठती है। साधनो-प्रसाधनो स अपने को छल रहे टुकडो म विभाजित हमलोग अपने को सभ्य घोषित करने के लिए दूसरो को असभ्य घोषित करते चले जाते हैं। हम विकास के नय पैमाने निर्धारित करते है, उस ओर तेजी से दौडते हैं, अक्सर अपने आपको पहले नम्बर पर रखने के लिए दौड लगाने म अधिक दूसरो को धकियाते हैं, और विकास की तथाकथित अमुक मजिल पर पहुँचकर पीछे छूट गये गिरते-पडते और लुढ़कते लोगो को पिछड़े हुआ की सज्ञा दे डालते हैं।

आज का हमारा शिक्षण (सिर्फ भारत का ही नही, सारी दुनिया का) इस बेतरतीब और असन्तुलित विकलागी विकास की धारा को मोडने का काम नही करता, सिर्फ इस स्थिति को कायम रखने का सरजाम मुहैया करता है।

आज भी बिहार क छोटानागपुर अनुमण्डल का आदिवासी चाँद पर पहुँचने-वाली दुनिया से मुह मोडकर अपनी स्वायत्तता कायम रखने के लिए क्या सघर्ष करता है ? क्यो वह चाहता है कि हमारे जीवन की सरचना म बाहरी हस्तक्षेप न हो, नही तो हम नष्ट हो जायेंगे ? हम तथाकथित विकसित लोग इस आदिवासियो का पिछडापन कहते है और य पिछडे आदिवासी हमारे विकास स दूर भागकर अब तक की नात पिछडेपन और विकास की परिभाषा के आगे प्रश्नचिह्न खडे कर देते हैं। हम उनके इस प्रश्न की उपक्षा कर सकते हैं करते रहे हैं, उस क्या कहेगे ? उस विकलता म ही वे आदिवासी जीवन के करीब जाते हैं और विकास के अद्यतन वैभव स नफरत करते है। क्या य भी उपेक्षणीय हैं ? या पूरे समाज के विकास की दिशा क सामने एक बडे प्रश्नचिह्न के रूप म खडे हैं ?

आदिवासी जीवन का उदाहरण प्रस्तुत करने म लेखकीय मशा अबतक हुए विकास-कार्यों को व्यथ घोषित करने की उतनी नही है जितनी कि उसके असतुलित क्रम को स्पष्ट करने की है।

सत्ता का बहुरुपियापन

फक क्या है आदिवासी जीवन रचना म और आज की विकसित समाज रचना मे ? आदिवासी समाज (और शायद हर समाज कभी-न-कभी आदिवासी रहा होगा) की रचना आज भी मनुष्य के साथ मनुष्य के सम्बन्धो और परस्पर की पूरक आवश्यकताओ पर आधारित है। उनके समुदायो मे व्यक्ति का जीवन एक-दूसरे के जीवन के साथ गुथा हुआ है। इसीलिए उनके बीच की निर्णायक शक्ति न धम की सत्ता है न राज्य की सत्ता है न धन की सत्ता है। इसके विपरीत सभ्य समाज का प्रारम्भ ही हुआ था धम की सत्ता स जो राज्य-सत्ता की बरास्ता धन की सत्ता तक पहुँचा हुआ है। धम और राज्य की अवशेष सत्ता धन की सत्ता मे घुल गयी है और धन विज्ञान को खरीदकर मानव का पथ निर्देशक बन गया है। धन की सत्ता अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचकर जब मानव की चेतना को निगलने लगी थी तो उस चेतना का विद्रोह मानवीय उद्घोष के साथ प्रगट हुआ था। दुनिया ने उस नये लाल क्षितिज का दशन किया था लेकिन धन की सत्ता ने विज्ञान की यात्रिक सत्ता का आवरण ओढकर उस नये क्षितिज की लाली को ढँक लिया जान पडता है। इसलिए सारी सत्ताओं की सीमाओ को तोडकर मानवीय चेतना मुक्त समुदायो मे प्रगट होना चाहकर भी एक नये वाद की सत्ता के कदखाने मैं बद हो गयी है।

फैली सत्ता सिकुड़ा मानव

विकास और व्यवस्था के आकर्षक और छलिया रूप में प्रगट हुई ये 'सत्ताएँ' मानव को मानव से तोड़ती आयी हैं। वैभव की दुनिया फैलती गयी है और इन्सान की जिन्दगी टूटती-बिखरती गयी है, क्योंकि विकास के क्रम में केंद्रबिंदु मनुष्य का सम्बन्ध नहीं रहा है। वैभव को विभूति मनुष्य नहीं बन पाया है। शांति और व्यवस्था के नाम पर मनुष्य मनुष्य के बीच होनेवाले टकरावों (जो जुड़ने के क्रम में सहज थे नहीं तो *आज के मनोवैज्ञानिक सुखी दाम्पत्य जीवन के लिए दम्पति* को आपस में खुलकर लड़ने की सलाह क्यों देते?) आपसी टकराव से समाज को बचाने के लिए एक तीसरी शक्ति को मनुष्य ने ईजाद की और वही शक्ति 'सत्ता' का रूप लेकर मानव के लिए भस्मासुर बन गयी। उसकी शक्ति बढ़ती गयी दायरे बढ़ते गये। आज वह शक्ति पूरी दुनिया को सकड़ों दफे सम्पूर्ण रूप से नष्ट करने की क्षमतावाली हो गयी है और उसके पोषक दायरे राष्ट्र के नाम से धरती के छोटे-बड़े भूखण्डों के रूप में विकसित हो गए हैं। शक्ति की इस अपरिमितता और दायरों की इस व्यापकता में मनुष्य इतना लघु और टूटे-बिखरे रूप में हरदम अपनी अंतिम घड़ियाँ गिनने को विवश हो जायेगा, ऐसा कब, किसने सोचा था? लेकिन आज यह नग्न परिस्थिति हमारी आँखों के सामने है।

इस 'सत्ता' (जिसकी बुनियादी शक्ति हिंसा के सिवाय और कुछ नहीं है?) के इर्द-गिर्द की विकसित यह सभ्यता एक ओर विपुलता और सेक्स के जननेन्द्रिय भोग तक सिकुड़ आये सम्बन्धों से पोषित है तो दूसरी ओर शोषण और दमन की चक्की में पिसते करोड़ों इन्सानों की जीवित लाशों की बुनियाद पर टिकी है। मानव-चेतना इस स्थिति से विद्रोह कर रही है, और अब व्याकुलता की कराह मुखर हो रही है, लेकिन इसकी क्या गारण्टी है कि पुरानी सत्ता फिर किसी नये रूप में इसे दबा नहीं देगी।

एक बड़ा प्रश्नचिह्न

विकास और सभ्यता के खोखले मानदण्डों में टूटकर बिखरी इन्सान की जिन्दगी को देखकर ही शायद आदिवासी इस सभ्यता से दूर रहना चाहते हैं। और हम देख सकते हैं कि सभ्यता से दूर रहकर भी वे अपने आपसे, अपने परिवार से, अपने पड़ोसी और ग्राम समुदाय से अलग नहीं हैं। जब कि इसके विपरीत हम 'सभ्य' लोग समुदाय तो क्या, पड़ोस परिवार और यहाँ तक कि अपने आपसे भी कटी हुई जिन्दगी का भार ढो रहे हैं।

इस विश्लेषण के आधार पर आदिवासी जीवन को 'मॉडल' के रूप मे पेश करना हमारा लक्ष्य नही है, केवल उसकी जीवनी शक्ति को सामने लाने का प्रयत्न है—दिशा-निर्धारण के लिए। यह एक तथ्य है कि आदिवासी समुदाय अपने आप बहुत कम टूटते हैं, जब भी टूटते हैं तो बाहरी प्रहारो से। और हमारी 'सभ्य रचना' तो ऐसी है कि उसमे हम अपने आप टूटते रहते हैं।

समाज जन्मते ही मर गया

समाधानकारी विकल्प की तलाश मे हम बहुत पीछे मुडकर देखना होगा, वहाँ जहाँ से मनुष्य के साथ मनुष्य के होनेवाले टकरावो और उसके दुष्परिणामो से समाज को बचाने के लिए 'तीसरी शक्ति—सत्ता' का जन्म हुआ था। वास्तव मे जब उक्त सत्ता का जन्म हुआ तभी 'समाज शिशु' को 'यम' छू गया और आज हम यह कहने की धृष्टता करना चाहते हैं कि जिसे हम 'समाज' कहते हैं वह समाज 'सत्ता' का ही एक छद्म रूप है। इसीलिए समाजवादी क्रान्ति की निष्पत्ति मुक्त मानवो के मुक्त समुदाय के रूप मे न होकर एक नयी साम्यवादी सत्ता के रूप मे हुई, जो मानव के लिए पहले की सत्ता से कम जकडनेवाली साबित नही हुई।

यह 'सत्ता' विकसित कैसे हुई? तालीम से इसका क्या सम्बन्ध है? इस प्रश्न के उत्तर मे ही एक बुनियादी बात स्पष्ट होती है कि सत्ता के पक्षधरो का निर्माण करने के लिए विशेषज्ञो की तालीम शुरू हुई। धर्म की सत्ता मे धर्म के विशेषज्ञ कुछ लोग बने, राज्य की सत्ता मे राज्यशास्त्र के विशेषज्ञ कुछ बने, और 'सत्ता' का ज्यो ज्यो फैलाव होता गया, 'तालीम' भी उसके पोषण के लिए उसी आवश्यकता के अनुसार और अनुपात मे बढती गयी। जब जो सत्ता सर्वोपरि रही, तब उसने उसके अनुरूप की तालीम चलायी और 'विशेषज्ञ' पैदा किये। यह सिलसिला भारत मे अंग्रेजी सल्तनत स्थापित करते समय भी जारी रखा गया। उसे जरूरत थी हीन चेतनावाले मिथ्या स्वाभिमानी गुलामो की और मेकाले साहब ने उसकी व्यूह रचना तैयार कर दी। देश उन पढे-लिखे सभ्य गुलामो से पट गया। वे अंग्रेजी 'सत्ता' के भारतीय स्तम्भ बने रहे। आजादी के बाद भी चूंकि विकास की दिशा वही 'सत्ता-केंद्रित' रही, इसलिए कोई बुनियादी परिवर्तन की आवश्यकता महसूस नही की गयी, और 'सत्ता' के पुर्जों का निर्माण कार्य 'तालीम' के सुन्दर 'साइनबार्ड' के साये मे आज भी चल रहा है।

इस पूरी तालीम की योजना में 'समाज' कही नही रहा। समाज अगर रहता, तो विकास की ईकाई समाज का हर सदस्य होता। 'सब' को छोडकर 'अल्प' को लेकर आगे बढनेवाली सत्ता पोषक तालीम के कारण मानव विकास की धारा

आरम्भ में गुमराह हो गयी। उसकी पद्धति और उसके साधन अमानवीय हो गये।

गांधी ने इस बुनियादी भूल को परखकर ही ऐसी तालीम की योजना प्रस्तुत की थी, जिसमें 'सब' के शिक्षण और फलस्वरूप 'सब' के विकास की योजना थी। लेकिन वह योजना 'सत्ता' की शक्ति से दबकर रह गयी।

लोकतांत्रिक सत्ता आज अपने नवीनतम रूप में भी 'अल्प' की सत्ता बनकर ही रह गयी है, 'बहु' का उद्घोष भर है। 'सब' का तो कहीं नाम भी नहीं।

एक आखिरी संघर्ष

वास्तव में 'सर्व' को सामने रखकर विकास की जो योजना बनेगी, वह तालीम केन्द्रित ही हो सकती है। इसलिए जिस जगह आज सत्ता की शक्ति आधिपत्य जमाये हुए है, उस जगह तालीम की शक्ति पैदा करके 'सत्ता' की यानी हिंसा की शक्ति को समाप्त करना होगा। इसके लिए भी गांधीजी ने संकेत किया था—**The struggle for the ascendency of civil over military power is bound to take place in India's progress towards its democratic goal** (भारत के लोकतांत्रिक लक्ष्य तक पहुँचने में सैनिक शक्ति पर नागरिक शक्ति के आरूढ़ होने का संघर्ष अवश्यम्भावी है।)

मनुष्य और मनुष्य के बीच पैदा होनेवाले टकरावों को दूर करने के लिए 'सत्ता' की तीसरी शक्ति' की जगह 'चेतना' की आपसी शक्ति का विकास करना होगा। यह विकास 'सब' की जागृत चेतना का मिलाजुला स्वरूप होगा। इसलिए शिक्षण का कार्यक्रम ऐसा बनाना होगा जो स्कूल की चहारदीवारी और पाठ्यक्रम की सीमा में नहीं, 'सर्वजन' के अविकसित और विकास के नाम पर असंतुलित आज के मानव-समुदायों के बीच चल सके। इस कार्यक्रम को चलायेगा वह जो चेतन होगा, और जो सत्ता' (केवल सरकार नहीं, समाज के हर क्षेत्र में स्थापित बहुरूपिया सत्ता) को नकारते हुए, उसके प्रहारों को झेलते हुए आगे बढ़ेगा, जिसकी चेतना उसे ऐसा किये बगैर चैन से बैठने नहीं देगी।

यहाँ हम एक बात स्पष्ट कर देना आवश्यक समझते हैं कि तीसरी शक्ति से हमारा मतलब आखिरी शक्ति के रूप में संगठित हिंसा और उसके द्वारा पैदा किये गये भय को आधार बनाकर मनुष्य मनुष्य को नियंत्रित करनेवाली रचना से है। इस रचना में नियंत्रक व्यक्ति या वर्ग बदलते रहते हैं, बुनियादी तौर पर उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। उसी तरह 'सब' से हमारा मतलब मनुष्य मात्र से है। इस रचना के कारण भले ही कोई नियंत्रक की जगह हो, और चाहे नियंत्रित की

स्थिति मे हो। जब हम 'सर्व' के शिक्षण की बात करते हैं तो उसका आशय यह होता है कि सबकी चेतना को उद्बोधित करना, इस आस्था के साथ कि आत्मक्रम से सक्षम चेतना-शक्ति जागृत होगी ही।

यह एक ऐतिहासिक सुयोग है कि आज 'सत्ता' अपनी विकरालता की पराकाष्ठा पर पहुँची हुई है और मानव की चेतना' ग्रस्त होकर विद्रोह पर उतारू है।

सब की 'चेतना' का उद्बोधन

सही मानी मे तत्काल 'सब' के शिक्षण की व्यूह रचना उसकी चेतना' को उद्बोधित करने और 'सत्ता' के आवरणा को चीरकर उसकी विद्रूपता को सामने लाने की ही हो सकती है होनी चाहिए। इसके लिए 'सब के जीवन को प्रभावित करनेवाली सामाजिक, राजनीति धार्मिक तथा अन्य सभी प्रकार की क्षुद्र सत्ताओ से एकसाथ या छिटपुट टकराने की जगह किसी केन्द्रीय बिन्दु पर 'सब' की सकल्पित और सगठित चेतना-शक्ति द्वारा प्रहार करना होगा। ज्यो-ज्यो वर्तमान सत्ता' टूटेगी, 'सब के विकास की सम्भावना और परिस्थिति बनेगी।

तालीम और विकास को टुकडो म देखनेवाले आलोचका और विद्वाना का यह आक्षेप हो सकता है कि यह एक कल्पना की गैरतालीमी उडान है। इससे न तो विकास का कोई सम्बन्ध है और न तालीम का, उनसे मैं निवेदनपूर्वक यही कहना चाहूँगा कि अपनी निगाहा की परिधि को फैलाकर तथ्य को देखने का प्रयत्न करें। आज चेतन मनुष्य को यह समझाने की जरूरत नही होनी चाहिए कि सत्ता अर्थात् हिंसाकेन्द्रित समाज रचना मे विकास और तालीम के जो भी काम हो रहे हैं उनका एक ही लक्ष्य होता है—इस या उस यात्रिक ढाचे का मनुष्य को मात्र एक पुर्जा बनाना। इस ढाँचे म जकडा हुआ मनुष्य सम्बन्धों से कटकर जीता है। सम्पन्नता, सम्मान और सेक्स को आत्म-सुख का आधार बनाता है, लेकिन सुख उसके लिए मृगमरीचिका बनकर रह जाता है। क्याकि इसको प्राप्ति के लिए वह खुद उपाजन नहीं बनता, क्रेता या विक्रेता बनता है। क्रय-विक्रय के सम्बन्धो म भोग का क्षणिक सुख मिलता भी है, तो सजन के स्थायी सुख स वह वचित ही रहता है। मनुष्य जब उपाजनशील होता है तो उसको मनुष्य के साथ, बिना किसी बीच की तीसरी दलाली-शक्ति के, प्रत्यक्ष जुडना होता है। उपाजनशील जीवन शान्तिप्रिय होता है जब कि बिना उपाजन किये उपभोग की सामग्री प्राप्त करनेवाला जीवन स्वभाव से लुटेरा होता है, यह एक इतिहास का तथ्य है।

गांधीजी ने उत्पादन की प्रक्रिया, जीवन के प्रत्यक्ष सम्बन्ध और निसर्ग को तालीम का माध्यम बनाने की बात कही थी। व्यक्ति का जीवन स्वयं से शुरू होकर चेतन समुदाय और उसके इर्द-गिर्द की प्रकृति से जुड़े और बीच के पैदा होनेवाले टकरावों, उलझनों या समस्याओं को मनुष्य स्वयं मिलकर हल करें, यह स्थिति लाने की जिम्मेदारी तालीम की है। तालीम कैसे इसके योग्य बने यह विस्तार से सोचने का विषय है। लेकिन इसमें बुनियादी बात यह है कि ऐसी तालीम विशेषज्ञता की एकांगी तालीम नहीं हो सकती, वह 'सर्व' को लेकर ही आगे बढ़ेगी, कुछ को बहुत आगे बढ़ाने और शेष को बहुत पीछे छोड़नेवाली प्रक्रिया बन्द होगी। यानी 'सर्व' की समग्र क्षमता विकसित होगी।

हिंसा का चरित्र और चेतना की शक्ति

सवाल उठ सकता है कि जिस तरह हर एक के अन्तर में 'चेतना' के जागृत होने की सम्भावना मानी गयी है, उसी तरह से तो 'हिंसा' भी हर एक के अन्तर की चीज है। यहाँ मैं इस विवाद में नहीं पड़ना चाहता कि हिंसा मनुष्य का अन्तर्निहित तत्त्व है, या नहीं, लेकिन इतना स्पष्ट है कि हिंसा की अभिव्यक्ति में प्रतिपक्षी को दबाने की चेष्टा होती है, और यह चेष्टा शस्त्र और संगठन का आधार लेकर मानव-अस्तित्व के लिए चुनौती बन जाती है, जब कि मानव की 'चेतना' को उसकी मूल शक्ति बनाने पर मानवता के निरन्तर उजागर होने और परिष्कृत होने की सम्भावना है।

शस्त्र और संगठन की हिंसक शक्ति किसी भी चीज को दबाती है, हल नहीं करती, इसलिए 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' की बात चलती है। इसमें किसी-न-किसीको दबाना है। जो सबल होगा, वह दबायेगा, जो निर्बल होगा, वह दबेगा। विज्ञान की विकसित तान्त्रिकता, शक्ति को निरन्तर केन्द्रित करती जाती है, यह उसकी सहज दिशा है। इसके कारण नियंत्रक शक्ति के रूप में आज 'सरकार' (चाहे वह किसी भी वाद की क्यों न हो) सर्वशक्ति-सम्पन्न सत्ता है। इस पूरी स्थिति को सामने रखने पर जाहिर है कि हिंसा की शक्ति 'सब' की शक्ति नहीं हो सकती। वह अधिक-से-अधिक अल्प या बहुसंख्यक वर्ग की हो सकती है। और यह हमने पहले ही कहा है कि इस प्रकार की आज की शक्ति-सम्पन्न सत्ता के इर्द-गिर्द जो रचना हुई है, और जिसकी पोषक तालीम विकसित हुई है, उन सबका परिणाम मानव-अस्तित्व का संकट बन गया है।

व्यापक जन-शिक्षण द्वारा जन-क्रान्ति अनिवार्य

सर्व की शक्ति विकसित करने के लिए आज एक व्यापक जन-शिक्षण की आवश्यकता है। वह जन-शिक्षण व्यक्ति और समाज की समस्याओं के अनुबन्ध में

करना होगा। जैसे-जैसे व्यक्ति की चेतना जगेगी और स्वैच्छिक समुदायों में संगठित होती जायेगी वैसे-वैसे एक नयी शक्ति पैदा होती जायेगी जो हिंसा की सत्ता को स्थानान्तरित करेगी। अब इस शंका की जरूरत नहीं कि यह असम्भव बात है, क्योंकि दो सिरों पर मनुष्य की चेतना में अपने 'स्वत्व' का भान होने लगा है, और 'सत्ता' से विद्रोह के स्वर मुखर होने लगे हैं—एक तो यूरोप की विपुलता से ग्रस्त नयी पीढ़ी में, और दूसरे भारत-जैसे अविकसित या विकासशील माने जानेवाले देशों के दलित लोगों में। यह ठीक है कि एक ओर 'हिप्पीज' हैं, दूसरे ओर 'नक्सालवादी' हैं। दोनों का विद्रोह अभी दिग्भ्रान्त है, लेकिन जगह-जगह चेतन क्षेत्रों में खोज जारी है। इस खोज में भारत का ग्रामदान-ग्रामस्वराज्य का आन्दोलन इस मानी में अग्रणी माना जा सकता है, क्योंकि इसने इस शक्ति को आधार बनाया है; जिसे हम मानव की 'चेतन-शक्ति' के रूप की कल्पना कर रहे हैं।

नये क्षितिज की झिलमिल आभा

मानव की 'चेतना' को शक्ति मानकर इस नये परिप्रेक्ष्य में समाज-रचना का स्वरूप क्या होगा, यह एक सवाल सहज ही पैदा होता है। इसका 'ब्लूप्रिंट' पेश करना तो सम्भव नहीं, लेकिन दूर क्षितिज पर उभरती हुई कुछ आलोक-रश्मियाँ दिखाई पड़ती हैं, जिन्हें यहाँ प्रस्तुत करना चाहूँगा; क्योंकि इनमें विकास के नये आयाम का संकेत मिलता है। विकास के इस नये आयाम को कदम-दर-कदम यथार्थ करने के लिए परिवर्तन की शक्ति पैदा करनेवाली तालीम की व्यूह-रचना करनी होगी।

(१) मनुष्य की क्षमता को समाप्त करनेवाली भीमकाय मशीनें हमें नहीं चाहिए। हमें ऐसी मशीनें चाहिए, जो मनुष्य की कार्य-कुशलता बढ़ाने में सहायक हों। आज तो विकास का मापदण्ड मशीनें बन गयी हैं, यह मापदण्ड बदलना होगा, विकास का मापदण्ड मनुष्य मात्र के समग्र विकास को बनाना होगा।

(२) हमें ऐसे महानगर नहीं चाहिए, जहाँ मनुष्य की भीड़ का तो पारावार न हो, लेकिन मनुष्य हर जगह मनुष्य से अजनबी हो, अपरिचित हो। हमें ऐसी बस्तियाँ चाहिए, जहाँ आदमी आदमी को पहचाने, एक-दूसरे के साथ जुड़े, एक-दूसरे के काम आये और हर तरह से एक-दूसरे के जीवन के खालीपन को भर सके।

(३) हमें ऐसी राष्ट्रीयता नहीं चाहिए, जो पहले तो धरती को टुकड़ों में बाँटती है और फिर उन टुकड़ों में रहनेवालों को एक-दूसरे के खिलाफ उभाड़ती है, भय और नफरत पैदा करती है और आखिर में युद्ध की भयंकर लपटों के हवाले कर देती है। हम तो महासागर की उन लहरों-जैसा एक-दूसरे से जुड़कर खेलना चाहते हैं, जहाँ कोई विभाजन नहीं है, हर बूँद एक-दूसरी से जुड़ी है।

(४) मशीनो ने उत्तेजना बढानेवाली चीजें पैदा की हैं। मनुष्य के अन्दर झूठी जरूरतें पैदा की हैं और आज वह हृदय से शून्य होकर इन जरूरतो की मृगमरीचिका के पीछे भटक रहा है, उसके जीवन की कोई दिशा नही रह गयी है, कोई अर्थ नही रह गया है। हम चाहते हैं जीवन के मकसद को तलाशना, हृदय की शून्यता को भरना।

(५) हम ऐसा मनुष्य बनना चाहते हैं कि जिसके जीवन का पूरा-पूरा विकास हो, किसी एक हिस्से का नही। इसके लिए जरूरी होगा कि खेती और उसके सहायक उद्योगो के साथ ऐसी नयी बस्तियाँ बसें, जिनमे मनुष्य मनुष्य से परिचित होकर, एक-दूसरे से जुड़कर रह सके। उसके अन्दर की छिपी हुई प्रतिभाओ का पूर्ण विकास हो। पूरी दुनिया ऐसी ही आपस मे जुडी हुई बस्तियों का विशाल समूह बने।•

रामचन्द्र राही—सह-सम्पादक 'भूदान-यज्ञ', सर्व सेवा संघ-प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी

शैक्षिक रंगमंच

पिछड़ेपन की पृष्ठभूमि में असमानता, अज्ञान और असन्तोष

ब्र० ना० कौशिक

स्वतंत्रता की तरुणाई में राष्ट्रीय विकास को निखर आना चाहिए था। स्पष्ट रूप से व्रण और फोड़ा से युक्त अस्वस्थ देहवाले भारतीय प्रजातंत्र ने समूचे राष्ट्र से यह उगलवा लिया है कि शिक्षा-नीति के निर्धारण में मूलभूत खामी रह गयी है, जिसके फलस्वरूप राष्ट्रीय विकास-संरचना का व्यूह खण्ड-खण्ड हो रहा है।

बीस-बाईस वर्ष की अवधि समाप्त हो जाने पर भी असमानता, अज्ञान और असन्तोष के पुतने यथावत् खड़े हैं। हर क्षेत्र में, हर स्तर पर इस प्रलयकारी यमत्रय के नग्न रूप ने खुलकर नृत्य किया है। प्रजातंत्र की भावनाओं के विपरीत स्वपक्ष इतना प्रबल हुआ है कि पद, धन, वासना, कुटुम्बपरस्ती एवं ओछी वृत्तियाँ नैतिकता एवं राष्ट्रीयता से ऊपर उठ गयी हैं।

नागरिक जीवन का नित्यक्रम

दल-बदल, ढुल-मुल राजनीति, विघटन की ओर बढ़ते राज्य भाषाई संघर्ष, छात्र-आंदोलन, हड़तालें, अस्पष्ट शिक्षा, काला बाजार, सामाजिक मानदण्डों में गिरावट, लूट, आगजनी, राष्ट्रीय सम्पत्ति की खुलकर होली, लाठीचार्ज, गोली, मौत, और फिर जाँच-आयोग नित्यक्रम बन गया है।

असन्तोष और भय का रूप इतना व्यापक हो चुका है कि कोई भी सही बात सुनने को तैयार नहीं। फिर भी बात बढ़ती है, संघर्ष होता है, गोलियाँ चलती हैं, कुछ समय के लिए मरघट की शान्ति फैल जाती है या यों कहें कि बात मान ली जाती है। हाँ, चुनाव के समय मसानिया वैराग्य अवश्य जागता है लेकिन इससे क्या सार्वजनिक असन्तोष के ये शोले शान्त हो जायेंगे ? ये कभी भी, कहीं पर कितने भयकर रूप से भड़क उठेंगे, इसका पूर्वानुमान सर्वथा असम्भव है। चिन्ता का विषय यह है कि भारत में अब इतनी शक्ति शेष नहीं रह गयी है जो सार्वजनिक असन्तोष की इस आँधी को सहन कर सके।

चार आधारभूत प्रश्न

असन्तोष की इस पृष्ठभूमि को घेरे हैं चार आधारभूत प्रश्न :—

१ क्या सार्वजनिक असन्तोष की पृष्ठभूमि में असमानता है ?

२ क्या इस सार्वजनिक असन्तोष का कारण अज्ञान है ?

३. क्या असमानता और अज्ञान के मिश्रित प्रभाव ने विकासमान भारत के ढाँचे को अस्तव्यस्त कर दिया है ?

४. क्या असन्तोष अपने आप मे कोई समस्या है, यदि है तो उसका रूप क्या है ?

चतुर्थ और अन्तिम प्रश्न के उत्तर मे पूर्णतया स्पष्ट है कि असन्तोष अपने आप मे कोई समस्या नही है। यह तो कार्यों के परिणामस्वरूप उत्पन्न होनेवाली स्थिति का नाम है। समस्या के मूल मे निहित है असमानता और अज्ञान।

राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था ही देश को समृद्धिशाली बनाने का सर्वाधिक विश्वसनीय यत्र है। शिक्षा इस यंत्र को नियन्त्रित करने के लिए आवश्यक तत्त्व है। शिक्षा स्वस्थ अर्थतंत्र की कुञ्जी है ।

राष्ट्रीय श्रीवृद्धि की कसौटी

राष्ट्र किस प्रकार अपनी प्राकृतिक, भौतिक एव पुरुषशक्ति का उपयोग करता है ? कृषि, उद्योग, व्यापार, विकास, शिक्षा, श्रम, रक्षा व अन्य राष्ट्रीय सेवाओ मे सन्तुलन है या नही ? राष्ट्रीय आय का उपयोग, बचत, मूल्यो मे स्थिरता एव नागरिक जीवन-स्तर की समुन्नत अवस्था जब सन्तुलित होकर व्यक्ति की इकाई तक पहुँचती है तभी आर्थिक समानता और समृद्धि की श्रीवृद्धि होती है।

प्रस्तुत विचार एक पक्ष है। आय की प्राप्ति एव उसके उपयोग मे, सामाजिक और सास्कृतिक दृष्टि से लोककल्याण का सर्वोपरि स्थान है। केवल आय और व्यवसाय की वृद्धि को ही विकास मानना भी न्याय-संगत नही है। प्रस्तुत सभी अवस्थाओं के विपरीत भारत आज असमानता की भट्टी मे धधक रहा है। अमीर और अधिक अमीर हुआ है। गरीब नैतिक सकट मे उलझ गया है। शराब एवं नशीले पदार्थों का उत्पादन बढा है। बृहद उद्योगो और घरेलू उद्योगो मे साम्य नही बैठा। घरेलू उद्योग संरक्षण प्राप्त करने पर भी अपनी साख नही जमा सके।

राष्ट्रीयकरण की भावना राष्ट्रीयकरण के साथ विकसित नही हुई। प्राय सभी राष्ट्रीय उद्योग घाटे मे चल रहे हैं। कृषि, व्यापार, वन-उद्योग, पशुपालन, शिकार, मत्स्य-उद्योग, ललित कला, रक्षा-सामग्री, शिक्षा आदि पर त्रुटिपूर्ण व्यय के निर्णय को राष्ट्रीय आय-समिति ने स्वीकार किया है। विश्व के विकसित और अर्द्धविकसित देशो की तुलना मे भारत अपना स्थान नही बना पाया है।

एकाधिकारवाद के दुष्परिणाम

आर्थिक असमानता के निराकरण हेतु यह आवश्यक है कि राष्ट्रीय आय-व्यय का विवरण नियमित रूप से सही प्राप्त हो, परन्तु सांख्यिकी कठिनाइयो एवं प्रशास-

निक ढील के कारण इसमे सदा बाधा रही। डा० के० एन० राज जैसे अथशास्त्री राष्ट्रीय आय के अनुमानो के सम्बन्ध म प्राप्त आँकडो की सत्यता म कई बाधाएँ अनुभव करते हैं। कुछ अथशास्त्रियो ने तो यह चुनौती दी है कि केन्द्रीय सांख्यिकी सगठन सही आँकडे प्रस्तुत करने मे असफल रहा है। देश का आधे स अधिक उत्पादन तीन बडे निजी उत्पादको द्वारा होता है। इसके अतिरिक्त अस्सी या नब्बे बडे व्यावसायिक समूहो के हाथ मे ढाई हजार कम्पनियाँ हैं। लघु उद्योग-कर्ता पूर्ण सामग्री प्राप्त नहीं कर पाते। निजी क्षेत्र प्रतिस्पर्धा के कारण शोषण पर बल देते हैं। आर्थिक असमानता, छोटे व्यक्तियो के दमन, और उपभोक्ताओ के शोषण स स्पष्ट है कि एकाधिकार कभी सावजनिक हित मे अपनी सेवाएँ नहीं दे सकता। बडे व्यवसाय मूल्य-दर ऊँची करके उत्पादन कम कर देते हैं।

राष्ट्रीयकरण के प्रश्न पर निजी स्वाथ दीवार बन जाते हैं। लोकसभा मे व्यावसायिक वग के विरुद्ध उठता हुआ शोर एव दूसरी ओर प्रमुख उद्योगपतियो द्वारा चुनावो मे मुक्त हस्त से दान करना लगता है *स्वार्थों और सिद्धान्तों की यह* दुमुही अपनी इच्छानुसार सरकती रहती हैं। जनता सिन्धु मे उठी लहरोंवत् प्रगट और विलीन होती रहती है।

वस्तुत इस सबके मूल मे है अज्ञान। 'ससार मे अन्धकार नहीं, अज्ञान है।'

आर्थिक असमानता एक पक्ष है, इसी प्रकार जीवन के हर स्तर पर असमानता साँप की केंचुली की भांति आ गयी है, जिसने राष्ट्र के विकास की गति को जड कर दिया है।

एक दुर्भाग्यपूर्ण शैक्षिक प्रणाली

शिक्षा के क्षेत्र मे प्राथमिक, माध्यमिक एव उच्च कक्षाओ मे अध्ययन की समस्या प्रतिवर्ष जटिलतर होती जा रही है। तीव्र बुद्धि के बालक विज्ञान की ओर अग्रसर हैं, फिर विदेशो की ओर पलायन करते हैं। सामान्य बुद्धिवाले कला विषयो मे अपना जीवन खपा रहे हैं।

वस्तुत कला जसे चिन्तन विषय तीव्र मस्तिष्क बालको को ही ग्रहण करने चाहिए जिससे वे राष्ट्र को कुछ दे सकें। वृत्त-विषय (तकनीकी शिक्षा) सामान्य स्तर बुद्धि बालको हेतु है। हमारे देश का सबसे बडा दुर्भाग्य तो यह है कि जो कुछ माता पिता नही बन सके, वह अपने बालको को बनाना चाहते हैं। बालक उस प्रतिभा विशेष का धनी नही—बस दोनो मे ही असन्तोष रहता है।

विद्यालय प्रवेश के समय या उच्च शिक्षा मे प्रवेश पाते समय अभिभावक अपने दायित्व का चरम सुख स्वीकार कर लेता है कि उसका लडका कालेज मे पढ रहा है। परन्तु क्या पढ रहा है—किस विषय को उसने लिया है? उस विषय की परि

समाप्ति कहाँ पर है, या होगी—इससे उसका कोई सम्बन्ध नही। विद्यालयोमे निर्देशन मिलता नही—सच तो यह है कि विद्यालय बालको की भीड बनते जा रहे हैं।

विद्यालय-आरम्भ पूर्व-कक्षा के अभाव मे प्राथमिक शिक्षा, प्राथमिक शिक्षा के पश्चात माध्यमिक शिक्षा एव माध्यमिक के पश्चात् उच्च शिक्षा, सब विशृङ्खल कडियाँ हैं, जहाँ शिक्षा समाप्त कर आनेवाला बालक यह जान ही नही पाता कि उसे क्या करना है।

प्रस्तुत तथ्यो को दृष्टिगत रख जिस शैक्षिक व्यूह-रचनाकी आवश्यकता आज का विवेकशील प्राणी अनुभव कर रहा है उसका स्वरूप, सिद्धान्त, लक्ष्य एव क्रियान्विति का रूप क्या हो, यह ध्यान मे रखना आवश्यक है।

असमानता और अज्ञान के चक्रव्यूह म हम एक योद्धा का बलिदान दे चुके हैं। बुनियादी शिक्षा शैक्षिक व्यूह-रचना ही नही थी वरन् एक धर्मयुद्ध था, जिसे आज की तथाकथित मैकाले-सन्तानो ने जीत लिया जान पडता है। पाण्डव (जनता) फिर १४ वर्ष के लिए वनवास मे चले गये हैं।

व्यूह-रचना के दो प्रारम्भ-बिन्दु

भारत के स्वतत्र होते ही शिक्षा का रूप स्पष्ट हो जाना चाहिए था वह नहीं हुआ। आज बाईस वर्ष पश्चात् भी द्विभाषा और त्रिभाषा सूत्र की चर्चा यथावत् है। अंग्रेजी की रक्षार्थ दो-दो भाषा-सशोधन विधेयक आये, कभी आश्वासन तो कभी दुहाइयाँ। इसीलिए जनता मे अज्ञान है। आवश्यकता इस बात को जानने की है कि क्या शिक्षा राज्य का विषय है? विवेक इस बात को कहता है कि जनता स्वयं शिक्षा को अपने हाथ मे ले ले।

आज विकासशील भारत के लिए शैक्षिक व्यूह-रचना निर्धारण करते समय दो पक्ष प्रबलतर हैं, जिन पर विचार करके आगे बढना समीचीन होगा —

प्रथम—शिक्षा-उपार्जन पश्चात् जीवन मे निश्चिन्तता।

द्वितीय—उत्तरदायित्वपूर्ण वृत्तियो की बालक म दृढता।

आज देश के समक्ष दो ही बडे संकट हैं —

१ देश की बढती हुई पुरुष शक्ति का उचित उपयोग।

२ सार्वजनिक सम्पत्ति के प्रति स्व का बलिदान।

यही विकास-शील भारत के लिए दो शैक्षिक पक्ष हैं, जिन पर राष्ट्र को अपना ध्यान् केंद्रित कर लेना चाहिए। •

ब्र० ना० कौशिक—सदस्य शिक्षा सकाय, राजस्थान विश्वविद्यालय।

राजनीति, शिक्षण और विकास

इन्द्रनारायण तिवारी

विकास, राजनीति और शिक्षण एक ही सिकडी की तीन कडियाँ हैं। विकास साध्य है, राजनीति साधन और शिक्षण एक प्रक्रिया। तीनों में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। जो सम्बन्ध बीज, वृक्ष और फल में है वही सम्बन्ध शिक्षण, राजनीति और विकास मे है। राजनीति मानव-समूह की आवश्यकता का प्रबन्ध करती है। विकास मानव की भौतिक एवं आध्यात्मिक आवश्यकता की परिणति है और शिक्षण है विकास की तैयारी।

विकास के दो तथ्य हो सकते हैं। पहला, भौतिक कमी की पूर्ति और दूसरा, जीवन म वैज्ञानिक एव आध्यात्मिक खोज के लिए उत्साह एव बेचैनी। वस्तुत भौतिक एव आध्यात्मिक उन्नयन, विकास के दो पक्ष हैं। दोनो म कोई विरोधाभास नही है। प्रोफेसर टायनबी ने अपनी पुस्तक 'भारत और विश्व' मे यह बताने का प्रयत्न किया है कि किस प्रकार भारत की सामुदायिक योजना भौतिक विकास का आधार है और इसी पर आध्यात्मिक जीवन का प्रस्फुटन होगा।

शिक्षण का प्रयोजन

शिक्षण वस्तुत एक प्रक्रिया है, जो हमारी राजनीति को निष्कर्ष और विकास को सही दिशा देती है। इस प्रक्रिया का उद्देश्य है कि मानव जीवन के छिपे गुणो का, उसकी 'पोटेन्शियां' का प्रत्यक्षीकरण करना। अत सफल शिक्षण प्रक्रिया स्वस्थ व्यक्तित्व का निर्माण करती है। उस व्यक्तित्व म सामाजिक सुधार, आर्थिक विकास और वैज्ञानिक खोज के लिए तडप होती है। शिक्षण का सबसे महत्त्वपूर्ण काम है कि यह मनुष्य के हृदय मे असीम निर्भयता एव मस्तिष्क म सामूहिक जीवन की प्रगति के लिए अनन्त शक्ति का सचार करे।

राजनीति विकास और शिक्षण के बीच की कडी है। आज की राजनीति राज्यनीति नही रह गयी है। केवल सत्ता सघर्ष की दुष्ट नीति हो गयी है। विनोबा ने अपने जगत्प्रसिद्ध सत्यघोष म कहा भी है कि मजहब और सियासत का जमाना लद गया। जमाना 'साइस' (विज्ञान) और रूहानियत का है। गाधी ने भी सत्यहीन राजनीति को दमघुटन की राजनीति कहा था। सुकरात ने एथेन्स की राजनीति को दिवालियापन बतलाया और लेनिन ने पश्चिम की साम्राज्यवादी राजनीति को षडयन्त्र कहा है। आज के राष्ट्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय समाज की राजनीति सत्ता की पूजा करती है। भारतीय राजनीति तो मखौल की राजनीति हो गयी है।

वस्तुत: राजनीति का मतलब है सबसे ऊँची नीति। तभी अरस्तू ने अपने 'पालिटिक्स' को 'मास्टर साइंस' कहा है। राजनीति का मतलब है वह नीति, जो राज्य मे मानव-समूह का विकास करे। यह तो पृथक्ता से ऊपर समग्रता की नीति, विषमता से हटकर साम्य की नीति और साम्प्रदायिकता से हटकर निष्पक्षता की ही नीति हो सकती है। तभी महात्मा गाधी ने राजनीति मे सत्ता की जगह सत्य का दर्शन पाया। विनोबा ने भी अपने 'आचार्यकुल' के निष्कर्ष मे बताया है कि हमे संकुचित राजनीति, पक्ष की नीति, स्थानीय नीति नही, व्यापक नीति चाहिए, जो विशाल जनसमूह का कल्याण कर पाये।

परिस्थिति की विडम्बना

व्यवहार मे हम कुछ और ही पाते हैं। सम्पूर्ण विश्व-समाज की मन स्थिति अत्यन्त दूषित है। शिक्षण-प्रक्रिया से राजनीति घृणा करती है। शिक्षण राजनीति को प्रेरणाहीन करता जाता है। विकास राजनीति की नपुसकता और शिक्षण की प्राणहीनता का शिकार हो गया है। वस्तुत शिक्षण और राजनीति मे वैरभाव दीखता है। प्रक्रिया और साधन म मेल नही है। विज्ञान और कर्म मे मतभेद है। यही विकास की विडम्बना है। विकास ने जीवन का सतुलन खो दिया है।

जरा विश्व-समाज की ओर देखें। पश्चिम सतुलन खो चुका है, प्रचुरता के बोझ से ग्रस्त है। जीवन एक 'मोनाटोनी' हो गया है। पूरब भूख की ज्वाला से ग्रस्त, विश्व का दक्षिण भाग विकासविहीन 'एग्रेरिया' है। विश्व का उत्तर भाग भौतिक विकास की परिणति पर है। 'बैलेंस' खिसक गया है। प्रपोरशन' कहीं नही दीखता। नतीजा सामने है। पश्चिम का युवक क्रोधित है। मानव मशीन होता जा रहा है। भौतिक सुख के कीडे उसे चाटने को उतावले हो रहे हैं। पूरब के ससार का युवक मायूस है, उदास है। भूख, निराशा और वैषम्य की ज्वाला उसे राख करती जा रही है। वैषम्य ही उसके भाग्य का सत्य हो गया है। भविष्य लुट गया है।

हम अपने देश की ओर देखें। आजादी आयी। आजादी मिलते ही बडी-बडी उम्मीदें बँधी कि विकास की प्रणाली तेजी से आगे बढेगी, शिक्षण-प्रणाली नवजीवन का सचार करेगी। राजनीति विकास की वाहिका बनेगी। विज्ञान प्रचुरता का वाहक होगा। अज्ञान मिटेगा। विषमता मिटेगी। जीवन मे लौकिक और आध्यात्मिक तत्त्वो का संतुलन होगा। नीरसता समाप्त होगी। जनजीवन निखरता जायगा। जीवन म संयम होगा। न होगी बेरोजगारी, न बीमारी, न महामारी। जीवन म कशमकश न होगी। हर व्यक्ति को भौतिक विकास एवं आध्यात्मिक खोज का मौका मिलेगा।

इसमे शक नही कि विकास आया, लेकिन वैषम्य भी आया। जमीदारी हटी तो भूमिहीनो की सख्या भी बढी। उद्योग बढा, बेकारी की समस्या भी बढी। राष्ट्रीय आय बढी, विदेशी कर्ज भी बढा। प्रति व्यक्ति आय बढी, प्रति व्यक्ति परेशानी भी बढी। राष्ट्रीय वैभव बढा, समाज की गरीबी भी बढी। बिजली चमकी, अँधेरे का दायरा भी बढा। सडकें बनी, शोषण की रफ्तार भी बढी। समता का नारा मिला, धनी गरीब की खाई भी बढी। न्याय-व्यवस्था आयी, परन्तु गरीबो के जीवन मे अन्याय की मात्रा भी बढी।

विडम्बना का मूल कारण

प्रश्न उठता है, ऐसा हुआ क्यो? कारण स्पष्ट है। आज देश की शिक्षा-प्रणाली स्वस्थ नेतृत्व का निर्माण नही कर पा रही है। शिक्षक विद्यार्थी से डरता है। विद्यार्थी तथाकथित राजनीति का हथकडा बना है। विश्वविद्यालय का 'सिलेबस' प्राणहीन है। उसमे विकास की दृष्टि मिलती नही है। विज्ञान 'टेकनोलोजी' का रूप ले लेता है। टेकनोलोजी' शोषण का जरिया बन जाती है। इतिहास दूरदृष्टि प्रदान नहीं करता, क्योकि वह मृत राजाओ एव सघर्ष की एक गाथा मात्र रह गया है। समाज-शास्त्र जीवन मे सामजस्य की कला को प्रस्थापित नही कर पाता। अर्थशास्त्र जहाँ गणित के सहारे वैज्ञानिक दृष्टि प्राप्त कर रहा है वही वह दिशाहीन होता जाता है। राजदर्शन सत्ता के उत्थान-पतन की एक कहानी मात्र रहा गया है। सुकरात से अधिक लोग मेकियावेली को जानते हैं। फिर विश्वविद्यालय ग्रामीण जीवन से दूर हैं। वस्तुत वे भारतीय जीवन मे एक द्वीप मात्र बने हैं। ग्रामीण शिक्षण आधारहीन है। ग्राम-शिक्षक अपने अस्तित्व के लिए क्षेत्रीय राजनीति का शिकार बना है। शिक्षाविद् बुद्धिकुठित हैं। आचार्यों मे जयघोष, सत्यघोष की शक्ति नही। शिक्षा मे परिवर्तन फिजूल खर्च माना जाता है। शोध-कार्य को समाज बेकार समझता है। सम्पूर्ण प्रणाली कल्पनाविहीन, रचनाहीन होती जा रही है। फलत परीक्षार्थी त्रस्त हैं। शिक्षण एक बोझ मात्र है। शिक्षण का कार्यक्रम प्रेरणाहीन हो गया है। शोध उद्देश्यहीन। प्रशासन शिक्षा को हेय की दृष्टि से देखता है, शिक्षण प्रशासन की कृपा की दृष्टि से। विशिष्ट वर्ग समाज की समस्या को धर्मनिरपेक्ष की दृष्टि से देखता है। विभक्त व्यक्तित्व नागरिक जीवन की उपलब्धि है, निराशा, घोर निराशा समाज की प्राप्ति। सामाजिक समस्या घनीभूत होती जाती है। विषमता जीवन की प्रतिछाया बन चुकी है, और अस्तित्व के लिए विरोध-प्रदर्शन जीवन की दैनिक आदत। रोटी की माँग जीवन की दिनचर्या है। ज्ञान, समत्व एव साम्य जीवन की मृगतृष्णा है। पारस्परिकता तथा पडोसीपन का लोप होता जा रहा है। जीवन के मूल्य टूटते-बिखरते नजर आते हैं।

फलतः राजनीति मे नेतृत्व का सर्वत्र अभाव है। जाति, वर्ग, सम्प्रदाय, क्षेत्र एव सत्ता की राजनीति समाज के हर क्षेत्र मे बौखलाहट पैदा कर रही है। विकास के लिए पडा प्रचुर प्राकृतिक वैभव यो ही नष्ट हो रहा है। विस्तृत भूमि वैज्ञानिक कृषि के लिए तडप रही है। सिंचाई के लिए जल-स्रोत की कमी नही। जल से भरी नदियाँ यो ही बहती जाती हैं। उनके जल का उपयोग नही। गंगा-यमुना के पानी को केरल तक पहुँचाया जा सकता है। ऐसी सम्भावनाएँ है, लेकिन सहमति नही, सगठन नहीं। राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने टी० वी० सी० का उद्घाटन करते हुए कहा था कि नदियाँ पोलिटिक्स नहीं जानती, लेकिन भारत की नदियो से भी राजनीति की सडी महक आती है। कितनी ही नदियो के पानी के लिए वर्षों स प्रदेशो मे आपसी विवाद चल रहा है। किस योजना को सुविधा के साथ अन्तिम रूप दिया जा सकता है? कहाँ का अभियंता निराश नही है? कहाँ का कृषक निराश नही और किस कार्य-योजना पर मजबूर मजदूर नही? न तो शिक्षण ने श्रम को मर्यादा पर आधारित तकनीकी नेतृत्व पैदा किया, न तो राजनीति ने निर्माण का साधन।

हम विज्ञान का दुरुपयोग कर रहे हैं। एक तो विकास इस क्षेत्र मे कुछ अधिक हो नही पाया है और जो हुआ भी है उसने शोषण की प्रक्रिया को अधिक-से-अधिक बढाया। टेक्नोलॉजी के सहारे वैभव का उपयोग सकुचित हो गया। साधारण जन-जीवन पर उसका कुछ असर दीखता नही। पब्लिक और प्राइवेट सेक्टर के नाम पर शोषण की रफ्तार बढती ही जाती है। वैभव के केन्द्रीकरण के साथ-साथ गरीबी का भी विकेन्द्रीकरण होता जा रहा है। विज्ञान का फल भारत की ५० करोड जनता के भाग्य का सितारा नही, कुछ इनेगिने परिवार का ही भाग्य चमक सका है। सीमेण्ट, लोहे, एव अन्य यांत्रिक साधन कुछ ही परिवार के उपयोग मे आते हैं। प्रत्यक्ष रूप से तो दीन-हीनो की कुटिया मिटती ही जा रही है। फिर यह वही देश है जहाँ हजारो अभियंता बेकार बैठे हैं, करोडो एकड जमीन पर सिंचाई नही और अनन्त जल-स्रोत नदियो मे बेकार ही नही जाते, लाखो नर-नारी को बाढ की चपेट मे ले लेते हैं। कभी-कभी यह सोचना पडता है, क्या हम बीसवी सदी के विज्ञान युग के उत्तरार्द्ध मे जी रहे हैं?

कहने का मतलब यह है कि दुष्ट राजनीति और नपुसक शिक्षण प्रणाली देश के हर क्षेत्र म असतुलित विकास का कारण बनी है। हर सचेत नर-नारी को यह समझ लेना है कि किस प्रकार असतुलित विकास हर तबके को परेशान करता जा रहा है। जहाँ वैभव है वही सभी तरह के अस्वस्थ जीवन का प्रदर्शन भी।

वह इसलिए नहीं कि वैभव अपने मे बुरी चीज है, प्रत्युत इसलिए कि शोषण के सहारे संयोजित धन मे उपयोग की भावना के पीछे भय का आधार होता है। उसी तरह हम पाते है कि प्रपीडित वर्ग अलग बेरोजगारी, बीमारी और निराशा के घोर अन्धकार मे भटक रहा है। एक ओर केन्द्रित धन के पीछे भय है, लुट जाने का, दूसरी ओर निर्धन वर्ग को भय है भूखमरी का।

परिस्थिति परिवर्तन की दिशा

ऐसी स्थिति मे कुछ सुधार की बात तो की जा सकती है। लेकिन इतना तो कह ही देना होगा कि सुधार-योजनाओ की कमी नही, कमी है, केवल कार्यान्वयन की।

पहली बात तो यह समझ लेनी है कि राजनीति से समाज का छुटकारा नही है। अत राजनीति को घृणा की दृष्टि से न देखा जाय। हर क्षेत्र से नयी प्रतिभा का राजनीति मे प्रवेश होना चाहिए, तभी राजनीति का स्तर उठ सकता है। राजनीति से पलायन का तरीका अगर जारी रहा तो सारे समाज पर, हर तबके पर भारी खतरे की सम्भावना है। अगर वैज्ञानिक, प्रबुद्ध प्रतिभाएँ राजनीति मे प्रवेश करती हैं, तो शिक्षण और विकास का स्वरूप भी बदल सकता है।

दूसरी बात यह है कि शिक्षण मे आमूल परिवर्तन करना होगा। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि हम चीनी शिक्षण-प्रणाली को कार्यरूप देना होगा। चीन के स्कूल का कार्यक्रम "फिफ्टी-फिफ्टी" पर आधारित है। आधे समय मे सीखें और फिर उसे कार्य-रूप दें। श्री विनोबा भावे ने कहा भी है कि महात्मा गाधी के विचारो का कार्य-रूप तो चीन ही दे रहा है।

तीसरी बात यह है कि विकास का आधार "अन्त्योदय" हो। मतलब यह कि हर विकास को तभी सफल माना जाय, जब उसमे समाज के अन्तिम व्यक्ति के लिए कोई जगह हो। ऐसे वर्ग का उत्थान अत्यन्त आवश्यक है, तभी हम सतुलित ढंग से विकसित हो पायेंगे। और तभी राजनीति की परिणति सत्ता-सघर्ष नहीं प्रत्युत विकास हो पायेगा। शिक्षण-प्रणाली तब एक नवजीवन का सचार करेगी और विकास आर्थिक समता, सामाजिक न्याय, वैज्ञानिक प्रगति एवं सास्कृतिक गतिशीलता का परिचायक हो पायेगा •

श्री इन्द्रनारायण तिवारी—प्राध्यापक, राजनीति, गांधी विद्या संस्थान, राजघाट, वाराणसी।

राष्ट्रीय विकास में कृषि और ग्रामीण समाज की भूमिका

डा० मोती सिंह

जबतक हमारा देश आजाद नहीं था, हमारे सामने मुख्य समस्या राजनैतिक स्वाधीनता की थी, यद्यपि वह राजनैतिक स्वाधीनता साधन मात्र थी। शायद सबसे महत्वपूर्ण साधन थी—ऐसी समाज रचना का जिसमे प्रत्येक नर और नारी अपनी प्रतिभा, शक्ति और रुचि के अनुसार अपनी सभावनाओं का इस तरह से विकास कर सके, जिससे व्यक्तिगत और सामूहिक अधिकतम हित का सम्पादन हो सके। आजादी के बाद भी आज हमारे सामने यही चुनौती मुख्य रूप से विद्यमान है।

आजादी हासिल करने के लिए हमको गांधीजी का नेतृत्व प्राप्त हुआ। विकास को सम्पन्न करने के लिए गांधीजी की प्रेरणा आज हमारे बीच नहीं है। हाँ उनके शिष्य और अनुयायी कहे जानेवाले लोग समाज को नयी रचना करने में अवश्य लगे हुए हैं।

भारत जैसे विशाल देश और इतनी बढती जनसख्या की गरीबी को देखकर प्रत्येक नागरिक को समानता और सम्पन्नता का अनुभव कराना बहुत ही कठिन और दुष्कर कार्य है। यह कठिनाई इस कारण से और भी बढ जाती कि हम पश्चिमी देशों की आशातीत भौतिक प्रगति से चकाचौंध होकर स्वय भटकाव में पड जाते हैं। लम्बे अर्से तक हमारा देश गुलामी में जकडा रहा है। उसकी जो विरासत हमें मिली है उसने हमारी प्रगति को बहुत बाँध रखा है। फिर भी हम दूसरे देशों के समकक्ष जल्द-से-जल्द पहुँचना चाहते हैं। और वहाँ तक पहुँचने में देर होने से घोर असतोष, निराशा और कुठा व्यक्ति और समाज के मानस में घर कर रही है। नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा जो गांधी की सबसे बडी देन थी, हमारी आँखों से निरन्तर ओझल हो रही है। एक असीम अन्तराल हमारे नैतिक मूल्यों और भौतिक आका-क्षाओं के बीच उपस्थित है। इसको जोडना ही हमारे राष्ट्रीय विकास की सबसे बडी आवश्यकता है। यह जोडने का काम शायद शिक्षा ही कर सकती है।

आज की हमारी विकास-योजनाएँ शहर और शहरी जीवन के विकास को प्रगति और सम्पन्नता का केन्द्र मानकर सचालित हो रही हैं। गाँवों का नगरीकरण किया जा रहा है। नये विशाल उद्योग प्रतिष्ठान हमारे देश की धरती पर फफोले की तरह उभड रहे हैं जहाँ से असन्तोष और असमता का स्राव हो रहा है, समाज में अनेक नयी व्याधियाँ उनके सम्पर्क से पैदा हो रही हैं। गाँव निरन्तर उजड रहे हैं

और शहर दानव की तरह अपना आकार बढा रहे है। यह सब इसलिए हो रहा है कि आज हमारे मूल्यो की पहचान धुँधली हो गयी है।

गाधीजी की दृष्टि बहुत मौलिक और दूरगामी थी। उन्होने आदर्श समाज की रचना के लिए यह अनुभव किया कि शिक्षा के ढाँचे मे आमूल परिवर्तन करना होगा। इसीलिए उन्होने अपने रचनात्मक कार्यक्रम मे बेसिक शिक्षा को शामिल किया। यह शिक्षा-पद्धति गाधीजी की अपनी देन थी और इसका उद्देश्य था शिक्षा को जीवन और जीवन के यथार्थ से सम्पृक्त करना। उन्होने हाथ के कौशल को शिक्षा का केन्द्र बनाया। श्रम के द्वारा सीखने का कार्यक्रम, विद्यार्थी की बौद्धिक, शारीरिक और नैतिक क्षमताओ का विकास करने के साथ ही विदेशियो द्वारा बनायी गयी अनेक तरह की विषमताओं को भी तोडने का एक सशक्त माध्यम था।

शिक्षा की आवश्यक निष्पत्ति

शिक्षा को उपयोगी और सार्थक बनाने के लिए उसको जीवन से जोडना, जीवन की सगति मे लाना और जीवनोपयोगी बनाना अत्यन्त आवश्यक है। इसके द्वारा उन नैतिक मूल्यो का स्वयमेव विकास होगा, जिनकी शून्यता और खोखलेपन के कारण हमारा विकास, जिसका लक्ष्य केवल भौतिक सम्पन्नता है, रोका जा सकता है। इस स्थापना की आवश्यक निष्पत्ति यह होनी चाहिए कि हमारा देश जो गाँवो का देश है और जिसको आर्थिक प्रणाली कृषि पर आधारित है, उसके चेहरे को हमारी आधुनिक शिक्षा प्रतिबिम्बित करे। आज हमारी आरम्भिक शिक्षा से लेकर उच्चतम शिक्षा तक कोई भी बिन्दु नही है, जहाँ इस शिक्षा-प्रणाली का मेल ग्रामीण और कृषि-जीवन से होता हो। यह बात दूसरी है कि गाँव के बच्चे और बच्चियाँ गाँव के स्थापित स्कूल मे शिक्षा पा रहे हैं, लेकिन उनके सामने गाँव और समाज दूसरे शब्दो मे भारतीय जीवन के वे मूल्य नही हैं, जिनकी प्रतिष्ठा करने से ही यहाँ की धरती और वातावरण के अनुकूल सामाजिक जीवन का विकास हो सकता है। आज के स्कूल की चहारदीवारी मे बच्चे आरम्भ से ही न केवल अपने को बन्द पाते हैं, बल्कि जीवन भर अपने को एक दायरे मे बन्द करने की आदत डाल लेते हैं। यह दायरा ग्रामीण और कृषि-जीवन से हमेशा कटा हुआ होता है।

आज हमारे विकास के सामने जो एक प्रश्नचिह्न लगा हुआ है उसका मुख्य कारण शायद यही है कि हमारी ग्राम्य शक्ति का अभी तक इन विकास-योजनाओं के साथ हार्दिक सम्बन्ध नही स्थापित हो पाया है। आधुनिक शिक्षा-प्रणाली ने एक व्यापक असन्तोष, विद्रोह और हिंसा की भावना नयी पीढ़ी मे पैदा की है। उनमे त्याग, सामाजिक सेवा, सहकार और सामूहिक जीवन की भावनाओ को जन्म देने

के स्थान पर बिखराव, कुण्ठा, स्वार्थ और उपभोग की भावना इतनी प्रगल्भ हुई है कि विकास के नाम पर जो कुछ भी थोड़ी-बहुत हमारी भौतिक प्रगति हुई है, वह असन्तोष और हिंसा की बाढ़ मे डूब जाना चाहती है। इसका एकमात्र विकल्प यही है कि हम साहसपूर्वक शिक्षा के सारे ढाँचे को बदलें। जीवन के साथ उसको सम्पृक्त करें और मानवीय श्रम और समता के आधार पर नये मनुष्य की रचना को अपना लक्ष्य बनाकर इसके कार्यक्रम को नये सिरे से ढालें। आरम्भिक शिक्षा केवल अक्षर और गिनती की शिक्षा न होकर काम, प्रयोग और साहसिक जीवन के बीच पिरोयी जाय। गाँव की शिक्षा चहारदीवारी से बाहर निकले, खेतो, तालाबो, बगीचो, नदियो के बीच उन्मुक्त भाव से उनकी कला, सौन्दर्य और उसके श्रम से अपने को स्पन्दित करे। तभी हमारी सोयी हुई कृषि और गाँव समाज की शक्ति जगेगी और राष्ट्रीय विकास की यह कुण्ठा और गतिशून्यता समाप्त होगी। शिक्षा के हर स्तर पर प्रत्येक कार्यक्रम को किसी लक्ष्य के अनुरूप हमे ढालना होगा, चाहे वह प्रणाली या पाठ्यक्रम हो, या पाठशाला-प्रबन्ध हो।

आधुनिक शिक्षा और जीवन ने हमारे मन, विचार और आदर्शों को विदेशी प्रभाव से इतना रंग डाला है कि हजार चिल्लाने और शोर करने पर भी आधुनिक शिक्षा मे पले हमारे देशवासी देश के ग्रामीण जीवन के आदर्शों के प्रति सच्ची निष्ठा अपने मे उत्पन्न नहीं कर पा रहे हैं। आधुनिक शिक्षा-प्राप्त व्यक्ति चाहे वह सरकारी कर्मचारी, राजनैतिक नेता, अध्यापक या नीति बनानेवाला हो गाँव मे जब भी जाता है अपने को ग्राम्य जीवन से भिन्न और ग्राम्यवासियो से इतर समझता है। उनकी वेशभूषा, रहन-सहन, चाल-ढाल और भाषा-व्यवहार को वह हीन भाव से देखता है और अपने मे एक श्रेष्ठता का, अर्थात् अलगाव का अनुभव करता है। इस अलगाव की भावना पैदा करने और बढाने मे अंग्रेजी भाषा, अंग्रेजी वेशभूषा और अंग्रेजो की नौकरी ने सबसे उल्लेखनीय कार्य किया है।

ग्रामीण जीवन की भूमिका राष्ट्रीय विकास मे तभी महत्वपूर्ण हो सकती है, जब हम उसकी भाषा उसकी मान्यता और जीवन-प्रणाली के प्रति न केवल सम्मान का भाव पैदा करें बल्कि उसे शिक्षा और विकास दोनो का आधार बनावें। शिक्षा के साथ ग्रामीण जीवन और उसके आदर्शों की सही संगति जिस दिन प्रतिष्ठित हो जाय उस दिन हमारे देश के जीवन मे एक नया पौरुष, आत्मविश्वास और कर्मठता का सचार हो सकता है। •

डा० मोती सिंह—प्राचार्य, डिग्री कालेज, गाजीपुर।

विचार-मंथन

- भारतीय शिक्षा कैसी हो ?
- आज की शिक्षा
- शिक्षा का दायित्व

भारतीय शिक्षा कैसी हो ?

डा० सीताराम जायसवाल

भारत सरकार ने कोठारी शिक्षा-आयोग की नियुक्ति करके भारत के लिए शिक्षा की एक राष्ट्रीय योजना के महत्त्व को स्वीकार किया था। कोठारी शिक्षा-आयोग की रिपोर्ट सन् १९६६ मे प्रकाशित हुई। कोठारी आयोग ने भारत मे शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली के उद्देश्यो पर समुचित प्रकाश डाला। इस लेख मे हम, कोठारी शिक्षा-आयोग ने भारतीय शिक्षा के उद्देश्यो की जो व्याख्या की है, उस पर भी ध्यान देंगे, क्योंकि किसी देश की राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली उसी समय 'राष्ट्रीय' कहलाने की हकदार है, जब कि वह राष्ट्र की आवश्यकताओ एवं आकाक्षाओ के अनुरूप हो।

वर्तमान भारतीय शिक्षा

वर्तमान भारतीय शिक्षा जन-जीवन म अलग है। इसके द्वारा भारतीय राष्ट्र की आवश्यकताओ की पूर्ति नही हो रही है और न ही यह भारतीय जनता की आकाक्षाओ का ध्यान रखती है। भारत के अंग्रेज शासको ने अंग्रेजी राज को मजबूत रखने के लिए भारत म एक ऐसी शिक्षा की व्यवस्था की थी, जो सामान्य जनता के लिए नही थी। यह शिक्षा-प्रणाली दफ्तर के बाबुओ के लिए थी और यही शिक्षा-प्रणाली स्वतंत्र भारत मे भी चल रही है। राष्ट्रपिता महात्मा गाधी ने *बुनियादी शिक्षा के द्वारा भारतीय शिक्षा मे क्रातिकारी परिवर्तन लाना चाहा।* लेकिन भारत के शासक-वर्ग की निष्ठा बुनियादी शिक्षा मे न थी। और इस प्रकार गाधीजी की 'नयी तालीम' 'बेकार' सिद्ध कर दी गयी।

लेकिन अब वर्तमान भारतीय शिक्षा मे आमूल परिवर्तन आवश्यक हो गया है। यदि समय रहते भारतीय शिक्षा मे अपेक्षित परिवर्तन नही किया गया तो यह सारी शिक्षा-व्यवस्था अपनी आतरिक दुर्बलताओं के कारण स्वय नष्ट हो जायेगी। वर्तमान छात्र-असतोष इस बात का परिचायक है कि आज की शिक्षा नयी पीढी के लिए निरर्थक है। आज का छात्र यह भली-भाँति समझता है कि जो शिक्षा वह प्राप्त कर रहा है, किसी काम की नही है। यही कारण है कि आज के भारत मे शिक्षित बेकारो की संख्या मे निरन्तर वृद्धि हो रही है। अतः इन सब बातो को ध्यान मे रखते हुए हमे भारतीय शिक्षा के उन उद्देश्यो पर विचार करना चाहिए, जिनका उल्लेख कोठारी शिक्षा-आयोग ने किया है।

भारत की भावी शिक्षा

भारत की भावी शिक्षा के उद्देश्यो के सदर्भ मे कोठारी शिक्षा-आयोग ने इस बात पर बल दिया है कि शिक्षा जन-जीवन से सम्बन्धित हो और यह जनता की

भावनाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति करे। इसीके साथ भारतीय शिक्षा भारत में वाछनीय सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन का साधन बने। इसमें सन्देह नहीं कि भारत की भावी शिक्षा गत्यात्मक होनी चाहिए, जिससे कि तीव्र गति से होनेवाले परिवर्तन में वह अपना योगदान कर सके। लेकिन इसीके साथ हमें यह भी घ्यान मे रखना होगा कि हम किस प्रकार का सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन चाहते हैं। केवल इतना कहना पर्याप्त नही है कि सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन होना चाहिए। हमें यह भी जानना चाहिए कि हम किस प्रकार का सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन चाहते हैं। जबतक यह बात हमें स्पष्ट रूप से नही मालूम होती तबतक हम भारत की भावी शिक्षा की रूपरेखा को भी ठीक से नहीं समझ सकेंगे। कोठारी शिक्षा-आयोग ने सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन की चर्चा तो की है, लेकिन इसके स्वरूप को स्पष्ट नही किया है।

सामाजिक परिवर्तन

पहले हम सामाजिक परिवर्तन को लें। भारतीय समाज बदल रहा है। गाधीजी ने अपने रचनात्मक कार्यक्रम द्वारा भारतीय समाज में वाछनीय परिवर्तन लाना चाहा। गाधीजी ऐसा सामाजिक परिवर्तन चाहते थे, जिसमे 'सर्वोदय' हो अर्थात् सबका कल्याण हो और समाज में किसीके द्वारा किसी अन्य का शोषण न किया जाय। पूँजीवादी व्यवस्था मे कुछ व्यक्ति चतुराई से अन्य के श्रम से लाभ उठाते हैं। लेकिन हमें ऐसा सामाजिक परिवर्तन लाना है, जो शोषण के स्थान पर सहयोग, हिंसा के स्थान पर अहिंसा, तथा सभी प्रकार के भेद-भावों को मिटाकर समता का प्रसार करे। स्पष्ट है कि इस प्रकार का सामाजिक परिवर्तन तो 'नयी तालीम' ही ला सकती है न कि कोठारी शिक्षा-आयोग द्वारा प्रतिपादित शिक्षा।

आर्थिक परिवर्तन

भारत से गरीबी को दूर करने के लिए शिक्षा द्वारा ऐसा आर्थिक परिवर्तन लाना होगा, जो 'आर्थिक समानता' स्थापित करे। गाधीजी ने आर्थिक समानता के विषय में लिखा है—

"आर्थिक समानता का सच्चा अर्थ जगत् के सब मनुष्यों के पास एक-सी सम्पत्ति का होना, यानी सबके पास इतनी सम्पत्ति होना, जिससे वे अपनी कुदरती आवश्यकताएँ पूरी कर सकें।"[१] गाधीजी का यह कथन अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। आज विश्व के साम्यवादी भी आर्थिक समता की चर्चा करते हैं। लेकिन अंतर मुख्य रूप से साधन के कारण है। साम्यवादी हिंसा के द्वारा आर्थिक समता स्थापित करते हैं, जब कि

१ "गाधी-विचार-रत्न", सस्ता साहित्य मण्डल, नयी दिल्ली, पृष्ठ : २१५।

गांधीजी "अहिंसा के द्वारा, घृणा के विरुद्ध प्रेम की शक्ति का उपयोग करके लोगों को अपने विचार का बनाकर आर्थिक समता"[२] सपादित करना चाहते हैं। इस प्रकार भारत में ऐसा आर्थिक परिवर्तन होना चाहिए, जो अहिंसक तरीके से आर्थिक समता का प्रसार करे। दूसरे शब्दों में, भारतीय शिक्षा भारत में अहिंसक आर्थिक क्रान्ति लाये।

भारतीय शिक्षा जो अहिंसक आर्थिक परिवर्तन करेगी उसके फलस्वरूप भारतीय जनता 'श्रम' को ही अपनी पूंजी समझेगी। भारतीय जनता इस बात में विश्वास करेगी कि सामाजिक न्याय के लिए, सबकी भलाई के लिए समान भाव से कार्य करना आवश्यक है। अतः यह स्पष्ट है कि शिक्षा द्वारा आर्थिक परिवर्तन अहिंसा पर आधारित हो। लेकिन अहिंसा का अभ्यास कठिन है। इसके लिए शिक्षा के द्वारा भारतीय जीवन के आध्यात्मिक और नैतिक मूल्यों में अहिंसा को सर्वोच्च स्थान देना होगा।

सामाजिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्य

भारतीय शिक्षा की व्यूह-रचना करते समय हमें इस बात का ध्यान रखना होगा कि शिक्षा ऐसे सामाजिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों का विकास करे, जो भारतीय संस्कृति को गतिमान बनायें। यह तो हमें ज्ञात ही है कि सामाजिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्य किसी भी संस्कृति के अनिवार्य अंग हैं। वास्तव में ये मूल्य उन उद्देश्यों, लक्ष्यों तथा साध्यों के समान हैं, जो किसी समाज के सम्मुख सदा रहते हैं। जब यही साध्य जीवन के अंग होते हैं, तब ये जीवन-मूल्यों के रूप में व्यक्ति तथा समाज के व्यवहारों को प्रभावित करते हैं। अतः आज की शिक्षा में सामाजिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों को कदाचित सबसे अधिक महत्त्व दिया जाता है। लेकिन आधुनिक जीवन में विज्ञान ने इतनी अधिक भौतिक सुविधाएँ उत्पन्न कर दी हैं कि आज का मनुष्य अपने आध्यात्मिक स्वरूप को भूल गया है। इसीलिए स्वामी विवेकानन्द 'मनुष्य' का निर्माण करनेवाली शिक्षा पर बल देते थे।

महात्मा गांधी ने सत्य और अहिंसा के आधार पर समस्त सामाजिक, नैतिक आध्यात्मिक मूल्यों का प्रतिपादन किया है। भारतीय शिक्षा उसी समय वाञ्छनीय सामाजिक, नैतिक, तथा आध्यात्मिक मूल्यों का विकास कर सकती है, जब कि भारतीय दैनिक दर्शन सत्य तथा अहिंसा पर आधारित हो।

२. "गांधी-विचार रत्न," सस्ता साहित्य मंडल, नयी दिल्ली, पृष्ठ : २१५

डा० सीताराम जायसवाल—प्राध्यापक, शिक्षा सकाय, लखनऊ विश्वविद्यालय।

आज की शिक्षा

देवेन्द्रदत्त तिवारी

शिक्षा के दो पक्ष हैं या यो कहा जाय कि शिक्षा की दो क्रियाएँ हैं। एक तो यह कि शिक्षा अतीत की संस्कृति, इतिहास एवं मान्यताओ को विद्यालयों के माध्यम से सुरक्षित रखती है—पुरानी पीढी, नयी पीढी को पुरातन संस्कार देती है। शिक्षा का दूसरा कार्य नयी संस्कृति, नये विचार, नये आदर्श एवं मान्यताओ का निर्माण करना है। इस रूप मे शिक्षा सामाजिक क्रान्ति का संचार करती है, समाज को नया रूप, नयी विधाएँ एव नयी दिशाएँ देती है। जिन्होने वर्तमान भारतीय शिक्षा और उसके सामाजिक परिवेश को गहराई से देखा है वे यह जानते हैं कि हमारी शिक्षा ने न तो पुरानी संस्कृति की ही रक्षा की और न नयी मान्यताओ का सर्जन ही किया। आज हमारे सामने पुरानी और नयी मान्यताओ से विहीन एक असीम, अनन्त, पथहीन, दिशाहीन और क्षितिजहीन शून्य है और हर व्यक्ति निराशा के घने आवरण म मार्ग ढूँढने का प्रयास कर रहा है। यदि शिक्षा द्वारा हमारी आकाक्षाओ की पूर्ति नही हुई तो इसका दोष किस पर है? मेरा विचार है कि इस दोष के भागी हम शिक्षक हैं।

प्रगतिशील शिक्षा-प्रणाली की देन

यदि हम प्रगतिशील देशो की ओर दृष्टि उठाकर देखें तो हम पता चलता है कि आज अमरीका की जो समृद्धि है, जो सम्पन्नता है, जो शक्ति है वह वहाँ के महान् शिक्षाविद् डिवी के विचारो तथा उसके द्वारा प्रतिपादित शिक्षा प्रणाली के ही कारण है। उसने अमरीका के निवासियो को अपनी शिक्षा-पद्धति द्वारा कर्मयोग का पाठ पढ़ाया, जिसके फलस्वरूप अमरीका का प्रत्येक नागरिक स्वावलम्बी, कर्मशील और आत्मनिर्भर बनने का प्रयत्न करता है। इसी प्रकार रूस मे भी वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भिक चरण मे जब क्रान्ति हुई तो प्रसिद्ध शिक्षक ए० एस० मैकारेंको ने श्रम पर आधारित शिक्षा का सूत्रपात किया और पचास वर्ष पूर्व जो देश जारशाही से आक्रान्त, जर्जर और पददलित था वह आज संसार म गर्व से अपना मस्तक ऊँचा उठाये हुए विद्यमान है। ऐसे कितने ही उदाहरण प्रगतिशील देशो के दिये जा सकते हैं।

यह सौभाग्य का विषय है कि इस देश मे भी स्वतंत्रता-संग्राम के संदर्भ म जब क्रान्ति का संचार हुआ तो एक नयी विचारधारा, बुनियादी शिक्षा के रूप में, गाधी-जी ने दी। उन्होंने बताया कि शिक्षा का माध्यम कोई उत्पादक क्रिया होनी चाहिए और उस उत्पादक क्रिया द्वारा विद्यार्थियों को आत्म-निर्भरता और स्वावलम्बन की

शिक्षा दी जानी चाहिए। गाधीजी ने जो कुछ कहा था वह कोई नयी बात नही थी। इस शताब्दी के प्रारम्भ मे ही डिवी ने 'स्कूल एण्ड सोसायटी' मे इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था।* लगभग ३० वर्षों के बाद भारतीय शिक्षा-आयोग ने भी उसी आत्म-निर्भरता और स्वावलम्बन की बात को दोहराया है। उसका कथन है कि शिक्षा-संस्थाओ मे जो कुछ भी कार्य किया जाय, उससे विद्यार्थियो एवं विद्यालयो को कुछ आर्थिक आय होनी चाहिए और उसमे स्वावलम्बन की शिक्षा दी जानी चाहिए।

"In a well-organized programme work-experience, atleast from the higher primary stage, should also result in some earning for the student—either in cash or in kind This would meet, to some extent the expenditure which the students have to incur on their education or on their maintenance while at study *The amount of this earning will naturally increase as* the student go up the educational ladder and it becomes possible to organize work-experience in a manner that would enable them to 'earn and learn'. The ultimate objective should be to move towards a situation in which the education of a student is not held to be complete unless he participates in some type of work-experience in real life conditions and earns some amount, however small, towards his own maintenance This will also help to develop in him values which promote economic growth, such as appreciating the importance of productive work and manual labour, willingness and capacity for hard work and thrift We realize that this is no easy task, but it will pay adequate dividends in the long run." (Chapter 1, para 1 31, p 8)

इन सब बातो के होते हुए भी देश ने गाधीजी की बुनियादी शिक्षा को हृदय से स्वीकार नही किया। परिणाम यह हुआ कि हमने एक लम्बे अरसे के लिए प्रगति के द्वार बन्द कर दिये। विद्यालयो एवं विश्वविद्यालयो की शिक्षा स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भी उसी पद्धति का अनुसरण करती रही जो अंग्रेजो के समय में प्रचलित

---

* Dewey John, "The School and Society, The University of Chicago press U S A., (Published Nov, 1899), P 15

'The great thing to keep in mind then, regarding the introduction in the school of various forms of occupation, is that *through* them the entire spirit of the school is renewed "

थी और यद्यपि हम प्रत्येक कमीशन और प्रत्येक कमेटी से यह सुनते आये है कि शिक्षा मे परिवर्तन होना चाहिए, किन्तु आज तक कोई विशेष परिवर्तन दृष्टिगत नही हुआ। आज की शिक्षा-संस्थाएँ ऐसे कारखाने हैं, जहाँ से निकलने के बाद नवयुवक निष्क्रिय और निष्प्राण हो जाते हैं। भगवान ने जो दो हाथ काम करने को दिये है उनका प्रयोग करने मे न केवल वे अयोग्य हो जाते हैं, प्रत्युत उनका प्रयोग करने मे वे लज्जा का अनुभव करने लगते हैं, उन्हे शर्म आती है। गीता के देश में यदि लोग कर्मयोग को इस प्रकार भूल जायँ तो देश का कल्याण कैसे होगा ?

प्रगतिशील देशों के छात्रों की मिसालें

आप किसी भी प्रगतिशील देश को ले लें तो आप यह देखेंगे कि वहाँ के बच्चे एवं नवयुवक फर्श पर झाड़ू लगाकर, होटलों मे जूठे बर्तन धोकर, अखबार बेचकर और नाना प्रकार के अन्य कार्य करके अर्थोपार्जन कर अपना कार्य चलाते हैं। अपना दरवाजा और चारपाई यदि टूट जाय या अपना सामान कही ले जाना हो तो शायद ही उन देशों मे कोई भी मजदूर या नौकर की तलाश करता पाया जायगा, किन्तु अपने यहाँ अपना सामान ले चलने मे सकोच का अनुभव होता है। चीन के विद्यार्थियों ने अपने विद्यालयों की इमारतें एवं सड़कें बनायी है। जापान मे हर घर तथा हर परिवार उद्योग का केन्द्र है। मेरे कहने का तात्पर्य केवल यह है कि जो कुछ प्रगतिशील देशों मे हो रहा है या जो कुछ गाधीजी ने प्रतिपादित किया था अथवा जिस बात की पुष्टि कोठारी-कमीशन ने की है वह कोई नयी बात नही है। हमारी प्राचीन संस्कृति मे उत्पादक एवं उपयोगी क्रिया द्वारा शिक्षा दिये जाने के प्रमाण मिलते हैं। समाज-सेवा भी शिक्षा का प्रमुख अंग था। इसके अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

छान्दोग्योपनिषद् के चतुर्थ अध्याय मे सत्यकाम जाबाल का एक आख्यान है। सत्यकाम आचार्य के पास विद्या प्राप्त करने के लिए जाता है। आचार्य ने वेदों की शिक्षा देने के पहले सत्यकाम को एक काम सौंपा। उन्होंने सत्यकाम को चार सौ दुर्बल गायों का दायित्व दिया और यह कहा कि जब ये गायें हृष्टपुष्ट होकर एक सहस्र हो जायँ तब मेरे पास आना। वर्षों के श्रम, संयम और साधना के पश्चात् जब वे गायें एक सहस्र हो गयी तब वह आचार्य के पास आया। आचार्य ने उसे देखते ही कहा, "वत्स ! तू ब्रह्मवेत्ता-सा भासित हो रहा है, क्या किसीने तुझे कुछ ज्ञान दिया है ?" सत्यकाम ने उत्तर दिया, "अन्ये मनुष्येभ्यः"—अर्थात् मैंने जो ज्ञान प्राप्त किया है वह मनुष्यों से नही पाया। उपनिषद् के आख्यान के अनुसार उसने ज्ञान प्राप्त किया था वायु, अग्नि, और पशु-पक्षियों से। इस आख्यान मे शिक्षा का सार्वभौम और शाश्वत सिद्धान्त समाविष्ट है। डिवी ने कहा है कि शिक्षा दर्शन

का क्रियात्मक पक्ष है और उसने यह भी कहा है कि पहले क्रिया होती है तब विचारों का सर्जन होता है। सत्यकाम ने गो-पालन की क्रिया द्वारा जो ज्ञान प्राप्त किया उसकी तुलना आचार्य ने ब्रह्मज्ञान से की और यह रहस्य भी इस देश के वासियों को समझना चाहिए कि गो-पालन और कृषि में सबसे पहले उत्कर्ष प्राप्त करके अमरीका ने गत शताब्दी में अपने कृषि महाविद्यालयों (Land Grant Colleges) द्वारा प्रगति का पथ प्रशस्त किया।

रूसो ने भी, जो आधुनिक शिक्षा-पद्धतियों का मूल प्रवर्तक और प्रेरणा-स्रोत कहा जाता है, इसी प्रकृति द्वारा शिक्षा देने का समर्थन किया है, जिसका उल्लेख उपनिषदीय आख्यान में प्रकारान्तर से किया गया है।

शिक्षक : शैक्षिक परिवर्तन की मूल शक्ति

इससे यह स्पष्ट है कि हम उन उपयोगी प्राचीन प्रणालियों को भूल चुके हैं, जिन्हें पाश्चात्य देशों ने आत्मसात कर अपना विकास किया है। जैसा मैंने पहले कहा था कि हमारी वर्तमान शिक्षा न तो पुरातन मान्यताओं का संरक्षण करने में समर्थ है और न नयी मान्यताओं की सर्जना करने में। फिर इस समस्या का समाधान कैसे हो? समस्या के समाधान के लिए अनेक सुझाव बड़ी-बड़ी समितियों द्वारा दिये गये हैं, किन्तु इन सुझावों में गत्यवरोध समाप्त करने की क्षमता न उत्पन्न हो सकी। उसका मुख्य कारण यह है कि परिवर्तन और सुधार करने की सिफारिशें उन लोगों के गले नहीं उतरी, जिनमें परिवर्तन लाने की क्षमता थी। शिक्षा के क्षेत्र में परिवर्तन लाने की प्रक्रिया की मूल शक्ति शिक्षक में केन्द्रित है। यदि शिक्षा के उद्देश्य बदलने हैं, यदि पाठ्यक्रम बदलना है, यदि शिक्षण-विधि में सुधार करना है और यदि मूल्यांकन की विधियों में संशोधन करना है तो यह तबतक सम्भव नहीं हो सकता जबतक शिक्षक अपनी शक्ति का और अपनी क्षमताओं का प्रयोग श्लाघ्य वाञ्छनीय परिवर्तनों के लिए न करे। केवल केन्द्र पर बैठकर कुछ योजनाओं के बना लेने से और कुछ आदेश एवं परिपत्र निर्गत कर देने से शिक्षा के क्षेत्र में परिवर्तन अथवा सुधार नहीं होगा।

शैक्षिक क्षेत्र का सबसे बड़ा सुधार

प्रगतिशील देशों में स्थानीय संगठन, वे चाहे स्थानीय शिक्षा-अधिकारी (*Local Education Authority*) हों, चाहे *लोकल स्कूल-बोर्ड* हों, अपने बच्चों के लिए शिक्षा के उद्देश्य स्वयं निर्धारित करते हैं। विद्यालयों के शिक्षक स्वयं *अपना पाठ्यक्रम तैयार करते हैं* और अपने विद्यार्थियों का मूल्यन. स्वयं मूल्यांकन करते हैं। अमरीका में सीनियर हाईस्कूल का प्रधानाचार्य, हाईस्कूल पास करने का प्रमाणपत्र स्वयं दे देता है। रूस में यद्यपि प्रश्नपत्र बाहर से बनकर आते हैं

किन्तु विद्यार्थी का सर्वांगीण मूल्यांकन स्थानीय विद्यालय का एक पैनल करता है। ऐसे देशों में शिक्षक प्रतिदिन सोचता है कि उसे कल क्या पढ़ाना है, कोई ऐसी महत्वपूर्ण घटना तो नहीं हुई जिससे विद्यार्थियों को परिचित कराना हो। इस प्रकार विद्यालयों में वातावरण से सम्बद्ध गतिशील पाठ्यक्रम चलता रहता है। दूसरे शब्दों में, शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षक ही परिवर्तन के कारक हैं। हमारे यहाँ जबतक शिक्षकों एवं विद्यालयों को यह सक्रियता नहीं मिलेगी और जबतक पुराने प्रशासकीय ढाँचे में शिक्षा चलती रहेगी तबतक शिक्षा के क्षेत्र में किसी प्रकार का कोई परिवर्तन सम्भव नहीं है। इसीलिए डाक्टर कोठारी ने भारतीय शिक्षा-आयोग की रिपोर्ट प्रस्तुत करते समय केन्द्रीय शिक्षामंत्री को सम्बोधित करते हुए अपने पत्र में यह कहा था कि शिक्षा के क्षेत्र में सबसे बड़ा सुधार जड़ता तथा निष्क्रियता को समाप्त करना है।

यह हर्ष का विषय है कि भारतीय शिक्षा आयोग ने जहाँ बड़ी-बड़ी योजनाएँ प्रस्तुत की हैं वहाँ एक विचार संस्थान्तगत योजना-निर्माण (Institutional Planning) का भी है, जिसमें इस बात पर बल दिया गया है कि संस्थाओं को अपने विकास के लिए अपनी योजना स्वयं बनानी चाहिए और उसका पूर्ण उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेना चाहिए। आज का युग केन्द्रीय योजनाओं का युग कम है, स्थानीय एवं विकेन्द्रीय योजनाओं का अधिक। इसके लिए यदि प्रशासकीय प्रणाली कुछ परिवर्तित करनी पड़े तो वर्तमान उपलब्ध आर्थिक सुविधाओं में ही विकास और प्रगति के द्वार खुल सकेंगे। •

डा० देवेन्द्रदत्त तिवारी—उपशिक्षा निदेशक (प्रशिक्षण) उ० प्र० इलाहाबाद
प्राचार्य-सेंट्रल, पेडागाजिकल इन्स्टीट्यूट, इलाहाबाद

शिक्षा का दायित्व

ति० न० आत्रेय

पाँव के तल्वे इस ढग से बने थे कि उसके मुकाबिले जमीन पर खडे-खडे चलने की ऐसी सुन्दर व्यवस्था और कुछ हो नही सकती थी। मगर जिस दिन हमने जूते पहनना शुरू किया उसी दिन से तलवो को मिट्टी के संसर्ग से बचाकर उनकी जरूरत को ही मिट्टी मे मिला दिया। तलवे अबतक बडी आसानी से हमारा बोझ ढो रहे थे, मगर अब तलवों का भार हमे ही सम्हालना पड रहा है। अब नगे पाँव सडक पर चलते हैं तो तलवे हमारी सहायता न करके उलटे पग-पग पर कष्ट का कारण बन जाते हैं। सिर्फ इतना ही नही उनके बारे मे हमे हमेशा चौकन्ना रहना पडता है। मन को तलवो की सेवा मे नियुक्त न रखें तो मुसीबत आ सकती है—तलवो म ठण्ड लग गयी तो छीक, पानी भर गया तो बुखार, आदि। अन्त म मोजे, चट्टी, बूट, एडीदार जूते आदि विविध उपकरणो से उनकी पूजा करते-करते उन्हे सभी कामो से छुट्टी ही दिये देते हैं।

इसी तरह विश्व-शक्ति और अपनी स्वाधीन शक्ति के बीच हमने अपने सुभीते के लोभ से बहुत-सी दीवारें खडी कर दी हैं। सस्कारवश और अभ्यासवश कृत्रिम आश्रयो को ही हम सुविधा समझ बैठे हैं और अपनी स्वाभाविक शक्तियो को असुविधा। कपडे पहनते-पहनते हमने ऐसा कर डाला है कि अपने चमडे से भी कपडो को बडा मानने लगे हैं।

इसमे शक नही कि सभ्य समाज मे कपडे-लत्ते और जूते मोजो की जरूरत पडी, इसीलिए उनकी सृष्टि हुई, परन्तु इन साधनो को ही प्रभु मानकर उनके सामने अपने को सकुचित बनाये रखना कहाँ तक ठीक है ?

शरीर के लिए जैसे कपडे, मोजे, जूते आदि हैं, हमारे मन के लिए पुस्तकें भी, ठीक वैसे ही हो उठी हैं। हम यह भूल-से गये हैं कि पुस्तक पढना शिक्षा का मात्र एक सुविधाजनक साधन है उल्टे हम पुस्तक पढने को ही शिक्षा का एकमात्र साधन समझ बैठे हैं। इस विषय म हमारे संस्कार को डिगाना असम्भव-सा हो गया है।

ज्ञान मे रस-सचार कैसे ?

शिक्षक किताब हाथ में लेकर बचपन से ही हमे किताब रटाना शुरू कर देते हैं। परन्तु पुस्तक के भीतर स ज्ञान-सचय करना हमारे मन का स्वाभाविक धम नहीं है। हमारी मनन-शक्ति का स्वाभाविक विधान तो यही था कि प्रत्यक्ष वस्तु को देख-सुनकर, हिला-डुलाकर बहुत ही आसानी स वह उसका ज्ञान प्राप्त कर

लिया करती थी। दूसरो के अनुभूत और परीक्षित ज्ञान को भी जब उन लोगा की जबानी सुनता, तभी हमारा मन उसे समझता है। क्योंकि मुँह की बात तो कोरी बात नहीं होती, वह असल बात होती है, उसम प्राण होता है, आँख और मुह का भाव होता है, कण्ठ का स्वर होता है, हाथ और अगुलियों का सकेत होता है और इन सबके द्वारा कान स सुनने की भाषा को एक आकार और संगीत मिल जाता है, वह बात आँख और कान, दोनो की चीज बन जाती है। सिर्फ इतना ही नहीं, जब हम यह मालूम हो जाता है कि बोलनेवाला मनुष्य अपने हृदय की चीज सीधे निकालकर तुरन्त हम दे रहा है, तो एक हृदय के साथ दूसरे हृदय का प्रत्यक्ष मिलन होता है और उस मिलन के कारण ज्ञान म रस का सचार होने लगता है।

विकृत सस्कार

परन्तु बदकिस्मती स हमारे शिक्षक किताब पढाने के एक उपलक्ष्य रह गये हैं और हमारे बालक किताब पढने के एक उपसग। इससे नतीजा यह होता है कि जिस तरह हमारा शरीर कृत्रिम चीजो की आड म पडकर सृष्टि के साथ अपना सम्बन्ध खो बैठा है और उसे खोकर ऐसा आदी बन गया है कि उस सम्बन्ध को अब कष्टदायक और लज्जाजनक समझने लगा है, उसी तरह हमारा मन भी दुनिया के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध की स्वाद-शक्ति बहुत-कुछ खो बैठा है। सभी चीजो को किताब मे से समझने का एक अस्वाभाविक अभ्यास हममे जमकर बैठ गया है। पास ही म जो चीज पडी है उस जानने के लिए भी हम किताब का मुह ताकना पडता है। किसी नवाब का किस्सा है—जूता घुमा देने के लिए नौकर की बाट देखते-देखत शत्रु स वे घिर गये और कैद कर लिये गये। किताबी विद्या के मारे हमारी मानसिक नवाबी भी उसी तरह बहुत बढ गयी है। छोटे-से-छोटे विषय के लिए भी हमारा मन बिना किताब के ठहरता नहीं। विकृत सस्कारों के दोष से इस तरह की नवाबी हमारे लिए लज्जाजनक न होकर गौरवजनक हो जाती है और किताब के जरिये जानने को ही पाण्डित्य समझकर हम उसका गव करते हैं।

जगत को हम मन से नहीं छूते किताब से छूते हैं। कपडों मे लदे हमारे शरीर म जसा एक सकोच उत्पन्न हो गया है किताबो के कारण हमारे दिमाग को भी वही बात हो गयी है वह बाहर आना ही नही चाहता। लोगों के सहज स्वाभाविक बरताव करना और उनसे अपनेपन के साथ मिलकर बातचीत करना हमारे शिक्षित समुदाय के लिए कठिन हो गया है। हम किताब के आदमी को पहचानते है, पृथ्वी के आदमी को नहीं पहचानते। किताबी आदमी हमारे लिए मनोहर है और ससार का आदमी कुरूप और उबा देनेवाला। हम विराट सभाओ मे भाषण

दे सकते हैं, पर आम लोगो से बातचीत नही कर सकते। हम बडी-बडी बातो पर यानी किताब की बातो पर आलोचना कर सकते हैं और स्वाभाविक बातचीत या मामूली बातें हमारे मुंह से ठीक तौर से नही निकलती, अर्थात् यह स्पष्ट समझने की बात है कि दैवदुर्विपाक से हम पण्डित अवश्य हो गये हैं, लेकिन हमारा भीतर का मनुष्य मर गया है। मनुष्य के साथ मानव-भाव से हमारी अज्ञात गति-विधि हो, तो घर की बात, सुख दु ख की बात, बाल-बच्चो की बात, रोजी-रोटी की बात, उद्योग-धन्धो की बात अर्थात् शिक्षा-क्षेत्र की सारी ही बातें हमारे लिए सहज और सुखकर होती हैं। लेकिन किताब का आदमी बनी-बनायी बात कहने का आदी है। प्रत्यक्ष से उस कोई मतलब नही। इस तरह मनुष्य जब किताब हो जाने की कोशिश करता है तो उसमे मनुष्य का अपना स्वाद जाता रहता है। और ऐसी अवस्था का स्वाभाविक परिणाम है निरानन्द जीवन।

समग्र विकास की सबसे बडी बाधा

इस प्रकार आज की शिक्षा-पद्धति म बच्चो के समग्र विकास की सबसे बडी बाधा पुस्तको पर निर्भरता के कारण हो रही है। समग्र विकास के इच्छुक शिक्षको और अभिभावको का काम है कि बच्चो के मन मे ऐसे अन्धसस्कार तो कभी पैदा ही न होने दें कि पुस्तको का पढना ही शिक्षा है। उन्हे यह बात हम कदम कदम पर जताते रहना चाहिए कि प्रकृति के अक्षय भण्डार से ही पुस्तको का अम्बार खडा किया जाता है और उसम सबका अधिकार है। चूंकि आजकल किताबो का ऊधम बहुत बढ गया है, इसलिए पढाने की प्रथा भी बढ गयी है। असल मे पढाने स जबानी बनाने की जरूरत ज्यादा है। इस देश मे प्राचीन काल म, जबकि लिपि प्रचलित थी तब भी, तपोवनो मे पोथियो का व्यवहार नही हुआ। उस समय भी गुरु अपने शिष्यो को जबानी ही शिक्षा देते थे और छात्र उस वाणी मे नहीं, दिमाग मे लिख लेते थे। इस तरह एक दीप से दूसरा दीप जलता था। अब ठीक वैसा तो नही हो सकता, परन्तु फिर भी यथासम्भव छात्रो को किताबो के आक्रमण से बचाना ही चाहिए।

शिक्षा का विराट प्रश्न

इस प्रकार यदि पुस्तको की पढाई और तद्द्वारा विशिष्ट विषयो की जानकारी देना ही यदि शिक्षा का अन्त नही है, मानव-निर्माण मे भी यदि शिक्षा का स्थान स्वीकार करते हैं तो शिक्षा के सामने एक विकट प्रश्न खडा होता है। वह यह कि चूंकि समाज परिवर्तनशील है, इसलिए शिक्षा को भी अपना स्वरूप बदलते रहना होगा, तो शिक्षा क्या समाज के परिवर्तनो के अनुरूप ढलती जाय, अथवा समाज के परिवर्तन का स्वरूप निर्धारित करने का वह साधन बन सकती है या नही? क्योकि

पुरानी परम्परा के आधार पर समाज जीवन का सन्तुलन बनाये रखना एक बात है और समाज का सन्तुलन बनाये रखकर समाज-जीवन को बदलना बिल्कुल दूसरी बात है। शिक्षा से ये दोनों काम किये जा सकते हैं।

या समाज अमूर्त है, व्यक्तियों और उनके सम्बन्धों का नाम ही समाज है। तो व्यक्तियों के बारे में एक कथन यह है कि 'ससार के सभी मनुष्य समान हैं', तो दूसरा कथन यह है कि 'ससार का प्रत्येक मनुष्य एक-दूसरे से भिन्न है।' ये दोनों कथन सत्य हैं और इन दोनों कथनों के बीच मानव का जीवन व्यवहार चलता है। *इन दोनों सत्यों के समन्वय में ही मानव जीवन का सत्य समाया हुआ है।*

व्यक्ति की उन्नति के लिए और तद्द्वारा समाज के विकास के लिए जितनी भी संस्थाएँ बनी हैं उनका ध्येय यही मानव-जीवन है। व्यक्ति के आत्मिक विकास के लिए धर्म का उदय हुआ, तो हृदय के विकास के लिए नीति का निर्माण हुआ, इन्द्रियों के विकास लिए कला का सृजन हुआ तो बुद्धि के विकास के लिए शास्त्रों का अर्थात् विज्ञान का आविष्कार हुआ। फिर सार्वत्रिक समाधान की खोज में भूतसेवा का तत्त्व निकला।

इतिहास साक्षी है कि ये ही धर्म, नीति कला, शास्त्र और भूतसेवा—मानव जीवन के ध्येय रहे हैं। यह दूसरी बात है कि कभी किसी एक अंग का जोर रहा, तो कभी दूसरे का, फिर भी मूलत इन सब ध्येयों की साधना जीवन की दृष्टि से ही होती आयी है और आगे भी होती रहेगी।

वास्तविक जीवन-ध्येय

और हमने देखा कि इनमें से जो भी ध्येय जीवन के स्पर्श से जितना दूर होता जायगा उतने अंश में वह ध्येय एकांगी होगा, जड होगा और असत्य होगा। मानव एक ऐसा प्राणी है जिसमें सद्वस्तुओं के सारे अंश समाहित हैं—'मैन इज द मीटिंग पाइण्ट आव आल आस्पेक्टस आफ रियालिटी।' मानव का ध्येय उसकी आत्मा, बुद्धि, शरीर इन सब अंगों को अपने में समा लेनेवाला होना चाहिए और वही सत्य कहलाता है।

दूसरे शब्दों में सत्य के सभी अंगों की रक्षा करनेवाला ध्येय ही वास्तविक जीवन ध्येय है। समाज के सब व्यक्तियों को उस सत्य के आचरण के योग्य बनाना समाज की सभी सस्थाओं का, विशेषत शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए। यह दृष्टि न रही तो समाज में जड सम्प्रदाय झूठे ध्येयवाद, दाम्भिक आचरण आदि हर प्रकार की गन्दगी फैलती है। इसका प्रतिकार करने के लिए समाज में ध्येयनिष्ठ पुरुषों की सदा आवश्यकता रही है। बदलती परिस्थिति में गयी-गुजरी विचार-धारा, निरुपयोगी सस्थाएँ और अपर्याप्त नीति-वचन आदि खतम होने चाहिए और कालानुरूप परिवर्तन उनमें होना चाहिए और करने का काम ध्येयनिष्ठ पुरुषों का है।

अनेक विचारकों का मत है कि आनेवाला युग शिक्षक का है। आज शिक्षक इस स्थिति से अनभिज्ञ है। फिर भी विज्ञान और लोकतंत्र का तकाजा है कि सामाजिकता का प्रमुख तत्त्व शिक्षा ही है। इसका अर्थ यह है कि समाज का समग्र परिवर्तन करने का जो ध्येयनिष्ठ पुरुष का कर्तव्य है उसका एकमात्र साधन शिक्षा है और इसलिए शिक्षा का दायित्व इस युग में बहुत बड़ा है।

शिक्षा से अपेक्षा

आज समाज में उत्पादन-पद्धति आमूलाग्र बदल रही है। और इसलिए परम्परागत सामाजिक संस्थाएँ ढह रही हैं। कई पुरानी विचारसरणियाँ मिट रही हैं। विषमता के बन्धन असह्य हो रहे हैं। ऐसी स्थिति में जीवन की चुनौती की ओर दुर्लक्ष्य कर केवल मूढ़ बनकर परम्परा के गीत गाते रहना समाज को बचाने का मार्ग नहीं है। शिक्षा का कर्तव्य है कि वह जीवन में नया आशय भरे, समाज को नया रूप दे, ध्येयों को नया संस्कार दे।

धर्म का काम केवल पारलौकिक मोक्ष का जप करना नहीं, ऐहिक समाधान सिद्ध करने में सहायक होना है, और धर्म को यह रूप देना शिक्षा का धर्म है।

कला का काम केवल रस-विलास में डूब जाना नहीं, जीवन की समस्याओं का यथावत् विचार करके समाज-मानस को बोधयुक्त और पुरुषार्थप्रवण करना है, और कला को यह रूप देना शिक्षा का विषय है।

नीति का काम केवल आदर्श आचरण का उच्चारण करना नहीं, व्यक्ति-व्यक्तिके अन्दर साधु जीवन के प्रति भक्ति उत्पन्न हो सके ऐसी समाज-रचना करने में अग्रसर होना है, और नीति में यह प्रेरणा उत्पन्न करना शिक्षा का काम है।

विज्ञान का काम केवल भौतिक संशोधनों में उलझे रहना नहीं, बल्कि अपने ज्ञान के बल पर समाज की सारी गन्दगी और खामी मिटा देना है, और विज्ञान को यह मोड़ देना शिक्षा का ही दायित्व है।

भूनसेवा केवल एक भावनामय वस्तु नहीं है, बल्कि उसकी आकांक्षा यह होनी चाहिए कि उसके द्वारा वैज्ञानिक नवसमाज की रचना हो, और भूनसेवा में यह वृत्ति निर्माण करना शिक्षा का कर्तव्य है।

यह होगा तभी ध्येयनिष्ठा सार्थक होगी, शिक्षा के सभी अंग मानव के समग्र जीवन के निर्माण के साधन बनेंगे। और यह दुहराने की आवश्यकता नहीं कि सब ग्रन्थशरणता से सधनेवाला नहीं है, इसके लिए प्रत्यक्ष जीवन जीने की क्षमता बढ़नी चाहिए।●

ति० न० आत्रेय—साहित्य-सम्पादक, ग्रामभावना प्रकाशन, पट्टीकल्याणा, करनाल (हरियाना)

शैक्षिक व्यूह-रचना

- क्रान्तिकारी सामाजिक शक्ति और शिक्षण
- राष्ट्रीय विकास और ग्रामीण समाज की भूमिका
- ग्राम-विकास और विद्यालय
- विकासशील भारत का शैक्षिक संयोजन

क्रान्तिकारी सामाजिक शक्ति और शिक्षण

धीरेन्द्र मजूमदार

प्रश्न राष्ट्र के विकास की दृष्टि से आप शिक्षा मे क्या परिवर्तन आवश्यक समझते हैं ?

उत्तर हम पहले इस प्रश्न का उत्तर चाहिए कि राष्ट्र के विकास के लिए शिक्षा म परिवर्तन की आवश्यकता है क्या ? राष्ट्र विकास का साधन शिक्षा है, यह मान्यता आज हमारे समाज के किसी हिस्से की नहीं है। आज की आम मान्यता यह है कि समाज के हर काम के लिए राज्य ही एकमात्र साधन है। जब राज्य को ही विकास का साधन मानते हैं तो उसका माध्यम सरकार का विभाग होना है और पद्धति व्यवस्था और सचालन की होती है।

सचालन-पद्धति म हर काम का साधन सरकारी और गैर-सरकारी सेवक होता है। आज जनता की मान्यता यह है कि कोई-न-कोई सरकारी या गैर-सरकारी सेवक उनकी समस्या का समाधान कर दे। वस्तुत इस सिद्धान्त का छोर पकड़कर आज दुनिया मे सेवकों की बहुत बडी फौज खडी हो गयी है और दिन-दिन इसका परिमाण बढ़ता ही चला जा रहा है। इसके फलस्वरूप आज सेवा के प्रसग को लेकर समाज म एक बहुत बडा वर्ग बन गया है, जो जनता के कधे पर बैठकर उसका शोषण और दमन कर रहा है। आज विभिन्न नेता और दलो के बीच सत्ता के अवसर को लेकर जो सघर्ष चल रहा है, वह इसी वर्ग के भिन्न-भिन्न खेमा की पट्टीदारी मात्र है।

जब जनता यह मानती है कि उसे अपने से कुछ करना नही है, उसको सिर्फ सरकार को टैक्स, संस्थाओं को चन्दा और पार्टियो को 'वोट' देना है तब, राष्ट्र-विकास कैसे होगा ? आज तो टैक्स या चन्दा से राष्ट्र-विकास के लिए जो साधन इकट्ठा किया जाता है, उसका करीब ७० प्रतिशत सेवकों को खिलाने मे ही चला जाता है। अतएव जबतक इस पद्धति म बदल नही होता है यानी जबतक सचालित समाज-व्यवस्था के स्थान पर स्वावलम्बी समाज-व्यवस्था का विचार मान्य नहीं होता है, तबतक राष्ट्र का विकास सम्भव नही है। पहले ऐसी मान्यता का अधिष्ठान करना होगा तब उसके लिए शिक्षा की पद्धति क्या होगी यह सोचने का अवसर आयेगा, क्योंकि स्वावलम्बन और सहकार का निर्माण शिक्षा के माध्यम से ही हो सकता है, कानूनी डडे से नही।

आज जो शिक्षा-पद्धति चल रही है वह समाज की मान्यता और माँग के अनुसार ठीक ही चल रही है, क्योकि शिक्षा संचालक पैदा करने का माध्यम है और यही

सार्वजनिक मान्यता भी है। अतएव आज की पहली आवश्यकता यह है कि व्यापक लोक शिक्षण द्वारा जनता को इस बात की शिक्षा दी जाय कि वह अपने विकास के लिए राज्य, नेता, सेवक और सेवा-संस्था के भरोसे न रहकर परस्पर-सहकार और सम्मति से अपनी समस्या का समाधान स्वयं ढूढे। राष्ट्र-विकास के लिए यह पहली शर्त है।

अब प्रश्न यह है कि इस लोक-शिक्षण का वाहन कौन होगा? स्पष्ट है कि आज का जो शिक्षक-समुदाय है उसीको इसका वाहन बनना पड़ेगा और उसीको सामाजिक मान्यता मे बदल लाकर शिक्षा म समुचित परिवर्तन लाना होगा। इस परिवतन की दिशा का स्पष्ट संकेत गाधीजी खुद करके गये हैं। उन्होंने नयी तालीम-पद्धति के बारे मे साफ कहा है कि शिक्षा स्वावलम्बी हो और उसका माध्यम राष्ट्र के विकास का कार्यक्रम यानी उत्पादन की प्रक्रिया, सामाजिक कार्यक्रम और प्रकृति का अध्ययन हो। जब राष्ट्र की जनता स्वावलम्बी समाज के विचार को मानकर शिक्षा में उपरोक्त परिवर्तन लायेगी, तब राष्ट्र का विकास कोई अलग प्रवृत्ति नहीं रहकर, राष्ट्रीय शिक्षा की स्वाभाविक परिणति होगी।

प्रश्न : ये परिवर्तन होंगे कैसे? क्या आज का नेतृत्व यह अपेक्षा पूरी कर सकेगा? क्या शिक्षक-समुदाय अपने सुझाव लेकर सामने आयेगा? क्या विद्यार्थी स्वयं परिवतन की मांग करेंगे?

उत्तर यह परिवर्तन कैसे होगा, इसका कुछ संकेत मैंने पहले प्रश्न मे किया है। अगर देश मे नेतृत्व होता तो शायद वह यह अपेक्षा पूरी कर सकता। लेकिन लोकतंत्र के गलत मार्ग पर चलने के कारण समाज मे नेतृत्व का विघटन हो गया है। लोकतन्त्र मे लोकनायक का स्थान मुख्य होना चाहिए। क्योंकि लोकमत का स्थान सर्वोपरि होने के कारण उसे जमाने के कदम के साथ कदम मिलाकर चलने की आवश्यकता है और इसके मार्गदर्शन के लिए लोकमत के अग्रगामी नेताओ की आवश्यकता होती है। वर्तमान लोकतांत्रिक पद्धति मे लोक गौण है और तंत्र मुख्य बन गया है। इसीके कारण देश के मुख्य प्रतिभाशाली व्यक्ति लोक प्रतिनिधि के रूप मे तंत्र-सचालन के काम मे लग गये। लेकिन लोक प्रतिनिधि का स्वधर्म लोकमत का अनुगमन होता है। स्पष्ट है कि लोकमत का अनुगामी उसका अग्रगामी बन ही नही सकता। जब वर्तमान लोकतंत्र की पद्धति के कारण, जिसे आप नेता कहते हैं वह वास्तविक नेता नही रह गया है तब वह परिवर्तन कैसे लायेगा? चूंकि जनमत मुख्य रक्षणशील होता है, इसलिए उसके प्रतिनिधि को यथास्थिति की व्यवस्था मे ही लगना पडता है।

शिक्षक-समुदाय ही वस्तुतः परिवर्तन का सुझाव लेकर सामने आ सकता है। इसके लिए प्रथम आवश्यकता यह है कि वह स्वतंत्र चिन्तन की स्थिति में हो। आज तो वह राज्य और राजनीति के अधीन है, अर्थात् उपरोक्त सत्ता के अनुसार लोक-प्रतिनिधि की हुकूमत में है। इसीलिए आज के शिक्षक के लिए स्वतंत्र चिन्तन की गुंजाइश नहीं है। *शिक्षक परिवर्तन का सुझाव लेकर तब आ सकेगा जब शिक्षा* और शिक्षक का राज्य-निरपेक्ष एक स्वतंत्र अस्तित्व हो—यानी जब शिक्षक राजनीति से ऊपर उठकर पूरे समाज पर अपनी समग्र दृष्टि रख सके। विनोबा समाज-क्रान्ति के लिए 'आचार्यकुल' का संगठन इसीलिए आवश्यक मानते हैं। जब 'आचार्यकुल' का संगठन होगा और उस कारण शिक्षक-समुदाय का वजन समाज में बढ़ेगा तब सही 'आचार्यकुल' नेतृत्व की रिक्तता की पूर्ति कर सकेगा और तभी वह परिवर्तन का सुझाव लेकर सामने आ सकेगा। लेकिन इसके लिए आवश्यकता इस बात की है कि संगठित 'आचार्यकुल' सरकार से यह माँग करे कि न्याय-विभाग की तरह ही शिक्षा विभाग भी सरकार-निरपेक्ष स्वतंत्र हैसियत हासिल करे।

विद्यार्थी अवश्य परिवर्तन की माँग करेंगे। और अनेक मुल्कों में वे ऐसी माँग कर भी रहे हैं, लेकिन हमारे देश का विद्यार्थी-समाज-परिवर्तन की आवश्यकता है ऐसा महसूस नहीं कर रहा है। वह भी सचालित समाज में सेवक बनना चाहता है, ताकि उसकी बेकारी का निवारण हो। वह अभी यह नहीं चाहता है कि वर्तमान समाज-व्यवस्था में परिवर्तन हो और वह उसका घटक बने। उसकी माँग मात्र *इतनी ही है कि शिक्षा ऐसी अर्थकरी हो, जिससे नौकरी न मिलने पर भी* वह कमाई कर सके, लेकिन आज की समाज-व्यवस्था में यह सम्भव नहीं है। अधिकांश लोग कहते हैं कि औद्योगिक शिक्षा को मुख्य स्थान मिले। लेकिन आज की केन्द्रवादी अर्थ-व्यवस्था में औद्योगिक शिक्षा भी शिक्षित बेकारी की समस्या हल नहीं कर सकेगी। इन्जीनियरों की बेकारी की समस्या आपके सामने है। केन्द्रवादी अर्थनीति जब औद्योगिक प्रक्रिया को 'आटोमेशन' से आगे बढ़ाकर 'साइबरनेशन' तक पहुँचा रही है तब लघु उद्योगों की शिक्षा समाज के किस काम आयेगी? विद्यार्थी को जबतक यह अनुभूति नहीं होगी कि आज की परिस्थिति में संचालित समाज-पद्धति को बदलकर स्वावलम्बी समाज का अधिष्ठान आवश्यक है तबतक वह भी शैक्षिक परिवर्तन के सन्दर्भ में कोई प्रभावकारी साधन नहीं बन सकेगा।

प्रश्न : हमें प्रतीक्षा करनी पड़ेगी उस स्थिति की जब एक नयी सामाजिक शक्ति उभरेगी, और समाज की बुनियादें बदलकर एक नयी सरकार बनायेगी, और तब अर्थनीति के साथ-साथ शिक्षा नीति पर भी नये सिरे से विचार करेगी? अगर क्रान्तिकारी शक्ति हो क्रान्तिकारी परिवर्तन कर सकती हो तो

हमें सबसे पहले उस क्रान्तिकारी शक्ति को ही विकसित करने का प्रयत्न करना चाहिए। क्या इस विचार से आप सहमत हैं ?

उत्तर : मैं स्पष्ट रूप से मानता हूँ कि क्रान्तिकारी शक्ति ही क्रान्तिकारी परिवर्तन कर सकती है। समाज मे अधिष्ठित वर्तमान कोई भी संस्था दल या तत्त्व परिवर्तन नहीं ला सकती है। लेकिन क्रान्तिकारी शक्ति को विकसित करने की स्थिति मे अभी शिक्षक पहुँचे नहीं हैं, यह समझ लेना चाहिए। अभी तो वे क्रान्तिकारी शक्ति का उद्बोधन मात्र कर सकते हैं। वस्तुतः विनोबा आज वही कर रहे हैं।

आज देश और दुनिया मे अनेक प्रकार की उथल-पुथल हो रही है जिसे देखकर लगता है कि क्रान्तिकारी शक्ति का अधिष्ठान हो रहा है। आज जो उथल-पुथल दिखाई दे रही है उसकी बुनियाद मे क्रान्तिकारी शक्ति नहीं है, बल्कि बेचैनी का तात्कालिक उभाड है। जो लोग वर्तमान सत्तामूलक संचालित समाज मे रहते हुए केवल सत्ता पर कब्जा करना चाहते हैं, वे इस सत्ता-संघर्ष के लिए इस बेचैनी के उभाड़ को अपने पक्ष मे संयोजित कर रहे हैं। इससे समाज मे कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं होगा, बल्कि सत्ता पर नये संचालक का कब्जा होगा और नये सत्ताधारी अधिक-से-अधिक इतना कर सकेंगे कि पुरानी पद्धति के अन्तर्गत कुछ छोटी-छोटी बुराइयाँ दूर हो जायँ।

वर्तमान के प्रति बेचैनी, और व्यवस्था के प्रति विक्षोभ क्रान्तिकारी शक्ति को जन्म जरूर दे सकता है, लेकिन वह तब हो सकता है, जब क्रान्तिद्रष्टा और क्रान्ति-विचारक बेचैनी का कारण वर्तमान पद्धति है और उसका निराकरण क्रान्ति-विचार है, इस तथ्य के प्रति जनता को निरंतर शिक्षित करता रहे। वस्तुतः इतिहास मे क्रान्ति के नाम पर जितनी घटनाएँ हो चुकी हैं, उनके द्वारा इस मूल तथ्य के अभाव मे समाज मे क्रान्तिकारी शक्ति का विकास नहीं हो सका। अबतक जितनी क्रान्तियाँ हुई हैं, उनकी प्रक्रिया यही रही कि शक्तिशाली क्रान्तिकारी जमात ने जनता की बेचैनी और विक्षोभ को संगठित कर तथा पुरानी पद्धति के संचालक को पदच्युत कर उसके स्थान पर अपने को ही अधिष्ठित किया है, और अपनी दृष्टि से उसी पुरानी पद्धति के मार्फत ही सुधार लाने का प्रयास किया है। इसके फलस्वरूप समाज मे क्रान्तिकारी शक्ति का अधिष्ठान न होकर क्रान्तिकारी जमात का संगठन मजबूत हुआ है, जिसके कब्जे मे पूरा समाज गिरफ्तार हुआ है। शक्ति क्रान्ति-विचार मे निहित न होकर क्रान्ति-जमात के हाथ की सत्ता मे आ जाने पर उस जमात का कोई शक्तिशाली व्यक्ति जमात और संस्था, दोनों का सर्वाधिकारी अधिनायक बन जाता है। इसके उदाहरण फ्रान्स का नेपोलियन, और रूस का स्टालिन हैं।

फ्रान्स और रूस के उन दिनों के सम्राट और जार यदि प्रजा-रंजक और कुशल शासक होते तो क्या लोकतंत्र और समाजवाद के विचार से उद्बोधित होकर जनता क्रान्ति में शामिल होती ? निस्सन्देह नहीं होती। वस्तुतः लेनिन ने खुद कहा है कि जनता समाजवाद के विचार के कारण उनके साथ नहीं थी, बल्कि लेनिन और उसके दल द्वारा राहत पहुँचाने की शक्ति के कारण थी। इस तरह गहराई से विचार करने पर स्पष्ट होता है कि फ्रांस और रूस में क्रान्तिकारी शक्ति का नहीं, बल्कि विद्रोही शक्ति का उभाड़ हुआ था। समाज में क्रान्ति लाने के लिए क्रान्ति-शक्ति को उद्बोधित तथा विकसित करना होगा।

इस सिलसिले में और एक प्रश्न पर सफाई होनी चाहिए। आपने कहा है कि 'सामाजिक शक्ति बुनियादें बदलकर एक नयी सरकार बनायेगी और तब अर्थ-नीति के साथ-साथ शिक्षा-नीति पर भी नये सिरे से विचार करेगी।' इस सन्दर्भ में आप अगर यह सोचते हैं कि नयी सामाजिक शक्ति उभड़कर नयी सरकार बनायेगी और फिर वह सरकार अपेक्षित परिवर्तन लायेगी तो फिर से आप पुरानी गलतियों को दुहरायेंगे। वस्तुतः 'सरकार द्वारा विकास' इस मान्यता को बदले बिना कोई त्राण नहीं है। परिवर्तन तो जनता की सहकारी शक्ति से होगा। क्रान्ति-विचार से उद्बुद्ध जनता को सरकार के वर्तमान स्वरूप को बदलना तो पड़ेगा ही, लेकिन वह इसलिए नहीं कि बदली हुई सरकार उनकी समस्या का समाधान करेगी, बल्कि इसलिए उसमें परिवर्तन करेगी कि सरकार जनता द्वारा राष्ट्र विकास के प्रयास में बाधक न होकर साधक बने।

प्रश्न क्या कोई ऐसे परिवर्तन हैं, जो तत्काल सम्भव हैं ? वे क्या हैं ?

उत्तर समाज में क्रान्ति-विचार की शक्ति के अधिष्ठान से पहले कोई भी परिवर्तन सम्भव नहीं है, लेकिन शक्ति के उद्बोधन और विकास की प्रक्रिया के साथ-साथ पुरानी पद्धतियों का परिवर्तन अपने-आप होता चलेगा। उदाहरण के लिए ग्रामदान से राज्यदान के शंखनाद को ले सकते हैं। राज्यदान की घोषणा के साथ विचार के प्रति आकर्षण और जिज्ञासा पैदा होगी, जो विचार-शिक्षण के लिए अनुकूल पृष्ठभूमि बनेगी। उस पृष्ठभूमि पर अगर आप विचार-शिक्षण का काम तेजी से कर सकेंगे तो पहला परिवर्तन यानी परिवर्तन क्रान्ति से नहीं, सम्मति से हो इसका अधिष्ठान तत्काल सम्भव होगा और इसके साथ ही-साथ रक्षण, पोषण और शिक्षण के प्रश्न पर जनता में चिन्तन का प्रारम्भ होगा। एक दूसरा परिवर्तन भी तत्काल सम्भव है और वह यह है कि सरकार लोक निरपेक्ष जमात के उम्मीदवारों द्वारा नहीं, बल्कि जनता द्वारा नियुक्त उम्मीदवारों से ही बने। यह परिवर्तन यद्यपि क्रान्तिकारी नहीं है, तथापि क्रान्ति-अभिमुख अवश्य है। •

राष्ट्रीय विकास और शिक्षित जनशक्ति

वंशीधर श्रीवास्तव

स्वतंत्र भारत की शैक्षिक व्यूह-रचना

आज शायद ही कोई इस बात से इन्कार करे कि विकासशील भारत के लिए शैक्षिक व्यूह-रचना नही के बराबर हुई है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद देश के विकास के लिए राष्ट्र की जो आकांक्षाएँ उभरी, उन्होंने पंचवर्षीय योजनाओ का रूप लिया। इन योजनाओ मे 'शिक्षा' को अत्यन्त 'निम्न' स्थान दिया गया। देश के विकास के लिए यंत्र और टेकनालोजी आवश्यक समझे गये। पूँजी की जरूरत भी महसूस की गयी। पूँजी अपने पास नही थी तो दूसरे से उधार माँगकर लायी गयी। परन्तु, शिक्षा को विकास का आधारभूत तत्त्व नही स्वीकार किया गया और इसीलिए उसे राष्ट्र की विकास-पद्धति से जोडने की कोई चेष्टा नही की गयी। 'शिक्षा की प्रगति' के नाम पर केवल परम्परागत अनुत्पादक किताबी शिक्षा को बढाया गया।

देश के स्वतंत्र होने के बाद सन् १९५०-५१ मे उच्चतर माध्यमिक स्तर पर पूरे देश में लगभग ३० लाख छात्र पढते थे। १९६५-६६ मे यह संख्या बढकर १ करोड ३० लाख हो गयी और अनुमान किया जाता है कि १९७५-७६ तक यह संख्या ३ करोड़ २० लाख और १९८५-८६ तक ४ करोड ६० लाख हो जायगी। (शिक्षा-आयोग की रिपोर्ट—७-३७) इसी प्रकार विश्वविद्यालयो और डिग्री कालेजो मे स्नातक-स्तर पर केवल आर्ट, विज्ञान और कामर्स के संकायो (फैकल्टीज) मे सन् १९५०-५१ मे छात्र-संख्या १,९१,००० से बढकर १९६५-६६ मे ७,५६,००० हो गयी। (शिक्षा-आयोग १२०३-१) परन्तु इस वृद्धि का मतलब हुआ शिक्षित बेकारो की सख्या मे वृद्धि, जिसका परिणाम है आज के छात्रो का विक्षोभ और असतोष। छात्र आज चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगे हैं—'हमे रोटी चाहिए, डिग्री नही चाहिए।' अगर शिक्षा और विकास मे अनुबन्ध स्थापित किया गया होता और देश मे उपलब्ध प्रचुर श्रम को शिक्षा से सम्पन्न और कारगर बनाया गया होता तो यह नौबत नही आती।

फिर भी देश मे विकास के अनुकूल शैक्षिक व्यूह-रचना का प्रयास हुआ, परन्तु हमे उसमें सफलता नही मिली। और हमारी इस असफलता का यह पहलू और भी कारुणिक हो जाता है, जब हम देखते हैं कि देश के प्रबुद्ध वर्ग मे बराबर यह चेतना रही है कि जो अनुत्पादक किताबी शिक्षा हम अपने छात्रो को दे रहे हैं,

उसका सम्बन्ध न तो राष्ट्र के जीवन से है और न उन निकासाकाम्याओं से है, जो पंचवर्षीय योजनाओं के रूप में बद्धमूल हुई हैं। इस चेतना और उसे कार्य-रूप में परिणत करने के प्रयासों और उनकी विफलताओं की कहानी स्वतंत्र भारत के शैक्षिक जगत् की सर्वाधिक निराशाजनक कहानी है।

बुनियादी शिक्षा : व्यूह-रचना का प्रथम चरण

जब देश स्वतंत्र हुआ था तो उसके सामने एक ऐसी शिक्षा-पद्धति थी, जो उत्पादक और निर्माणमूलक थी, और जिसमें कोरी सैद्धान्तिक अनुत्पादक शिक्षा का सक्रिय विरोध था। इस शिक्षा पद्धति के विषय में 'राधाकृष्णन् विश्वविद्यालय आयोग' के विदेशी सदस्य डाक्टर ए० ई० मार्गन लिखते हैं— "भारत के लिए यह एक बहुत बड़े सौभाग्य की बात है कि इतिहास के इस महत्त्वपूर्ण क्षण में उसे शिक्षा का एक ऐसा दर्शन और ढाँचा प्राप्त हुआ है जिसका बुनियादी और सार्वभौमिक मूल्य है और जो नये भारत के निर्माण के लिए आदर्श का काम दे सकता है। गांधीजी की बुनियादी शिक्षा के कार्यक्रम के किन्हीं अर्थों में हम भले ही सहमत न हों, परन्तु बुनियादी शिक्षा की पूरी सकल्पना पर विचार करने पर हम देखते हैं कि उसमें उत्तम शिक्षा-पद्धति के वे सभी बीज मौजूद हैं जिससे संतुलित व्यक्तित्व का निर्माण और संस्कार होता है और जिसकी उत्कृष्टता के विषय में हमारा ज्ञान समय के साथ अधिक साफ होता जायेगा और जो अन्त में आलोचना और समय की कसौटी पर खरी उतरेगी। बुनियादी शिक्षा की यह सकल्पना संसार की शिक्षा को भारत की बहुत बड़ी देन है। गांधीजी ने जिस शिक्षा-पद्धति की प्रथम रूपरेखा प्रस्तुत की है, वह केवल बच्चों की शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नहीं है, उसमें तो एक सार्वभौमिक शिक्षा-पद्धति के सभी तत्त्व मौजूद हैं।" (हायर एजूकेशन इन रिलेशन टु रूरल इंडिया—ए० ई० मार्गन, पृष्ठ–१६) इसके पन्द्रह वर्ष बाद, कोठारी-आयोग ने, जिसमें देश विदेश के चोटी के शिक्षाशास्त्री थे बुनियादी तालीम के विषय में लिखा—"महात्मा गांधी ने २८ वर्ष से भी पहले बुनियादी शिक्षा का जो आन्दोलन शुरू किया था, उसमें उन्होंने राष्ट्र के लिए नये प्रकार की प्रारम्भिक शिक्षा का प्रस्ताव रखा था, जिसका केन्द्र शारीरिक श्रम और उत्पादक कार्य और जिसका समुदाय के जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध था। वह एक ऐसी शिक्षा के प्रति क्रान्ति थी, जो अनुत्पादक और पुस्तकीय थी और परीक्षामूलक थी। हमारा विश्वास है कि इस प्रणाली के मूल सिद्धान्त तत्त्वतः ठीक हैं और किंचित संशोधन के साथ उन्हें हमारी शिक्षा प्रणाली के, न केवल प्रारम्भिक स्तर पर, अपितु, शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर शिक्षा का अभिन्न अंग बनाया जा सकता है। ये मूल सिद्धान्त हैं (१) शिक्षा में उत्पादकता, (२) पाठ्यक्रम का उत्पादक कार्यकलापों तथा

भौतिक और सामाजिक वातावरण से सह सम्बन्ध और (३) शिक्षालय और स्थानीय समुदाय का घनिष्ठ सम्बन्ध।" (शिक्षा-आयोग की रिपोर्ट—८ १०५) आयोग आगे लिखता है—'बुनियादी शिक्षा के ये मूल सिद्धान्त इतने महत्वपूर्ण हैं कि उनसे हमारी शिक्षा प्रणाली का सभी स्तरों पर (प्रारम्भिक स्तर से स्नातक स्तर तक) मार्ग-दर्शन होना चाहिए।' (शिक्षा-आयोग—८ १०६)

गांधीजी की इस नयी तालीम को स्वतंत्र देश में प्रारम्भिक स्तर (कक्षा १ से कक्षा ७ तक) की शिक्षा के 'राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति' के रूप में स्वीकार किया और प्रदेशों में और केन्द्र में उसके प्रचार और प्रसार के लिए प्रयास हुए।

मुदालियर कमीशन

यह महसूस किया गया कि बुनियादी शिक्षा को अगर प्रारम्भिक स्तर तक ही सीमित रखा गया तो इससे उस उत्पादक व्यक्तित्व का निर्माण नहीं होगा, जिसकी विकासशील देश को आवश्यकता है। अतः मुदालियर कमीशन ने, जिसे भारत सरकार ने देश की माध्यमिक शिक्षा की जाँच के लिए नियुक्त किया था बुनियादी शिक्षा की परम्परा को आगे बढ़ाने के लिए शिक्षा के माध्यमिक स्तर पर बहु-उद्देशीय विद्यालयों की स्थापना की संस्तुति की, जिससे माध्यमिक शिक्षा उद्योग-परक हो सके और प्रारम्भिक स्कूलों में जो कौशल प्राप्त कर लिया गया है उसका विकास हो। कमीशन ने संस्तुति की कि 'माध्यमिक विद्यालय का प्रत्येक विद्यार्थी 'एक उद्योग' अनिवार्य रूप से पढ़े, क्योंकि इस स्तर पर प्रत्येक विद्यार्थी के लिए उद्योग में अथवा हाथ के काम में कुछ समय लगाना और उस उद्योग में दक्षता प्राप्त कर लेना जरूरी है, ताकि आवश्यकता पड़ने पर उस उद्योग के द्वारा वह अपना भरण-पोषण कर सके।" (मुदालियर कमीशन रिपोर्ट, शिक्षा मंत्रालय—१९५६, पृष्ठ ९५) इस प्रकार हम देखते हैं कि माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में 'उद्योग' अथवा 'हाथ के काम' को एक मूल विषय रखकर कमीशन ने बुनियादी शिक्षा की परम्परा को आगे बढ़ाने की चेष्टा की है, जिससे विकासशील देश को उत्पादक योजनाओं के लिए जिन कुशल एवं अर्द्धकुशल कार्यकर्ताओं की जरूरत होगी माध्यमिक शिक्षा उस जरूरत को पूरी करने की मजबूत सीढ़ी बने।

राधाकृष्णन आयोग और श्रीमाली समिति

बुनियादी शिक्षा की इस परम्परा को विश्वविद्यालय स्तर तक बढ़ाने के लिए, और विश्वविद्यालयों की शिक्षा को देश की आवश्यकताओं से जोड़ने के लिए, राधा-कृष्णन् विश्वविद्यालय आयोग ने, जिसे भारत सरकार ने विश्वविद्यालयों की शिक्षा को देश की आवश्यकताओं के अनुकूल बनाने हेतु सुझाव देने के लिए नियुक्त किया था, ग्राम-विश्वविद्यालयों' की स्थापना की सिफारिश की। श्रीमाली समिति ने,

जिसे भारत सरकार ने इस आयोग की संस्तुतियो पर विस्तारपूर्वक विचार करने के लिए नियुक्त किया था, आयोग की सिफारिशो से सहमत होते हुए, 'ग्राम-संस्थानो' की स्थापना की राय दी थी। इसके फलस्वरूप देश मे उच्च शिक्षा के दस 'ग्राम-संस्थान' स्थापित हुए। इन संस्थानो के लक्ष्य और प्रयोजन पर प्रकाश डालते हुए श्रीमाली समिति लिखती है—"हम उच्च शिक्षा के इन संस्थानो को समुदाय के उत्पादक जीवन और आवश्यकताओ से सम्बन्धित कर देना चाहते हैं, ताकि इन संस्थानो के छात्र समुदाय के उपयोगी नागरिक बन सकें और उच्च शिक्षा सामान्य सामुदायिक जीवन से अलग न रहकर उसका अभिन्न अग बन जाय। इन संस्थानो मे विद्यार्थी डिग्री लेने के लिए केवल सैद्धान्तिक विषयो को पढने के बजाय ग्राम-जीवन की यथार्थ समस्याओ का निराकरण करना सीखेंगे। .इन ग्राम-संस्थानो के छात्र किसी उत्पादक उद्योग मे भाग लेंगे, जिससे वे अपने खर्च का कुछ हिस्सा कमा लें। इससे उनम आत्म-विश्वास का विकास होगा।" (रूरल इन्स्टीट्यूट्स, भारत शिक्षा मंत्रालय, पृष्ठ २-३)

इस प्रकार ग्राम-संस्थानो की इस संकल्पना मे भारत की उच्च शिक्षा को राष्ट्र की आवश्यकताओ के अनुकूल बनाने के लिए बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्तो को सम्मिलित करने की चेष्टा की गयी। जैसा कि इसी रिपोर्ट मे दूसरी जगह समिति ने स्वीकार किया है, और जो इस बात की भी स्वीकृति है कि बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्तो को अगर सही ढग मे प्रारम्भिक स्तर से विश्वविद्यालय-स्तर तक लागू किया जाय तो नये राष्ट्र की आकाक्षाओ की पूर्ति मे शिक्षा सहायक होती। यह दूसरी बात है कि कार्य-रूप म परिणत होने पर ये ग्राम-संस्थान बुनियादी शिक्षा के संस्थाना की रक्षा नही कर पाये।

और वस्तुस्थिति यही है कि मुदालियर कमीशन, राधाकृष्णन् विश्वविद्यालय आयोग और श्रीमाली समिति ने बेसिक शिक्षा के जिन सिद्धान्तो के प्रसार द्वारा देश की माध्यमिक और उच्चतर शिक्षा को विकासशील राष्ट्र की आकाक्षाओ से जोडने की चेष्टा की थी, वे व्यर्थ सिद्ध हुए। पश्चिमी किताबी शिक्षा म पले हुए तथा-कथित शिक्षा-शास्त्रियो और प्रशासको ने इन प्रगतिशील शैक्षिक व्यूह-रचनाओ को असफल सिद्ध कर दिखाया। अप्रैल १९६५ मे दिल्ली मे सर्व सेवा सघ द्वारा आयोजित नयी तालीम कन्वेन्शन मे अपने विचार प्रकट करते हुए स्वर्गीय आर्य-नायकम्‌जी ने कहा था—"आज बुनियादी तालीम के मार्ग म अवरोध उत्पन्न करनेवाले राजनीतिज्ञ नहीं हैं, बल्कि ब्युरोक्रेसी (नौकरशाही) है।" बेसिक शिक्षा की सफलताओ-असफलताओ के कारणो का पता अगर देश मे किसी एक व्यक्ति को था तो वे आर्यनायकम्‌जी थे और उनके इस कथन से असहमति की गुजाइश

बहुत कम है। जो भी हो, सिद्धान्त ठीक होते हुए भी अनेक कारणों से ये प्रगतिशील शैक्षिक व्यूह रचनाएँ देश की शिक्षा को राष्ट्र के जीवन और उसकी विकास काक्षाओं से जोड नही पायी है और देश की शिक्षा प्रणाली आज भी अनुत्पादक बनी हुई है। वह छात्रो को ऐसा कुछ भी नही दे पा रही है, जिसके बल पर वे राष्ट्र को सम्पन्न बना सकें।

व्यूहरचना की व्यर्थता का मूल कारण

तत्त्वत ठीक होते हुए भी इन व्यूह रचनाओ की व्यर्थता का सबसे बडा कारण है राष्ट्र की शिक्षा प्रणाली और राष्ट्र के विकास के लिए अपेक्षित जन-सख्या मे अनुबंध का अभाव। यह तथ्य है कि देश के शिक्षाविदो और प्रबुद्ध प्रशासको ने शिक्षा की शैलियो और नौकरी की सुविधाओ म तालमेल बैठाने का कोई भी प्रयास नही किया। अगर यह किया होता तो इन उद्योगपरक शैक्षिक योजनाओ को अधिक ईमानदारी से कार्यान्वित करने की चेष्टा की गयी होती। परन्तु भारत अगर विकास का इच्छुक है और सही मान म विकास चाहता है तो यह आवश्यक है कि विकास के प्रत्येक प्रकार के काम के लिए उपयुक्त सख्या म शिक्षित विशेषज्ञ उपलब्ध हो। किसी व्यक्ति का किसी नौकरी के लिए कम या अधिक योग्य होने अथवा किसी योग्यता की माग न होने के कारण किसी व्यक्ति का बेरोजगार रह जाने से अधिक निराशाजनक स्थिति उस देश के युवको के लिए नही हो सकती जो देश समाजवादी व्यवस्था के लिए प्रतिश्रुत है।

मौजूदा शिक्षा प्रणाली मे शिक्षा और रोजगार के बीच कोई सीधा सम्बन्ध नही है। किसी भी समाजवादी व्यवस्था मे इस प्रकार का सम्बन्ध होना ही चाहिए। सही समाजवादी व्यवस्था मे तो प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति को डिप्लोमा अथवा डिग्री के साथ नियुक्ति-पत्र भी मिलना चाहिए। शिक्षित युवक को रोजगार देना राज्य का उत्तरदायित्व होना चाहिए। अत हमे शिक्षा का नियोजन इस दृष्टि से करना होगा कि राष्ट्र के विकास के प्रत्येक काम के लिए वाछित योग्यता के शिक्षित व्यक्ति उपलब्ध हो और प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति के लिए उपयुक्त काम मिल सके। ऐसा होगा तभी विकास कार्य को शिक्षा से पोषण मिलेगा और शिक्षा को विकास से प्रोत्साहन।

प्रश्न है कि इस प्रकार का अनुबन्ध कैसे स्थापित किया जाय? इसके लिए दो उपाय है —

(१) सबसे पहले दृढतापूर्वक **सामान्य शिक्षा की उन उत्पादक योजनाओं को लागू करना होगा जो उद्योगपरक हैं और जो** समुचित साधनो के अभाव मे असफल सिद्ध हो रही हैं। भारतीय शिक्षा आयोग ने शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर

कार्यानुभव का शिक्षा का अभिन्न अंग बनाने और माध्यमिक शिक्षा को व्यवसाय परक बनाने की सिफारिश की है। आयोग मस्तुति करता है कि राष्ट्र के विकासार्थ समस्त उद्योगों में जनसंख्या की खपत और रोजगारों के ढांचे में हो रहे परिवर्तन का ध्यान में रखकर शिक्षा-संस्थाओं के पाठ्यक्रम का इस प्रकार पुनर्निरीक्षण और संशोधन करना चाहिए कि ये पाठ्यक्रम व्यवसायपरक हो सकें। आयोग तो यह भी सिफारिश करता है कि माध्यमिक शिक्षा प्राप्त उन व्यक्तियों के लिए जो काम-धंधों में लग गये हैं पदोन्नति विस्तार-पाठ्यक्रम का विकास करना चाहिए जिसमें जो पदोन्नति के योग्य पाये जायें उनकी तरक्की हो सके।

(२) दूसरा काम होगा अपेक्षित जनशक्ति का पूर्वानुमान।

अबतक इस प्रकार का पूर्वानुमान करके शिक्षा प्रणाली से तालमेल प्रस्तुत करने का कोई प्रयास नहीं हुआ है। इस प्रसंग में शिक्षा-आयोग ने कुछ दिलचस्प आँकड़े प्रस्तुत किये हैं। आयोग लिखता है कि अपेक्षित जनशक्ति के पूर्व अनुमान के अभाव में माध्यमिक शिक्षा पूरी करने के बाद रोजगार के इच्छुक पढ़े-लिखे व्यक्तियों के लिए स्कूल और कालेज छोड़ने और किसी प्रकार के रोजगार में लग जाने के बीच की औसत प्रतीक्षा-अवधि सन् १९६०-६१ में १०४ सप्ताह थी। विश्व विद्यालय की शिक्षा प्राप्त करने के बाद यह अवधि ४५ सप्ताह थी। यह अत्यन्त शोचनीय स्थिति है आदर्श अवस्था यह होनी चाहिए कि औसत प्रतीक्षा-अवधि २६ सप्ताह से कम और ५२ सप्ताह से अधिक न हो।

शिक्षितों की बेरोजगारी कितनी ?

शिक्षित जनसंख्या की बेरोजगारी के आँकड़े और भी चौंकानेवाले हैं। सन् १९६१ में मोटे तौर पर ५२ लाख कर्मचारी ऐसे थे जिनकी योग्यता मैट्रिक या इससे अधिक थी। इनमें लगभग ११ लाख व्यक्ति स्नातक थे। इन ५२ लाख कर्मचारियों में केवल १ लाख व्यक्ति उत्पादक उद्योगों में लगे थे। १९७६ में मैट्रिक पास कर्मचारियों की संख्या ५२ लाख से बढ़कर १९६ लाख और १९८६ में ३२६ लाख हो जायगी। इसी प्रकार १९६१ में मौजूद स्नातक कर्मचारियों की संख्या ११ लाख से बढ़कर १९७६ में ३३ लाख और १९८६ में ६५ लाख हो जायगी। (शिक्षा-आयोग की रिपोर्ट—५.२०) यह तो काम में लगे हुए शिक्षितों की संख्या है। पर सभी शिक्षित व्यक्ति तो काम में नहीं लग पाते। १९६१ में मैट्रिक या इससे अधिक योग्यतावाले कुल व्यक्तियों की संख्या ८० लाख थी। यह संख्या १९७६ में बढ़कर २७० लाख और १९८६ में ५६० लाख हो जायगी। स्नातकों की कुल संख्या जो १९६१ में १५ लाख थी बढ़कर १९७६ में ४५ लाख और १९८६ में ९० लाख हो जायगी। (शिक्षा-आयोग—५.२१)

इन दोनो अनुच्छेदो की संख्या की तुलना की जाय तो मालूम होगा कि अगर नौकरी के लिए अपेक्षित जनसंख्या को दृष्टि मे रखकर 'शिक्षा-स्फीति' को रोका न गया तो १९८६ तक देश मे २३४ मैट्रिक या इससे अधिक योग्यतावाले और २५ लाख स्नातक बेरोजगार हो जायेंगे। यह अत्यन्त गंभीर स्थिति है और इसे रोका न गया तो इसका परिणाम भयंकर होगा। शिक्षित बेकार युवक किसी भी राष्ट्र के सबसे बड़े खतरे हैं।

जाहिर है कि नौकरी के लिए अपेक्षित जनसंख्या और शिक्षा-संस्थाओं द्वारा तैयार व्यक्तियों की संख्या के बीच कारगर सम्बन्ध स्थापित करना होगा।

इस प्रसंग मे शिक्षा-आयोग के सदस्य वी० आर० एo गोपाल स्वामी, जिन्होंने शैक्षिक उत्पादन, जनशक्ति की आवश्यकताओ और नौकरी के अवसरो के सम्बन्ध मे विस्तृत अध्ययन किया है, निम्नांकित सुझाव प्रस्तुत किये हैं —

(१) राष्ट्रीय विकास के सभी क्षेत्रो मे अपेक्षित जनशक्ति के प्राक्कलनो को राष्ट्रीय स्तर पर तैयार करने के लिए और उन्हे निरन्तर संशोधित करते रहने के लिए एक **'जनशक्ति स्थायी समिति'** की स्थापना करनी चाहिए। इस समिति मे प्रतिरक्षा, शिक्षा, कृषि, स्वास्थ्य, गृह, श्रम तथा रोजगार आदि मन्त्रालयो का प्रतिनिधित्व होगा। इस समिति को राज्य-स्तर पर जनशक्ति नियोजन करनेवाले अधिकारियो से निकट सम्पर्क स्थापित करके शिक्षा प्रणाली द्वारा तैयार व्यक्तियो की कुल संख्या तथा विशेषज्ञो की विभिन्न श्रेणियो की जनशक्ति के पूर्वानुमान तैयार करना और समय-समय पर उन्हे संशोधित करते रहना और इन पूर्वानुमानो को सम्बन्धित संस्थाओ के मार्ग-दर्शन के लिए समय-समय पर प्रकाशित करना चाहिए।

(२) राज्य-स्तर पर भी इसी प्रकार की 'जनशक्ति समिति' स्थापित करनी चाहिए। यह समिति केन्द्रीय जनशक्ति समिति के नमूने पर बनायी जाय। राज्य स्तर पर प्राक्कलन तैयार करने और योजना प्रस्तुत करने का उत्तरदायित्व इन्ही समितियो का होना चाहिए।

(३) जिला-स्तर पर भी 'जनशक्ति समिति' स्थापित करनी चाहिए। इस समिति को जिले मे मौजूद सभी शिक्षा-संस्थाओ और उन सभी व्यावसायिक संस्थाओ से जो रोजगार देती हो, निकट का सम्बन्ध बनाये रखना चाहिए, जिससे जिला-स्तर पर भी अपेक्षित जनशक्ति के सर्वोत्तम प्राक्कलन उपलब्ध हो सकें।

(४) शिक्षा-संस्थाओ मे भरती हुए और तैयार हुए व्यक्तियो की संख्या नौकरी के लिए अपेक्षित जनशक्ति के अनुरूप शिक्षा-संस्थाओ मे जो सुविधा जुटानी पडेगी

उसकी योजना बनाना अगली समस्या है। यह काम राष्ट्रीय और राज्य, दोनों स्तरों पर होना चाहिए। योजना बनाते समय व्यावसायिक शिक्षा के प्रसार-कार्य को प्राथमिकता देनी चाहिए। यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि उच्च शिक्षा-संस्थाएँ जो सुविधाएँ चाहती हैं, वह तभी दी जायेंगी जब वे अपेक्षित जनशक्ति के अनुरूप हों। माध्यमिक शिक्षा को उद्योग-परक बनाना चाहिए और सामान्य शिक्षा के जिन क्षेत्रों में जहाँ 'शिक्षा-स्फीति' की स्थिति हो, वहाँ प्रतिबंधात्मक नीति अपनायी जानी चाहिए।

वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में शिक्षा और रोजगार के बीच सीधा सम्बन्ध नहीं है। अगर इस प्रकार का सम्बन्ध कायम करना है तो ऊपर की नीति का उपयोग करना होगा। ऐसा होगा तभी शिक्षित जनशक्ति का बेरोजगारी या कम रोजगारी के कारण अपव्यय रुकेगा और शिक्षित युवक-शक्ति का राष्ट्र के विकास-कार्य में समुचित उपयोग हो सकेगा।

शैक्षिक संस्थाओं की स्वायत्तता का प्रश्न

शिक्षा के जनशक्ति-नियोजित विकास और सुधार की समूची प्रक्रिया का आरम्भिक बिंदु 'संख्या-नियंत्रण' है। राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली में मान्यता प्राप्त उच्चतर शिक्षा-संस्थाओं में विकास-कार्य की आवश्यकतानुसार सीटों की संख्या पर नियंत्रण रखना होगा। इस प्रसंग में एक मौलिक प्रश्न उठता है कि जब यह सारी-की-सारी योजना शैक्षिक संस्थाओं पर प्रतिबन्ध और नियंत्रण लगाने की योजना है, *तो फिर शैक्षिक संस्थाओं की स्वायत्तता का क्या होगा। किसी भी* प्रकार के नियंत्रण की व्यवस्था शैक्षिक संस्थाओं की स्वायत्तता की वर्तमान प्रचलित विचारधारा के विपरीत नहीं होगी क्या? शिक्षा-आयोग इस प्रश्न का उत्तर एक प्रतिप्रश्न करके देता है—"स्वायत्तता किस बात की और किस प्रयोजन के लिए?" शैक्षिक संस्थाएँ, विशेषत उच्चतर शैक्षिक संस्थाएँ जुडिशियरी की भाँति और लोक-सेवा-आयोग की भाँति स्वायत्त हों, यह ठीक है। परन्तु न्यायालय कानून नहीं बनाते, कानून लागू करते हैं। कानून तो विधान-सभाएँ बनाती हैं। लोक-सेवा-आयोग पद नहीं सृजन करते। पदों का सृजन सरकार करती है। आयोग तो इन पदों पर नियुक्ति के लिए योग्य व्यक्तियों का चुनाव भर करते हैं। न्यायालय और लोक-सेवा-आयोग, दोनों ही स्वायत्त संस्थाएँ हैं। विश्वविद्यालय अथवा उच्चतर शिक्षा संस्थाएँ, इन दोनों संस्थाओं से अधिक स्वायत्त नहीं हो सकती। आज उच्चतर शिक्षा-संस्थाओं का राष्ट्र के विकास के हित में प्रमुख कर्तव्य यही है कि उच्चतर शिक्षित जनशक्ति का शैक्षिक योग्यता को लोकहित के लिए संगठित करें। •

ग्राम-विकास और विद्यालय

ब्रज मोहन पाडे

हमारा राष्ट्र आज ग्राम-पुनर्रचना के एक अभूतपूर्व प्रयोग म लगा हुआ है। सामुदायिक विकास-योजना द्वारा हम गाँवो का समग्र विकास करना चाहते हैं, जिसके मूल आधार हैं—जनतत्र, स्वावलम्बन और सहकार। सामुदायिक विकास का अपना एक दर्शन है उसकी एक विशिष्ट कार्य प्रणाली है। मानव ही इस योजना का केन्द्र-बिन्दु है। इसके अन्तर्गत लोगो की रुचि और आवश्यकताओ के अनुकूल, रचनात्मक कार्यक्रमो और स्वार्जित अनुभूतियो के आधार पर, जीवन और व्यवसाय-सम्बन्धी वैज्ञानिक, व्यावहारिक एवं लाभकारी ज्ञान व कौशल देकर उन्हे इस योग्य बनाने का प्रयास किया जाता है कि वे अपनी व्यक्तिगत तथा सामूहिक समस्याओ को ठीक-ठीक समय सकें और मिलजुल कर पारस्परिक सहयोग से उनके समाधान की योजना बनाकर यथासम्भव अपने ही साधनो से उस कार्यान्वित कर सकें। राष्ट्रीय योजनाकार मानते हैं कि इससे उनका जीवन-स्तर समृद्ध और समुन्नत बन सकेगा।

स्पष्ट है कि इसके लिए लोगो को एक नया जीवन-दर्शन देना होगा, भविष्य के प्रति उनम आशा और उत्साह तथा वर्तमान के प्रति साहस और पौरुष का सचार करना होगा। अनेक पारम्परिक आस्थाओ और मान्यताओ के स्थान पर नयी मान्यताओ और मूल्यों को जन-मानस म प्रस्थापित करना होगा। अनेक कुपरम्पराओं, कुसस्कारजन्य शिथिलताओ और दुर्व्यसनो के स्थान पर स्वस्थ तथा गत्यात्मक विचारो, सक्रियताओ और सीमाओ को प्रतिष्ठित करना होगा। मानव की वर्तमान निर्योग्यताओ और सीमाओ को दूर करके उसमें नयी प्रेरणा, सकल्प, योग्यता और कुशलता का प्रस्फुटन करना होगा।

शिक्षा : समाज-प्रासाद का आधार

यह सब स्वस्थ और व्यापक शिक्षा द्वारा ही सम्भव है। शिक्षा के दोनो ही रूप-सामान्य शिक्षा (विद्यालय) और समाज (प्रौढ) शिक्षा—इसके माध्यम हो सकते हैं। शिक्षा ही हमे वह आधार दे सकती है, जिस पर हमारी कल्पनाओ के स्वस्थ एव समृद्ध समाज का प्रासाद खडा हो सकता है। शिक्षा ही सदियो पुरानी अकर्मण्यता निर्योग्यता और कुठाओ स हमे मुक्ति दिलायेगी और ज्ञान के वातायन खोलकर व्यवसाय उत्पादन एव सामाजिक आचरण के समुन्नत करने और उत्कृष्ट जीवन बिताने की कामना और संकल्प देगी। शिक्षा के ही द्वारा सर्वसाधारण की चिन्तनधारा बदली जा सकती है। शिक्षा द्वारा ही लोगो म नये विचारो तथा वैज्ञानिक और यांत्रिक धारणाओ की ग्राह्यता बढ सकती है।

विस्तार से व्याख्या करने पर हम अनिवार्य रूप स इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि किसी भी समुदाय का उत्थान और कल्याण वहाँ की शिक्षा-व्यवस्था पर निर्भर रहता है। समाज म वाछित गुणा सस्कारो, विचारो मान्यताओ और मूल्यो का बाजारोपण विद्यालयो मे हो करके हम भविष्य म उसके निश्चितप्राय फल के प्रति आशान्वित हो सकते हैं। बहुत अंश तक यह सब कुछ निर्भर करता है कुशल और सुयोग्य अध्यापक के ऊपर। अत ग्राम-पुनर्रचना और विकास का कार्य अध्यापको की योग्यता बढाने और उन्हे राष्ट्र के विकास-सम्बन्धी आदर्शों के अनुरूप ढालने की अपेक्षा तथा आग्रह करता है।

पचायतीराज की स्थापना स जन-प्रतिनिधियो और ग्रामीण सस्थाओ पर ही विकास-कार्यो का नियोजन और सचालन का सारा भार आ गया है। इस कार्य द्वारा गाँव की सस्थाओ और ग्रामीण सगठनो की महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है। *अब प्रश्न सामने आता है कि किस प्रकार ग्राम-विद्यालय ग्राम-विकास म सहायक* हो सकता है, किन-किन दिशाओ म वह ग्राम-समाज को नेतृत्व प्रदान कर सकता है, किन कार्यक्रमों म योगदान दे सकता है तथा किस तरह वह गाँव के आर्थिक, सामाजिक तथा सास्कृतिक जीवन म एक नयी लहर पैदा कर सकता है। यह अच्छा होगा कि अब कुछ ठोस ग्राम-विकास कार्यक्रम पर चर्चा की जाय।

'हरो क्रान्ति' और विद्यालय

आजकल सभी पत्र-पत्रिकाओ मे 'हरी क्रान्ति' पर अनेक लेख प्रकाशित हो रहे हैं, नयी कृषि-विधियो पर चर्चा हो रही है और आये दिन व्यक्तिगत कृषको के कृषि-उत्पादन कार्य मे नयी-नयी सूझबूझ के उदाहरण दिये जा रहे हैं। कही भी पढने मे यह नही आया कि स्कूलो ने भी इस 'हरी क्रान्ति' को लाने म अपना योगदान दिया हो, जब कि ग्रामीण स्कूलो के पाठ्यक्रम मे, विशेषकर बेसिक स्कूलो मे, कृषि का एक महत्वपूर्ण स्थान है, मेरी राय म प्रत्येक ऐसे स्कूल में जहाँ थोडी-बहुत कृषि-योग्य भूमि है और सिंचाई का साधन उपलब्ध है, वहाँ कृषि व बागवानी का कार्यक्रम लिया जाना चाहिए। अध्यापको को चाहिए कि वे बच्चो की सहायता स कृषि की नयी विधियो का प्रदर्शन करें। अच्छे बीज का उपयोग, रासायनिक खाद का प्रयोग तथा नये तरीको से बोवाई का कार्यक्रम स्कूल की जमीन पर किया जाना चाहिए, चाह वह छोटे पैमाने पर ही हो। इसम भले ही कृषि-उत्पादन पर बहुत बडा असर न पडे, परन्तु इसम एक विशेष लाभ तो अवश्य होगा कि बच्चे को वैज्ञानिक कृषि-विधियो की जानकारी होगी। यही बच्चे जब प्रौढ होंगे और अपनी खेती करने *लगेंगे तो वे कृषि-उत्पादन क नये तरीके स्वत अपनाने लगेंगे।* वे अच्छे कृषक बनेंगे। बचपन से ही उनका मानसिक दृष्टिकोण बदलने लगेगा। आज प्रौढ किसान

को कृषि की नयी विधियो को अपनाने म जो मानसिक समस्या व रुकावट होती है वह नही होगा।

स्कूल मे जो बताया जाता है उसका पालन विद्यार्थी जल्दी करता है फिर स्कूल म किये गये प्रदर्शन का बच्चो के अभिभावको पर भी अच्छा प्रभाव पडता है। स्कूल के प्रति अब भी उनके दिल म आस्था है भले ही आज स्कूलो की मान्यता घट गयी है। स्कूल का अध्यापक भी इन नयी विधियो को अपने गाँव मे अवश्य ले जायेगा, अपने खेतो म उनको अपनायेगा। इस प्रकार समय के बीतने पर स्कूल उन्नत कृषि का एक केन्द्र बिन्दु बन जायेगा इसके लिए यह आवश्यक है कि जिन स्कूलो म कृषि-योग्य भूमि है उनमे तत्काल सिंचाई के साधनो का प्रबन्ध किया जाय कृषि के उपकरणो को सुलभ किया जाय रासायनिक खाद कीटनाशक दवाओ की व्यवस्था की जाय तथा उन्नत कृषि-सम्बन्धी साहित्य वितरित किया जाय। इसके साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि ऐसे स्कूलो की ओर विकास-खड के कृषि प्रसार-अधिकारी और ग्राम सेवक अधिक ध्यान दें उन्हे चाहिए कि खरीफ-रबी की गोष्ठियाँ स्कूलो म आयोजित करें। यदि ऐसा किया गया तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि प्रत्येक ऐसा स्कूल कृषि विज्ञान विकीरण का एक स्रोत बन जायेगा। और कृषि-उत्पादन वृद्धि का एक महत्त्वपूर्ण स्तम्भ होगा।

पौष्टिक आहार योजना

आजकल देश म पौष्टिक आहार के सम्बन्ध मे बडी चर्चा हो रही है। आये दिन पत्र-पत्रिकाओ म इस विषय पर लेख प्रकाशित किये जा रहे हैं। उधर यूनीसफ भारत सरकार प्रादेशिक सरकारो की सम्मिलित पौष्टिक आहार योजनाए विकास खडो म चलायी जा रही हैं। इनमे ग्रामीण स्कूलो को इस योजना का केन्द्र माना जाता है। इसके अन्तगत बागवानी कुक्कुट-पालन और पौष्टिक आहार-योजना के प्रशिक्षण का कार्यक्रम चलाया जा रहा है। यदि उचित ढंग स तथा सही निष्ठा से यह कार्यक्रम चलाया जाय तो स्कूल वास्तव म बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान कर सकता है। क्योकि कई दृष्टिकोण स स्कूल ही एक उपयुक्त केन्द्र है। स्कूल म कृषि व बागवानी की सुविधा है। अत पौष्टिक आहार के लिए वहाँ शाक सब्जियो और फल का उत्पादन हो सकता है। स्कूल म अभिभावको की आस्था है स्कूल और समाज का पारस्परिक सम्बन्ध है वहाँ प्रशिक्षित अध्यापक हैं उनका ग्रामीण क्षेत्रो म स्वीकृत नेतृत्व है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि स्कूल के अध्यापक श्रद्धा व ईमानदारी म शिक्षा-कार्यक्रम का संचालन करें। मैंने अपना नियोजन अधिकारी के कार्यकाल म कई ऐसे स्कूल देखे हैं जहाँ अच्छे सुयोग्य प्रशिक्षित अध्यापकों की देखरेख व सक्रिय सहायता से पौष्टिक आहार योजना को प्रदर्श

व्यावहारिक स्वरूप मिला है, ऐसे स्कूल आधुनिक उन्नत कृषि तथा पौष्टिक आहार के आदर्श केन्द्र हैं। उडीसा, मद्रास तथा उत्तर-प्रदेश मे आपको कई ऐसे स्कूल देखने को मिलेंगे। स्पष्ट है कि ये स्कूल ग्राम विकास के वास्तविक केन्द्र हैं।

उदाहरण के रूप मे मैंने कृषि-कार्यक्रम की यह दर्शाने के लिए चर्चा की कि किस प्रकार गाँव म शिक्षण और विकास का अनुबंध स्थापित किया जा सकता है तथा कैसे यह अनुबंध अमल मे लाया जा सकता है। कृषि के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रो जैसे स्वास्थ्य, सफाई, सामाजिक शिक्षा प्रौढ शिक्षा सास्कृतिक शिक्षा, पुस्तकालय, वाचनालय, प्रसार एवं प्रचार आदि से सम्बन्धित अनेक क्रिया-कलापो की योजना विद्यालय द्वारा विद्यालय के प्रागण म तथा उसके बाहर की जा सकती है। इसका प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव विकास की प्रगति पर पडेगा।

प्रथम प्राथमिकता

अब वास्तविक प्रश्न यह उठता है कि ग्राम-विकास और विद्यालय के अनुबंध को बनाये रखने तथा दृढ़ करने के क्या-क्या उपाय हो सकते हैं? किस प्रकार विद्यालय को विकास की इकाई बनाया जा सकता है? कैसे उन्हें और अधिक सक्रिय और जागरूक बनाया जा सकता है?

मेरी राय मे प्रथम प्राथमिकता स्कूल-अध्यापको के प्रशिक्षण को दी जानी चाहिए। उनके प्रशिक्षण मे ग्राम-विकास के मूल तत्त्वो तथा विकास-कार्य के कार्यान्वयन पर विस्तार से चर्चा की जानी चाहिए। सन् १९५७ मे राष्ट्रीय विकास-परिषद् की अनुशसा के आधार पर ग्रामीण अध्यापको के अभिनवीकरण की प्रशिक्षण-योजना सबल प्रशिक्षक दलो द्वारा चालू की गयी थी। इसके अन्तर्गत विद्यालयो के चुने हुए अध्यापको को एक २१ दिवसीय शिविर मे सम्मिलित किया गया। इन दिनो मे उन्हे ग्राम-विकास के प्रत्येक पहलू पर ज्ञान दिया गया। सैद्धान्तिक चर्चा के साथ-साथ व्यावहारिक शिक्षा भी दी गयी। शिविर समाप्त होने के पूर्व प्रत्येक अध्यापक ने एक व्यावहारिक योजना बनायी जिसके अनुसार वह अपने स्कूल तथा गाँव मे जहाँ वह रहता था योजना को कार्यान्वित करेगा, मुझे कई ऐसे शिविरो मे जाने का अवसर प्राप्त हुआ और फिर मैं कई अध्यापको से उनके कार्य-क्षेत्र मे भी मिला। मैं बडे गौरव से यह कह सकता हूँ कि इनमे से अनेक अध्यापको ने बडा सराहनीय कार्य किया, उन्होंने अपने स्कूल-गाँव मे ग्राम विकास को एक व्यावहारिक स्वरूप देने का प्रयास किया। गाँव के लोग अध्यापक के पास विकास-कार्य की जानकारी करने आने लगे। विशेषकर हमारे किसान भाई कृषि की उन्नत विधियों के सिखने मे अध्यापक का सहारा लेने लगे। कतिपय उत्साही अध्यापको ने गाँव मे प्रौढ कक्षाएँ चलाने का भी निश्चय किया। इन प्रौढ केन्द्रो पर समयानुकूल ग्राम-

विकास के सभी पहलुओं पर चर्चा होती थी। मेरी स्मृति अब भी ताजा हो जाती है कि किस प्रकार इन केन्द्रों पर आने वाले प्रौढ़ो ने बरसात में अपनी-अपनी जमीन में अनेक प्रकार के फलो के पौधे लगाये थे।

अभिनवीकरण : प्रशिक्षण की फल-श्रुति

इस योजना के सफल सचालन से प्रेरित एवं प्रभावित होकर अभिनवीकरण-प्रशिक्षण के इस कार्यक्रम को १९६० से ग्रामीण अध्यापकों के संस्थागत प्रशिक्षण का एक एकीकृत अंग बना दिया गया। तब से सभी नये अध्यापक सामुदायिक विकास की दीक्षा नार्मल स्कूल में ही प्राप्त करते आ रहे है। नार्मल स्कूलों के प्रधानाध्यापकों की एक त्रिदिवसीय गोष्ठी समाज-शिक्षा-केन्द्रो पर आयोजित को गयी और प्रत्येक नार्मल स्कूल से कम से कम एक अध्यापक को एक मास का अभिनवीकरण-प्रशिक्षण दिया गया। यही प्रशिक्षित अध्यापक नार्मल स्कूलों की दीक्षा देते हैं ताकि ग्रामीण अध्यापक अपनी-अपनी पाठशालाओ मे जाकर ग्राम-विकास के आदर्शों के अनुरूप शिक्षा को ढाल सकें तथा ऐसे कार्यक्रमो और प्रवृत्तियो का पाठशाला मे सूत्रपात कर सकें जिससे बच्चो मे जनतात्रिक, सहकारी तथा स्वावलम्बन सम्बन्धी भावनाओ का विकास हो, विद्यालय और समुदाय मे घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो सके, विद्यालय सम्पूर्ण समुदाय का शैक्षिक एवं सास्कृतिक केन्द्र बन सके और अध्यापक अपने व्यक्तिगत जीवन तथा विद्यालय मे किये गये क्रिया-कलापो से समुदाय का सप्रेरणा दे सके।

कृषक समाज की आकांक्षाएँ

समय के बीतते-बीतते जब ग्राम-समाज की आवश्यकताएँ बढ गयी है, उसकी आकाक्षाएँ नया मोड लेना चाहती है। केवल एक या दो कार्यक्रम लेकर ही समाज निरन्तर विकास के पथ पर आगे नही जा सकता। कृषि-क्षेत्र की 'हरी क्रान्ति' ने समाज के सामने और भी अन्य समस्याओं को पैदा कर दिया है। खेत मे केवल अधिक अन्न उगाकर ही किसान को सतोष नही हो सकता, उसे चाहिए अपने अनाज का उचित मूल्य, उसका क्रय-विक्रय, अनाज ले जाने के लिए अच्छी सडकें, बच्चो के लिए अच्छे स्कूल, परिवार के लिए चिकित्सा का प्रबन्ध, जानवरो के लिए चारा, अपने लिए पौष्टिक भोजन, खेत की सिंचाई की व्यवस्था, स्वस्थ मनोरंजन, बिजली आदि।

युग की मांग

तो क्या हम आज केवल सरकारी क्षेत्र मे सचालित योजनाओं से ही सतोष करें? सरकार अपने सीमित साधनो व मशीनरी से जो कुछ कर सकती है करे।

युग की मांग है कि अब समग्र विकास के लिए गैरसरकारी संस्थाएँ आगे बढ़ें। स्कूल, कालेज, विश्वविद्यालय, समाजशास्त्र केंद्र, शोध-संस्थाएँ, स्वैच्छिक संगठन, सभी को एकमत होकर ग्राम-विकास का कार्यक्रम अपनाना है। भले ही इन संस्थाओं का अपने-अपने क्षेत्र में पढ़ाई, लिखाई, खोज, शोध-कार्य का महत्व हो पर जबतक इनके अध्ययन व शोध-कार्य का समग्र विकास कार्यक्रम से व्यावहारिक सम्बन्ध स्थापित नहीं होता तबतक ये ग्राम-समाज के पुनर्रचना के साझेदार नहीं हो सकते। अतएव इन सभी को अपने 'क्षेत्र' के बाहर निकलकर 'विकास की इकाई' बनना पड़ेगा। प्रत्येक ऐसी संस्था को चाहिए कि वह ग्राम-समाज के कल्याण के लिए अपने को उसी प्रकार ढाले। इनका और ग्राम-समाज का निकट का सम्बन्ध होना चाहिए ताकि दोनों एक दूसरे को पोषित करते रहें। १० जुलाई १९६४ के 'भूदान-यज्ञ' का उद्धरण में इस सम्बन्ध में यहाँ अपनी बात की पुष्टि में देना चाहूँगा —'समाज शिक्षण के लिए यह आवश्यक है कि हम समाज के वास्तविक केन्द्र पर पहुँचे। वस्तुतः समाज का केंद्र आँगन है और परिधि पड़ोस, आँगन और पड़ोस लेकर ही समाज बनता है। उसके बिना समाज नहीं रहता। वह एक मुसाफिरखाना बन जाता है।'

यही बात ग्रामीण स्कूलों की भी। उसका तो समाज में अपना एक विशिष्ट स्थान है ही, ग्राम-समाज और ग्राम विद्यालय का एक पारस्परिक सम्बन्ध हमेशा से चला आ रहा है। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं पोषक हैं, समग्र ग्राम-विकास के लिए दोनों का सक्रिय सहयोग नितान्त आवश्यक है। समाज अध्यापक वर्ग से सदैव शिक्षा लेता रहा है और भविष्य में भी अध्यापकों के सहारे ही अपने जीवन-पथ को सुधार सकता है। विद्यालय का क्या रूप होगा, क्या उसका कार्यक्रम रहेगा, किस प्रकार वह सफल हो सकता है, किन विधियों से विद्यालय अपने को ग्राम-समाज की सेवा में लगा सकता है, कैसे वह अपने छात्रों को इस देश के भावी युग के कर्णधार तैयार कर सकता है, यह सब इस बात पर निर्भर करता है कि विद्यालयों के अध्यापक किस प्रकार आज के युग में युग की मांग के अनुसार अपने जीवन को ढालते हैं। समाज को चाहिए कि वह अध्यापक व विद्यालयों को उच्च सम्मानित स्थान दे और अध्यापकों को चाहिए कि वे मानव-विकास के लिए सदैव अथक प्रयत्न करते रहें। •

व्रजमोहन पाडे—रजिस्ट्रार, गांधी विद्या संस्थान, राजघाट, वाराणसी।

विकासशील भारत का शैक्षिक संयोजन

रुद्रभान

प्रत्येक विकासशील देश को अपने विकास-कार्यक्रम से सम्बन्धित एक विराट यक्ष प्रश्न का उत्तर ढूंढना होता है कि क्या वह देश की आबादी के सभी लोगो को साक्षर बनाने और शिक्षा का विकास-प्रक्रिया की धुरी बनाने की योजना को वरीयता (प्राइआरिटी) दे, (भले ही इसके नतीजे से आबादी के लिए तात्कालिक उपभोग की सामग्री के उत्पादन के लिए तत्काल पूंजी की कमी पडे और आर्थिक विकास की रफ्तार धीमी रखने के लिए विवश होना पडे), या वह ऐसे कार्यक्रमो को वरीयता प्रदान करे, जिनके कार्यान्वयन से राष्ट्रीय आय की तेज रफ्तार से वृद्धि हो और आर्थिक समृद्धि के परिणामस्वरूप दीर्घकालीन शैक्षिक एव समाज-कल्याणकारी कार्यक्रमो के लिए क्रमश अधिकाधिक साधन उपलब्ध हो सकें ?

जाहिर है कि हमारे देश ने राष्ट्रीय आय बढानेवाले कार्यक्रमो को वरीयता प्रदान करने की नीति स्वीकार की। इसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आर्थिक विकास के लिए भारी उद्योगो तथा औद्योगिक सस्थानो की स्थापना को सर्वोच्च वरीयता प्राप्त हुई, और शिक्षण तथा समाज-विकास-सम्बन्धी कार्यक्रमो की मात्र कामचलाऊ योजनाएँ कार्यान्वित हुईं। आज भारत राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक क्षेत्रो म जिस दौर स गुजर रहा है उसका मूल स्रोत भारत की स्वाधीनोत्तर सयोजन-नीति ही है।

स्वाधीनोत्तर संयोजन-नीति की देन

आज का सामान्य भारतीय नागरिक प्राय हताश और असंतुष्ट दीख पडता है। आजादी के २० वर्षो के विकास-कार्यक्रम के परिणामस्वरूप ऐसी स्थिति बन गयी है कि देश के किसी-न-किसी हिस्से मे विस्फोटक परिस्थिति का निर्माण होता रहता है।

शैक्षिक या समाजशास्त्रीय दृष्टि स आज की मूल समस्या यह नही है कि आज के भारतीय नागरिक की विकास म आस्था या रुचि नही है, बल्कि असली समस्या यह है कि नागरिको की जो मूल आस्थाएँ हैं, वे उस विकास की विपरीत दिशा मे ले जा रही हैं। आज जो नागरिक अखबार पढते हैं, होटलों मे खाते हैं, कीमती पोशाक पहनते हैं और मोटरो मे घूमते हैं, वे अपने आपको विकसित आदमी मानते हैं, जब कि वस्तुस्थिति दूसरी ही है।

विकास का परम्परागत अर्थ है—समाज म प्रतिष्ठित सामाजिक और नैतिक मूल्यो के अनुसार व्यक्ति की स्वाभाविक प्रवृत्तियो और बौद्धिक विशेषताओ का

उन्नयन। विकास का समाजशास्त्रीय अर्थ है—मानवीय स्वतन्त्रता, न्याय, और समानता के अनुरूप व्यक्ति की मूल वृत्तियो और प्रवृत्तियो का सहज अनुकूलन। और विकास का आधुनिक अर्थ है—समाज म प्रचलित अचलन फैशन के अनुसार जीवन के तर्ज-तरीके और रहन सहन का निर्धारण।

विकास म आस्था रखनेवाला भारत का आधुनिक नागरिक परम्परागत जीवन के ढंग को पिछडापन मानता है। उसकी आस्था के अनुसार परम्परागत जीवन के परिवर्तन मे ही विकास की प्रक्रिया निहित है।

इसका कतई यह अथ नही है कि आधुनिक नागरिक अपने युग की संस्कृति के बन्धनो स परम्परावादी मनुष्यों की तुलना म अधिक मुक्त है। दरअसल वह आज भी अपने इर्द-गिर्द के वातावरण के अनुसार अपना जीवन बिताता है। और आज की संस्कृति का वह लगभग गुलाम ही है। अन्तर इतना ही है कि आज की नव-संस्कृति प्रचलित फैशन पर आधारित है, जब कि परम्परावादी व्यक्तियों की संस्कृति अतीत की परम्पराओ पर आश्रित रहती है।

आज का नागरिक सामाजिक दृष्टि स तो बहुत जल्दी वयस्क हो जाता है, लेकिन जीवन मे उपस्थित होनेवाली पेचीदी समस्याओ और उलझनो को सुलझाने की जैसे उसके पास सूझबूझ ही नही रहती है। उसके इर्द-गिर्द ऐसी समर्थ शिक्षण सस्थाएँ भी नही हैं जो उसे ऐसी परिस्थिति म सही मार्ग-दर्शन दे सकें।

परिस्थिति की माँग

देश की मौजूदा परिस्थिति की माँग है कि आज के नागरिक न तो जीवन म होनेवाले परिवर्तनो के अंतर्विरोधी बनें और न तो उनके अधानुसरण करनेवाले हो। नागरिको मे इस प्रकार की संचेतना आये इसके लिए किसी ऐसी सर्वांगीण शैक्षिक-योजना की आवश्यकता है जो मानव-जीवन के स्वस्थ उद्देश्यो के अनुरूप नागरिक-जीवन का नवीनीकरण करती चले। आज समाज म ऐसी कोई संस्था नहीं है, जो जमाने की इस माँग की पूर्ति कर सके। इस अभाव के कारण आज का सामान्य नागरिक प्राय प्रचार या प्रतिक्रिया के अनुसार अपना सामाजिक व्यवहार और जीवन-पद्धति तय करता है।

मैंने इस निबन्ध के प्रारम्भ मे ही सकेत किया है कि आज हमारा देश जिन परिस्थितियो के दौर से गुजर रहा है उसका मूल स्रोत स्वाधीनोत्तर सयोजन-नीति मे निहित है। पिछले २० वर्षों मे आर्थिक विकास की अनेक योजनाएँ कार्यान्वित हुईं। इन योजनाओं क कारण कई नये कारखाने खडे हुए जिनसे नयी वस्तुओ का उत्पादन शुरू हुआ। राष्ट्रीय उत्पादन तो बढा, पर जितना अनुमान था उतनी उत्पा-

दन वृद्धि नही हुई। इसीलिए भारी पूंजी के विनियोग से स्थापित सार्वजनिक क्षेत्र के अनेक औद्योगिक प्रतिष्ठान राज्य को प्रत्येक वर्ष करोडो का घाटा दे रहे हैं।

आर्थिक योजनाकारो ने माना था कि तेज गति से औद्योगिक विकास होने पर राष्ट्र की आय बराबर बढगी तो उस बढती हुई आय का शिक्षा तथा समाज-विकास के कायक्रमो म विनियोग होगा। किन्तु जो परिणाम आज सामने है वे अपेक्षा के विपरीत हैं। आर्थिक विकास के साथ-साथ विदेशो कर्ज और ब्याज की रकमा मे वृद्धि होती जा रही है। औद्योगिक विकास के साथ साथ प्रशासन और व्यवस्था का आवतक व्यय भी बढता जा रहा है। जैसे-जैसे प्रशासन और औद्योगिक प्रबन्ध म लगनेवाले लोगो की तादाद बढ रही है वैसे वैसे देश की जनता घनी और निघन, सुविधा-सम्पन्न और विपन्न नाम के दो खेमो मे विभाजित हो रही है। गरीब और विपन्न लोग राष्ट्रीय साधनों और राष्ट्रीय आय की वृद्धि को देश के सम्पन्न और सुविधाशाली लोगो की समृद्धि मानते हैं। इसीलिए यह अच्छी तरह जानते हुए भी कि राष्ट्रीय साधन जनता से लिये गये टक्स की रकम से बने हैं, आम जनता अपना असन्तोष और आक्रोश प्रकट करते समय राजकीय सम्पत्ति को अपने विध्वसात्मक प्रहार का निशाना बनाती है।

राष्ट्रीय दुश्चक्र

इस प्रकार राष्ट्रीय साधनो की वृद्धि के साथ साथ राष्ट्रीय साधनो के विनाश की खतरनाक प्रक्रिया भी शुरू है। प्राय देश के किसी-न-किसी कोने की क्रुद्ध जनता रेलवे, परिवहन, डाकखानो और पुलिस थानो पर अपना विनाशकारी आक्रोश प्रकट करती है। प्रशासन और औद्योगिक उत्पादन का कर्मचारी तथा व्यवस्था-खच दिनो दिन बढ रहा है लेकिन प्रति व्यक्ति कार्यक्षमता घटती जा रही है। दफ्तरो मे कुछ इने-गिने लोग ही पूरे समय तक काम करते हैं। अधिकाश कमचारी ८ घंटे का वतन लेकर मुश्किल से डेढ़-दो घटे का काम करते हैं। जाहिर है कि मात्र कानूनी उपायो से इस स्थिति मे अपेक्षित परिवतन नही लाया जा सकता।

वस्तुत विकास सिर्फ आर्थिक प्रक्रिया नहीं है। दरअसल वह एक शैक्षिक सास्कृतिक और सामाजिक प्रक्रिया है इसलिए शिक्षण को मात्र जन कल्याणकारी प्रवृत्ति के रूप म नही, बल्कि राष्ट्रीय संयोजन की धुरी के रूप म प्रतिष्ठित होना चाहिए। राष्ट्रीय शिक्षा के सम्बन्ध म अपने शैक्षिक सुझावो को, प्रस्तुत करते हुए वतमान केन्द्रीय शिक्षा-मंत्री श्री वी० के० आर० वी० राव ने कहा है—'शिक्षा की दीघकालीन लक्ष्य-सिद्धि की दृष्टि से मैं चाहूँगा कि देश के प्रत्येक बालक-बालिका को १० वष की विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त हो। १० वष की शिक्षा राष्ट्रीय शिक्षा का पहला मुकाम होना चाहिए। इस पडाव के आगे, आगे की शिक्षा के अनेक

वैकल्पिक मार्ग उपलब्ध रखने होंगे।" श्री वी० के० आर० वी० राव के अनुसार विद्यार्थी के लिए सातवीं, दसवीं और बारहवीं कक्षा के बाद ऐसे मुकाम होने चाहिए। ७ वर्ष की शिक्षा के पहले मुकाम पर पहुँचने पर विद्यार्थी को खेती तथा रोजगार-सम्बन्धी ऐसा प्रशिक्षण मिलना चाहिए जिसमें उसे मुख्य रूप से शारीरिक श्रम का कार्य करना हो। शिक्षा के दूसरे सोपान यानी माध्यमिक शिक्षा की समाप्ति पर विद्यार्थी को खेती, वाणिज्य, औद्योगिक तथा तकनीकी क्षेत्र का ऐसा प्रशिक्षण मिलना चाहिए कि उसके प्राप्त करने के बाद वह खेती, वाणिज्य, तकनीकी संस्थानों, प्रशासन तथा शिक्षण-संस्थाओं में सलदयाप्ता कर्मचारी के पद में कार्य कर सके। शिक्षा का तीसरा सोपान विद्यार्थी का स्नातकीय शिक्षा के विभिन्न सकायों (फैकल्टीज) की ओर उन्मुख करेगा जहाँ वे खेती पशुपालन, खेती से सम्बन्धित अन्य विज्ञानों, चिकित्सा, वाणिज्य, शिक्षाशास्त्र तथा विभिन्न कलाओं का शिक्षण प्राप्त करेंगे। शिक्षा का चौथा सोपान स्नातकीय शिक्षा के आगे का मुकाम होगा, जहाँ विद्यार्थी को विभिन्न विषयों की उच्च शिक्षा की व्यवस्था होगी।

विकास के नव-सन्दर्भ में शिक्षण की भूमिका

डा० राव की कल्पना शिक्षा को मात्र राष्ट्र की आर्थिक प्रवृत्तियों और प्रक्रियाओं से अनुबद्ध करने की है, जब कि परिस्थिति की माँग है कि विकास से सम्बन्धित सभी कार्यक्रम राष्ट्रीय शिक्षण के व्यापक दायरे में आ जायें।

प्रस्तुत निबंध में ऐसे राष्ट्रीय शिक्षण की सकल्पना प्रस्तुत करते हुए फिलहाल मैं इतना ही कह सकता हूँ कि आज विकास के लिए जितने भी माध्यम हैं उनमें शिक्षण ही सर्वाधिक सक्षम और प्रभावकारी होने की सम्भावना रखता है। वस्तुतः शिक्षण-संस्था अपने सीमित दायरे में समाज का ही लघुरूप है। विकास के सन्दर्भ में शिक्षालय ही राष्ट्रीय संयोजना का केन्द्र बिन्दु होना चाहिए। शिक्षालय का पास-पड़ोस के जन-समुदाय के साथ जितना ही सजीव और सक्रिय सम्बन्ध होगा उतना ही वह उन समस्याओं के निराकरण में अपना वाञ्छनीय सहयोग दे पायेगा। इसका सीधा अर्थ यह होता है कि विद्यालय का क्षेत्र सिर्फ कक्षा की दीवारों और विद्यालय की चहारदीवारी तक सीमित नहीं होगा। इसका यह भी अर्थ होता है कि विद्यालय के शिक्षक और शिक्षार्थी पास-पड़ोस की सामान्य जनता यानी छात्रों के पालकों के निकट सम्पर्क में आयेंगे। विद्यालय का स्तर और दायरा जैसे-जैसे ऊँचा और विस्तृत होता जायेगा वैसे-वैसे वह अपने पास-पड़ोस के समुदाय के मुख्य कार्यक्रमों और

---

१. वी० के० आर० वी० राव—"एजूकेशन एण्ड ह्यूमन रिसोर्स डेवलपमेण्ट", एलाइड पब्लिशर्स, बम्बई, पृष्ठ—१८५।

दन वृद्धि नही हुई। इसीलिए भारी पूंजी के विनियोग स स्थापित सार्वजनिक क्षेत्र के अनेक औद्योगिक प्रतिष्ठान राज्य को प्रत्येक वर्ष करोडो का घाटा दे रहे हैं।

आर्थिक योजनाकारो ने माना था कि तेज गति स औद्योगिक विकास होने पर राष्ट्र की आय बराबर बढेगी तो उस बढती हुई आय का शिक्षा तथा समाज-विकास के कार्यक्रमो मे विनियोग होगा। किन्तु जो परिणाम आज सामने हैं वे अपेक्षा के विपरीत है। आर्थिक विकास के साथ-साथ विदेशी कर्ज और ब्याज की रकमो मे वृद्धि होती जा रही है। औद्योगिक विकास के साथ-साथ प्रशासन और व्यवस्था का आवर्तक व्यय भी बढना जा रहा है। जैसे-जैसे प्रशासन और औद्योगिक प्रबन्ध म लगनेवाले लोगो की तादाद बढ रही है वैसे-वैसे देश की जनता धनी और निर्धन, सुविधा-सम्पन्न और विपन्न नाम के दो खेमो मे विभाजित हो रही है। गरीब और विपन्न लोग राष्ट्रीय साधनों और राष्ट्रीय आय की वृद्धि को देश के सम्पन्न और सुविधाशाली लोगो की समृद्धि मानते हैं। इसीलिए यह अच्छी तरह जानते हुए भी कि राष्ट्रीय साधन जनता से लिये गये टैक्स की रकम से बने हैं, आम जनता अपना असन्तोष और आक्रोश प्रकट करते समय राजकीय सम्पत्ति को अपने विध्वसात्मक प्रहार का निशाना बनाती है।

राष्ट्रीय दुश्चक्र

इस प्रकार राष्ट्रीय साधनो की वृद्धि के साथ-साथ राष्ट्रीय साधनो के विनाश की खतरनाक प्रक्रिया भी शुरू है। प्राय देश के किसी-न-किसी कोने की क्रुद्ध जनता रेलवे, परिवहन, डाकखानो और पुलिस थानो पर अपना विनाशकारी आक्रोश प्रकट करती है। प्रशासन और औद्योगिक उत्पादन का कर्मचारी तथा व्यवस्था-खर्च दिनो दिन बढ रहा है, लेकिन प्रति व्यक्ति कार्यक्षमता घटती जा रही है। दफ्तरो म कुछ इनेगिने लोग ही पूरे समय तक काम करते हैं। अधिकाश कर्मचारी ८ घंटे का वेतन लेकर मुश्किल म डेढ़-दो घंटे का काम करते हैं। जाहिर है कि मात्र कानूनी उपायो स इस स्थिति म अपेक्षित परिवर्तन नही लाया जा सकता।

वस्तुत विकास सिर्फ आर्थिक प्रक्रिया नही है। दरअसल वह एक शैक्षिक, सास्कृतिक और सामाजिक प्रक्रिया है, इसलिए शिक्षण को मात्र जन कल्याणकारी प्रवृत्ति के रूप म नही, बल्कि राष्ट्रीय संयोजन की धुरी के रूप म प्रतिष्ठित होना चाहिए। राष्ट्रीय शिक्षा क सम्बन्ध म अपने शैक्षिक सुझावो को, प्रस्तुत करत हुए वर्तमान केन्द्रीय शिक्षा-मंत्री श्री वी० के० आर० वी० राव ने कहा है—'शिक्षा का दीर्घकालीन लक्ष्य-सिद्धि की दृष्टि म मैं चाहूँगा कि देश के प्रत्येक बालक-बालिका को १० वर्ष की विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त हो। १० वर्ष की शिक्षा राष्ट्रीय शिक्षा का पहला मुकाम होना चाहिए। इस पड़ाव के आगे, आग की शिक्षा क अनेक

वैकल्पिक मार्ग उपलब्ध रखने होंगे।" श्री वी० के० आर० वी० राव के अनुसार विद्यार्थी के लिए सातवीं, दसवीं और बारहवीं कक्षा के बाद ऐसे मुकाम होने चाहिए। ७ वर्ष की शिक्षा के पहले मुकाम पर पहुँचने पर विद्यार्थी को खेती तथा रोजगार सम्बन्धी ऐसा प्रशिक्षण मिलना चाहिए जिसमें उसे मुख्य रूप से शारीरिक श्रम का कार्य करना हो। शिक्षा के दूसरे सोपान यानी माध्यमिक शिक्षा की समाप्ति पर विद्यार्थी को खेती, वाणिज्य, औद्योगिक तथा तकनीकी क्षेत्र का ऐसा प्रशिक्षण मिलना चाहिए कि उसके प्राप्त करने के बाद वह खेती, वाणिज्य, तकनीकी संस्थानों, प्रशासन तथा शिक्षण-संस्थाओं में सनदयाफ्ता कर्मचारी के रूप में कार्य कर सके। शिक्षा का तीसरा सोपान विद्यार्थी को स्नातकीय शिक्षा के विभिन्न सकायों (फैकल्टीज) की ओर उन्मुख करेगा जहाँ वे खेती पशुपालन, खेती से सम्बन्धित अन्य विज्ञानों, चिकित्सा, वाणिज्य शिक्षाशास्त्र तथा विभिन्न कलाओं का शिक्षण प्राप्त करें। शिक्षा का चौथा सोपान स्नातकीय शिक्षा के आगे का मुकाम होगा, जहाँ विद्यार्थी को विभिन्न विषयों की उच्च शिक्षा की व्यवस्था होगी।

विकास के नव-सन्दर्भ में शिक्षण की भूमिका

डा० राव की कल्पना शिक्षा को मात्र राष्ट्र की आर्थिक प्रवृत्तियों और प्रक्रियाओं से अनुबद्ध करने की है, जब कि परिस्थिति की माँग है कि विकास से सम्बन्धित सभी कार्यक्रम राष्ट्रीय शिक्षण के व्यापक दायरे में आ जायें।

प्रस्तुत निबंध में ऐसे राष्ट्रीय शिक्षण की संकल्पना प्रस्तुत करते हुए फिलहाल मैं इतना ही कह सकता हूँ कि आज विकास के लिए जितने भी माध्यम हैं उनमें शिक्षण ही सर्वाधिक सक्षम और प्रभावकारी होने की सम्भावना रखता है। वस्तुतः शिक्षण-संस्था अपने सीमित दायरे में समाज का ही लघुरूप है। विकास के सन्दर्भ में शिक्षालय ही राष्ट्रीय संयोजना का केन्द्र-बिन्दु होना चाहिए। शिक्षालय का पास-पड़ोस के जन-समुदाय के साथ जितना ही सजीव और सक्रिय सम्बन्ध होगा उतना ही वह उन समस्याओं के निराकरण में अपना वाञ्छनीय सहयोग दे पायेगा। इसका सीधा अर्थ यह होता है कि विद्यालय का क्षेत्र सिर्फ कक्षा की दीवारों और विद्यालय की चहारदीवारी तक सीमित नहीं होगा। इसका यह भी अर्थ होता है कि विद्यालय के शिक्षक और शिक्षार्थी पास-पड़ोस की सामान्य जनता यानी छात्रों के पालकों के निकट सम्पर्क में आयेंगे। विद्यालय का स्तर और दायरा जैसे-जैसे ऊँचा और विस्तृत होता जायेगा वैसे-वैसे वह अपने पास-पड़ोस के समुदाय के मुख्य कार्यक्रमों और

१ वी० के० आर० वी० राव—"एजूकेशन एण्ड ह्यूमन रिसोर्स डेवलपमेण्ट", एलाइड पब्लिशर्स, बम्बई, पृष्ठ—१८५।

समस्याओ से अनुबधित होगा। अर्थात् प्राथमिक विद्यालय से लेकर विश्वविद्यालय और शोध संस्थाएँ सबकी सब अपनी क्षमता और जन-शक्ति के अनुसार पड़ोसी समुदाय एव क्षेत्र के औद्योगिक तथा प्रशासनिक केन्द्रों के कार्यक्रमों को शिक्षा के माध्यम के रूप में इस्तेमाल करने का प्रयास करेंगी। जिन समस्याओं का समाधान उनके बूते के बाहर की चीज होगी उन्हे वे ऊपर की इकाइयों तक ले जाने का दायित्व निभायेंगी। इसका स्पष्ट अर्थ यह होता है कि शिक्षण की छोटी से लेकर बडी-से बडी इकाई अपने क्षेत्र की समस्त प्रवृत्तियों की धुरी होगी। नये शिक्षण की यह सकल्पना वर्तमान विद्यालयों के लिए नही है। विद्यालयों का वर्तमान ढाचा कायम रखते हुए उनसे यह भूमिका नहीं निभ सकती। इसके लिए राष्ट्रीय शैक्षिक नीति को विकास मूलक बनना होगा।

शिक्षण की विकासमूलक भूमिका राष्ट्र की समस्त योजनाओ के कार्यान्वयन में गुणात्मक परिवर्तन का सूत्रपात करेगी। शिक्षण की यह नयी और गत्यात्मक भूमिका विश्व के लिए कोई नयी बात नही है। प्रत्येक विकासशील देश ने अपनी स्थानीय परिस्थिति और प्रतिभा के अनुसार शिक्षण प्रक्रिया का इस दिशा में कुछ हद तक प्रभावकारी उपयोग किया है।

नयी तालीम के वरिष्ठ शिक्षाशास्त्री श्री धीरेन्द्र मजूमदार ने राष्ट्रीय उद्योगों को शिक्षण का माध्यम बनाने के सम्बन्ध में जो विचार प्रकट किये हैं वे अपेक्षित दिशा की ओर इगित करते हैं—

सर्वोदय समाज में कारखाना के मालिक-मजदूर के रूप में दो भाग नही होंगे और न इजीनियर और कुली अलग-अलग होंगे। हर कारखाना विद्यापीठ का रूप लेगा, जहाँ केवल शिक्षक और छात्र रहेंगे। उदाहरण के लिए चितरंजन के रेल्वे कारखाने को ले। आज वह औद्योगिक नगर है। नयी तालीम की योजना में वह विश्वविद्यालय का रूप ले लेगा। अगर आज वहाँ प्रतिवर्ष दो हजार मजदूर भर्ती किये जाते हैं तो नयी तालीम से ओतप्रोत समाज में प्रति वर्ष दो हजार उत्तर बुनियादी से उत्तीर्ण तथा यन्त्र-शास्त्र में रुचि और प्रतिभा रखनेवाले युवकों को कुली के रूप में नहीं बल्कि छात्र के रूप में भर्ती किया जायगा। उस कारखाना में आज जहाँ फोरमैन और इंजीनियर हैं वहाँ प्रतिभावान अध्यापक होंगे। छात्र तथा अध्यापक मिलकर कुछ घंटे उत्पादन का काम तथा साथ-साथ शास्त्र की चर्चा करेंगे। थोड़े समय तक अलग से वर्ग में समवाय पद्धति से शास्त्र के विभिन्न पहलुओं की चर्चा करेंगे। उस कारखाना में विशेष रूप से प्रयोगशालाएँ होंगी, जिनमें प्रतिभावान लोग काम करेंगे। उनमें तात्त्विक अनुसंधान भी होगा। इसके लिए कार्यक्रम तथा समय-विभाजन का विस्तृत विवरण काम के अनुभव के साथ ही साथ तैयार होना

जायगा। ऐसे विद्यापीठो का अभ्यास क्रम सामान्यत अलग-अलग होगा, लेकिन छात्र गणित आदि आवश्यक विज्ञान के बारे मे भी अभ्यास करेंगे। विज्ञान के बारे मे आवश्यक विज्ञान शब्द इस्तेमाल किया गया है, क्योंकि नयी तालीम पद्धति मे न शुद्ध विज्ञान और न आनुषंगिक (अप्लाइड) विज्ञान, बल्कि हर स्तर पर आवश्यक विज्ञान का ही अध्ययन होगा।

लौहादि धातुओ के कारखानो के उदाहरणस्वरूप टाटानगर को लिया जा सकता है। नये समाज मे ऐसा कारखाना विश्वविद्यालय का रूप लेगा। जैसे चितरंजन के लिए कहा गया है उसी तरह इस किस्म के विज्ञान के काम मे रुचि तथा प्रतिभा रखनेवाले उत्तर-बुनियादी के उत्तीर्ण बालक इस विश्वविद्यालय मे प्रवेश पायेंगे और अध्यापको के साथ उत्पादन के माध्यम से शास्त्रो का अध्ययन करेंगे

इसी प्रकार दूसरे सभी कार्यक्रमो के लिए उत्तर-बुनियादी के चुने हुए बालको को भेजकर सारा काम चलाने के माध्यम से अमुक-अमुक विशिष्ट विषयो के अध्ययन तथा अध्यापन का अनुक्रम जारी किया जा सकता है। अर्थात् नयी तालीम की उच्च शिक्षा के लिए उच्चस्तरीय कार्यक्षेत्रो को विश्वविद्यालय मे परिणत करना होगा, जहाँ देश के चुने हुए प्रतिभावान् युवक ज्ञान-चर्चा के साथ-साथ उन कामो को भी चलायेंगे।[1]

शिक्षण के चार आयाम

गाँव बाजार, दफ्तर और कारखाने—भारतीय राष्ट्रीय जीवन के चार मुख्य आयाम हैं। राष्ट्रीय विकास की सर्वोच्च आवश्यकता है कि इन चारो क्षेत्रो मे मौजूद जनशक्ति का इस ढग से शैक्षिक सयोजन हो कि इनमे से प्रत्येक अधिक कार्यक्षम हो और एक-दूसरे की पूरक शक्ति के रूप मे अनुबधित हो। इस सन्दर्भ मे शिक्षण गाँव बाजार, दफ्तर और कल-कारखाना, इन चारो क्षेत्रो को विकास की प्रक्रिया के धागे मे पिरोनेवाला महत्त्वपूर्ण माध्यम होगा। राष्ट्रीय सयोजन तथा प्रशासन की स्थानीय इकाइयाँ शिक्षा की बुनियादी इकाइयो से अनुबद्ध होगी। इसी प्रकार प्रशासन तथा सयोजन की क्षेत्रीय शाखाएँ माध्यमिक एव उच्चतर माध्यमिक शिक्षा से तथा जिला-स्तरीय कार्यालय उच्च शिक्षण-संस्थाओं से सम्बद्ध होंगे।

शैक्षिक-संयोजन का यह कार्यक्रम सार्वभौम करने के लिए एक ओर शिक्षण संस्थाओ का क्षेत्र विद्यालय की चहारदीवारी से बाहर तक लाकर समाज-व्यापी करना होगा, दूसरी ओर, व्यावसायिक प्रतिष्ठान, कार्यालय और कारखानो के रोज

---

१ श्री धीरेन्द्र मजूमदार—"समग्र नयी तालीम" सर्व सेवा संघ-प्रकाशन, राजघाट; वाराणसी १ पृष्ठ १६४ १६५।

भर्ती के काम, उनके प्रबन्ध और संचालन के काम को भी इस ढंग से पुनर्गठित करना होगा कि वह सवालन-प्रधान नौकरशाही की व्यवस्था से एक स्वयपूर्ण और स्वय-अनुशासित व्यवस्था मे रूपातरित हो जाय।

आज के राष्ट्रीय सयोजन का मुख्य कार्यवाहक ठीकेदार, मुख्य प्रेरणा बाजार, और मुख्य स्रोत सरकार है। विकासोन्मुख शैक्षिक सयोजन के मुख्य कार्यवाहक राष्ट्र के शिक्षा-मनीषी, मुख्य प्रेरणा मानवीय विकास और मुख्य स्रोत राष्ट्र की शिक्षित जनशक्ति होगी। जबतक पूरा राष्ट्र एक महाविद्यालय और राष्ट्र की समस्त जनता उसकी आजीवन विद्यार्थी नही बनती तबतक राष्ट्र के विकास की सकल्पना अपूर्ण और असमाधानकारी ही रहेगी। इस सकल्पना मे आचार्य का पद राष्ट्र का सबसे ऊँचा और सम्मानित पद होगा। देश के बडे-से-बडे लोग किसी-न-किसी शिक्षण-योजना से सक्रिय रूप से जुडे होगे। वर्तमान केन्द्रीय-योजना-आयोग और राष्ट्रीय विकास परिषद् की जगह राष्ट्रीयशिक्षा-आयोग तथा क्षेत्रीय शिक्षा-परिषदें होगी, जिनमे राष्ट्र के चुने हुए शिक्षा-शास्त्री, प्रतिष्ठित नागरिक और समाज के शीर्ष बुद्धिशाली समाविष्ट होगे। शिक्षा की स्थानीय समितियो मे शिक्षक पालक और क्षेत्रीय उद्योग से सम्बन्धित तक्नीशियन होगे।

राष्ट्र के अत्यन्त केन्द्रित तथा परस्पर असम्बद्ध विभागो को इस प्रकार की शैक्षिक-प्रक्रिया मे समाविष्ट करना आज के राष्ट्रीय नेतृत्व के लिए एक भारी चुनौती है। नौकरशाही के बन्धनो मे जकडा हुआ भारतीय लोकतत्र इस चुनौती का उत्तर दे सकेगा इसकी सम्भावना नही दीखती। जाहिर है कि राष्ट्र की जागरुक और प्रबल जन-शक्ति द्वारा ही यह ऐतिहासिक कार्य सम्पन्न हो सकेगा।•

वर्द्धमान—सह-सम्पादक 'नयी तालीम'—सर्व सेवा सघ-प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी।

—मभाटा से

मेरी कल्पना का शिक्षण

मो० क० गांधी

• एक राष्ट्र के नाते शिक्षा में हम इतने पिछड़े हुए हैं कि अगर शिक्षा प्रचार के कार्यक्रम का आधार पैसा रहे तो इस विषय में जनता के प्रति अपने कर्तव्य पालन की आशा हम कभी नहीं रख सकते। इसलिए रचनात्मक कार्य-सम्बन्धी अपनी सारी प्रतिष्ठा को खो बैठने की जोखिम उठाकर भी मैंने यह कहने का साहस किया है कि शिक्षा स्वावलम्बी होनी चाहिए।

• सच्ची शिक्षा वही है जिसे पाकर मनुष्य अपने शरीर मन और आत्मा के उत्तम गुणों का सर्वांगीण विकास कर सके और उन्हें प्रकाश में ला सके। इसलिए मैं तो बच्चे की शिक्षा का आरम्भ उसे कोई उपयोगी दस्तकारी सिखाकर अर्थात् जिस क्षण से उसकी शिक्षा शुरू होती है उसी क्षण से उसे कुछ-न-कुछ नया सृजन करना सिखाकर ही करूँगा। इस तरीके से हरएक पाठशाला स्वावलम्बी बन सकती है शर्त यह है कि इन पाठशालाओं में तैयार होनेवाले माल को सरकार खरीद लिया करे। मैं मानता हूँ कि इस पद्धति द्वारा मन और आत्मा का उच्च-से उच्च विकास किया जा सकता है। इसके लिए आवश्यक है कि जो उद्योग-धन्धे आज केवल यन्त्रवत् सिखाये जाते हैं वे वैज्ञानिक ढंग से सिखाये जायें यानी बच्चों को यह समझाया जाय कि कौनसी क्रिया किसलिए की जाती है।

• इस चीज को मैं थोड़े आत्मविश्वास के साथ लिख रहा हूँ, क्योंकि इसकी पीठ पर मेरे अनुभव का बल है। जहाँ-जहाँ मजदूरों को चरखे पर सूत कातना सिखाया जाता है तहाँ-तहाँ सब जगह इस तरीके से कमो-बेश काम लिया गया है। खुद मैंने भी इस तरीके से चप्पल सीना और कातना सिखाया है और उसका परिणाम अच्छा हुआ है। इस तरीके में इतिहास भूगोल के ज्ञान का बहिष्कार नहीं किया गया है। लेकिन मेरा तजुरबा यह है कि बातचीत के जरिए जबानी जानकारी देकर ही ये विषय अच्छी तरह सिखाये जा सकते हैं। वाचन-लेखन की अपेक्षा इस श्रवण-पद्धति से ज्यादा ज्ञान दिया जा सकता है।

• जब लड़के-लड़की भले-बुरे का भेद समझने लगें और उनकी रुचि का थोड़ा विकास हो जाय तभी उन्हें लिखना-पढ़ना सिखाना चाहिए। यह सूचना मौजूद शिक्षा प्रणाली में क्रान्तिकारी परिवर्तनों की सूचक है लेकिन इसके कारण मेहनत बहुत ही बच जाती है और जिस चीज को सीखने में विद्यार्थी को बरसों बीत

जाते हैं उसे इस तरीके से वह एक साल म सीख सकता है। इसके कारण सब तरह की बचत होती है और इसमे कोई शक नही कि दस्तकारी के साथ साथ विद्यार्थी गणित भी अवश्य ही सीखेगा।

• प्राथमिक शिक्षा को मैं सबसे ज्यादा महत्त्व देता हूँ। मेरे विचार म यह शिक्षा अंग्रेजी को छोडकर और विषयो मे आजकल की मैट्रिक तक होनी चाहिए। अगर कालेज के सब ग्रेजुएट अपना पढा लिखा एकाएक भूल जायें, और इन कुछ लाख ग्रेजुएटो की याददाश्त के यो एकाएक बेकार हो जाने से देश का जो नुकसान हो उसे एक पल्डे पर रखिए, और दूसरी ओर उस नुकसान को रखिए जो तैंतीस करोड स्त्री पुरुषो के अज्ञानान्धकार मे घिरे रहने से आज भी हो रहा है, तो साफ मालूम होगा कि दूसरे नुकसान के सामने पहला कोई चीज नही है। देश मे निरक्षरो और अनपढो की जो सख्या बतायी जाती है, उसके आँकडो से हम लाखो गाँवो मे फैले हुए घोरतम अज्ञान का पूरा अनुमान नही कर सकते।

• अगर मेरा बस चले तो कालेज की शिक्षा को जड-मूल स बदल दूँ और देश की आवश्यकताओ के साथ उसका सम्बन्ध जोड दूँ। म चाहता हूँ कि मेकेनिकल और सिविल इन्जीनीयरो के लिए उपाधि-परीक्षाएँ रखी जायें, और भिन्न भिन्न कल-कारखानो के साथ उनका सम्बन्ध स्थापित कर दिया जाय। इन कारखानो को जितने ग्रेजुएटो की जरूरत हो उतना को ये अपने ही खच स तालीम दिलाकर तैयार कर लें। उदाहरण के लिए टाटा कम्पनी से यह आशा की जाय कि जितने इन्जीनियरो की उसे जरूरत हो उतनो को तैयार करने के लिए वह राज्य की निगरानी मे एक कालेज का सचालन कर। इसी तरह मिल मालिको के मण्डल भी आपस म मिलकर अपनी जरूरत के ग्रेजुएटो को तैयार करने के लिए एक कालेज का सचालन करें। दूसरे अनेक उद्योग धन्धो के लिए भी यही किया जाय। व्यापार के लिए भी एक कालेज हो।[1]

• मैं इस बात का दावा करता हूँ कि मैं उच्च शिक्षा का विरोधी नहीं हूँ। लेकिन उस उच्च शिक्षा का मैं जरूर विरोधी हू जो कि इस देश मे दी जा रही है। मेरी योजना क अन्दर तो अब स अधिक और अच्छे पुस्तकालय होंगे, अधिक सख्या म और अच्छी रसायनशालाएँ तथा प्रयोगशालाएँ होंगी। उसक अन्तगत हमारे पास ऐसे रसायनशास्त्रियो इन्जीनियरो तथा अन्य विशेषज्ञो की फौज-की फौज होनी चाहिए जो राष्ट्र के सच्चे सेवक हो और उस प्रजा की बढती हुई विविध आवश्यकताओ की पूर्ति कर सकें।•

---

१ 'हरिजन', १६३७ म प्रकाशित

एक हजार पृष्ठों का साहित्य पाँच रुपये में

प्रत्येक हिन्दीभाषी परिवार में बापू की अमर और प्रेरक वाणी पहुँचनी चाहिए। गाधी वाणी या गाधी-विचार मे जीवन-निर्माण, समाज-निर्माण और राष्ट्र-निर्माण की वह शक्ति भरी है, जो हमारी कई पीढियो को प्रेरणा देती रहेगी, नये मूल्यो की ओर अग्रसर करती रहेगी। परिवार मे ऐसे साहित्य के पठन, मनन और चिन्तन से वातावरण मे नयी सुगन्धि, शान्ति और भाईचारे का निर्माण होगा। गाधी जन्म-शताब्दी के अवसर पर हम सबकी शक्ति इसमे लगनी चाहिए।

हजार पृष्ठो का आकर्षक चुना हुआ गाधी-विचार-साहित्य पाँच रुपये मे हर परिवार मे जाय, इसका सयुक्त प्रयास गाधी स्मारक निधि, गाधी शान्ति प्रतिष्ठान और सर्व सेवा सघ की ओर से हो रहा है। हर सस्था और व्यक्ति, जो गाधी-शताब्दी के कार्य मे दिलचस्पी रखते हैं, इस सेट के अधिकाधिक प्रसार-कार्य मे सहयोगी होगे, ऐसी आशा है। इस प्रयास मे केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारो का सहयोग भी अपेक्षित है।

र० रा० दिवाकर
अध्यक्ष
गाधी स्मारक निधि, गाधी शान्ति प्रतिष्ठान

उ० न० ढेबर
अध्यक्ष, खादी-ग्रामोद्योग कमीशन

विचित्र नारायण शर्मा
उपाध्यक्ष, उ० प्र० गाधी-शताब्दी समिति

एस. जगन्नाथन्
अध्यक्ष, सर्व सेवा सघ

जयप्रकाश नारायण
अध्यक्ष
अ०भा०शान्तिसेना मंडल

राधाकृष्ण बजाज
सचालक, सर्व सेवा सघ-प्रकाशन

गांधी जन्म-शताब्दी सर्वोदय-साहित्य सेट

पुस्तक	लेखक	पृष्ठ	मूल्य
१ आत्मकथा (सक्षिप्त)	गाधीजी	२००	१ ००
२ बापू-कथा (सन् १९२१-१९४८)	: हरिभाऊ उपाध्याय	२५५	२ ००
३ गीता-बोध, मगल प्रभात	. गाधीजी	१३०	१·२५
४ मेरे सपनो का भारत	: गाधीजी	१७५	१ २५
५. तीसरी शक्ति (सन् १९४८-१९६९)	विनोबाजी	२४०	२·००
	कुल :	१०००	७·५०

आवश्यक जानकारी

१ इस सेट म पाँच पुस्तकें हागी, जिनका मूल्य ७ से ८ रु० तक होगा। यह पूरा सेट ५ रु० म मिलेगा।

२ इन सेटों की बिक्री २ अक्तूबर के पावन दिवस से प्रारम्भ होगी।

३ चालीस सेटो का एक बडल बनेगा। एक बडल स कम नहीं भेजा जा सकेगा।

४ चालीस या अधिक सेट मँगाने पर प्रति सेट ५० पैसे कमीशन मिलेगा। (सारे सेट फ्री डिलीवरी यानी निकटतम रेलवे-स्टेशन-पहुच भेजे जायँगे।)

५ सेटो की अग्रिम बुकिंग १ जुलाई १९६९ स शुरू है। अग्रिम बुकिंग के लिए प्रति सेट २ रु० के हिसाब स अग्रिम भेजने चाहिए। शेष रकम के लिए रेलवे रसीद वी० पी० या बैंक के मार्फत भेजी जायगी।

६ सेटो की रकम तथा आर्डर निम्नलिखित पते से ही भेजें

सर्व सेवा संघ-प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी—१

"गाँव की आवाज" का प्रकाशन

"भूदान-यज्ञ" के परिशिष्ट के रूप म 'गाँव की बात' का प्रकाशन तीन वर्षो स होता आया है। लेकिन अब "गाँव की बात" के स्थान पर "गाँव की आवाज" का प्रकाशन अलग से शुरू हो रहा है। "गाँव की आवाज" सचमुच गाँव की ही आवाज होगी। इसीलिए इसम प्रकाशित सामग्री की शैली ग्रामीण और भाषा सरल-सुबोध होगी।

गाँव-गाँव म गाधीजी के ग्रामस्वराज्य की कल्पना को साकार करने के लिए आवश्यक है कि गाँव के लाग चेतें, समझें, बूझें, और इसके लिए जरूरी है कि गाँव-गाँव म ग्रामस्वराज्य का चर्चा पहुँचे। विनोबाजी बार-बार कहते हैं कि हमारा कोई-न-कोई पर्चा हर गाँव म पहुँचना चाहिए। क्या "गाँव की आवाज" को गाँव-गाँव पहुँचाया जा सकता है?

इसका वार्षिक चन्दा केवल ४ रुपया है और एक प्रति का मूल्य २० पैसे है। इसका प्रकाशन हर माह को १ और १६ तारीख को होगा। विशेष जानकारी के लिए लिखें—

व्यवस्थापक—पत्रिका विभाग, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी—१

वर्ष · १७
अक · ११-१२

अनुक्रम

विचार मंथन

शैक्षिक व्यूह-रचना

परिशिष्ट

क्षमा-याचना

'नयी तालीम' का यह विशेषांक १५ जुलाई को प्रकाशित हो जाना चाहिए था, किन्तु प्रेस की गड़बड़ी के कारण यह अंक जुलाई के अन्त में प्रकाशित हो रहा है। इस अप्रत्याशित विलम्ब के लिए हम पाठकों से क्षमाप्रार्थी हैं। —सम्पादक

वार्षिक शुल्क : ६ रुपया
एक प्रति : ५० पैसे

इस अंक का मूल्य : एक रुपया

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट सर्व-सेवा-संघ की ओर से प्रकाशित, अमल कुमार वसु; इण्डियन प्रेस प्रा० लि०, वाराणसी–२ में मुद्रित

नयी तालीम : जून-जुलाई '६९
पहले से डाक व्यय दिये बिना भेजने की अनुमति प्राप्त
लाइसेंस नं० ४६ रजि० सं० एल १७२३

तत्त्वज्ञान

भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु को दी गयी फाँसी तथा गणेशशंकर विद्यार्थी के आत्म-बलिदान के प्रसंगों से क्षुब्ध कराची कांग्रेस-अधिवेशन के लोगों को सम्बोधित करते हुए २६ मार्च १९३१ को गांधीजी ने कहा था :—

'जो तरुण यह ईमानदारी से समझते हैं कि मैं हिन्दुस्तान का नुकसान कर रहा हूँ, उन्हें अधिकार है कि वे यह बात संसार के सामने चिल्ला-चिल्लाकर कहें। पर तलवार के तत्त्वज्ञान को हमेशा के लिए तलाक दे देने के कारण मेरे पास अब केवल प्रेम का ही प्याला बचा है जो मैं सबको दे रहा हूँ। अपने तरुण मित्रों के सामने भी अब मैं वही प्याला पकड़े हुए हूँ . . ।'

उसके बाद का इतिहास साक्षी है कि देश ने तलवार के तत्त्वज्ञान को तलाक देनेवाले गांधी का साथ दिया। साम्राज्यवाद की नींव हिली, भारत में लोकतंत्र की नींव पड़ी और संसार को मुक्ति का एक नया रास्ता मिला।

संसार आज बंदूक की नली के तत्त्वज्ञान से और अधिक त्रस्त हुआ है। विनोबा संसार को वही प्रेम का प्याला पिलाकर बंदूक के तत्त्वज्ञान को तलाक दिलाना चाहता है और देश में सच्चे स्वराज्य की स्थापना के लिए उसने नया रास्ता बताया है।

क्या हम वक्त को पहिचानेंगे और महान कार्य में वक्त पर योग देंगे ?

गान्धी-स्मारक-निधि का गांधी रचनात्मक-कार्यक्रम उपसमिति द्वारा प्रसारित

आवरण मुद्रक : खण्डेलवाल प्रेस, मानमन्दिर, वाराणसी

अगस्त १९६८
वर्ष : १७ • अंक : १

* शिक्षक नये समाज का नायक
* लोकतंत्र के लिए शिक्षा
* कुमारमन्दिर के दो घंटे
* 'मैं शिक्षक हूँगा'

राष्ट्रीय शिक्षा-नीति

न नयी, न राष्ट्रीय

बहुत प्रतीक्षा के बाद आखिर भारत सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षण पर अपनी नीति घोषित कर ही दी। पूरे इक्कीस साल लगे सरकार को यह तय करने में कि स्वतंत्र राष्ट्र की कोई राष्ट्रीय शिक्षा नीति भी होनी चाहिए।

शिक्षा आयोग जो सिफारिशें पहले कर चुका है, उन्हीं पर अब भारत सरकार ने मुहर लगा दी है। स्वयं आयोग की सिफारिशों में राष्ट्रीय शिक्षण के कितने तत्त्व हैं, यह दूसरी बात है, लेकिन उन पर मुहर लगाकर भारत सरकार ने बता दिया है कि वह भी, जिसने अपने ऊपर राष्ट्र को बचाने और बनाने की जिम्मेदारी ली है, आयोग से आगे जाने को तैयार नहीं है। भारत तथा राज्य सरकारों के रवैये से अब यह बात सिद्ध हो गयी है कि क्या भूमि व्यवस्था, क्या बेकारी, और क्या शिक्षण, देश के जन-जन को छूनेवाले किसी प्रश्न पर सरकार प्रगतिशील रुख भी लेने को तैयार नहीं है, क्रान्तिकारी रुख की तो बात ही क्या! या, हो सकता है कि उनकी नीयत अच्छी हो, पर सही हिकमत न सूझती हो, या अगर सूझती भी हो तो आगे बढ़ने की हिम्मत न होती हो। कौन जाने? कुछ भी हो, आज का सरकारी ढाँचा और उसकी नौकरशाही, दोनों राष्ट्र के विकास के माध्यम

वर्ष : १७
अंक : १

अब नहीं रह गये, यह बात इस देश की जनता ने अबतक नहीं जाना तो अब उसे जान लेना चाहिए।

भारत सरकार ने अपनी घोषणा में किन बातों को राष्ट्रीय शिक्षण की दृष्टि से महत्त्व का माना है ? भाषा के सम्बन्ध में उसका निर्णय है कि हर विद्यार्थी तीन भाषाएँ पढ़े—मातृभाषा (क्षेत्रीय भाषा नहीं), हिन्दी और अंग्रेजी। जिसकी मातृभाषा हिन्दी होगी वह कोई दूसरा भारतीय भाषा पढ़ेगा, विशेष रूप से दक्षिण की कोई भाषा। क्षेत्रीय भाषा विश्वविद्यालयों में शिक्षण का माध्यम हो लेकिन कितने दिनों में हो जाय, यह नहीं बताया गया है। (आयोग ने कम से कम दस वर्ष की सीमा रखा तो खाच। थी।) कुल शिक्षण १५ वर्ष का हो—१० स्कूल का, २ हायर सेकेण्डरी का, ३ विश्वविद्यालय का। ६ से १४ तक का शिक्षण मुफ्त देने की कोशिश हो। इन बातों के अलावा यह कहा गया है कि पाठ्यपुस्तकें अच्छी हों, शिक्षकों का स्थिति सुधरे, रिसर्च, विज्ञान, राष्ट्रीय सेवा, चरित्र निर्माण, तकनीकी, और खेती के शिक्षण पर विशेष ध्यान दिया जाय, तथा अच्छे विद्यार्थियों, लड़कियों, और पिछड़े समुदायों को प्रोत्साहन दिया जाय। भारत सरकार चाहती है कि ये सुधार चौथी पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत शिक्षण योजना के आधार बनें। आर्थिक दृष्टि से धीरे धीरे ऐसी स्थिति आनी चाहिए कि राष्ट्रीय आय का ६ प्रतिशत शिक्षण में खर्च होने लगे।

यह है वह नीति जो बहुत इन्तजार के बाद सामने आयी है ! खयाल होता है कि अगर पचास साल पहिले कोई शिक्षण के बारे में कहता तो क्या ये ही बातें न कहता ? क्या भारत सरकार ने मान लिया है कि पिछले पचास वर्षों में राष्ट्रीय विकास के सन्दर्भ में राष्ट्रीय शिक्षण की कल्पना का कुछ विकास नहीं हुआ है ? अगर हुआ है तो क्या हुआ है ? इन पचास वर्षों में भारत में गांधी आये, और चीन में माओ। दोनों ने अपने अपने ढंग से अपने अपने देश को क्रान्ति की दृष्टि दी है, विकास की योजना दी है, शिक्षण की रीति और नीति दी है। एक तो शिक्षा आयोग के नामधारी देशी विदेशी विद्वानों ने पैबन्द लगाने के सिवाय और कुछ नहीं किया था, दूसरे अब भारत सरकार ने उस पैबन्द पर बखिया करने के सिवाय और कुछ नहीं किया है।

विद्वानों और शासकों की इस योजना में कौनसी ऐसी चीज है जो भारत के युवकों और युवतियों को उत्पादक बनायगी, जो उनकी उंगलियों में हुनर भरेगी, जीवन में विज्ञान लायगी, और शिक्षा को विकास और प्रगतिशील लोकतंत्र का वाहन बनायगी ? क्या शिक्षण राष्ट्र की आय में हिस्सा लेने का ही हकदार होगा, या उसमें कुछ जोड़ेगा भी ? क्या अनुबन्ध होगा राष्ट्र की भावी दिशा में और इस तथाकथित नये शिक्षण में ? इसका नयापन क्या है ?

यह जाहिर है कि इन 'सुधारों' के बावजूद शिक्षण आज की तरह किताबों, इम्तहानों, और नौकरियों से ही जुड़ा रहेगा। इस शिक्षण से निकला हुआ विद्यार्थी आज जैसा ही निकम्मा और अनुत्पादक होगा। उसके जानने में कोई नये मूल्य नहीं होंगे। वह समाज में 'मिसफिट' रहेगा। उसकी चेष्टाओं में राष्ट्र की आकांक्षाओं का कोई झलक नहीं होगी। और अन्त में यह शिक्षण-योजना अच्छी बुरी जो भी है, सिर्फ स्कूलों, कालेजों, और विश्वविद्यालयों के लिए ही है, उनके बाहर जो विस्तृत समाज है उसे यह स्पर्श भी नहीं करती, गोया उससे अलग भी राष्ट्र कोई चीज है। राष्ट्रीय शिक्षण का उद्देश्य तब पूरा होगा जब समाज और विद्यालय एक लाइन में आ जायेंगे, अन्यथा नहीं। विकास के सन्दर्भ में नागरिक का शिक्षण उतना ही आवश्यक है जितना विद्यार्थी का।

जो योजना है उसमें यह आशा रखना कि राष्ट्रीय शिक्षण राष्ट्र के विकास का माध्यम बनेगा, और उसमें समाज-परिवर्तन की शक्ति होगी व्यर्थ है। वस्तुतः शिक्षण की यह योजना न नयी है, न राष्ट्रीय।

शिक्षक नये समाज का नायक

दादा धर्माधिकारी

मैं अपने जीवन मे कुछ वर्ष एक अप्रशिक्षित शिक्षक रहा हूँ। आप लोग प्रशिक्षण पा रहे हैं, मैंने नहीं पाया था। कालेज मे पढ़ता था, देश को आवश्यकता हुई, लडको को पढाने लगा। एक तरह से आपमे और मुझमे एक रिश्तेदारी है। अथवा आपकी बिरादरी का होने मे मैं गौरव का अनुभव करता हूँ। जब मैं सोचने लगता हूँ तो पाता हूँ कि जिस प्रकार के समाज मे शिक्षक को जीवन-यापन करना पड रहा है, जिस प्रकार के समाज में विद्यार्थी शिक्षण पा रहा है, उसी प्रकार का समाज अगर रहा, तो शिक्षण से मनुष्य का विकास नही होगा। दोष शिक्षण का उतना नहीं है, जितना शिक्षण जिस सन्दर्भ मे, जिस 'कान्टेक्स्ट' मे दिया जा रहा है, उसका है। बर्ट्रेण्ड रसेल का नाम आपने सुना होगा, शान्तिवादी दार्शनिक हैं। एक दफा उन्होने कहा 'देयर मॉट टु बी वाइडस्प्रेड डिफ्यूजन ऑफ नॉलेज' ज्ञान का सार्वत्रिक प्रसार। मैं 'प्रचार' नही कह रहा हूँ—सार्वत्रिक फैलाव होना चाहिए। और आगे जोडते है — आइ डू नॉट मीन दि एजुकेशन ऑफ नॉलेज'— मैं 'शिक्षण' नहीं कह रहा हूँ। उसका कारण बतलाता है – 'दि एजुकेशन इज यूज्ड बाइ गवर्नमेंट टु फॉस्टर इगनोरेंट प्रिजुडिसेज' सरकारें शिक्षण का उपयोग लोगो के मन मे अज्ञान और द्वन्द्व फैलाने के लिए करती है।

शिक्षक का शील

प्रामाणिक प्रश्न जानने की उत्कंठा शिक्षक का शील है, विचार शिक्षक का शील नही है। विचार से मेरा मतलब कोई एक विचार। शिक्षक के चित्त मे अगर विचार घर कर लेता है, तो जिज्ञासा निकल जाती है। विचार के साथ, दर्शन के साथ आग्रह आता है, तब आग्रह दरवाजे में से जहाँ भीतर

भाया, जिज्ञासा खिड़की मे से भाग जाती है। जिज्ञासा का पहला लक्षण है--समझेंगे पहले, समझायेंगे बाद मे।

आपका यह व्यवसाय है, जिसमे से ज्ञान बढ़ता है, अध्ययन बढ़ता है। हमारे यहाँ 'पढ़ना' और 'पढ़ाना' एक ही धातु से निकले हैं। 'शिष्य' और 'शिक्षक' का धातु एक ही है। जो सिखाता है वह भी सीखता है, जो सीखता है वह भी सिखाता है। यह नही होगा तो शिक्षण से मनुष्यो के दिमाग एक साँचे मे ढाले जायेंगे। डायडेन इग्लैंड का बडा साहित्यिक था। उसका एक वाक्य है —'वाई एजुकेशन मोस्ट हैव बीन मिसलेड'—शिक्षण से कई गुमराह हुए हैं। क्यों गुमराह हुए हैं? वह कहता है —'दि प्रिस्ट कन्टीन्यूड वेयर दि नर्स बिगैन'—दाई ने जिस शिक्षण का, जिस सस्कार का आरम्भ किया था, उस संस्कार को पुरोहित आगे बढाता है। इस तरह से धाय का जो शिक्षण था वह मठ मे जाकर विश्वविद्यालय के शिक्षण से अधिक प्रभावशाली सिद्ध होता है। इसलिए पहली चीज जो हमको समझनी है, वह यह समझनी है कि शिक्षक की भूमिका तटस्थ होनी चाहिए। जो तटस्थ होगा वह विनयशील भी होगा। 'विद्या विनयेन शोभते'। विद्या के साथ विनय अविभाज्य रूप से जुडी हुई है।

मुख्य प्रश्न

हमारे सामने जो प्रश्न है, वह यह है कि आज का जो समाज है, उस समाज के परिवर्तन मे मुख्य भूमिका किसकी होगी? इस समाज-परिवर्तन का नायक कौन होगा? अब तक इतिहास मे समाज-परिवर्तन का नायक या तो राज्य-नेता रहा है या सैनिक रहा है। कभी-कभी सन्त रहा है या धर्मप्रवर्तक रहा है। क्या शिक्षक भी समाज-परिवर्तन की प्रक्रिया का नायक हो सकता है? यह प्रश्न है। नही होता है तो शिक्षण किसी काम का नही रह जायगा। शिक्षण से न शिक्षक का विकास होगा, न शिष्य का।

अब शिक्षण पुलिस के हाथ मे जा रहा है। किसी दिन फौज के हाथ मे चला जायगा। आप जानते हैं कि पुलिस और फौज में दिमाग का स्थान नही होता, बुद्धि का स्थान नही होता है।

सिपाही, साहूकार और राज्य-सत्ता, तीनो बुद्धि से डरते हैं। सबको अधिक भय अगर किसीका है तो बुद्धि का। जहाँ तक उनका बस चलेगा, विचार को वे कभी प्रकट नही होने देंगे। राज्य-सत्ता विचार को नियन्त्रित

करना चाहेगी, धन-सत्ता भी नियंत्रित करना चाहेगी और शस्त्र सत्ता को तो विचार से मतलब ही नहीं है।

विचार की शक्ति मे विद्यार्थी और शिक्षक की शक्ति म सम्पत्तिधारी, सत्ताधारी और शस्त्र धारियो का जितना विश्वास है उतना साहित्यिक का और शिक्षक का भी नहीं है। इसका परिणाम यह है कि विद्या तिजोरी की टहलुई बन गयी है, तलवार की दासी बन गयी है। और, सत्ता की वह पटरानी नहीं है और रानी भी नहीं है, रखली बन गयी है।

टालस्टाय ने एक दफा कहा था कि मेरी पाठशाला ही मेरा जीवन था। दुनिया के सकट, दुनिया की चिन्ताओ, दुनिया की लालच, प्रलोभन, इन सबसे मेरा सरक्षण जिस मदिर और जिस मठ मे हुआ उस मन्दिर और उस मठ का नाम स्कूल है। रस्किन न कहा था कि मनुष्य के लिए फांसी के तख्ते और जेलखाने बनाने की अपेक्षा लडकों के लिए स्कूल खोलो। दो स्कूल खोलोगे तो दो जेलखाने बन्द होगे।

लेकिन आज हम क्या देख रहे हैं? जलखानो का रुख स्कूल की तरफ हो गया है, जेल करीब-करीब विद्यालय हो गये हैं लेकिन विद्यालयों का रुख जल की तरफ हो गया है। ज्यादा से ज्यादा अपराध विद्यालयो मे होते हैं। इस सबको अगर बदलना है तो हमारे रुख को बदलना होगा, समस्या को देखना होगा और समझना होगा।

विश्वविद्यालय में बाजार का प्रवेश

समस्या यह है कि आज मनुष्य के जीवन को प्रभावित करनेवाली सस्था विश्वविद्यालय नहीं है। इसमें शिक्षण का दोष नहीं है। शिक्षण म कमियाँ हैं त्रुटियाँ हैं, दोष कम हैं। त्रुटियो की पूर्ति हो सकती है, दोषो का निवारण हो सकता है। फिर इन कालेजो में, इन विश्वविद्यालयो मे प्रोफसर, विद्यार्थी वाइस चान्सलर इन सबके दिमाग कुछ बिगडे हुए से क्यो मालूम होते हैं? इसका कारण विश्वविद्यालय से बाहर है और उस बाहर की सस्था का नाम है बाजार। मनुष्य के चित्त पर आज जिस सस्था का अधिक से अधिक प्रभाव व परिणाम होता है, उस सस्था का नाम बाजार है।

विश्वविद्यालय मे बाजार का प्रवेश हुआ है, बाजार मे विश्वविद्यालय का प्रवेश नहीं हुआ। मन्दिर मे बाजार का प्रवेश हुआ है, बाजार मे मन्दिर के मूल्य नहीं गये। परिवार मे बाजार आ गया है, बाजार मे पारिवारिकता

नही गयी। इस सन्दर्भ को वदल देना है। आज शिक्षण, कला, विद्या वाजार मे वैठी हुई है। उनको बाजार में से उबारना है। कौन उबारेगा ? वह नही उबारेगा, जिसकी श्रद्धा तिजोरी मे है, तख्त मे है और तलवार मे है। उबारेगा वह, जिसकी श्रद्धा विचार मे है। विचार से मेरा मतलब है बुद्धि; तत्त्वज्ञान नही, दर्शन नही। मार्क्स की क्रान्ति पुस्तक की क्रान्ति है। 'कैपिटल' ने क्रान्ति कर दी। मार्क्स ने कभी हाथ में तलवार नही उठायी।

'कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो' कोई शस्त्र नही है। शब्द ही शब्द हैं। लेकिन ऐसे व्यक्ति के शब्द हैं, जिसकी शब्द मे निष्ठा थी।

शिक्षण प्राणवान कैसे होगा ?

तो यह जो वाहर की परिस्थिति है, जिसका प्रभाव हमारी शिक्षण सस्था पर होता है, इस परिस्थिति को जब तक हम नहीं बदलेंगे तब तक शिक्षण प्राणवान नही होगा। दिक्कत यह है कि ये अन्योन्याश्रित हैं। जब तक शिक्षण सही नही होगा, तब तक समाज नही वदलेगा, और जब तक समाज नही वदलेगा तब तक शिक्षण सही नही होगा। इसलिए प्रश्न यह है कि समाज-परिवर्तन क्या विद्यार्थी और शिक्षक की एक भूमिका हो सकता है ? इसका उत्तर देने का प्रयास इतिहास मे पहली वार गाधी ने किया।

गाधी से पहले यह बात मानी गयी थी कि समाज परिवतन पहले होगा और बाद में मनुष्यो का शिक्षण होगा, और समाज परिवर्तन सत्ता के द्वारा होगा। सत्ता पर कब्जा करने के लिए हम शस्त्र का प्रयोग करेंगे। यह परपरागत क्रांति का विचार था। मार्क्स के अनुयायियो ने इस परम्परागत विचार का स्वीकार किया, क्योकि तब तक दूसरा विचार समाज के सामने नहीं आया था। पहले पहल गाधी यह विचार लेकर आया कि जो क्रान्तिकारी होगे उनका अपना हृदय और अपनी वृत्ति अगर बदली हुई नही होगी, उसमे परिवर्तन अगर नही हुआ होगा, तो जिस समाज का वे परिवर्तन करेंगे वह क्रान्तिकारी समाज नही होगा। क्रान्तिकारी समाज के निर्माण के लिए क्रान्तिकारी की अपनी वृत्ति और उसका अपना हृदय, दोनो मे परिवर्तन होना चाहिए। इसका मतलब यह हुआ कि क्रान्ति की प्रक्रिया म में लोकशिक्षण होना चाहिए।

सन् १८६० मे सर रावर्ट लो इग्लैंड की शिक्षण-समिति के उपाध्यक्ष था। उसने एक सूत्र रखा हम अपने मालिको का प्रशिक्षण करेंगे। अव ये मालिक कौन हैं ? मतदाता। तव से चुनाव लोकशिक्षण का मुहूर्त माना गया।

लेकिन उम्मीदवार को शिक्षण कब मिल सकता है ? और, उम्मीदवारों के सिवाय और उम्मीदवारों के सहायकों के सिवाय मतदाता के पास और कोई जाता नही है। इसलिए मतदाताओं का शिक्षण नही होता। गाधी के सामने सवाल यह था कि अंग्रेजी राज को इस देश से अगर हटाना है तो किसके पुरुषार्थ से हटाया जाय। सिपाही के ? तो सत्ता सिपाही की होगी; साहूकार के ? तो सत्ता साहूकारों की होगी। तो फिर किसका पुरुषार्थ होगा ? स्वराज्य की अधिक-से-अधिक आवश्यकता किसे है ? उन लोगों को है जो मुसीबत मे हैं, जो दुर्बल हैं, जो दलित हैं, वंचित हैं। दलित और वंचित मनुष्यों के पुरुषार्थ से अगर स्वराज्य आता है तो वह उनका स्वराज्य होगा। इसलिए गाधी ने शस्त्र का रास्ता छोड दिया, संपत्ति का रास्ता छोड़ दिया, पार्लियामेंट (सत्ता) का रास्ता छोड़ दिया। लोकशक्ति के रास्ते को अपनाया और उसमें एक विचार किया कि क्या स्वराज्य के आन्दोलन मे से भी लोक-शिक्षण हो सकता है ? शिक्षण का मतलब उनका शिक्षण, जो गरीब हैं, भूखे हैं, बेकार है, और जो निहत्थे, नि.शस्त्र हैं। गाधी के सामने यह प्रश्न आया इसलिए उसने चुनाव के क्षेत्र को छोड़कर सार्वत्रिक पुरुषार्थ के क्षेत्र को ले लिया और सत्याग्रह का आविष्कार किया।

स्वराज्य के बीस वर्ष बाद आज हमारे सामने जो समस्या है वह यह है कि क्या इस देश का आर्थिक ढांचा, अर्थ-रचना लोकशिक्षण की प्रक्रिया से आमूलाग्र बदली जा सकती है ? लोकशिक्षण किसका ? उसका, जिसको अर्थ-रचना मे परिवर्तन की आवश्यकता है। अर्थ-रचना मे परिवर्तन की आवश्यकता किसको है ? जो मेहनत करने है, मालिक नही हैं, जो भूखे हैं, अन्न नहीं पाते हैं, जो नगे हैं, कपडा नही मिलता है, जो बेघरबार हैं, घर नही मिलता है, जो मेहनत करने को तैयार हैं लेकिन मेहनत के साधन नही हैं। उन्हे क्रान्ति की सबसे अधिक आवश्यकता है।

तो क्या क्रान्ति की ऐसी कोई पद्धति हो सकती है, जिस पद्धति मे से इनका प्रशिक्षण हो ? इस सवाल का उत्तर विनोबा खोज रहे हैं। वह कहते हैं कि भूदान, ग्रामदान, जिलादान की प्रक्रिया ऐसी है जिस प्रक्रिया में से इन सारे लोगो का प्रशिक्षण हो सकता है।

आप विद्यार्थी और शिक्षक, दोनों हैं। आपकी दुहरी हैसियत है। इसलिए आपको समझने में देरी नही होनी चाहिए कि कुछ दान ऐसा होता है जिस दान मे से देनेवाले का अधिक लाभ होता है। जैसे विद्यादान। कहलाता

तो है विद्यादान, लेकिन जो पढाता है उसका लाभ जो पढता है, उससे अधिक होना है। विद्यार्थी को अगर शिक्षक प्रामाणिकता से पढाता है तो उसका अपना जितना लाभ होता है-उतना विद्यार्थी का भी नही होता है। 'व्यये कृते वर्धते एव नित्यं, विद्याधनं सर्वधनं प्राधानम्।' जितना खर्च कीजिये उतना वह बढता है। विद्या की यह विशेषता है।

व्यक्ति का समाज के लिए जो दान होता है, उसमे त्याग भी है और स्वार्थ भी है। ग्रामदान मे कौन किसे दान देता है ? व्यक्ति समाज को दान देता है। मैं आपको दान देता हूँ। आप मुझे दान देते है। दोनो मिलकर समाज को दान देते हैं। स्वयप्रेरणा से मनुष्य जो देता है उसमें से उसकी शक्ति बढती है। यह बहुत बडा लाभ है। जो मुझसे छीन लिया जाता है उससे मेरी शक्ति क्षीण हो जाती है। विनोबा कहते है कि अपनी जमीन का एक हिस्सा दे दो, अपनी सपत्ति का एक हिस्सा दे दो। अपनी मेहनत का एक हिस्सा दे दो। स्वय प्रेरणा से देने से देनेवाले की शक्ति बढती है। डर से जो शान्ति होती है, उस शान्ति के बाद मनुष्य मे पुरुषार्थ का विकास नहीं होता। एक फिलासफर ने बडी सुन्दर बात कही है —'फियर इज दि डार्क रूम इन व्हिच ऑल दि निगेटिव्स आर डेवलप्ड' मनुष्य के अभावात्मक जितने गुण हैं, दोषात्मक जितनी विशेषताएँ हैं, वे सब विकसित होती है भय के साथ। भयभीतों की जो शान्ति होगी उस शान्ति मे कोई प्रशिक्षण नही होगा।

मैं अपनी मर्जी से अपनी सपत्ति का, अपनी जमीन का, अपनी मेहनत का एक हिस्सा दे देता हूँ। इसमे लोकशिक्षण प्रारम्भ होता है। इसका परिणाम दो प्रकार का होगा। (१) समाज-परिवर्तन की प्रक्रिया का आरभ हो जायगा और (२) लोकतत्र को प्राणवान बनाने की प्रक्रिया का आरम्भ हो जायगा।

औपचारिक लोकतत्र मे और वास्तविक लोकतत्र मे बाहरी समानता ९९ प्रतिशत है। एक प्रतिशत अन्तर है। लेकिन यह एक प्रतिशत अन्तर सौ प्रतिशत है। आज के ढांचे में दोष एक ही है कि जो मतदाता है उसका प्रशिक्षण नही हुआ। मतदाता के प्रशिक्षण की प्रक्रिया का आरम्भ शान्ति की प्रक्रिया से ही होना चाहिए। अत्यन्त वैज्ञानिक, समयानुकूल और इस देश की परिस्थिति के अनुरूप इस पद्धति का आविष्कार विनोबाजी ने किया है।

(ट्रेनिंग कालेज, भागलपुर मे दिनाक २४-४-६८ को दिया गया भाषण)

"मैं शिक्षक हूँगा"

रामभूर्ति

भारत के इतिहास मे यह एक विलक्षणता है कि जिन महापुरुषो ने हमारे देश के जीवन की बुनियादें बनायी हैं वे राजनीति के नही थे, भले ही समय के तकाजे के कारण उन्हे राजनीति को अपना माध्यम बनाना पडा हो। तिलक स्वतत्रता की लडाई के योद्धा थे, लेकिन उनकी अपनी असली दुनिया किताबो की थी; गाधी राजनीति के मच पर उतरे तो राजनीति की शक्ल ही बदल दी, और जिन्दगी भर कहते रहे कि राजनीति नही, धर्म उनका क्षेत्र है, नेहरू शुरू से अन्त तक राजनीति मे ही रहे, लेकिन मन मे उनके राजनीति नही थी, विज्ञान था, इतिहास था, आज विनोबा नाम लेते हैं भूमि का, गाँव का, समाज का, लेकिन अन्तर्मन की प्यास मिटती है धर्म से, अध्यात्म से, पढने और पढाने से। तिलक, गाधी, नेहरू और विनोबा ही नही, प्राचीन ऋषियो से लेकर आधुनिक सन्तो तक की हमारे देश मे जो हजारो साल पुरानी एक लम्बी, अखण्ड परम्परा है वह शिक्षण की ही है। उद्बुद्ध भारत ने सदा शिक्षण की शक्ति को सर्वोपरि माना है, क्योकि उसने मनुष्य को जगाने, उठाने, बनाने पर भरोसा किया है, न कि उसे कुचलकर समाप्त कर देने पर। इसलिए कोई आश्चर्य नही कि तिलक की यह कामना रही हो कि अगर उनके जीते जी देश गुलामी से मुक्त हो गया तो वह शिक्षक होकर देश की सेवा करेंगे।

तिलक राज्य और राजनीति की शक्ति को नही समझते थे, ऐसी बात नही है। राजनीति अपने म कितनी बडी शक्ति है, और उस शक्ति से कितने विधायक काम हुए हैं, और हो सकते हैं, यह उनको मालूम था, पर यह भी मालूम था कि मनुष्य का सच्चा विकास राजनीति के हाथ मे नही है। वह है 'विचार' के हाथ मे। विचार की वृत्ति और शक्ति का ही नाम शिक्षण है। अब यह बात सिद्ध हो गयी है कि अगर विज्ञान और लोकतन्त्र को कायम रखना है तो शिक्षण को सर्वोपरि रखना होगा। शिक्षण का विकल्प है दमन, और उसका एक ही अन्त है—विनाश। शिक्षण की शक्ति नागरिक की है, राजनीति की शक्ति नेता की। नागरिक की क्रान्ति नागरिक से शुरू होती है

और नागरिक को वापस मिलती है, राजनीति की उथल-पुथल नागरिक को साधन बनाती है और अन्त में उसके सीने पर बैठ जाती है।

तिलक केवल स्वतन्त्रता नहीं चाहते थे, वह स्वराज्य चाहते थे। अगर केवल स्वतन्त्रता की चाह होती तो राजनीति काफी थी, चूँकि स्वराज्य चाहिए था इसलिए राजनीति से समाधान नहीं था। जनता अपने 'स्व' को प्राप्त कर सके उसे प्रकट कर सके, यह शक्ति राजनीति में कहाँ ? राजनीति दमन और विभाजन का तंत्र है। स्वराज्य के लिए मुक्ति का मंत्र चाहिए। मुक्ति विद्या से मिलती है, और विद्या शिक्षक के पास है भले ही पेशा उसका वह न हो।

तिलक मन की चाह मन में लेकर दुनिया से गये। वह अंग्रेजी राज का अन्त देखने के लिए नहीं बचे। लेकिन जाने के पहले स्वतंत्रता की बुनियाद बनाकर गये, जिसके आधार पर गांधी ने राष्ट्रीय आंदोलन की भव्य इमारत खड़ी की। 'मैं शिक्षक हूँगा' उनकी इस कामना में भविष्य के लिए यह संकेत था कि जो स्वतंत्रता की लड़ाई का योद्धा हो वह स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद स्वराज्य का सेवक बने शासक नहीं। गांधीजी की 'लोकसेवक संघ' की कल्पना का आधार भी क्या यही नहीं था ? लेकिन देश ने नहीं समझा तिलक का संकेत और नहीं मानी उसने गांधी की सलाह। राजनीति के पुजारियों ने सत्ता की उपासना नहीं छोड़ी। उनके हठ का परिणाम क्या हुआ ? इस देश की जनता के लिए पिछले इक्कीस वर्षों का इतिहास सत्ता की उपासना और उसके प्रकट होनेवाले दुष्परिणामों की दर्दभरी कहानी है।

इस अनुभव से हमने देख लिया कि भारत-जैसे देश के सवालों का राजनीति के पास कोई जवाब नहीं है। भारत ही नहीं, तमाम दुनिया में राजनीति का दीवाला निकल रहा है। हर जगह शिक्षण बस शिक्षण की पुकार है। लेकिन उस शिक्षण की नहीं जो राजनीति का दास है बल्कि उस शिक्षण की जो सत्य के सिवाय दूसरी कोई सत्ता नहीं मानता, जो मनुष्य के सिवाय दूसरी हैसियत नहीं जानता।

एक अगस्त को लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक की पुण्यतिथि है। इस अवसर पर उनका स्मरण आता है, उस महापुरुष के प्रति श्रद्धा से सिर झुकता है। उनका दिया हुआ मंत्र जैसे चुनौती बनकर सामने आ रहा है। पिछले २१ वर्षों में हमने बहुत कुछ खोया, पाया एक अनमोल यह अनुभव कि अगर देश को बचाना है बनाना है, तो शिक्षक की वृत्ति जगनी चाहिए और शिक्षण की शक्ति प्रकट होनी चाहिए। कौन जाने विनोबा का नया आचार्य कुल तिलक की उस आकांक्षा का एक साकार रूप सिद्ध हो। •

विचार से निष्पन्न हुआ था, अनेकानेक जीवो का मूल्य चुकाकर अन्त मे, समाज मे प्रचलित परम्पराओ और रूढियों का परीक्षण और सशोधन करने पर बल दिया और तद्द्वारा लोकतत्र को सुदृढ बनाने म सहायता दी। इन दिनो लोकतत्र लगभग नारा ही बन गया है। जो लोग लोकतत्र के विरोधी है, वे भी अपनी अधिनायकवादी व्याख्या के अनुरूप अपने को लोकतत्र के अनुयायी कह लेते हैं। उनकी दृष्टि मे 'सवहारा का अधिनायक राज्य ही लोकतत्र का उत्तम रूप है। हम लोग भी अपने सविधान मे लोकतंत्र के ध्येय की प्राप्ति के लिए वचनबद्ध हैं।

लोकतत्र का अर्थ

यह स्वाभाविक ही है कि जो शब्द इतिहास की विभिन्न अवस्थाओ मे जनता को स्फूर्ति और प्रेरणा प्रदान करता आया है वह अपने अर्थगाम्भीर्य के साथ साथ भ्रमात्मक भी हो। इसलिए लोकतत्र की कोई सक्षिप्त परिभाषा देना सम्भव नही है। परन्तु सुविधा के लिए हम यह कह सकते है कि यद्यपि लोकतत्र एक राजनैतिक शब्द है जो ठोस रूप मे अमुक प्रकार के शासन का द्योतक है फिर भी उसम गहन और महत्वपूर्ण दार्शनिक तत्त्व भी निहित हैं। लोकतत्र अमुक कुछ जीवन-मूल्यों को मनोवृत्तियो को और जीवन समस्या की उपाय पद्धति को सूचित करता है। तात्त्विक दृष्टि से लोकतत्र मे व्यक्ति ही अपने आप मे अन्तिम ध्येय है। न केवल उसकी बुद्धि, बल्कि उसका शरीर भी अत्यन्त पवित्र है, और अधिकतर स्वतत्र राष्ट्र के सविधान मे उसके शरीर की पवित्रता के विशेष सरक्षण का प्रावधान है। दूसरी बात व्यक्ति समाज या राज्य का अनुचर नही है। वस्तुत इन सस्थाओ का अस्तित्व ही व्यक्ति के लिए है, और जब भी समाज या सस्था तथा व्यक्ति के बीच सघर्ष छिडता है, तब लोकतत्र के अन्दर, व्यक्ति ही प्राधान्य का हकदार होता है। तीसरी बात जो उपर्युक्त दोनो मूलभूत सिद्धातो से नि सृत होती है, यह है कि स्वातत्र्य का अर्थ केवल वाणी और कृति का स्वातंत्र्य ही नही, परन्तु अभाव और भूख से मुक्ति भी है। इसे ही लोकतत्र में आर्थिक स्वातत्र्य कहते हैं।

लोकतत्र के इन बुनियादी सिद्धान्तो को कार्यरूप मे परिणत करने की दृष्टि से व्यक्ति या जन-सामान्य को नियत्रण, प्रशासन तथा सरकार के स्वरूप-निर्धारण में अपनी निर्णायक आवाज उठाने का अधिकार दिया गया है। अपने मतदान के द्वारा वह सरकार को बना सकता है, बिगाड सकता है।

लोकतत्र : सम्मानपूर्ण जीवन जीने का अवसर

जब हम लोकतत्र के लिए शिक्षा का विचार करते हैं, तब यह बिलकुल स्पष्ट है कि हम लोकतत्र का सही अर्थ जानते नहीं हैं। हमारी दृष्टि मे व्यक्ति

के प्रति, उसके स्वातंत्र्य के प्रति या उसके अस्तित्व मात्र के प्रति समुचित आदर होता नहीं है। उससे मत माँगते समय उसे गुरुतर दायित्व तो सौंपते हैं परन्तु शासन के दैनंदिन कार्यों मे उसके निर्णय पर भरोसा नहीं करते हैं। हमारे अपने ही देश मे आये दिन सुनने मे आता है कि लोकतंत्र विफल हो गया देश लोकतंत्र के लायक नहीं है जब कि यह कहनेवाले यह भूल जाते है कि यदि वे किसी तानाशाही तंत्र मे जीते होते तो वे ऐसी आवाज भी उठा नहीं पाते। तानाशाही को माननेवाले लोग इसलिए ऐसा करते है कि वे अपनी शासन पद्धति म मनुष्य-जीवन को इस प्रकार की अवज्ञा और निराशापूर्ण दुःखद स्थिति की कल्पना भी नहीं कर सकते। इसलिए लोकतंत्र के लिए शिक्षा का विचार करने से पहले यह आवश्यक है कि हमारे शासक हमारे स्कूल हमारे शिक्षक तथा सर्वसामान्य जनता को यह तथ्य स्वीकार करना होगा कि सम्मानपूर्ण जीवन जीने का अवसर एकमात्र लोकतंत्र में ही सम्भव है। इस स्वीकृति के अभाव मे लोकतंत्र की सिद्धि के लिए कार्यकलाप सुझाने का कोई अर्थ नहीं रह जाता।

शिक्षण क्षेत्र में लोकतंत्र का अभाव

जब हम शिक्षा के समग्र संगठन के बारे मे सोचते हैं, तब दिखाई देता है कि उसमे लोकतंत्र के लिए अवसर ही नहीं है। वह एक ऐसा कट्टर रूढ़िवाद है (रिजिड हियरार्की) जिसमे व्यक्ति का दम घुटता है। शिक्षा के महान् क्षेत्र मे समान साझेदारी की भावना है ही नहीं। प्रशासक, शिक्षक बालक, माता पिता तथा जनता की दृष्टि से इस पहलू पर हम विचार कर सकते हैं। प्रशासक का प्रमुख काम विधि और नियमों के अनुसार शिक्षानीति को कार्यान्वित करने का है। वर्तमान शिक्षा के सिद्धान्त और नीतियाँ हमारी अपनी परिस्थितियो के अनुरूप बनायी हुई नहीं हैं। स्वातंत्र्य प्राप्ति के बाद शायद ही कोई शिक्षा-नीति बनायी गयी है। बुनियादी शिक्षा की एक नीति थी जिसको कार्यान्वित करने की नीयत कभी नहीं रही, खाली शाब्दिक सहानुभूति भरपूर दी जाती रही। शिक्षामंत्री के रूप मे डा० सेन के आने के बाद नयी शिक्षा-पद्धति भी खतम हो चली है। इस नीति निर्धारण मे कुछ तो लोकतांत्रिक तत्त्व दाखिल हुआ, जब संसद ने उच्च शिक्षा क्षेत्र मे काम करनेवाले शिक्षाविदों से परामर्श लिया। मालूम नहीं कि निचले स्तर के शिक्षकों से भी कोई विचार विमर्श किया गया या नहीं। इसके अलावा, राष्ट्रीय नीति की सारी इमारत ही भारतीय शिक्षा आयोग (१९६४ ६६) की रिपोर्ट की नींव पर खड़ी की जा रही है जिसे अनेक गण्यमान्य व्यक्तियों ने निरर्थक और सारहीन बताया है। फिर,

शासक जिन नियमों और विधियों को दाखिल करना चाहते हैं, वे विदेशी शासन के बीते हुए जमाने के अनुकूल है। लोकतान्त्रिक सिद्धान्तों के आधार पर शायद ही यहाँ कोई नियम और विधि बनाने का प्रयत्न हुआ है।

इससे अधिक निराशाजनक बात तो यह है कि शिक्षा के गुणात्मक विकास और विस्तार का अधिकार अधिकाधिक केन्द्रित करके लोकतन्त्र के मूलतत्त्वों को हवा में उड़ा दिया गया है। विश्वविद्यालयों को 'विश्वविद्यालय अनुदान आयोग' के अधीन बनाया गया, उसीके मार्फत बड़ी धनराशि दी जाने लगी और वह सब विद्याक्षेत्र में नाहक बाहरी हस्तक्षेप करने के सिवा कुछ नहीं है, राष्ट्रीय विकास की दृष्टि से उसका विकास करने का और राष्ट्रीय जीवन की मुख्य धारा से कटने न देने का उपाय तो बिलकुल नहीं है। जहाँ तक शिक्षा का सम्बन्ध है, राज्यों को इस बात के लिए प्रेरित किया जाता है, बल्कि विवश किया जाता है कि केन्द्र द्वारा सम्तुत कोई-न-कोई योजना शिक्षा में अवश्य दाखिल की जाय; यह देखा ही नहीं जाता कि उस योजना की वास्तविक आवश्यकता है भी या नहीं। इस बात के समर्थन में कई प्रसंग गिनाये जा सकते हैं।

शिक्षा में केन्द्रीय नियमन

शिक्षा में गुणात्मक विकास का नियमन 'राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान' (नैशनल इन्स्टिट्यूट आफ एज्युकेशन) के निर्देशन और निरीक्षण में करने की आशा की जा रही है, जो भले ही स्वतन्त्र संस्था कहलाती हो, लेकिन लगभग केन्द्र-सरकार का ही एक अंग है और शैक्षिक चारित्र्य सम्बन्धी सारे दुर्गुणों का भण्डार है। राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थान के प्रत्येक विभाग ने जो कुछ काम किया है, उसे अधिकृत मान लेना, और यह दिखाना कि अमुक योजनाओं और कार्यक्रमों पर, जो कि शिक्षा की दृष्टि से बिलकुल ही असंगत और अनुपयोगी हैं, कितनी धनराशि खर्च की गयी है, न तो बुद्धिमानी की बात है, न ऐसा मानने के लिए कुछ गुंजाइश ही है। चर्चा का मुख्य मुद्दा यह है कि केन्द्रीय संगठन द्वारा सबके लिए एक समान पाठ्यक्रम, एक सी पाठ्यपुस्तकें और एक-सी परीक्षा-पद्धति तय किया जाना क्या संगत है? प्रान्तीय स्तर के और उससे भी नीचे के स्तर के अनेक उत्तम और निष्ठावान् कार्यकर्ता ऊपर से छन छनकर नीचे आनेवाले इस नये विचार और नयी कार्यसरणि की उपयोगिता नहीं मानते हैं। केवल एक बात लें कि परीक्षा की जो नयी पद्धति अपनायी गयी है और जिस पर बहुत बड़ी रकम खर्च की जा रही है, वह क्या वास्तव में उपयोगी

है ? और जो प्रश्नावली तैयार की गयी है वह अत्यन्त दोषपूर्ण है और निरर्थक है। इसी प्रकार केन्द्र द्वारा नियत पाठ्यपुस्तको और पाठ्यक्रमो के बारे मे भी बहुत कुछ कहा जा सकता है। इन कदमो से शिक्षा जगत् को पथभ्रष्ट कराने के अलावा शिक्षा-क्षेत्र मे स्थानीय अभिक्रम (लोकल इनिशियेटिव) भी प्राय खत्म कर दिया गया है।

प्रान्तीय स्तर पर भी सारा चित्र धुधला ही है क्योकि प्रान्तीय प्रशासन को भी केन्द्रीय अधिकारियो द्वारा निर्दिष्ट सिद्धान्तो और नीतियो को ही कार्यान्वित करना पडता है। यह कडाई सब जगह है। एक सा पाठ्यक्रम प्रदेश भर मे चलना चाहिए। पढाने को पद्धति मे कुछ भी परिवर्तन करने की स्वतत्रता न किसी स्कूल को है न शिक्षक को। शिक्षा क्षेत्र का प्रत्येक कदम बाह्य शिक्षापद्धति से नियत्रित होता है और उसके समर्थन मे दलील यह दी जाती है कि शिक्षा स्तर की एकरूपता और तुलनीयता किसी न किसी केन्द्रीय नियत्रण म ही सम्भव है। कही न पढाई की बात होती है न बच्चो के शैक्षणिक विकास की होती है एकमात्र परीक्षा की चर्चा होती है। जब दो तीन महीने तक स्कूल-कालेज बन्द रहते हैं तब भी इन बाह्य परीक्षाओ पर कोई असर नही पडता है और यथासमय परीक्षाएँ चलती हैं और विधिवत् परीक्षाफल घोषित किया जाता है। कोई भी पूछ सकता है कि बिना पढाये ही बच्चो को परीक्षा ला जा सकती है तो फिर स्कूल की पढाइ की आवश्यकता क्या है ?

आज के ढाँचे में शिक्षक, विद्यार्थी उपेक्षित

हमारे पास एक ऐसा ढाँचा है जिसमे शिक्षा सम्बन्धी सिद्धान्तो और नीतियो पाठ्यक्रमो और सगठनो परीक्षा की पद्धतियो और स्वरूपो के बारे म न शिक्षक कुछ कह सकता है न छात्र कह सकता है माता पिता और जनता को भी कहने की गुजाइश नहीं रह गयी है। ऐसी परिस्थिति मे शिक्षक से यह आशा की ही नही जा सकती कि वह अपने अध्यापन मे लोकतत्र के सिद्धान्तो को दाखिल करे। बालको की चमकती आँख क्या चाहती हैं और उनके उज्ज्वल चेहरो की माँग क्या है इससे शिक्षको को क्या मतलब ? उनका तो ऊपर स निर्धारित आदेश का पालन भर करना है। व अपने घेरे म बधे हुए हैं और उन्ह शासको द्वारा खीची हुई लकीर पर ही चलना है। जिन्ह समीक्षात्मक और तटस्थ बुद्धि से सोचना विचारना सिखाना है उन्हीं छात्रो को उनके आस पास की नित्य बदलती रहनेवाली परिस्थितियो से अपरिचित रखा जाता है

समस्या का प्रत्यक्ष सामना करने अथवा अपना निर्णय करने नही दिया जाता, जो भविष्य जीवन मे विशेष रूप से आवश्यक बातें है।

पढाई ही पढाई; ज्ञान नदारद

यद्यपि छात्रों को अनिवार्य विषय के रूप मे समाज विज्ञान पढाया जाता है और नागरिक शास्त्र उनके पाठ्यक्रम का एक विषय है फिर भी पढाई पूरी करके जब लडके बाहर आते है तब उनके दिमाग मे न वास्तविक नागरिक धर्म का ज्ञान होता है न समाज के सामने प्रस्तुत समस्याओं की कल्पना होती है। क्या यह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति नही है कि देश अकाल और सूखे का बुरी तरह शिकार हो रहा हो और फिर भी हमारे इतने सारे स्कूल कालेजों और विश्व विद्यालयो पर उसका किंचित् भी प्रभाव न पडता हो? हमारे स्कूल के बच्चों और विश्वविद्यालय के छात्रो म कितने हैं जो ठीक से जानते हों कि कश्मीर की समस्या क्या है चीन का आक्रमण कैसा है अवमूल्यन और अर्थ-सकोचन क्या है, वियतनाम और मध्य-पूर्व एशिया के सकट क्या हैं? स्कूल से बाहर आनेवाले कितने विद्यार्थियों मे स्वास्थ्य और स्वच्छता की अच्छी आदतें होंगी? यह केवल सामान्य ज्ञान का विषय पढा देने या कुछ अधिक जानकारी उनके दिमाग मे घुसा देने का प्रश्न नही है यह तो अपने आसपास की दुनिया मे जीने का प्रश्न है। अमेरिका के राज्यों के कई स्कूलो मे वियतनाम, मध्यपूर्व के सकट और राष्ट्रीय एकता आदि विषयो की चर्चा की जाती है। विद्यार्थी चर्चा-गोष्ठी चलाते हैं और जुलूस आदि भी निकालते हैं।

"सन् १९६५ मे वियतनाम जब विवाद का प्रमुख केन्द्र बना, तब अमरीका के पोर्टलैण्ड के पास सनसेट हाईस्कूल आदि कई स्कूलो मे शालेय कार्यक्रम के अन्तर्गत वियतनाम की चर्चा को स्थान दिया गया। देश भर के स्कूलो मे नागरिक अधिकारो के विषय की चर्चा भी दाखिल की गयी और कई बार शालाओं को प्रत्यक्ष काम मे भी लगाया गया। डेट्राइट और सेलमा आदि दूर दूर बँटे हुए शहरो मे हाईस्कूल के विद्यार्थियो ने अपने शाला अधिकारियो की सम्मति से तथा उनकी देखरेख मे प्रदर्शन और जुलूस निकाले। मेरिडियन और मिसिसिपी मे, अपने राज्य का स्वरूप सुधारने और शाला की समग्रता को कार्यरूप देने के विद्यार्थियो के प्रयत्नो के शुभ लक्षण प्रकट हुए।"[1] हमारे देश मे जन साधारण क दुख, कष्ट और अन्याय के विरुद्ध दृढ़तापूर्वक लडने का शिक्षण

---

१. 'प्रामिसिंग प्रैक्टिस इन सिविल एज्युकेशन"—ले० डोनाल्ड डब्ल्यू रॉबिनसन् पृष्ठ ७

कितना को मिलता है ? अधिकाश विद्यार्थियो को हमारे सविधान के बारे में भी जानकारी नही है। उन्हें यह भी मालूम नही कि हम लोगो ने लोकतान्त्रिक सिद्धान्तो को व्यावहारिक रूप में कार्यान्वित करने का कैसा पवित्र सकल्प किया है।

कल्याणकारी राज्य में राज्याभिमुखता

दुर्भाग्य से जनता और माता पिता को शिक्षा के विषय में कोई रुचि नही है। इसमे उनका अधिक दोष नही है। कल्याणकारी राज्य में यही मान्यता है कि जो भी करना है सब सरकार को करना है। माता पिता को यही करना है कि वे अपने बच्चो को चहारदीवारी के भीतर भेज दें, जो सरकार ने बना रखी है। वास्तव मे जनता के सहारे के बिना केवल सरकार देश के बच्चो की शिक्षा का भार उठा नही सकती है। जनता का सहारा तभी मिल सकता है, जब शिक्षा क्षेत्र मे जनता का प्रत्यक्ष सम्बन्ध और सहयोग हो। इग्लैण्ड, रूस, अमरीका आदि उन्नत राष्ट्रो मे जनता की ओर से स्कूलो के भवन पुस्तकालय, माध्यान्हिक भोजन आदि कई मदो मे उल्लेखनीय सहायता मिलती है क्योकि आपकी शाला के पाठ्यक्रम के व्यापक सिद्धान्तो और नीति का निर्धारण करने मे स्थानीय लोगो का प्रत्यक्ष हाथ होता है।

एकरूपता नहीं, विविधता चाहिए

ऊपर हमने देखा कि लोकतत्र के प्रमुख अग हैं—वैयक्तिक स्वातन्त्र्य और स्थानीय अभिक्रम। वतमान शिक्षा पद्धति का काम इसके विपरीत दिशा में चल रहा है। वह तो केन्द्रीकरण की ओर बढ रहा है विकेन्द्रीकरण की ओर नही, पाठ्यक्रम और पाठ्य पुस्तको की एकरूपता की ओर बढ रहा है विविधता की ओर नही अपरिवतनीयता की ओर बढ रहा है लचीलेपन की ओर नही।

हमारा लोकतान्त्रिक समाज कोई मर्यादित या बद्ध समाज (क्लोज्ड सोसाइटी) नही है जहाँ नागरिको के कर्तव्य और कार्य स्पष्ट निर्धारित किये गये हो, बल्कि वह व्यक्तिनिष्ठा (इण्डिविजुअलिटी) और विविधता को प्रोत्साहन देनेवाला समाज है। हमारे जैसे विविधतापूर्ण राष्ट्र मे यह न तो वाछनीय है न ही व्यावहारिक है कि उत्तम नागरिकता की कोई एक परिभाषा बनायी जाय और सबसे एक-सी क्षमता और एक से चारित्र्य के पूर्ण पालन की अपेक्षा की जाय। उदाहरण के लिए जो विदेशनीति का निष्णात है, वह यदि स्थानीय चुनावो मे रुचि न ले तो क्या हम उसे ओछा नागरिक कह

सकते हैं ? जो मानविक क्रियाशील है, संवेदनमय है, वह यदि अध्यात्म, कला या विज्ञान का अनभिज्ञ है तो क्या हम उसकी अवहेलना कर सकते हैं ?"
जहाँ विविधता की ऐसी परिस्थिति हो वहाँ लोकतंत्र के लिए शिक्षा पर विचार करना बड़ा कठिन है।

शैक्षिक प्रवृत्तियाँ जनता की आवश्यकता में से निःसृत हों

लोकतंत्र के लिए शिक्षा पर दो प्रकार से विचार करना होगा। एक, बालकों और युवकों की क्रमबद्ध शालेय शिक्षा, दूसरा प्रौढ़ शिक्षा। आज इन दोनों की बहुत ही उपेक्षा की गयी है। इस उपेक्षा का प्रमुख कारण यह है कि विकास को—चाहे वह शिक्षा का हो स्वास्थ्य का हो या कृषि का—जन आन्दोलन के रूप में नहीं देखा गया। इसलिए सबप्रथम करना यह चाहिए कि लोगों को अपने बच्चों के विषय में स्वयं सक्रिय रुचि लेनी चाहिए। यह रुचि ऊपरी आदेशों से या वक्तव्यों से निर्माण नहीं की जा सकती बल्कि प्रत्यक्ष जनता में काम करके ही की जा सकती है। सरकार का दायित्व यह नहीं कि सारा अभिक्रम वह अपने हाथ में ले ले, बल्कि जनता को उसके लक्ष्य की सिद्धि में मदद करना है, जो लक्ष्य लोगों ने स्वयं निर्धारित किये हों जो उनके लिए वास्तविक, महत्त्वपूर्ण और प्रेरणादायी हों। इसलिए प्रमुख तत्त्व यह है कि शैक्षिक प्रवृत्तियाँ स्थानीय जनता की आवश्यकताओं और माँगों में से निःसृत और विकसित होनी चाहिए। तभी शिक्षा का या उससे सम्बद्ध किसी भी विषय का उनके लिए कुछ महत्त्व है। विकेन्द्रीकरण के छिटपुट प्रयोग जरूर हुए पर उनके पीछे आस्था नहीं थी। हम भूलना नहीं चाहिए कि हमारे देश का प्रशासनतंत्र वही कट्टर नौकरशाही का है जो अंग्रेजी राज्य के हित के लिए बना हुआ था। दृष्टिकोण में, जीवन पद्धति में और समूहगत समस्याओं की समाधान पद्धति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। इसलिए विकेन्द्रीकरण के जो भी प्रयत्न हुए, और वे बहुत लोकप्रिय भी बताये गये लेकिन खाली प्रशासन और सरकार के विस्तार के सिवाय और कुछ नहीं थे। योजना-आयोग का इतिहास और उसकी उपलब्धियाँ इस बात की गवाही देती हैं। इसलिए अब तक जो निम्नगामी प्रवृत्ति रही है, अब उसके स्थान पर जनता की ऊर्ध्वगामी प्रवृत्ति प्रारम्भ होनी चाहिए।

पाठ्यक्रम शिक्षक तथा स्थानीय लोगों के सहयोग से बने

शिक्षा की दृष्टि से इसके परिणाम दूरगामी हैं। सबसे पहले शिक्षा की योजना केन्द्रीय या प्रान्तीय स्तर पर नहीं बननी चाहिए। केन्द्र का या प्रान्त का

अधिकार देश की प्रमुख समस्याओं अथवा आवश्यकताओं अथवा राष्ट्रीय चारित्र्य तक सीमित रहना चाहिए। उदाहरण के लिए वे प्रतिरक्षा के लिए संस्थाओं का निर्माण कर सकते हैं परन्तु स्थानीय जन समुदायों के नाश्य निवारण का काम उनका नहीं होना चाहिए। प्राय दलील की जाती है कि राष्ट्रीय एकता और राष्ट्र भावना के निर्माण के लिए पाठ्यक्रमों पाठ्यपुस्तकों और शिक्षा के माध्यमों की एकरूपता आवश्यक है। इस प्रकार का विचार शिक्षा के इन बुनियादी तत्वों के ही विरुद्ध है कि शिक्षा परिसर परिस्थिति के अनुरूप ही दी जानी चाहिए और छात्रों को अपनी भाषा में ही दी जानी चाहिए। इसके बिना शाला शिक्षा पद्धति की एकरूपता से राष्ट्रीय एकता सिद्ध नहीं की जा सकती बल्कि वास्तव में राष्ट्रीय एकता तो इस बात से अधिक भला प्रकार सिद्ध हो सकती है कि छात्रों को राष्ट्र के स्वाध्याय के लिए आवश्यक और समूचे राष्ट्र जीवन में सम्भाव्य प्रश्नों के अनुभवों के आधार पर अध्ययन अध्यापन के विविध प्रकार अपनायें जायें। जो पाठ्यक्रम शिक्षक स्कूल तथा स्थानीय लोगों के सहयोग से न बने केवल ऊपर के आदेश से लादा गया हो, वह सर्वथा प्राणहीन है। इसीका अर्थ है कि शालाओं में लोकतांत्रिक दृष्टि विकसित करने के लिए नौकरशाही तथा अधिनायकवादी पद्धति और प्रक्रिया निरुपयोगी है।

छात्रों के मूल्यांकन का दायित्व शिक्षक पर

शाला-परिवार का जिसमे शिक्षक छात्र तथा संचालक शामिल हैं काम पूर्ण सहयोग और मैत्री के वातावरण में चलना चाहिए। प्रस्तुत प्रश्नों पर विवेचनात्मक बुद्धि से सोचने और निर्णय लेकर अपनी राय कायम करने की क्षमता छात्रों में पैदा करनी चाहिए। इसके लिए शाला के जीवन और अध्यापन की पद्धतियों में आमूल परिवर्तन करना होगा। परिवर्तन की बात तो अनेक वर्षों से सुनी तो जा रही है परन्तु स्कूल की आज की पद्धति और प्रशासकों की कट्टरता कोई परिवर्तन होने नहीं देती। इस कट्टरता का जन्म मुख्यतया परीक्षा केन्द्रित शिक्षा की कोख से हुआ है। उसमें अध्यापन या पढाई पर जोर नहीं है परीक्षा पर है। जब तक बाह्य परीक्षा की यह कट्टरता हावी रहेगी तब तक स्कूल या शिक्षक को स्वातन्त्र्य नहीं मिलेगा उनमे लचीलापन नहीं आयगा और इसीलिए कोई परिवर्तन भी सम्भव नहीं होगा। किसी भी परिवर्तन के लिए अवसर ही न देने की स्थिति अस्वस्थता का लक्षण है। यदि हम

हृदय से चाहते हैं और ईमानदारी से चाहते है कि लोकतन्त्र के लिए शिक्षा देनी है, तो छात्रों की परीक्षा या मूल्यांकन का दायित्व पूर्णतया शिक्षक को सौंप देना चाहिए। श्री वाइटहेड ने कहा था कि छात्रों का मूल्यांकन करने की योग्यता अगर किसीमें है तो वह उन्हें पढानेवाले शिक्षक के सिवाय दूसरे किसी में नहीं है।

शिक्षा-स्तर की एकरूपता और सादृश्य आदि बातें निरी भ्रमात्मक हैं। सच बात तो यह है कि शिक्षक आज दूषित हो गया है और आत्मविश्वास खो चुका है। यह भाग्य की ही विडम्बना है कि आज स्वयं शिक्षक ही छात्रों के मूल्यांकन का दायित्व स्वीकार करने की हिम्मत नहीं कर पाता है और न वह चाहता ही है।

लोकतंत्र की शिक्षा में स्पर्द्धा नहीं, भेदभाव नहीं; समत्व

हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि मानदण्ड की धारणा आज असामयिक हो गयी है। प्रबुद्ध अवस्था में भी मानदण्ड की श्रेणियाँ निर्धारित करना सम्भव नहीं है, क्योंकि वात्सल्यपूर्ण शिक्षकों या गुरुओं की बात ही अब नहीं रही। वात्सल्यपूर्ण शिक्षकों के विषय में डा० ब्लूम ने जो विश्लेषण किया है उससे मानदण्ड के नये दावे प्रस्तुत हुए हैं। यदि लोगों को लोकतन्त्र के लिए शिक्षा देनी है तो हम ऐसा समाज निर्माण करना होगा जिसका आधार स्पर्धा नहीं, सहयोग हो, भेदभाव नहीं, समत्व हो, अन्यथा देश की जैसी प्रगति हम चाहते हैं, वैसी कर नहीं पायेंगे। लोकतन्त्र के लिए शिक्षा देनी हो तो, श्री गुडलैंड के शब्दों में, शाला का निम्न आदर्श होना चाहिए

"इस प्रकार के व्यक्तियों और ऐसे समाज का यदि निर्माण करना है, तो स्कूलों को मानवीय क्षमताओं के साथ एकरूप होना चाहिए और उनकी वृद्धि करनी चाहिए, भूत और वर्तमान की शालाओं को ही सँजाते रहना नहीं चाहिए। इस प्रक्रिया में छात्रों में जिन गुणों का विकास करना हो उसके सम्बन्ध में उनकी पृष्ठभूमि, स्वभाव और वर्तमान उपलब्धियों के अन्तर का ध्यान रखना चाहिए। इस अन्तर के स्वभाव का जितना जितना परिज्ञान बढ़ता जायगा अध्यापन की समस्याएँ उतनी उतनी आसान होती जायेंगी।"[1]

[1] "स्कूल करिक्युलम एण्ड दि इण्डिविजुअल"—ले० जोन आई० गुडलैंड, पृष्ठ १

समवाय-पद्धति : कठिनाइयाँ और उनका निवारण

वंशीधर श्रीवास्तव

समवाय पद्धति से सीखना सीखने का प्राकृतिक ढंग है, पर आज के अध्यापक के लिए यह पद्धति दुरूह हो गयी है। इसका सबसे प्रमुख कारण तो यह है कि हमारे अध्यापक को किताबों से पढ़ाने की आदत पड़ गयी है। किताबी शिक्षा उसने स्वयं पायी है और किताबों के माध्यम से पढ़ाना उसे सरल मालूम होता है। इस पद्धति से पढ़ाने में उसे सोचना नहीं पड़ता। किसी पाश्चात्य विद्वान् ने कहा है—' आदमी मर जाना पसन्द करता है, पर सोचना पसन्द नहीं करता।" समवाय पद्धति से पढ़ाने में स्वतंत्र नियोजन और कल्पना की आवश्यकता है। अध्यापक इस श्रम से बचना चाहता है।

कक्षा का बनावटी वातावरण

कक्षा का बनावटी वातावरण भी समवाय के कार्य को कठिन बना देता है। बालक अपने जीवन के प्रारम्भिक काल में सविधिक ढग से कुछ नहीं सीखता। वह चलना फिरना बोलना चालना और छोटे-मोटे काम करना तो उन लोगों के अनुकरण से ही सीख लेता है, जिनसे वह घिरा रहता है। यही सीखने का आदिम अथवा प्राकृतिक ढग है। पर सभ्यता के विकास में एक ऐसा क्षण भी आया जब मनुष्य ने अपने प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण से सीखने की इस पद्धति का परित्याग कर सविधिक ढग से कक्षा में बैठाकर लिखने पढ़ने की पद्धति शुरू की। परिणाम यह हुआ कि अनुकरण का स्थान अध्यापक ने और यथार्थ परिस्थितियों का स्थान कक्षा के बनावटी वातावरण ने ले लिया। कक्षा की चार दीवारों के भीतर पढ़ाने की शैली का विकास हुआ और उसीके अनुकूल अनुशासन की कल्पना की गयी। कक्षा के इस अस्वाभाविक परिसर और एक विशेष प्रकार के अनुशासन के वातावरण में समवाय पद्धति का ठीक-ठीक कार्यान्वयन नहीं हो पाता।

असफलता का एक खास कारण

समवाय के अप्रिय होने का एक दूसरा कारण यह भी है कि समवाय में अध्यापक को छात्रों पर व्यक्तिगत ध्यान देना पड़ता है। बालक व्यक्तिगत प्रयोग करते हैं और इस प्रयोग में उनके सामने अनेक व्यक्तिगत समस्याएँ आती हैं। अध्यापक को इन समस्याओं का निराकरण करना पड़ता है। ४० या ४० से अधिक विद्यार्थियों की कक्षा में इन व्यक्तिगत कठिनाइयों को दूर करने का काम अध्यापक के लिए एक टेढ़ी खीर बन जाता है और वह इस प्रकार की पद्धति से जान बचाता है। आज अध्यापक के पास जो पाठ्यक्रम हैं वे परम्परागत और पुस्तक केन्द्रित ही है। उनमें विभिन्न विषयों के पाठ्यक्रम दिये गये हैं। समवाय के लिए क्रिया केन्द्रित पाठ्यक्रम चाहिए अर्थात् पाठ्यक्रम ऐसा हो जो विषयों में न बटकर क्रियाओं और उपक्रियाओं में अथवा अनुभव की इकाइयों में बँटा हो। इस प्रकार का पाठ्यक्रम डा० जाकिर हुसैन समिति भी नहीं दे पायी जिसका परिणाम यह हुआ कि क्रिया को केन्द्र बनाकर समवाय पद्धति से पढ़ाना कठिन हो गया।

बेसिक शिक्षा का पहला पाठ्यक्रम परम्परित पाठ्यक्रम से बहुत भिन्न नहीं था। उसमें शिक्षा के अलग अलग विषय दिये गये थे यह दूसरी बात है कि उनमें से कुछ नये विषय भी थे। सामाजिक अध्ययन नया विषय था। सामान्य विज्ञान भी नया ही था। उसमें एक से अधिक शिल्प के भी पाठ्यक्रम दिये गये थे और सिद्धान्त की बात कह दी गयी थी कि इन्हीं उद्योगों से और बालक के स्वाभाविक और प्राकृतिक वातावरण से अनुबंधित कर स्कूल के दूसरे विषय पढ़ाये जायें। साधारण स्तर के अध्यापक के लिए यह काम बहुत कठिन हो गया। आवश्यकता इस बात की थी कि प्रत्येक कक्षा के बालकों की क्षमता के अनुसार शिल्प की क्रियाएँ और उपक्रियाएँ तथा प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण-सम्बन्धी अनुभव की इकाइयाँ निश्चित की जाती और उनके माध्यम से जिन सैद्धान्तिक विषयों का स्वाभाविक शिक्षण हो पाता उन्हें भी लिख दिया गया होता। ऐसा किया गया होता तो समवाय अधिक अच्छी तरह समझ में आता। डाक्टर जाकिर हुसैन समिति ने जो पाठ्यक्रम दिया वह क्रिया अथवा अनुभव केन्द्रित पाठ्यक्रम नहीं था। इसीलिए समवाय साधारण योग्यतावाले अध्यापकों के लिए हौवा बन गया।

यदि बालक की सहज क्रियाओं और उनके अनुभवों को दैनिक साप्ताहिक और मासिक प्रयोजनाओं के रूप में व्यवस्थित कर लिया गया होता और उनके माध्यम से स्वाभाविक रूप से जिन विषयों का जितना भी अनुबंधन

मभव होता उमे व्यवस्थित ढग से लिख दिया गया होता तो समवाय का काम पहाड़ चढने जैसा कठिन न बनता। पर ऐसा नही किया गया। फलत अध्यापक ने अपनी बुद्धि के अनुसार व्यर्थ की ठूँस ठास की। पूरी योजना अथवा उपयोजना द्वारा समवायित ज्ञान देने के स्थान पर उपक्रियाओ के माध्यम से विषयो का तात्कालिक अनुबध ढूँढा गया, जिससे समवाय का रूप ही विकृत हो गया। जब तक शिक्षण क्रिया केन्द्रित नही हो जाता, पुराने ढग के विषय-मूलक पाठ्यक्रमो से समवाय पद्धति के अनुरूप अध्यापन करना पुराने चौखट मे नयी तस्वीर बिठलाना भर होगा।

समवाय का अर्थ

यह आवश्यक नही है कि शिल्प की प्रत्येक उपक्रिया से कोई न-कोई विषय समवायित हो ही। समवाय को व्यक्तिगत पाठो से नही, पूरी योजना मे देखना चाहिए। अध्यापक को साहचर्य और समवाय (असोसिएशन और कोरिलेशन) के अन्तर को समझना चाहिए। तकली की चकती गोल है—वृत्त भी गोल है—ऐसी दशा मे दोनो मे जो साम्य है उसी की चर्चा करके समवाय हो गया, ऐसा समझना भूल है। वृत्त पढाते समय आप तकली की चकती की बात बता दें अथवा तकली की चकती को दिखाकर वृत्त की बात स्पष्ट कर दें और वृत्त का ठोस उदाहरण उपस्थित कर दें तो इस साहचर्य को समवाय की प्रक्रिया का पर्याय मानना गलत है। समवाय का अर्थ है क्रिया के क्यो कैसे, क्या आदि का सम्यक् विवेचन। जब तक इन प्रश्नो का उत्तर बालक को न मिले, समवाय स्थापित नही हुआ। इस प्रकार की गलतफहमी भी सम्यक् समवायित अध्यापन के मार्ग की बाधा रही है।

समवाय पद्धति की सफलता के मार्ग मे एक दूसरी कठिनाई यह है कि स्कूल मे शिल्प की क्रियाएँ कराने के लिए समय से कच्चे माल और शिल्प-सामग्री की पूर्ति नही होती। जब तक समय से पर्याप्त कच्चा माल और शिल्प-सामग्री नही दी जाती क्राफ्ट अथवा इसकी प्रयोजनाओ का सम्यक् अध्यापन सम्भव नही होगा।

शिल्प सामग्री के समुचित वितरण के लिए जगह जगह प्रत्येक जिले मे इस प्रकार के क्राफ्ट स्टोर (शिल्प भाडार) स्थापित कर देने चाहिए, जहाँ निश्चित भाव पर स्कूलो को प्रामाणिक सामग्री मिले। मद्रास, आध्र और केरल मे इस प्रकार के भाडार है जिनके सफल सचालन से इन प्रदेशो मे बेसिक शिक्षा को बल मिला है।

सफलता की कुछ शर्तें

समवाय-पद्धति की सफलता के लिए प्रशिक्षित निरीक्षकों की बड़ी आवश्यकता है। आज स्थिति यह है कि बेसिक स्कूलों में समवाय पद्धति में अध्यापन की जाँच के लिए जिन अधिकारियों का निरीक्षण प्राप्त है, उनमें से अधिकांश 'बेसिक ट्रेंड' नहीं हैं। जब तक बेसिक शिक्षा के दर्शन और टेकनिक में प्रशिक्षित निरीक्षक वर्ग का सहानुभूतिपूर्ण पथ प्रदर्शन नहीं प्राप्त होता तब तक समवाय पद्धति के अनुसार अध्यापन कठिन होगा। अतः निरीक्षक वर्ग के प्रशिक्षण के लिए सेवान्तर्गत प्रशिक्षण, अल्पकालीन प्रशिक्षण योजना तथा वर्कशाप और सेमीनार आयोजित किये जायें। यह चेष्टा तो सर्वत्र होनी चाहिए। प्रारम्भिक शिक्षा के निरीक्षण के लिए जो भरती हो उसमें बेसिक शिक्षा में प्रशिक्षित व्यक्तियों को प्राथमिकता मिले।

आजकल बेसिक स्कूलों में जो पाठ्यक्रम प्रचलित हैं उनमें से अधिकांश विषयानुसार हैं, क्रियानुसार नहीं हैं। बुनियादी प्रशिक्षण संस्थाओं का यह काम होना चाहिए कि वे शिल्प तथा वातावरण सम्बन्धित क्रियाकलापों को उपइकाइयों में बाँटकर इनके चारों ओर पाठ्यक्रम के विषयों को चुनकर समवायित पाठ्यक्रम प्रस्तुत करें। उत्तर प्रदेश में इस प्रकार का अनुबन्धित पाठ्यक्रम तैयार किया गया था। पर यह प्रथम प्रयास था। अनुभव और प्रशिक्षण के आधार पर इस प्रकार का पूर्ण और नया पाठ्यक्रम तैयार किया जाय। इस प्रकार के पाठ्यक्रम को पर्याप्त लचीला होना चाहिए और उसमें व्यक्तिगत रुचि और स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन की गुंजाइश होनी चाहिए।

समवाय-पद्धति की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि छात्राध्यापकों के प्रशिक्षण की अवधि कम-से कम दो वर्ष कर दी जाय और बेसिक स्कूलों के लिए अध्यापक तैयार करनेवाली प्रशिक्षण-संस्थाओं में प्रवेश की योग्यता कम-से-कम हाईस्कूल हो।

इन संस्थाओं में बेसिक स्कूलों के पाठ्यक्रम का गम्भीर अध्ययन किया जाय, छात्राध्यापकों को क्रियामूलक अनुबन्धित इकाइयों का संगठित करना सिखाया जाय। प्रशिक्षण-काल में उन्हें शिल्प में और सामाजिक और प्राकृतिक वातावरण के वैज्ञानिक अध्ययन में पूर्ण दक्षता दी जाय। शिक्षण का अभ्यास भी व्यक्तिगत पाठों के रूप में न देकर समवायित पाठों के रूप में ही दिया जाय। यह भी आवश्यक है कि छात्राध्यापक लगातार १५ २० दिन तक

पूरी कक्षा को वैसे ही पढायें जैसा यथार्थ परिस्थिति म होना है। कुछ व्यक्तिगत पाठ दे देना अथवा दो तीन घटे तक समवायित पाठ पढा देना ठीक नही है।

अध्यापक की योग्यताए

काई अध्यापक तब तक समवाय पद्धति से नही पढा सकता जब तक वह शिल्प की क्रियाओ मे पूणत दक्ष न हो और जब तक उसने अपने प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण का पूरा अध्ययन न किया हो। बेसिक स्कूल के अध्यापक होने की योग्यता केवल उसीमे है जिसको समवाय के इन तीनो केन्द्रो का सम्यक ज्ञान हो। अध्यापक को उन शास्त्रीय विषयो का भी पूर्ण ज्ञान होना चाहिए जिन्हे बालक के व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक समझा गया है।

समवाय का एक केन्द्र बालक का सामाजिक वातावरण है। अत अध्यापक को इस सामाजिक वातावरण से पूर्ण परिचित होना चाहिए। आज का सामाजिक वातावरण नित्य नवीन नित्य परिवर्तनशील है। अत उसे नियम पूर्वक अखबार और पत्र-पत्रिकाएँ पढना चाहिए जिससे वह अपने और बालक के सामाजिक वातावरण से परिचित रहे। उसके लिए अधिक से अधिक सामान्य ज्ञान आवश्यक है। समवाय का एक दूसरा केन्द्र बालक का प्राकृतिक वातावरण भी है। अत अध्यापक को इस प्राकृतिक वातावरण का ज्ञान आवश्यक है।

प्रकृति के नियमो और रहस्यो को समझने के लिए जिज्ञासा और ज्ञान पिपासा की आवश्यकता है। अध्यापक को जिज्ञासु और नयी बातें जानने की इच्छा रखनेवाला होना चाहिए।

इसी प्रकार सामाजिक वातावरण का भी अध्ययन किया जाय। पास पडोस के मनुष्यो के जीवन के विषय मे, उनके काम धन्धे, उनकी आदतें, उनका आर्थिक जीवन उनका भोजन, उनका स्वास्थ्य, उनके मनोरजन, उनके सास्कृतिक कार्य, उनके पालतू पशु-पक्षी सभी के विषय मे वज्ञानिक ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। इस प्रकार जब तक समता के त्रिभुज की तीनो भुजाओ का सुसम्यक् अध्ययन नही होता, समवाय का काम ठीक नही चलेगा और समवाय बालक के जीवन के हर पहलू को घेर नही पायगा।

प्राकृतिक वातावरण उपेक्षित

समवाय के तीन केन्द्र मे शिल्प के प्रशिक्षण के लिए तो कुछ हो भी रहा है परन्तु प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण के लिए प्रयास नही किया गया

है। इस प्रकार समवाय का दो-तिहाई भाग उपेक्षित है। इन वातावरणों का वैज्ञानिक अध्ययन और लेखा-जोखा बहुत कम हुआ है। रामचन्द्रन् मूल्यांकन समिति ने लिखा है—"उड़िया और धारवाड के कुछ बेसिक स्कूलों को छोड़कर प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण के अध्ययन-प्रसंगों को एकत्र करने का काम नहीं हुआ है। अतः तुरत इस बात का प्रयास होना चाहिए। इन वातावरणों का सर्वेक्षण और अध्ययन किया जाय और इस अध्ययन का लेखा जोखा रखा जाय। प्राकृतिक वातावरण में बालक की पृथ्वी से आकाश तक का सम्पूर्ण विश्व ही आ जाता है। भूमि का धरातल, स्थल की प्राकृतिक दशा, मिट्टी की किस्में, सिंचाई के साधन, ऋतुएँ, फसलें कृषि, फूल, फल, वृक्ष, पौधे, पशु, पक्षी, चाँद, तारे, वायु, अग्नि, अणु से लेकर ब्रह्माण्ड तक सभी प्राकृतिक वातावरण है और सभी के अध्ययन की आवश्यकता है।

सबसे आवश्यक यह है कि अध्यापक को नये प्रयोगों और अनुभवों से विषयों को अनुबन्धित करने की दीक्षा दी जाय। कर्म और ज्ञान को सम्बन्धित करने की यह कला अभ्यास से ही आती है। इसके लिए व्यावहारिक शिक्षण की आवश्यकता है। बढ़ई कर्म करता है। उस कर्म में कितना वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है, वह नहीं जानता, उसका कर्म यन्त्रवत् है। उस कर्म के पीछे का ज्ञान भी यन्त्रवत् है। अध्यापक का दृष्टिकोण जागरूक जिज्ञासु का है, वैज्ञानिक शिक्षक का है और उसे यह दृष्टिकोण सतत अभ्यास से ही प्राप्त होता है।

बेसिक शिक्षण-पद्धति में प्रशिक्षित योग्य अध्यापकों की कमी सफल समवाय के मार्ग में सबसे बड़ी कठिनाई है। योग्य अध्यापक का अर्थ यह है कि वह कम-से-कम आज के हाईस्कूल की कोई भी परीक्षा पास हो और उसे कम से-कम दो साल तक बेसिक शिक्षा के सिद्धान्तों और पद्धतियों में प्रशिक्षण दिया जाय। उसे कम से कम दो शिल्प अच्छी तरह सिखलाये जायँ। उसे बालक के प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण का अध्ययन करना बतलाया जाय और बालक की शक्ति के अनुकूल क्रिया-कलापों के चारों ओर विभिन्न विषयों को बुनना सिखाया जाय।

सफल समवाय के सूत्र

कार्य की योजना बनाना सफल समवाय की प्रमुख शर्त है। इन अध्यापकों को पूरे वर्ष के कार्य की योजना बनाना बताया जाय और इस योजना को मासिक और साप्ताहिक इकाइयों में बाँटना सिखाया जाय। अध्यापक इन सारे

ऊपर बताया जा चुका है कि 'योजना बनाना' समवायित शिक्षण का अनिवार्य अंग है। अत योजना बनाने के लिए और इस सम्बन्ध मे अध्यापको तथा विद्यार्थियो के बीच बातचीत के लिए भी टाइमटेबुल मे गुञ्जाइश रहनी चाहिए। इसी तरह योजना के कार्यान्वियन के लिए सामग्री जुटाना आवश्यक है। अत यह भी टाइमटेबुल का अंग है।

संक्षेप मे बेसिक योजना का टाइमटेबुल परम्परागत अध्यापन के टाइमटेबुल से भिन्न होगा और उसमे उन तमाम नयी बातो को स्थान मिलेगा, जिनकी समवायित शिक्षण मे आवश्यकता है।

सम्यक् समवायित शिक्षण के लिए उचित, और पर्याप्त साहित्य का होना भी आवश्यक है। पुस्तकें ऐसी हो जिनके पाठ बालको के क्रिया-कलापो और अनुभवों से सम्बन्धित हो। अर्थात् शिल्पो, और प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण के क्रिया-कलापो से सम्बन्धित इस प्रकार की तीन चार छोटी छोटी पुस्तकें प्रत्येक कक्षा के लिए आवश्यक हैं, जिनमे भाषा, गणित, सामान्य विज्ञान से सम्बन्धित बातें उन्ही क्रिया-कलापो के माध्यम-द्वारा सिखायी गयी हो।

इतिहास, भूगोल और नागरिक शास्त्र अथवा समाज-शास्त्र, जिन्हे प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण के माध्यम के स्वाभाविक ढंग से नही पढाया जा सकता, उनके लिए अलग पुस्तकें हो। यह समझना कि पुस्तको से शिक्षा का बोझ बढ जाता है, गलत है। बालक के जीवन और उसके क्रिया-कलापों से सम्बन्धित दस पुस्तको का बोझ उतना नही होगा जितना असम्बन्धित दो पुस्तको का, जिनमे संग्रहित सूचनाओ को उसे रटकर ही स्मरण करना है। इस प्रकार की पुस्तकें तो समवायित ज्ञान को सुसम्बद्ध और संघटित करने की माध्यम है। परन्तु खुद मे उनका महत्व नही है और अध्यापन को उन्ही तक सीमित करना ठीक नही है। ये पुस्तकें तो क्रिया और अनुभव की सहायक हैं। उनका स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है पर गौण है। प्रमुख स्थान तो बालक की अपनी क्रियाओ और अनुभवो और अध्यापक के विवेचन का ही है।

इस प्रकार की पुस्तको का आज अभाव है। अत शिक्षा-विभाग को उपयुक्त पुस्तकें तैयार करने के लिए सुयोग्य प्रशिक्षित अध्यापको की वर्कशाप आयोजित करनी चाहिए। बेसिक प्रशिक्षण संस्थाओ को भी इस प्रकार का साहित्य तैयार करने के लिए प्रोत्साहन देना चाहिए। इस काम के लिए उनको सुविधाएँ दी जायें और साहित्य तैयार करने का यह काम इन संस्थाओ के पाठ्यक्रम का अंग बना दिया जाय। •

कुमार मन्दिर के दो घंटे

काली प्रसाद 'आलोक'

[कुमार मन्दिर के पहले घण्टे का विवरण 'नयी तालीम' के पिछले अंक में प्रकाशित हुआ है। दूसरा घण्टा वस्त्र स्वावलम्बन से सम्बन्ध रखता है, जो यहां प्रस्तुत है।—स०]

'मनुष्य की अनेक अनिवार्य आवश्यकताएँ होती हैं जिनमें प्राथमिकता के क्रम से भोजन के बाद दूसरा स्थान वस्त्र का आता है। इन अनिवार्य आवश्यकताओं की सम्पूर्ति स्वावलम्बन के आधार पर करना हर दृष्टि से जरूरी होता है। एतदर्थ बड़ी-से बड़ी कठिनाई भी यदि उठानी पड़े, तो उठायी जा सकती है।" इसी भाव बोध के प्रकाश में कुमार मन्दिर आगे बढ़ रहा है।

वस्त्रोद्योग यहां का मूलोद्योग है। वर्षाकाल में नित्य दो घंटे और अन्य मौसम में नित्य एक घंटे का समय इसमें दिया जाता है। जैसे भोजन, सफाई आदि कार्य अनिवार्य रूप से रोज किये जाते हैं, उनमें कोई विक्षेप नहीं आता, उसी प्रकार उद्योग का कार्य भी नित्य निर्बाध चलते रहना चाहिए, यह आवश्यक है। यह हमारे दैनिक जीवन में अपना प्रमुख स्थान बनाये, हम इसे अपनी श्रद्धा और प्रतिष्ठा दें, यही इसका भाव है। इसी कारण अवकाश के दिनों में भी उद्योग का काम बन्द नहीं रहता, अपितु चलता रहता है। अवकाश के दिन अन्य कार्यक्रमों में से थोड़ा थोड़ा समय लेकर उद्योग के समय को बढ़ा दिया जाता है। इस कारण छुट्टी के दिन अन्य दिनों की अपेक्षा कुछ अधिक काम होता है।

कक्षानुसार छात्रवार वार्षिक लक्ष्य निर्धारित रहता है। लक्ष्य निर्धारण में इसका ध्यान रखा जाता है कि छात्रों पर दबाव न पड़े, हँसते-खेलते बच्चे अपने लक्ष्य पूरे कर सकें। इसलिए बच्चों की सामान्य गति का मध्यमान लेकर लक्ष्य निर्धारित किया जाता है। हर प्रक्रियाओं के लक्ष्य-निर्धारण में बच्चों की राय विशेष काम करती है। मसलन, किसी बच्चे की गति सामान्य तौर पर यदि १०० तार प्रतिघंटा है, तो उससे ही पूछा जाता है कि वह वर्ष भर में कितना कम-से कम कात लेगा। हिसाब लगाकर वह बतलाता है कि वर्षाकाल के ३ महीनों में नित्य दो घंटे से १८ गुण्डियाँ और अन्य मौसम में नित्य एक घंटे से २४ गुण्डियाँ, कुल ४२ गुण्डियाँ कात लेगा। सहज ही वह अपने लिए ४० गुण्डियों का लक्ष्य तय कर लेता है और लिख देता है। कक्षा के हर

छात्र का ऐसा ही अलग अलग लक्ष्य लेकर उसका मध्यमान निकालते हैं। व ही उस कक्षा का वार्षिक लक्ष्य होता है। इसमें हर छात्र की सहमति होना है। किसीको दबाव या परेशानी महसूस नहीं होती।

दूसरी ओर यह भी ध्यान रखना होता है कि वर्ष भर में लगनेवाले कपड़ा के लायक सूत का उत्पादन अवश्य ही हो अन्यथा कठिनाई पैदा होगी। बाजार से कपड़ा खरीदा नहीं जाता। अतः आवश्यकता के अनुसार सूत का उत्पादन जरूरी होता है। ऊंची कक्षाओं में इसके लिए प्रतिस्पर्धा की भावना पैदा की जाती है—समय और साधन की सुविधा दी जाती है—गति में निरन्तर वृद्धि होती जाय, इसके लिए हर सभव प्रयत्न किये जाते हैं। (यहाँ यह ज्ञातव्य है कि मंदिर का छात्रालय पूरी तरह स्वावलम्बी है।)

नीचे की कक्षाओं में उद्योग की विभिन्न प्रक्रियाओं की गति और गुणों की वृद्धि पर ही बल दिया जाता है जब कि ऊंची कक्षाओं में प्रक्रियाओं के सैद्धांतिक ज्ञान के साथ गति और गुण विकास की ओर ध्यान दिया जाता है। हर प्रक्रिया की हर पहलू से जानकारी दी जाती है। जरूरी साधनों का उपयोग उनके निर्माण उन पर होनेवाले व्यय और उनके गुणों की जानकारी दी जाती है। उन साधनों की लम्बाई चौड़ाई और मोटाई का उन्हें ज्ञान होता है। प्रश्नोत्तरों द्वारा उस ज्ञान कार्य को परिपुष्ट किया जाता है और प्रत्यक्ष कार्य द्वारा उसे सवारा जाता है। जैसे —कताई क्यों करना कैसे करना कब करना, कौन कौनसी उसकी आंगिक क्रियाएँ हैं उनमें क्या-क्या सावधानियाँ रखना साधनों की व्यवस्था कैसे करना उन्हें सुरक्षित कैसे रखना आदि आदि।

साल भर उद्योग के जो काम बच्चे करते हैं उनका लेखा सम्बन्धित शिक्षक तो रखते ही हैं लेकिन कक्षा ३ से लेकर ८ तक के बच्चे भी रखते हैं। वे दैनिक और वार्षिक—दोनों प्रकार से लेखा रखते हैं। किस बालक ने कब क्या काम किया कितना काम किया कितने समय तक काम किया महीने भर में कितना किया वर्ष भर में कितना किया आदि बातों का स्पष्ट और सुन्दर लेखा उनकी उद्योग-बहियों में देखा जा सकता है। सम्बन्धित शिक्षक समय-समय पर इसकी चौकस देख रेख रखते हैं। अपने काम का मूल्यांकन भी बच्चे स्वयं ही करते हैं जिससे उन्हें अपने काम का अन्दाज हो जाता है।

उद्योग की सभी आवश्यक व्यवस्था बच्चे ही करते हैं। सफाई सजावट, साधनों की दुरुस्ती साधनों की व्यवस्था लेन देन का हिसाब आदि कार्य वे प्रत्यक्ष अपनी रुचि और जिम्मेदारी से करके सहज ज्ञान प्राप्त करते हैं।

आश्रम की सामूहिक प्रार्थना मे छोटे-बडे सभी को उपस्थित रहना और अपने-अपने काम का विवरण देना जरूरी होता है। बच्चे भी जितना काम करते है, शाम को प्रार्थना मे बताते हैं।

कताई बुनाई चूँकि मुख्य उद्योग है—यही यहाँ का शिक्षाधार है, इस कारण कक्षागत प्रगति पर भी इसका प्रभाव पडता है। ५० प्रतिशत प्राप्तांक पाने पर ही छात्र उत्तीर्ण माने जाते है तथा उद्योग मे उत्तीर्ण होना जरूरी होता है।

शाला की प्रार्थना के बाद का यह 'उद्योगवाला घटा' मन्दिर का दूसरा घंटा होता है। बच्चे उद्योग मे रत रहते है, अतः उन्हें प्रेरित करते रहने के लिए समयानुकूल मनोरंजन की व्यवस्था की जाती है। वर्षाकाल मे, जब उद्योग की अन्य प्रक्रियाएँ नही हो पाती, तो दो घटे की कताई ही नित्य चलती है, तब ऋग्वेद के मत्र बोले जाते है —

"तन्तु तन्वन् रजसो भानुमन्विहि
ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धिया कृतान्।
अनुल्वण वयत जोगुवामपो
मनुर्भव जनया दैव्य जनम्।" (१०-५३-६)

"सूत बनाकर उस पर रग चढाओ। उसको खराब न करते हुए कपड़े बुनो। विचारशील बनो। सुप्रजा निर्माण करो। तेजस्वियो की बुद्धि द्वारा निश्चित हुए मार्गों का रक्षण करो। यह कवियो का ही काम है।"

इन मत्रो को सब बच्चे दुहराते हैं और फिर कताई प्रारम्भ होती है। यह कताई पूरे दो घटे के लिए होती है। पहला घंटा मौन कताई का रहता है। मनन-चिन्तनपूर्वक पूरी गति से काम करना ही इस घंटे का मुख्य लक्ष्य होता है। इस पहले घटे मे मनन चिन्तन को पोषण देने के लिए प्रेरक साहित्य का वाचन होता है। कताई-बुनाई के बारे मे गाधीजी के विचार, विनोबाजी के विचार, ऋग्वेद के विचार तथा विविध ग्रन्थो मे से अवतरण पढे जाते हैं। गांधीजी कहते हैं—"कातो, समझबूझकर कातो।" वेद कहता है—"मा तन्तुश्छेदि वयतो धियं मे, मा मात्रा शार्यपस पुर ऋतो.।" (२-२८-५) "मैं बुद्धिपूर्वक कपड़ा बुनता हूँ। मेरा सूत न टूटे। समय के पूर्व कार्य का परिणाम क्षीण न हो।" इस बुद्धि से उद्योग का काम करना चाहिए। विनोबा कहते हैं—"स्व-देशी का ही प्रयोग होना चाहिए। स्वावलम्बन ही आधार होना चाहिए। स्वदेशी और स्वावलम्बन के बिना स्वस्थ जीवन की कल्पना कैसी ?" वेद कहता

है—"स्वदेशी कपडा (वप निर्मिज) पहननेवाला वीर, आत्माभिमानी, दानशील और तेजस्वी होता है। स्वावलम्बन के आधार पर जीवन बितानेवाला महद्‌बल को जानता है। 'यो विद्यात् सूत्रम् विततम् सूत्रम् सूत्रस्य च, सविद्यात् ब्राह्मणम् महत्।' गाधीजी ने सूत कातने को यज्ञ कहा है। वेद भी इसे 'यज्ञ' ही कहता है। उद्योग करानेवाला शिक्षक इस यज्ञ का अध्वर्यु (होता) होता है और उद्योग करनेवाला उसका यजमान। वेद का यह मत्र देखिये —'यो यज्ञो विश्वत तन्तुभि तत एकशतम् देवकर्मभिरायत । इमे वयन्ति पितरो य आययु प्र वयाप वयत्यासते तते।"—' जो यज्ञ तन्तुओ द्वारा फैलाया गया है, एक से एक दिव्यकर्ताओ द्वारा विस्तृत किया गया है उसके ये रक्षक (शिक्षक) ताने के साथ बैठते हैं और कहते हैं आगे बुनो और पीछे का ठीक करो।' और इस प्रकार एक-से एक प्रेरक वाचन चलता रहता है। इसके बाद बच्चे अपनी मौन साधना भजन धुन के साथ पूर्ण कर दूसरे घटे की कताई करते हैं। अत मे राष्ट्रीय घोषो के साथ बच्चे अपने इस सूत्रयज्ञ की पूर्णाहुति करते हैं।

वर्षाकाल मे अधिक कताई के पीछे एक विशेष हेतु भी है। स्वावलम्बन की सिद्धि के लिए यह हेतु काफी उपादेय है। यह परपरा कायम की गयी है कि इस यज्ञ के प्रेरक राष्ट्रपिता महात्मा गाधीजी की जन्म-ग्रन्थि-सख्या के अनुसार ही अगली जन्मतिथि से उतने ही दिन पूर्व से सघन कताई की जाय। यदि सन् '६८ मे गाधीजी की १०० वीं जयन्ती पडेगी, तो जयन्ती दिवस २ अक्तूबर से २०० दिन पूर्व से ही सघन कताई हो और यह सघन कताई स्वावलम्बन की सिद्धि में बडी सहायक होती है। प्राय सघन कताई के दिनो मे ही इतना सूत कत जाता है कि आगे यदि कताई न भी हो तो कोई खास चिन्ता नही रहती। और प्रत्यक्ष अनुभव भी यही मिला है कि बच्चे कताई के लक्ष्य प्राय इन्हीं दिनो मे पूर्ण कर लेते हैं। इसी कारण बाकी दिनो मे कताई नही करके या कम करके उसकी अन्य प्रक्रियाओ मे अधिक जोर लगाते हैं।

पुन जयन्ती-वर्ष-सख्या के मान से उतने घटो का अखण्ड सूत्रयज्ञ भी आयोजित किया जाता है। कते सूत का कपडा बच्चो को दिया जाता है।

अन्य मौसम मे कपास की बोआई चुनाई से लेकर बुनाई तक का सारा काम होता है। कताई पर जोर नही दिया जाता, क्योंकि पहले ही इस पर जोर दिया जा चुका होता है। इन दिनो सामान्य रूप से जितनी कताई सहज ही हो जाती है वही काफी मान ली जाती है। गति और गुण विकास की दृष्टि से कताई को अन्य प्रक्रियाओ—कपास की सफाई, ओटाई, तुनाई, धुनाई, पुनाई,

बुनाई पर विशेष जोर दिया जाता है। उद्योग के प्रारम्भ मे "ओम् सह नाववतु, सह नौ भुनक्तु, सहवीर्यम् करवावहै। तेजस्वि नावधीतमस्तु, मा विद्विषावहै। ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।" मंत्र अवश्य ही बोला जाता है।

हर छात्र की कक्षानुसार लक्ष्य-तालिका, गति-तालिका और कार्य-तालिका सुन्दर अक्षरो मे लिखकर उद्योग-कक्ष मे लटका दी जाती है। बच्चों को निरन्तर उत्साहित करते रहने के लिए और काम मे मजगता कायम रखने के लिए आवश्यक जानकारी और सूचनाएँ अलग-अलग फलको पर लिखकर वहाँ टँगी होती हैं। जैसे—'शान्त और एकाग्रचित्त होकर काम कीजिए,' 'हमेशा अच्छी बातें सोचिए,' 'निरन्तर अपनी गति बढाइए,' 'कतार में बैठिए,' 'अपना लक्ष्य पूरा कीजिए,' 'ठीक समय पर उपस्थित होइए,' 'स्वस्थ चित्त से कातिए,' 'समझ-बूझकर कातिए,' 'अपने साधन हमेशा साफ और तैयार रखिए,' 'गुण्डियाँ इस प्रकार बनाइए,' 'ओटाई करते समय इन बातो की सावधानी रखिए,' 'अच्छी पूनी इस तरह बनाइए,' 'पोत अच्छा लाने का प्रयत्न कीजिए,' 'अपनी जगह साफ करके ही उठिए,' 'कचरा कचरापेटी मे ही डालिए,' 'इधर-उधर टूटन, पूनी, रुई, या कपास मत फेंकिए,' 'अपना लेखा सदैव तैयार रखिए,' 'लेखा साफ-सुन्दर अक्षरो मे लिखिए' आदि-आदि।

अपने प्रयोग के इन नौ वर्षों मे कुमार मन्दिर ने उद्योग मे कितनी प्रगति की है, इसके लिए सन् १९५९ से अप्रैल १९६८ तक की संलग्न तालिका देखिए—

वर्ष सन्	सफाई वजन किलो मे	ओटाई वजन किलो मे	तुनाई वजन किलो मे	धुनाई वजन किलो में	पुनाई वजन किलो में	कताई गुंडियाँ
१९५९	—	—	—	—	—	५७६
१९६०	१००	८८	—	६	५	१३०४
१९६१	६५	६१	—	४	२५	१४९५
१९६२	७०	६०	—	८	१५	१४१८
१९६३	१५	९	—	—	१०	२२७४
१९६४	१३५	१२३	३	५	५	२१४७
१९६५	११७	६४	२४	५४	७०	२१६१
१९६६	१३२	८९	१४	४	६७	२४३६
१९६७	३११	१८८	७८	८८	८८	२३२८
१९६८	११०	१२२	३०	१६	१५	१६१
कुल	१,०५५	७८४	१४९	१८४	३००	१७,३००

एक शिक्षा-दर्शन की आवश्यकता

डा० त्रिभुवन ओझा

इतना तो सभी शिक्षाशास्त्री मानते हैं कि आज की हमारी शिक्षा सैद्धांतिक ही अधिक है और इसका एकमात्र लक्ष्य है उपाधि प्राप्तकर नौकरियों में लगना। सैद्धान्तिक शिक्षा पुस्तकों की होती है जब कि व्यावहारिक शिक्षा क्रियाशीलनों और नव निर्माण की। व्यावहारिक शिक्षा केवल वही नहीं जो व्यवहार या कार्य द्वारा दी जाय, वरन् सच्चे अर्थों में वह है जो पुनः कार्य-निर्माण में लगे और व्यवहार में उतरे। शिक्षा का व्यावहारिक अथवा बुनियादी दर्शन यही है। इसे एक उदाहरण द्वारा इस प्रकार समझ सकते हैं। विद्यालय से विश्वविद्यालय तक विज्ञान और टेकनोलोजी की शिक्षा सिद्धांत और व्यवहार या प्रयोग द्वारा दी जाती है। अपनी प्रयोगशाला और शिक्षण-शालाओं में विद्यार्थी विविध उपकरणों, सामग्रियों के सहारे वैज्ञानिक और तकनीकी ज्ञान प्राप्त करते हैं। लेकिन सवाल है कि क्या इसके बाद भी वे अपने जीवन में इस ज्ञान का उपयोग निर्माण-कार्य में कर रहे हैं? जब तक इस ज्ञान का भी लक्ष्य नौकरी मात्र ही रहेगा तब तक इसे भी हम व्यावहारिक शिक्षा नहीं कह सकते हैं। आज देश की शिक्षा, चाहे वह मानविकी विषयों की हो या विज्ञान, चिकित्सा, इंजीनीयरिंग की, उसमें व्यावहारिक दर्शन और दृष्टि दोनों का अभाव है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि राष्ट्रीय शिक्षा लक्ष्य-च्युत होती जा रही है। हम जैसे अंधेरे में भटक रहे हैं, निराशा, कुण्ठा, असतोष के शिकार बनकर।

सवाल यह नहीं कि देश में कितने विद्यालय, कॉलेज और विश्वविद्यालय खुले या कितने रुपये किस ढंग से खर्च किये जा रहे हैं। महत्त्व का प्रश्न यह भी नहीं है कि आज की शिक्षा हममें से कितने को रोजी-रोटी और नौकरी देने में समर्थ हुई। मुख्य सवाल तो यह है शिक्षा ने हमारा सर्वांगीण विकास किया या नहीं, जीवन के सम्बन्ध में हमारा दृष्टिकोण बदला या नहीं और अन्ततः इस शिक्षा से श्रम की मर्यादा पहचानने की क्षमता हममें उत्पन्न हुई या नहीं। कृषि-क्षेत्र में खेती, खेतीहर, बीज, मजदूर और उद्योग के क्षेत्र में समस्त साधनों और सम्भावनाओं के बावजूद देश अभी तक आत्म-निर्भर न हो सका तो इसका मुख्य कारण यही है कि इन दोनों क्षेत्रों में लगे हुए लोगों के सम्बन्ध स्वयं आपस में नहीं सुधरे।

खेती या उद्योग के बारे मे और उनमे लगे वर्गों के आपसी सम्बन्धो और शेष सामाजिक व्यवस्था से उनके अतसम्बन्धो के बारे मे एक खास वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण जब तक नहीं आता तब तक न उत्पादन बढ सकता है और न उत्पादक शक्तियो का आधुनिकीकरण ही हो सकता है। यह वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण राष्ट्रीय शिक्षा पर निर्भर करता है और मैं बेझिझक स्वीकार करता हूँ कि आज की शिक्षा हमारे दृष्टिकोणो को बदलने मे बिलकुल असमर्थ रही है। जब तक खेती खेतीहर से नौकरी और नौकरी करनेवाला श्रेष्ठ समझा जायगा तब तक देश का पढा लिखा, नामधारी डाक्टर शिक्षक, शिक्षाशास्त्री, इजीनीयर गाँवो की ओर नही मुड सकता है।

शिक्षा की अव्यावहारिकता का ही अनिवार्य दुष्परिणाम है कि इस देश मे शिक्षितो की बेरोजगारी और एक प्रमुख सवाल हो गयी। शिक्षित लोग गाँवो मे रहकर खेती मे काम करना नहीं चाहते हैं क्योकि उन्हें वैसी शिक्षा तो मिली ही नही है। नौकरियाँ भी रुचि और योग्यता के अनुसार हमेशा नही मिल पाती हैं। फल होता है कि उनमे कुण्ठा, घुटन और असतोष घर करने लगते है और उससे असामाजिक तत्वो—जैसे अनुशासनहीनता हिंसात्मक आन्दोलन का जन्म होता है। इस प्रकार देश की बहुत बडी जनसख्या की योग्यता का उपयोग राष्ट्रीय हितो मे नही हो रहा है।

विद्यार्थियो म व्याप्त अनुशासनहीनता असतोष निराशा और विध्वसक उग्र प्रवृत्तियो का मुख्य कारण उनकी शिक्षा की लक्ष्य हीनता है। वे अपना भविष्य अधकारमय देख रहे है। कहीं से भी उन्हे सहारा, आश्वासन और आलबन मिलने की आशा नही है न सरकार से, न परिवार से, और न समाज से। वे देख रहे है कि बिना पढ़े लिखे आदमी—व्यापारी, ठेकेदार नेता—लाखो कमा लेते हैं तो वे पढे लिखकर क्या करेंगे। शिक्षा समाप्त करने के बाद जीवन मे उनके सामने कोई ठोस कार्य क्रम नही रहता है।

वस्तुत यह स्थिति बहुत दिनो तक नही रह सकती है। यह स्थिति चिन्ताजनक तो है लेकिन परिणाम मे शुभ है। हद से ज्यादा बेकारी हो जाना ही बेकारी का हल होगा। एक कहावत है दर्द का हद से गुजर जाना ही उसकी दवा है। आखिर देश खायगा क्या ? खाने के लिए तो अन्न चाहिए ही। झख मारकर शिक्षितो को श्रम की मर्यादा पहचाननी ही पडेगी और शिक्षा की पुरानी लीक छोड़कर महात्मा गाँधी के बुनियादी शिक्षा के मार्ग को अपनाना पड़ेगा। •

उत्तर प्रदेश में आचार्यकुल

[दिनाक १४-७-६८ को बलिया मे उत्तर प्रदेश के कुछ शिक्षाविदो की गोष्ठी आचार्यकुल की स्थापना के सदर्भ मे विनोबा के सान्निध्य मे हुई। उक्त गोष्ठी की सक्षिप्त कार्यवाही यहाँ प्रस्तुत है।—स०]

प्रारभ मे आचार्यकुल-गोष्ठी के अध्यक्ष-पद के लिए श्री करण भाई ने कानपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति, आचार्य जुगुल किशोर का नाम प्रस्तावित किया। इसके बाद श्री वशीधर श्रीवास्तव ने गोष्ठी मे भाग लेनेवाले उपकुलपतियो, डिग्री कालेज के आचार्यों और अन्य शिक्षाविदो का स्वागत किया और आचार्यकुल की योजना की एक सक्षिप्त जानकारी प्रस्तुत की। आपने आचार्यकुल की सकल्पना के चार मुख्य लक्षण बताये

(१) शासनमुक्त शिक्षा,
(२) दलगत राजनीति-मुक्त शिक्षा,
(३) अध्ययन अध्यापन की सुदृढ नीव,
(४) नैतिक शक्ति के निर्माण द्वारा अशान्ति का शमन।

आपने कहा कि इन्ही चार लक्षणो के चौखटे के भीतर गोष्ठी को आचार्यकुल का निर्माण करना है। लेकिन यह लक्ष्मण-रेखा नही है। विद्वत्-वृन्द इससे बाहर जाकर अपने विचार प्रकट कर सकते हैं।

आचार्य जुगुल किशोर :

आज की परिस्थिति मे शिक्षको को सोचना होगा कि उनका क्या कर्तव्य है। पुराने समय मे शिक्षको का बडा ही ऊँचा स्थान था। परन्तु आज वह स्थान दूषित हो गया है। शिक्षको की मान्यताएँ आज बदल गयी है। आज की जो नयी मान्यताएँ है, उन पर सोचना चाहिए। नयी मान्यताओ को हम अपने जीवन मे दाखिल करें और शिष्यो मे तथा समाज मे इसका प्रचार करें। नयी मान्यताओ के आधार पर ही नया समाज बन सकता है, और दोष दूर किये जा सकते हैं। श्रद्धेय विनोबा ने जिक्र किया है कि शिक्षण-सस्थाएँ शासनमुक्त हो। लेकिन जब तक शासन है, तब तक उससे बिल्कुल मुक्त होना सभव नही लगता। समाज बदल जाय, ग्रामदान के अनुसार सगठन हो, तब शिक्षा शासन-मुक्त हो सकती है और शिक्षक ज्यादा स्वतत्र रूप से काम कर सकते हैं।

आज समाज में शोषण की शक्तियाँ भी बढी हैं। उन्हे भी दूर करना है।

जनशक्ति को बढाने के लिए २० वर्षों मे कुछ भी प्रयत्न नही हुए, लोकतंत्र कमजोर हुआ। अधिकारो की तरफ ज्यादा ध्यान दिया गया है। अब कर्तव्यो की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए। आज शिक्षा बढ रही है, लेकिन साथ ही अशाति भी बढ रही है। इस अशाति और हिंसा को खत्म करना होगा। नये समाज का निर्माण हमारे अन्दर से ही होगा, बाहरी परिस्थितियो से नही।

विनोबा :

मुझे कोई खास लम्बा प्रवचन करने की आवश्यकता नही। इस बारे में कई भाषण कर चुका हूँ बिहार मे। इसकी छोटी सी पुस्तिका बनी है, वह आपको मिली होगी। जिन्हें वह न मिली हो, वे प्राप्त कर सकते हैं।

इसकी कल्पना कैसे उदित हुई, इसका विवरण इस पुस्तिका मे थोडे मे आया है। बिहार मे आचार्यकुल की स्थापना हुई है, यहाँ भी आप स्थापना करना चाहते हैं। अच्छा है। पूरे भारत मे इसकी स्थापना होनी चाहिए।

इसमे छोटे शिक्षक का भी समावेश हो, इस तरह का प्रश्न उठा। इस पर मैंने सोचने की आवश्यकता महसूस की। मैंने सोचा भी है। वह आपके सामने रखता हूँ। 'आचार्य' शब्द शकर, रामानुज आदि के लिए इस्तेमाल हुआ है, लेकिन इससे नीचे सर्वसामान्य शिक्षक के लिए भी 'आचार्य' का इस्तेमाल हुआ है—'मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव।' इस तरह माता और पिता के बाद शिक्षक के लिए 'आचार्य शब्द का इस्तेमाल हुआ। आचार्य कहते हैं कि विद्यार्थियो को हमारे जो सुचरित होंगे, उनकी उपासना करनी है, अन्य की नही। आचार्य हो गये तो गलत काम करते नही, ऐसा नही। अच्छे काम करते हैं, गलत काम भी करते हैं लेकिन अनुकरण अच्छे काम का करना है, जो सर्वमान्य है। गलत काम का अनुकरण नहीं करना है।

तो मैं कह रहा था कि 'आचार्य' शब्द पुराना है, और व्यापक अर्थ में इसका उपयोग हुआ है। इसलिए इसको ही मानना ठीक होगा, 'शिक्षक' शब्द को नहीं। क्योंकि शिक्षक का मतलब तालीम देनेवाला होता है। अंग्रेजी में शिक्षक के लिए 'टीचर' शब्द का इस्तेमाल हुआ। टीचर' यानी 'टीचने' वाला। यह नया शब्द है, बनाया हुआ शब्द है। 'टीचना' यानी सिखाना।

आचार्यकुल गोष्ठी में बोलते हुए विनोबाजी, अध्यक्ष हैं कानपुर
विश्वविद्यालय के उपकुलपति आचार्य जुगल किशोर

अंग्रेजी में दो क्रियाएँ हैं लर्निंग और टीचिंग। हमारे यहाँ किसी भी भाषा में 'टीचिंग' और 'लर्निंग' अलग अलग नहीं है। टीचिंग शब्द है ही नहीं 'लर्निंग ही लर्निंग है। हम शिक्षकों की बिरादरी नहीं बनानी है। शिक्षकों की बिरादरी तो सारा समाज है। आचार्यों की बिरादरी इससे भिन्न है। बिहार में भागलपुर, मुंगेर, मुजफ्फरपुर और पटना यूनिवर्सिटी ने इसे मान्य किया है।

आचार्यकुल की परंपरा बहुत ही उज्ज्वल है। उसकी शक्ति बढ़ानी है। शिक्षा-क्षेत्र में भी यदि 'पार्टीपालिटिक्स' चलेगी—विद्यालय ही इस पार्टी में और उस पार्टी में जाय और इतना नीच चिंतन चले तो हम हीन बनते हैं दीन बनते हैं। पुराने समय में आचार्यों पर किसी का अंकुश चलता ही नहीं था। कृष्ण को गुरु के पास भेजा। (डिग्री की भी जरूरत है न?) गुरु ने उसे एक दरिद्र ब्राह्मण के साथ एक कमरे में रखा। दोनों को जंगल से लकड़ी लाने का काम दे दिया। कहाँ एक राजा का बेटा कहाँ एक गरीब ब्राह्मण का बेटा! यहाँ की शिक्षा पद्धति पर सम्राटों का अंकुश नहीं था। जो गुरु देगा वह शिक्षा। गुरु की सेवा करके बचे समय में शिक्षा। गुरु की वह हैसियत आपको प्राप्त हो सकती है। जिस प्रकार न्याय विभाग शासन से और राजनीति से स्वतंत्र है उसके अंकुश से मुक्त है उसी प्रकार शिक्षा विभाग को भी अलग होना चाहिए। आप राजनीतिज्ञों से कह दें कि वे राजनीति को शिक्षा-संस्थाओं से बाहर करें। बाहर उनके लिए बहुत जगह है। आप पक्षमुक्त राजनीति को मानेंगे। पक्षमुक्त राजनीति ही लोकनीति है। राजनीति का अध्ययन करेंगे राजनीति में पड़ेंगे नहीं।

आचार्यकुल के लिए आप अपने वेतन से कुछ हिस्सा इकट्ठा करें। एक आफिस हो। इस काम के लिए एक आदमी रहे। आप समय-समय पर मिलते रहें। बीच बीच में परिषद् और उपनिषद् करें। जब शिक्षक इकट्ठे होंगे तब वह परिषद् होगी। लेकिन जब नजदीक बैठकर चर्चा करेंगे वह उपनिषद् होगी। उपनिषद् यानी नजदीक बैठकर चर्चा। उसमें लाउड-स्पीकर नहीं होगा। भारत और विश्व में जो समस्याएं पैदा होंगी उन पर आप अपनी एकमत राय दें। जहाँ एकमत न हो उसे चर्चा करके छोड़ दिया जाय। और जिस पर एकमत हो उसे व्यक्त किया जाय।

बाबा ग्रामदान के काम में लगा है। इसमें आपकी सहायता चाहिए। आप गाँव गाँव में जाकर विचार फैलायें। बाबा आचार्यकुल के लिए अपने को जितना अधिकारी मानता है उतना ग्रामदान के लिए नहीं मानता। बाबा बचपन से आज तक अध्ययन ही करता रहा है।

फिर बाबा ने ग्रामदान का काम क्यों उठाया? इसलिए कि यह करुणा काम है। वह नहीं हुआ तो आचार्यकुल भी खतम! अन्न बढ़ा। जब अन्न कम होगा तो कलह होगा भाईचारा खत्म होगा प्रेम नहीं रहेगा। इसीलिए अन्न बढ़ाने का काम बाबा कर रहा है।

बाबा आपको अपनी शक्ति इस काम मे, उतनी देगा जितनी आप चाहेगे।

'तरुण शान्ति-सेना का काम भी इन लोगो ने उठाया है। उसमें उम्र की भी कुछ मर्यादा है। शिक्षक इस काम को कर सकते हैं। आपको इसमे सहयोग देना चाहिए। सबको प्रणाम। जय जगत्।

श्री राजाराम शास्त्री :

विनोबाजी के भाषण से हमे स्फूर्ति मिली। इसमे कोई मतभेद हो नही सकता। समस्या है कि शिक्षा को सरकार से स्वतत्र कैसे कराये ? विनोबाजी ने न्याय से तुलना की। यह तुलना एक हद तक सही है। परतु आज जिस स्थिति मे शिक्षक है उसमे उसका हाथ सरकार को बनाने मे, उससे पैसा लेने मे, शिक्षा पद्धति को लेकर उससे सम्बन्धित होता है। इस स्थिति मे किसी प्रयोग की गुन्जाइश नही रह जाती है। जब तक सरकार की मजूरी नही होती, तब तक कुछ होता नही। मान्यता के आग कुछ चलता नही। विद्यार्थी को धधा चाहिए वह बिना मान्यता के मिलता नही। उसे प्रमाण पत्र चाहिए।

शिक्षा प्रान्तीय विषय है या केन्द्रीय विषय ? केन्द्र को निर्देश देने का अधिकार है, लेकिन लागू करने का अधिकार है राज्य सरकारो को। इस पर स्वय शिक्षा महकमा मे खीचातानी है।

शिक्षा सरकार से मुक्त हो तो सन्देह नही कि शिक्षक का स्तर ऊँचा हो और उसकी प्रतिष्ठा बढे। आज तो शिक्षक पर से विश्वास उठ गया है। परीक्षाओ मे बाहर से निरीक्षक बुलाये जाते है।

श्री रोहित मेहता :

शिक्षा के बारे मे विनोबाजी ने जो मार्गदर्शन हमे दिया, उस पर चर्चा शुरू हुई है। हमे सोचना है कि कैसे हम शिक्षा मे फर्क कर सकते हैं। यदि भारत मे २० वर्ष मे कुछ नही हो सका तो इसका सबसे बडा कारण यह है कि शिक्षा के क्षेत्र म कुछ नही किया गया। शिक्षा के क्षेत्र म जब तक परिवर्तन नही आयगा, तब तक आर्थिक, सामाजिक परिवतन नही आ सकता।

हमे सोचना है कि हम किस दिशा मे जाना है। विनोबाजी की बतायी हुई दिशा मे जाना है या नही ? अगर इसको तय किये बिना समस्याओ व व्यवस्था पर सोचेंगे तो उलझ जायँगे।

हम आचार्यकुल की स्थापना करना चाहते हैं-बिहार और बम्बई के सकल्प पत्र हमारे सामने हैं। दोनो को मिलाकर हमे कुछ दिशा मिलेगी।

लेकिन केवल सकल्प-पत्र से कुछ नही होगा। इसमे 'निगेटिव' कन्टेन्ट है, 'पाजिटिव कन्टेन्ट' चाहिए।

राजनीति और शासन से शिक्षा को तो मुक्त होना ही चाहिए, लेकिन शिक्षा-सस्थाओ के अन्दर के वातावरण को भी राजनीति से मुक्त करना होगा।

जिस समाज मे हम जी रहे है उसमे आचार्यकुल की व्यापक व्याख्या करनी होगी। उपनिषद् मे 'इण्टीग्रेटेड' शिक्षा की चर्चा की गयी है। आज भी हम 'इण्टीग्रेटेड' शिक्षा की बात करते हैं।

विज्ञान और अध्यात्म का आचार्यकुल मे समावेश होना चाहिए—दोनो का मिलाजुला आचार्यकुल। अगर ऐसा नही होगा तो शिक्षा मे हम बहुत आगे नहीं जा सकेंगे। शिक्षा जीवन मे अलग नहीं है। शिक्षा की दृष्टि और जीवन की दृष्टि हम अलग नही कर सकते।

मूल्य-परिवर्तन करना है। कौन करेगा ? आचार्यकुल करेगा, लेकिन वह आचार्यकुल, जो व्यापक होगा।

आज का युग गतिप्रधान है, लेकिन गति के साथ दिशा आवश्यक है। राजनीतिवाले गति दे सकते हैं और आचार्यकुल के द्वारा दिशा मिल सकती है। उत्तर प्रदेश मे आचार्यकुल की स्थापना करके शिक्षा मे परिवर्तन की कोशिश हम करें। लेकिन यह तब सम्भव है, जब विनोबा ने जो दिशा दी है, उस दिशा मे हम काम करें।

बैठक के निर्णय :

१ आचार्यकुल के इस सम्मेलन में एकत्र उपकुलपति, प्राचार्य और शिक्षा-प्रेमी, हम लोग प्रस्ताव करते हैं कि हम उत्तर प्रदेश मे आचार्यकुल की स्थापना करेंगे।

२ 'आचार्यकुल' के लक्ष्यो म हमारी आस्था है। अत उनकी प्राप्ति के लिए हम आचार्यकुल सहिता तैयार कर, तदनुसार आचरण करेंगे।

३. आचार्यकुल के तात्कालिक और दूरगामी कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार करने और उसे कार्यान्वित करने के लिए, प्रादेशिक स्तर पर, नीचे लिखे सदस्यो की एक 'सचालन समिति' प्रस्तावित की जा रही है, जिसे और सदस्यो को मनोनीत करने का अधिकार होगा।

१. आचार्य जुगुल किशोर, उपकुलपति, कानपुर विश्वविद्यालय

(क्रमश)

२ उत्तर प्रदेश के अन्य सभी विश्वविद्यालयों के उपकुलपति
३ आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, वाराणसी
४ श्री रोहित मेहता, वाराणसी
५ डा० वी० चलम्, वाराणसी
६ डा० अनन्तरमन्, वाराणसी
७ आचार्य राममूर्ति, वाराणसी
८ प्रोफेसर उ० आसरानी, लखनऊ
९ श्री रामचन्द्र शुक्ल, लखनऊ
१० प्रोफेसर शीतल प्रसाद, मेरठ
११. श्रीमती शुभदा तैलंग, वाराणसी
१२ श्रीमती लीला शर्मा, वाराणसी
१३ डा० राजनाथ सिंह, वाराणसी
१४ श्री दूधनाथ चतुर्वेदी, वाराणसी
१५ प्रोफेसर सुगत दासगुप्ता, वाराणसी
१६ श्री वशीधर श्रीवास्तव, वाराणसी (संयोजक)

४. फिलहाल इस समिति के कार्यक्रम की रूपरेखा इस प्रकार रहेगी :

(क) समिति अध्यापकों और प्रोफेसरों से मिलकर आचार्यकुल के लक्ष्य और कार्यक्रम के सम्बन्ध में विचार-विनिमय करेगी और संकल्प-पत्र तैयार करेगी।

(ख) छात्रों से मिलकर उनकी समस्याओं पर चर्चा करेगी और उनके सहयोग द्वारा शान्तिपूर्ण ढंग से समस्याओं के निराकरण का प्रयास करेगी।

(ग) शिक्षा-संस्थाओं के अधिकारियों से मिलकर संस्थाओं के वातावरण को परिवर्तित करने के साधना पर विचार विमर्श करेगी।

(घ) आचार्यकुल के तात्कालिक और दूरगामी कार्यक्रम की योजना प्रस्तुत करेगी।

५ चूंकि इस समय विश्वविद्यालयों और डिग्री कालेजों के खुलने के कारण प्रदेश के अधिकांश उपकुलपति और आचार्य सम्मिलन में उपस्थित नहीं हो सके हैं, अतः अक्तूबर, १९६८ में लखनऊ या कानपुर में फिर आचार्यकुल सम्मिलन बुलाया जाय, जिसमें संचालन समिति द्वारा प्रस्तुत तात्कालिक और दूरगामी कार्यक्रमों को अन्तिम रूप दिया जाय। —कृष्णकुमार

'आचार्य-कुल'

इसी अंक में उत्तर प्रदेश के आचार्य कुल की चर्चा छपी है। विनोबाजी के आचार्य कुल पर बिहार में किये गये कई भाषणों का संग्रह 'आचार्य-कुल' नाम की पुस्तिका के रूप में छपा है। यह पुस्तिका हर शिक्षक के हाथ में तो होनी ही चाहिए, शिक्षा में रुचि रखनेवाले लोगों के लिए भी बहुत उपयोगी होगी। इसकी कीमत १ रु० है। आप सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी से इसे प्राप्त कर सकते हैं।

भूल सुधार

'नयी तालीम' के गत जुलाई अंक में छपाई-सम्बन्धी दो अनर्थकारी भूलें हुई हैं।

१ पृष्ठ ५२६ पर शीर्षक 'प्राथमिक शिक्षा के विकेन्द्रीकरण' की जगह 'प्राथमिक शिक्षा मे विकेन्द्रीकरण' होना चाहिए।

२ मुखपृष्ठ पर 'शिक्षक नये समाज का नायक' नामक लेख का उल्लेख किया गया, किन्तु वह लेख उस अंक मे नहीं छप सका। वह लेख इसी अंक मे प्रकाशित हुआ है। इस भूल के लिए हम क्षमाप्रार्थी हैं। —सं०

राष्ट्रभाषा का विकास-राष्ट्रोन्नति का साधन

हिन्दी समिति के कुछ प्रकाशन

१	प्रायोगिक भौतिकी	डा० सेठी और कुलश्रेष्ठ	१२-००
२	पृथ्वी की आयु	डा० महराजनारायण मेहरोत्रा	८-००
३	तारा भौतिकी	डा० निहालकरण सेठी	८-००
४	विमान और वैमानिकी	श्री चमनलाल गुप्त	५ ५०
५	रेडियो सर्विसिंग	श्री रमेशचन्द्र विजय	८-५०
६	प्रकाश और वर्ण	श्री भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव	११-५०
७	रेडार परिचय	डा० विश्वेश्वरदयाल	५-५०
८	यान्त्रिकी	श्री जगतबिहारी सेठ	११-००
९	दूरवीक्षण के सिद्धांत	श्री हरिप्रसाद शर्मा	६ ५०
१०	क्रोमेटोग्राफी	डा० हरिभगवान	५ ५०
११	पौधो का जीवन	श्री नारायणसिंह परिहार	५-००
१२	भौतिक विज्ञान में क्रांति	डा० निहालकरण सेठी	४-५०
१३	शक्ति वर्तमान और भविष्य	श्री एस० पी० गोयल	४-००
१४	उद्योग और रसायन	डा० गोरख प्रसाद	७ ००
१५	तारे और मनुष्य	डा० निहालकरण सेठी	५-५०

कृपया व्यापारिक सुविधाओं के लिए लिखें :—

सचिव, हिन्दी समिति एवं सहायक सूचना-निदेशक
उत्तर प्रदेश शासन, लखनऊ ।

'नयी तालीम' के पाठकों से

'नयी तालीम' के सत्रहवें वर्ष का पहला अंक आपके सामने है। पिछले वर्षों में 'नयी तालीम' की प्रसार-संख्या ५ अंकों तक पहुँची। इसे प्रादेशिक शिक्षा विभाग, शिक्षकों और पाठकों का भरपूर सहयोग, प्यार और सत्कार मिला। परन्तु व्यापक प्रसार के साथ साथ 'नयी तालीम' को खरीदकर पढ़नेवाले पाठकों की तादाद भी उसी अनुपात में नहीं बढ़ी और अधिकांश पाठक इसे पुस्तकालयों और संस्थाओं से प्राप्त करके ही पढ़ते रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि सरकार बदलने के बाद जब उत्तर प्रदेश के शिक्षा विभाग ने 'नयी तालीम' का खरीदना बन्द कर दिया तो पत्रिका की ग्राहक-संख्या एकदम घट गयी और आज उसे घाटा उठाकर चलाना पड़ रहा है।

पिछले वर्ष से हमने 'नयी तालीम' को प्रशिक्षण-संस्थाओं के अध्यापकों और विद्यार्थियों के लिए भी अधिकाधिक उपयोगी बनाने की कोशिश की है। पत्रिका में शिक्षा के माध्यम की समस्या, राजभाषा का प्रश्न, छात्र विक्षोभ और असंतोष, शिक्षा में विकेन्द्रीकरण और शिक्षण की नवीन पद्धतियाँ, आदि विषयों पर लेख निकले हैं। कोठारी-आयोग की संस्तुतियाँ आज के शिक्षा जगत् के बहुचर्चित विषय हैं। उस पर तो हमने 'नयी तालीम' का एक विशेषांक ही निकाल दिया है।

आज 'नयी तालीम' उत्तर प्रदेश में शिक्षा की एकमात्र स्टैण्डर्ड पत्रिका है, और यह शिक्षा के हित में होगा कि आनेवाले वर्षों में इसका नियमित प्रकाशन होता रहे। इसके लिए आवश्यक है कि इसकी वर्तमान ग्राहक संख्या दूनी हो जाय। बिना आप सबके सक्रिय सहयोग के यह कैसे होगा? अतः हमारा निवेदन है कि 'नयी तालीम' का प्रत्येक पाठक एक-एक नया ग्राहक बनाकर 'नयी तालीम' की आर्थिक नींव मजबूत करें।

—सम्पादक

सम्पादक मण्डल
श्री धीरेन्द्र मजूमदार—प्रधान सम्पादक
श्री वशीधर श्रीवास्तव
श्री राममूर्ति

वर्ष १७
अक १
मूल्य ५० पैसे

अनुक्रम

अगस्त '६८

●

निवेदन

- नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा छ रुपये है और एक अक के ५० पैसे।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक-संख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- रचनाओं म व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट सर्व सेवा सघ की ओर से प्रकाशित अमल कुमार बसु, इण्डियन प्रेस प्रा० लि० वाराणसी-२ मे मुद्रित।

पहले से डाक-व्यय दिये बिना भजने की अनुमति प्राप्त
लाइसेंस न० ४६ रजि० स० एल १७२३

आवरण मुद्रक खण्डेलवाल प्रेस एण्ड पब्लिकेशन्स मानमंदिर वाराणसी

भारत का युवक-विद्रोह

लक्ष्यहीन, दिशाहीन

आज ससार का युवक-विद्रोह के पथ पर चल पडा है। विद्रोह है रूढ़ियो के खिलाफ, यथास्थिति-वाद के खिलाफ, उस सत्ता के खिलाफ जिसके हाथ मे शासन है और, युवक की समझ मे, जो उसका इस्तेमाल जन-हित के लिए नही, कुछ रक्षित स्वार्थो की सुरक्षा के लिए कर रहा है। यदि यथास्थिति-वाद को समाज-सम्मत 'दक्षिण मार्ग' कहा जाय तो वाम मार्ग की परिभाषा होगी, यथास्थिति चाहने-वालो के पिटे-पिटाये रास्ते से अलग का रास्ता। भारत मे किसी जमाने के आध्यात्मिक जगत का बदनाम वाम मार्ग भी समाज-सम्मत दक्षिण मार्ग के विरुद्ध विद्रोह ही था जो पथभ्रष्ट होकर सामाजिक अनैतिकता का कारण बना। जो भी हो, वाम मार्ग की दृष्टि अगर समाज के अन्य रुढियो के प्रति विद्रोह है तो उसका मूल्य है और उसे असामाजिक प्रकृति कह कर न तो उसे टालना चाहिए, न घृणा की दृष्टि से देखना चाहिए। यह मानना चाहिए कि ऊपर की सारी अस्त-व्यस्तता के बावजूद उस आन्दोलन के भीतर आशा की एक किरण है। अमेरिका के हिप्पी-आन्दोलन का उदाहरण ले लीजिये। वहाँ का हिप्पी-आन्दोलन अमेरिका के भीषण भौतिकवाद के विरुद्ध एक विद्रोह है, जो

वर्ष : १७
अंक : २

ऊपर से गाजा-चरस और एल० एस० डी० से लिपटा हुआ दिखाई देने पर भी, अपने भीतर अध्यात्म के लिए एक भूख छिपाये है और जो अमेरिका के पूँजीवाद मूलक भौतिकवादी संस्कृति को एक प्रखर चुनौती है। अभी कल के फ्रान्सीसी युवक विद्रोह के पीछे स्पष्टत वामपथी साम्यवादी प्ररणा थी जो आज की दीगाल के यथास्थिति-वादी नीति के विरुद्ध विद्रोह थी। पश्चिम का युवक-विद्रोह यथा-स्थिति-वाद की विरोधी शक्ति का और मानव मूल्यो की रक्षा के लिए लडने का ही दूसरा नाम है। यह विरोध आज के ससार का स्थायी लक्षण हो रहा है—वैसे तो सदा से ही यह सत्य रहा है कि दकियानूसी वृद्ध पीढी के अनमने हाथ से युवक ने शक्ति छीनी है। और किसी भी देश के युवक विद्रोह का लक्ष्य यदि इस प्रकार की शक्ति का छानना है तो उस विद्रोह का सामाजिक मूल्य है और उसकी अवहेलना नही करनी चाहिए।

प्रश्न यह है कि क्या आज के भारत के युवक विद्रोह का यह लक्ष्य है? कोई लक्ष्य है भी या नही? अथवा वह लक्ष्यहीन, दिशाहीन है। अभी पिछले महीने वाराणसी स्थित गाधी विद्या-स्थान मे 'युवक-विद्रोह' पर जो सेमिनार हुआ था उसमे अधिकाश की राय यही थी कि भारतवर्ष मे 'युवक विद्रोह' हुआ ही नही है—कम-से-कम उस अर्थ मे हुआ है जिस अर्थ मे उसकी व्याख्या ऊपर की गयी है। इस सेमिनार का उद्घाटन करते हुए श्री अच्युत पट-वर्धन ने यही राय व्यक्त की। उन्होंने कहा कि हमारे युवक जिन बातो के लिए विद्रोह कर रहे है उनका कोई सामाजिक मूल्य नही है। इन विद्रोहो का लक्ष्य न यथास्थितिवाद का विरोध है और न रूढियो से लडना है। कितने युवक हैं जिन्होंने दहेज की कुप्रथा के विरुद्ध सग-ठित विद्रोह किया है? स्वराज्य के बीस वर्ष बाद भी, कानूनन अपराध घोषित होने के बावजूद भी, आज हरिजनो के प्रति देश मे जो अत्याचार है कितने युवको ने उसके विरुद्ध विद्रोह किया है? एक दिन इस देश मे एक हरिजन युवा जिन्दा जला दिया गया था। उस दिन देश के किस कोने मे युवक विद्रोह हुआ था? कालिजो और विश्वविद्यालयो मे आये दिन छात्राओ का अपहरण होता है। कितने विद्यार्थियो ने इस घटना से क्षुब्ध होकर विद्रोह किया है? भारतवर्ष

मे सामाजिक अन्यायो के विरुद्ध विद्रोह करने का वातावरण ही नही बना है। भारत के युवक-आन्दोलन मे वह प्रवृत्ति ही नही है जिसके कारण लन्दन के युवक 'ऐटम बम्ब' बनाना बन्द करने के लिए विद्रोह की आग मे कूद पडते हैं अथवा अमेरिका के युवक 'वियतनाम' मे युद्ध बन्द करने के लिए न्यूयार्क की सडको पर जुलूस निकालते हैं। आज विद्रोह का अर्थ है मानव-मूल्यों की रक्षा के लिए मानव जाति के अस्तित्व की रक्षा के लिए लडना। इससे कम का लक्ष्य रखनेवाले को 'विद्रोही' की सज्ञा नही दी जा सकती।

राजस्थान के सेवा-मुक्त शिक्षा निदेशक श्री जान ने भी कहा कि भारतीय छात्रो के विद्रोह का लक्ष्य इतना सकीर्ण रहा है कि उस विक्षोभ के विस्फोट को विद्रोह की सज्ञा नही देना चाहिए। कभी उन्होंने केवल इसलिए विद्रोह किया है कि उनके विद्यालय के कैन्टीन मे समोसे का आकार कुछ छोटा हो गया था। कभी उन्होने सिनेमा का रेट घटाने के लिए आगजनी और लूटपाट की है। उनकी सामूहिक कार्य-विमुखता और उपद्रव को 'विद्रोह' की सज्ञा देना ठीक नही है। अग्रेजी हटाओ के लिए अथवा हिन्दी बचाओ के लिए सडको पर निकलकर ट्राम और बसों को जलाना भी ऐसा ही उपद्रव है, जिसे किसी लक्ष्य से प्रेरित होकर सगठित विद्रोह समझना भूल होगी। परन्तु इस भूल से भी अधिक भूल यह हो रही है कि लोग इस उपद्रव को विश्व के युवक-आन्दोलन के साथ जोडकर उसे सम्मानित बनाने की चेष्टा कर रहे हैं। विद्यार्थियो ने अबतक जो कुछ किया है उससे उनको क्रान्ति का अग्रदूत मानना ठीक नही होगा।

परन्तु सेमिनार मे भाग लेनेवाले कुछ ऐसे लोग भी थे जिन्होंने कहा कि अगर यह मान लिया जाय कि यथास्थितिवाद के विरुद्ध काम करके 'प्रतिष्ठान' पर चोट पहुँचाना ही 'विद्रोह' है तो छात्रो के आन्दोलनो के जो भी कारण रहे हो, वे ऊपर से कितने ही छिछले क्यो न दिखाई देते हो, अप्रत्यक्ष रूप से उनमे प्रतिष्ठान को चोट पहुँचाने की भावना अन्तर्निहित रही है। भाषा के आन्दोलन के पीछे भी प्रतिष्ठान को चोट पहुँचाने की भावना ही अन्तर्निहित थी। छात्रो की स्थानीय सकीर्ण माँगो के पीछे क्या यथास्थितिवाद को

बदलने की चेष्टा नही है। विद्यार्थी जब केवल इसलिए विद्रोह करता है कि उसके छात्रावास मे सुविधाओ की कमी है अथवा उसकी सस्था के खुलने और बन्द होने के समय मे परिवर्तन होना चाहिए, तो क्या वह सस्था के प्रशासन मे छात्र का भी हाथ हो—ऐसी माँग करके यथास्थितिवाद का विरोधकर प्रतिष्ठान पर चोट नही करता ? हिन्दी भाषा का आन्दोलन तो स्पष्टत यथास्थितिवाद के विरुद्ध एक आन्दोलन था, प्रतिष्ठान पर एक चोट थी, जिस बात को पीछे डालकर उसे देश को बिखेरनेवाली प्रक्रिया कहकर छोटा दिखलाने की कोशिश की गयी। इससे आन्दोलन का मूल्य नही घटता।

इसलिए जयप्रकाश नारायण ने कहा कि युवक विद्रोह के सम्बन्ध मे जो विचार प्रकट किये गये है वे एकागी है। यह ठीक है कि भारतीय युवक का आन्दोलन जन आन्दोलन का अग नही बना है। यह भी ठीक है कि विद्रोह के लिए कोई 'केन्द्र चाहिए और युवक विद्रोह का कोई केन्द्र नही है। आज के विश्वविद्यालयो और कालेजो के छात्र विभिन्न राजनीतिक दलो मे विभक्त है। इन सस्थाओ म प्रत्येक राजनीतिक पार्टी का एक विद्यार्थी सगठन है जो अपनी राजनीतिक पार्टी के लक्ष्यो से शासित है। इस स्थिति को दूर करना होगा जिससे छात्रो को एक सामान्य मच मिले ऐसा मच जो 'प्रगति का मच हो। आज विद्यार्थियो मे असतोष और क्षोभ है यथास्थितिवाद से और इच्छा है इस यथास्थितिवाद को उलटने की। मैं चाहता हूँ कि इस असतोष और उथल-पुथल से कुछ रचनात्मक तत्त्व निकल जिससे विक्षोभ को एक दिशा मिले—एक लक्ष्य और केन्द्र प्राप्त हो, ताकि नयी पीढी भारतीय समाज के निर्माण के लिए प्रगतिपूर्ण कदम उठा सके।

अस्तु, आज भारत के युवक-समाज मे विक्षोभ है—यह निर्विवाद है। इस विक्षोभ के कारण जो भी हो अपने मूल म वह असामाजिक प्रकृति नही है, और आवश्यकता इस बात की है कि उसे रचनात्मक दिशा दी जाय। आज जिस प्रकार वह बिखरा बिखरा केन्द्रहीन है वैसा ही अगर बना रहा तो वह निष्फल ही होगा। आज का युवक-आदोलन क्रांति की प्रसव पीडा है और अगर वह आज की ही तरह हिंसात्मक बन रहा है तो वह निष्फल नही होगा बल्कि व्यय के रक्तपात का कारण भी बनेगा। —यशोधर श्रीवास्तव

मिलिये काकासाहब कालेलकर से

गुरुशरण

८३ वर्षीय काकासाहब कालेलकर को देखकर स्वाभाविक रूप से प्राचीन ऋषियो का स्मरण हो आता है जो सन्यास धारण कर सर्व जन हिताय समाज का अपना जीवन अर्पित कर दिया करते थे।

काकासाहब अपने यौवन-काल मे ही मोक्ष-साधना के लिए हिमालय जा रहे थे। ऋषिकुल हरिद्वार मे कुछ समय रहे भी थे, पर स्वराज्य की आकाक्षा उन्हे उस समय के हिमालय महात्मा गाधी के पास खीच लायी जिनके साथ रहकर उन्होने स्वतत्रता सग्राम के एक प्रमुख सेनानी के रूप मे अपने जीवन के ३५ स्वर्णिम वर्ष व्यतीत किये और आजादी मिलने के बाद राजसत्ता मे न जाकर गाधीजी की तरह ही जन-शक्ति जाग्रत करने हेतु लोक-शिक्षण के काम मे लग गये और आज भी उसीमें दत्तचित्त हैं। उनका आज का रहन-सहन, व्यक्तित्व और अपार ज्ञान उपनिषदो मे वर्णित ऋषियो-जैसा ही है। उनके व्यक्तित्व में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर और महात्मा गाधी, दोनो के गुण विद्यमान हैं। वे शातिनिकेतन और सेवाग्राम दोनो जगह रहे है और आज उनके व्यावहारिक कार्यक्रमो मे दोनो स्थानो की छाप स्पष्ट रूप मे दिखाई देती है। रवीन्द्र की सास्कृतिक और गाधी की रचनात्मक प्रवृत्ति की विरासत उनके व्यक्तित्व मे एकाकार हो गयी है। अपने बाद विश्व-समन्वय के विचार को फलता-फूलता देखने के लिए जीवन-काल मे ही वे एक सम्मेलन दिल्ली मे बुलाकर अपने साथियो, सहकर्मियो और उन पर श्रद्धा भक्ति रखनेवालो को काम सौंप देनेवाले हैं, जिसकी आर्थिक व्यवस्था एक ट्रस्ट को सौंपकर उसे अपनी पुस्तको की सभी रायल्टी अर्पित कर देने का उनका विचार है।

तेज से चमचमाता चेहरा, लम्बा इकहरा शरीर, बातचीत में अत्यन्त विनम्र।' उनको देखकर, उनकी वाणी सुनकर मन धन्य हो उठा। उस दिन कुछ अमेरिकन पैसिफिस्ट्स (शांतिवादी) एक मूविंग सेमिनार के रूप में भारत में आये हुए थे। वे काका साहब से मिलने आये तो उन्होंने शांति की कुछ विषम समस्याओं पर उनसे खुलकर चर्चा की तो काकासाहब की स्पष्ट वाणी का उन पर तो अमिट प्रभाव पडा ही पर इन पंक्तियों के लेखक को लगा कि एक ऋषि बोल रहा है। उन्होंने मार्टिन लूथर किंग को ईसामसीह के नये रूप की संज्ञा दी और गोरे अमेरिकन्स को ब्लेक पावर आन्दोलन के साथ जुड़ जाने की सलाह दी। रंगभेद के आरोप से तिलमिलाकर जब उन लोगो ने भारत के जातिवाद की ओर अंगुली उठायी तो उन्होंने तड़पकर कहा कि मेरे पाप बताने से आपके पाप नही धुलनेवाले हैं। हमारे यहाँ भारत मे अनेक सामाजिक बुराइयाँ हैं जिनसे मैं इन्कार नही करता, पर आप अपने दोषों को देखें-परखें और हम अपने को, और दोनों उन्हे दूर करें, तभी सारी दुनिया की मानवता का कल्याण होगा। उनके गले जब यह बात उतरती नही दिखी तो उन्होंने जोरदार शब्दो में कहा कि भारतीय राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त बैकवर्ड कमीशन के अध्यक्ष के रूप मे जब मैं दक्षिण गया तो देखा कि वहाँ जन्मजात ईसाइयों और पिछड़ी जातियो, जैसे—आदिवासी, हरिजन आदि से धर्मान्तर हुए ईसाइयों के बीच बडा भेदभाव है। उनके गिरजे अलग, खानपान अलग और तो और, दोनो के श्मशान अलग! अब बताइये क्या हमारी निन्दा करने मे ईसाइयों के नाम पर वहाँ चल रहा यह भेद क्षम्य है। काकासाहब की दो टूक सिंह-गर्जनाओं को सुनकर वे सभी अवाक् रह गये। कीनिया देश मे भारतीयों के वहाँ के निवासियो पर अभद्र व्यवहार का जब अमेरिकनों ने जिक्र किया तो उनका स्पष्ट कथन रहा कि यह उन सबको अंग्रेजो ने ही सिखाया है, जिसे अब वे दूसरो पर अमल में ला रहे हैं। पहले का भी गलत था, यह भी गलत है। जरूरत है समस्याओ को जड़ से समझने की, न कि परस्पर निन्दा की।

काका साहब से और ज्यादा-से-ज्यादा जानने की मन मे सहज जिज्ञासा हुई। मैंने उनसे कुछ प्रश्न पूछे, जिनके उत्तर मेरे लिए ही नही बल्कि सबके लिए आज की ज्वलन्त समस्याओं के समाधानकारक कहे जा सकते हैं।

प्रश्न १—गाधीजी के देश मे गाधी का नाम क्यो नही हो पा रहा है ?

उत्तर—गांधीजी के कारण उस समय सारे रचनात्मक कार्यक्रमों में विविधता के बीच एकता का तत्व निहित था जो उनके बाद टूट गया। और, सबको एक समझनेवाला वह काम आज भी नहीं हो रहा है। गांधी के देश में गांधी का काम करनेवालों में आत्मीयता का अभाव सबसे बड़ी विडम्बना है। गांधीजी एक-एक को बुलाकर उसकी कठिनाइयां सुनते थे। आज जिनके पास अधिकार है, अनुदान देने की शक्ति है, कष्ट निवारण की क्षमता है वे बुलाने के बजाय उल्टा चाहते हैं कि लोग दौड़-दौड़कर उनके पास जायें और आर्थिक सहायता की याचना करें। सब रचनात्मक संस्थाओं का सम्मिलित चिन्तन करनेवाला कोई नहीं रहा, इसलिए उस महात्मा की माला के मनके उसीके देश में एक-एक कर टूटकर बिखर रहे हैं?

प्रश्न २—राष्ट्रभाषा प्रचार के बारे में आज आपकी क्या राय है।

उत्तर—लोग मानते हैं कि राष्ट्रभाषा प्रचार ही मेरा मुख्य और एकमात्र रचनात्मक कार्य है। यह बात सही नहीं है। मेरा मुख्य और एकमात्र रचनात्मक कार्य जिसके लिए मैंने अपना जीवन अर्पण कर दिया था वह है—राष्ट्रीय शिक्षा। स्वराज्य प्राप्ति के लिए जो क्रान्ति करनी है उसकी तैयारी के अनुरूप राष्ट्र के नवयुवकों को तैयार करना यही थी मेरी राष्ट्रीय शिक्षा की कल्पना। इसी कार्य के लिए मैं उन दिनों लेखन कार्य करता था। दैनिक एवं पाक्षिक समाचारपत्र चलाता था लेकिन मेरे मन में सबसे महत्व का काम राष्ट्रीय शिक्षा का ही था। संस्था मिले तो संस्था के द्वारा यह काम करूँ नहीं तो देश में मुसाफिरी करते हुए लोक सम्पर्क साधूं। लोगों से बातचीत करूँ और लोकशिक्षण तथा लोकक्रान्ति का कार्य करूँ यह थी इस काम के पीछे मेरी भावना।

गांधीजी ने मुझे राष्ट्रीय एकता मजबूत करने को और स्वदेशी संस्कृति के विकास के लिए राष्ट्रभाषा का कार्य सिर पर लेने को कहा। यह कार्य मुझसे लेने का विचार उनके मन में बहुत पहले ही था, लेकिन राष्ट्रीय शिक्षा के द्वारा यह जितना हो सके उतना ही लेने का उन्होंने तय किया था। विद्यापीठ का काम छोड़ा तब राष्ट्रभाषा का काम उन्होंने मेरे सिर पर डाल दिया, उसके साथ भारत की सब भाषाओं के विकास का काम आ ही जाता था। हिंदू मुस्लिम एकता का अर्थ हरगिज यह नहीं था कि ईसाई, यहूदी,

पारसी ग्रादि ग्र य धम समाजो को तरफ हम उपे ा रखें । भावनात्मक एकता यह शब्द जवाहरलाल नेहरू ने बाद मे चलाया, लेकिन चीज गाधीजी की ही थी।

ग्रब मैं देखता हूँ कि भावनात्मक एकता, समाज सुधार ग्रौर धम सस्करण का सब बातें विश्व-सम वय मे ग्राती हैं। केवल भाषाग्रो को चर्चा करने से लोग मूल ग्रौर व्यापक उद्देश्य समझ नहीं सकते हैं। इसलिए भाषा के सवाल को मैंने सास्कृतिक ग्रौर ग्राध्यात्मिक रूप देकर उसे नया नाम दिया है—विश्व समन्वय। गाधीजी के ग्राश्रम म जो ११ व्रतो की उपासना थी उसमे एक महत्त्व का व्रत था सवधर्म समभाव। सवधम समभाव उत्कट होने पर सर्वधर्म समभाव ग्रा ही जाता है ग्रौर भारतीय धम को व रना मे भारतीय सस्कृति तो ग्रा ही जाती है इसलिए विश्व समन्वय के नाम से ग्रब मैं काम कर रहा हूँ।

प्रश्न ३—ग्रापको इस काम मे ग्रान द की ग्रनुभूति कैसी हुई ?

उत्तर—मैंने ग्रपने जीवन मे कभी ग्रानन्द ढूँढा ही नहीं। ग्रगर मिला तो कृतज्ञतापूर्वक उसे ले लिया। जब देश की प्रगति रुक जाती है ग्रथवा सावजनिक जीवन मे ग्रनिष्ट तत्त्व बढने लगते हैं तब दु ख होना स्वाभाविक है। लेकिन मेरे दीघ ग्रायुष्य मे मैंने राष्ट्र की प्रगति म इतने सकट ग्रौर उतार चढाव देखे हैं कि मैं कभी निराश नहीं होता। ग्रौर ग्राजकल की स्थिति देखकर लोग जितने घबराये हुए है उतना मैं घबराया हुग्रा नहीं हूँ। पुराने दोष जो दबे हुए थे बाहर ग्राये हैं, इसलिए राष्ट्र के मानस को जोरो का ग्राघात हो रहा है। मेरा विश्वास है कि इस ग्राघात के ग्र त म हमारी पुराण प्रियता ग्रौर जडता टूट जायगी ग्रौर भारतीय सस्कृति भूतकाल की बहुत-सी भली बुरी दोनों प्रकार की चाजें छोडकर नवसस्कृति का निर्माण करेगी।

इस विश्वास से मेरा उत्साह कायम है। कुछ बढ भी रहा है ग्रौर भविष्य की योजनाएँ दिमाग मे बन रही हैं इसमे ग्रान द का तत्त्व कितना है यह देखने का काम मेरा नहीं है।

प्रश्न ४—इस काय मे ग्रापका लीडरशिप रोल कैसा रहा ?

उत्तर— लीडरशिप रोल के बारे में न मैंने कभी सोचा है ग्रौर न सोचने वाला हूँ। यह प्रश्न मेरे मन मे उठता ही नहीं। मैं ग्रास्तिक हूँ। सद्विचार ग्रौर सत्काय ईश्वर की चीज हैं। उनका ग्रसर यथासमय होता ही है। ईश्वर ही सनातन 'लीडर' है। •

संस्कृतियों के समावेश में शिक्षण का एक महत्वपूर्ण प्रयोग

सरला देवी

आजकल की "छोटी" दुनिया मे मनुष्य की विभिन्न स्तर की संस्कृतियो का समावेश कैसे हो, यह सरकारो तथा शिक्षको के सामने एक मुख्य सवाल है। कुछ वैज्ञानिको का मत है कि आदिवासियो की सस्कृति वनो मे सुरक्षित रहनी चाहिए, वही पर विकसित होनी चाहिए। औरो का विचार है कि आदिवासियो की सस्कृति को मिटाकर वर्तमान प्रचलित पाश्चात्य सभ्यता की स्थापना होनी चाहिए। यह सवाल ऐसा है कि बबूल के पेड पर आम की कलम लगायी जाय या उसे बबूल ही, कि तु स्वस्थ बबूल, बनने का मौका दिया जाय ?

आदिवासियो की सास्कृतिक भूमिका म अन्तर है। इसलिए अक्सर यह पाया जाता है कि बुद्धि के उत्तम होने पर भी ये आधुनिक शिक्षा मे, विशेषत. पढने लिखने मे, पिछड जाते हैं। और अपनी इस असफलता के कारण निराशा, असन्तोष तथा रग भेद और रग सघर्ष की वृत्तियो म फँस जाते हैं।

भारत मे भी आदिवासी-समस्या जटिल है। सूरत जिले म कार्यकर्ताओ ने इस समस्या का एक अच्छा समाधान खोज लिया है। वे आदिवासियो को ठेकेदारो के शोषण से बचाकर खुद वन के उत्पादनो का व्यापार करने और उन्हें ही पक्के माल बनाने का अवसर देते हैं। अपने ही जीवन के लिए अनुकूल शिक्षा प्राप्त करने का भी प्रबन्ध यहाँ है, इसलिए यहाँ के आदिवासी खुद अपनी स्वाभाविक विकास की जिम्मेवारी उठाते हैं। ऐसे प्रयोग सही ढग से व्यापक पैमाने पर चलने चाहिए। इस सम्बन्ध मे सरकारी प्रयोग दूसरे ढग से चलते हैं। सरकार आदिवासियो को वही परम्परागत पढने लिखने की शिक्षा देने की कोशिश करती है, जो आजकल सब जगह प्रचलित है। इसके फलस्वरूप, जो आदिवासी बच्चे सरकारी शिक्षा प्राप्त करते हैं, वे आगे जाकर

न "आरण्यक सभ्यता"—मे जम पाते हैं, न चपरासी तथा अन्य छोटी-मोटी नौकरियाँ पाकर "नागरिक सभ्यता" मे अपना अच्छा स्थान बनाकर सतोष का जीवन व्यतीत कर पाते हैं। यह आदिवासियो पर एक प्रकार का अन्याय है। यदि सरकार उन्हे 'आरण्यक सभ्यता' से विस्थापित करना चाहती है तो उसे एक ऐसी नीति अपनी चाहिए, जिससे आदिवासी वर्तमान गाँवो मे या नगरो मे अपने लिए उचित और सुसस्कृत स्थान पा सकें। परन्तु उन्हे अपने ही वातावरण मे रखकर पश्चिमी शिक्षा देना बबूल मे आम की कलम लगाना है।

इस सदर्भ मे सिल्विया ऐश्टन वार्नर' का "शिक्षक" नामक पुस्तक काफी दिलचस्प है। इसमे वह एक महत्वपूर्ण प्रयोग का वर्णन करती है, जिसमे उसने सिर्फ न्यूजीलैंड के "मावरी" आदिवासियो का ही समावेश करने का प्रयत्न नही किया, अपितु प्राथमिक शिक्षा के दृष्टिकोण से भी कुछ बहुत महत्वपूर्ण प्रयोग किये हैं।

मावरी अपने "पा" (गाँव) मे रहते हैं। वे लोग पाश्चात्य सभ्यता के सम्पर्क मे आये हुए हैं, अग्रेजी बोलते हैं, पश्चिमी वस्त्र पहिनते है, नौकरी इत्यादि करते हैं, लेकिन अभी तक उनके जीवन मे व्यवस्था और अनुशासन नही आया है। वे काफी झगडालू और क्रोधी होते हैं, शराब भी काफी पीते हैं। इसका यह अर्थ हुआ कि शिक्षा के कारण बदली हुई परिस्थितियो मे भी उनकी भीतरी वृत्तियो मे परिवर्तन नही हो पाया है।

एक सही शिक्षिका के नाते लेखिका ने अपने विद्यार्थियो को पूरी कठिनाइयो को समझा है। उसने समझा है कि उनकी बुद्धि मे कोई कमी नहीं है, लेकिन जीवन की बुनियाद बिलकुल भिन्न होने के कारण उनका विकास नही हो पाता है। जो शिक्षा उन्हे दी जाती है उस शिक्षा मे उन्हे कोई वास्तविकता या अर्थ नही दीखता है इसलिए उस शिक्षा म उन्हें दिलचस्पी और श्रद्धा नहीं होती है। वर्ग के अनुशासन को वे नही मान पाते, और पुस्तको की सामग्री मे उन्हे किसी प्रकार की दिलचस्पी नही होती। उनकी कठिनाइयो पर लेखिका ने उनके समाधान के लिए प्रयोग किया है।

१—जब गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर से पूछा गया था, क्या भारत सभ्यता नागरिक सभ्यता है या ग्रामीण सभ्यता? तो उन्होने उत्तर दिया, "वह आरण्यक सभ्यता" है।

सर्वप्रथम उन्होंने अनुशासन को अपनी ही व्याख्या की है। अनुशासन का अर्थ यह नहीं है कि बच्चे दिन भर अपनी कक्षा में सुव्यवस्थित ढंग से चुपचाप बैठें। "अनुशासन" का अर्थ यह है कि आप जिस वक्त आवश्यक समझें उसी समय बच्चों पर नियंत्रण रख सकें। वह लिखती है— "बच्चे अपने-अपने ढंग से अपने अपने कामों में लगे हैं। रेत में खेल रहे हैं, या मिट्टी के खिलौने बना रहे हैं या लिखने-पढ़ने में लगे हैं, लेकिन जब मैं उनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करना चाहती हूँ तो पियानो पर एक निश्चित राग बजाती हूँ—वह राग जिसके द्वारा प्रसिद्ध संगीतज्ञ बेठोवन ने अपने श्रोताओं का ध्यान अपनी ओर खींच लिया था। उसी संगीत में मैं अपनी पूरी कला लगाती हूँ। याने शुरू से ही बच्चों की सही रुचि पर विश्वास करती हूँ। धीरे धीरे कमरे में एकदम आश्चर्यजनक शान्ति हो जाती है। उसी समय मैं जो कुछ सूचना देनी होती है देती हूँ और बच्चे प्रेम और शान्ति से बहुत अच्छी तरह मेरी बात सुनते हैं।

उसकी पढ़ाई की पद्धति भी निराली है। उसे विश्वास था कि बच्चे तब पढ़ेंगे जब शब्दावली का मौलिक मेल उनके दैनिक जीवन के साथ होगा। लेकिन इस प्रकार की पुस्तकें आज कहाँ मिलती हैं? अत सुबह को, प्रथम वर्ग में, वह एक-एक बच्चे को अपने पास बुलाकर उससे पूछती है कि आज वह कौन-सा शब्द पढ़ना चाहता है? शिक्षिका उस शब्द को एक मजबूत कार्ड पर लिखकर, लिखते समय बच्चे से दोहरवाती है और बच्चे का नाम कोने में भी लिखती है। फिर वह बच्चा उस पर अपनी ऊँगली फिराकर पढ़ता है। वह अपना कार्ड घर भी ले जाता है, और दूसरे दिन सुबह उसे वापस लाता है। वह सबके कार्ड मिलाती है। बच्चा अपने पुराने कार्डों को निकालकर उन्हें पढ़ता है और एक नया कार्ड भी पाता है। बच्चे एक-दूसरे को सुनते-सुनाते भी हैं। शुरू से ही वे शब्द को ही पढ़ते हैं। उन्हें अक्षरों का ज्ञान पहले नहीं दिया जाता।

इस पद्धति में लेखिका को दो-तीन बातों का अनुभव हुआ है। एक, सबसे ज्यादा शब्द जो बच्चे पढ़ना चाहते थे, वे या तो "भय" से या "प्रेम" से सम्बन्धित थे। लड़कों का झुकाव ज्यादातर वाहन या शस्त्रों के शब्दों की ओर था, लड़कियों का घरेलू बातों की ओर। निम्नलिखित शब्द प्रधान होते थे।

भय सम्बन्धित: माँ, बाबा, भूत, डर, जगली सुअर, पुलिस, मकडी, कुत्ता, मगर, जेल, साड, मारना, कुकडो, चिल्लाना, पीटना, तोडना, लडना, गर्जना, रोना।

प्रेम से सम्बन्धित —प्रेम करना हाको (मावरी नृत्य) नाचना प्यारी, एकसाथ मैं और-तुम गाना।

वाहन : जेट, जीप, हवाई जहाज रेलगाडी कार, ट्रक ट्रलर, बस।

अन्य . मकान पाठशाला, माजे मेढक अखरोट मूँगफली दलिया, तस्वीर ताडी।

इस शब्दावली से बच्चो की मानसिक परिस्थिति और उथल पुथल की एक बहुत साफ झलक मिलती है और उसीको लेकर शिक्षा के पूरे ढाँचे की बात वह कहती है। फिर भी अपनी किताबो मे उन शब्दो का प्रयोग करने मे उसने सिर्फ हिम्मत की ही आवश्यकता नही बल्कि यथास्थिति के विरुद्ध दृढता की भी आवश्यकता महसूस की है।

इस प्रकार बच्चो की मनोदशा समझने से फौरन समझ मे आता है कि क्यो साधारण पढने की सामग्री मे वे दिलचस्पी नही लेते। उनकी अचेतन मन स्थिति के साथ पाठ्यवस्तु का कोई सम्पर्क ही नही था। जो शब्द उनकी दैनिक परिस्थिति स निकलते हैं उनके अचेतन मन की गुत्थियो को सुलझाने मे सहायक होते है। लेखिका परेशान होकर पूछती है— क्या जेनट और जौन कभी नही ठोकर खाते थे कभी नही गिरते थे ? क्या उनकी मा कभी उन्हें प्यारी कहकर गोद मे लेकर चूमती नही हैं ? क्या जौन हमेशा अपनी माँ की बात को मानता है ? क्या उसे कभी भी किसी बात मे डर नही लगता है ? क्या अमेरिका मे मौसम हमेशा सुहावना ही रहता है ? क्या वहाँ तूफान कभी नही होता है ? हमारे बच्चे डरते भी है प्रेम भी करते हैं लडते भी है मारते भी हैं। इन सभ्य पुस्तको मे यह सब दब जाता है और इनकी स्वाभाविक वृत्तियो की उपेक्षा होती है। इसलिए साहित्य मे बच्चो की सही रुचि का निर्माण नही हो पाता है और बाद मे वे मजाकिया और कुत्सित पुस्तको के सिवा कभी किसी दूसरे ढग की अच्छी पुस्तक को हाथ मे उठाते नही हैं ?'

यह सारा विचार लेखिका को बच्चो की प्रारंभिक चित्रकला का अध्ययन करने से आया। उन्होने पाया कि न्यूजीलैंड के लडके हमेशा कुछ वाहनों की तस्वीर बनाते हैं। लडकियाँ घर की तस्वीर बनाती हैं। टोंगा मे बच्चे पेडो की तस्वीर बनाते हैं समोआ के बच्चे गिरिजा की चीन के बच्चे फूल की तस्वीर खीचते हैं। यह चित्र ही उनकी प्रथम लिपि है जो उनके जीवन

से जीवंत सम्पर्क रखती है। याने उन्हें एक बुनियादी शब्दावली मिलनी चाहिए जो बाह्य दर्शन के बनिस्बत भीतरी दर्शन को प्रकट करे।

पाँच वर्ष के बच्चों के मन से दो धाराएं निकलती हैं एक सृजनात्मक दूसरी नकारात्मक। यदि हम सृजनात्मक प्रकटीकरण को प्रोत्साहन देते रहेंगे तो नकारात्मक प्रवृत्तियाँ अपने आप कमजोर होती जायेंगी। बच्चों के पढ़ने में उनके लिए प्रथम शब्दों का ज्वलन्त अर्थ होता है। यदि इन शब्दों के माध्यम से उन्हें पढ़ना सिखाया जायेगा तो बाद में भी वे पढ़ने में रस लेंगे और पढ़ने की आदत स्वाभाविक भी हो जायेगी।

लिखने में बच्चे पहले बुनियादी शब्दावली का ही प्रयोग करते हैं। जब उन्हें लगभग चालीस शब्द आ जाते हैं तो ये छोटे छोटे वाक्य भी लिखने लगते हैं।

आमतौर पर तीन वर्ष में भी माओरी बच्चे आगे बढ़ने के लिए पूरे तयार नहीं होते थे लेकिन इस पद्धति से उनके बच्चे दो साल के अन्त में पूरी तरह तयार होने लगे। पाँच साल की उम्र से ही लिखने में उनकी *व्यक्तिगत शैली प्रकट होने लगी और सात साल के बच्चे अनुभव या कहानी* इत्यादि के एक-दो प्रश्न मजे से लिखने लगे। बच्चे अपने पारिवारिक या घर के जीवन के बारे में जो कुछ भी लिखते थे उनकी शिक्षिका इस पर कभी कोई नैतिक रंग नहीं चढ़ाती थी। झगड़े पुलिस जेल नाजायज बच्चे शराब वेश्यावृत्ति सबके बारे में बच्चे खुले दिल से अपना अनुभव लिखते थे क्योंकि ये बातें उनके जीवन की मुख्य सामग्री थी। अपनी टीचर के प्रेम में ये उनकी वृत्तियों से मुक्त होकर अनजाने में नये जीवन मूल्यों की ओर बढ़ते थे।

इस शिक्षण में प्रकृति का सम्पर्क भी एक मुख्य वृत्ति थी। दोपहर को बच्चे खेलते थे। पत्तियों और पखुड़ियों की संख्या गिनने से गणित के प्रारंभिक पाठ होते थे। स्वागत होता था—गाना कुत्ता बिल्ला चिड़ियाँ इत्यादि निमंत्रित अतिथियों का। पौधों के विकास का अध्ययन होता था। नाच-गाना बराबर चलता रहता था—बच्चे अपने अपने नये नृत्यों का आविष्कार करते थे। कभी-कभी बच्चे मौन भी रहते थे। लेकिन ज्यादातर कमरे में हल्ला-गुल्ला और अव्यवस्था का राज्य रहता था। तथापि वास्तव में वहाँ अव्यवस्था नहीं थी बच्चे सब अपने अपने निजी कामों में बहुत व्यस्त और सुव्यवस्थित रहते थे। ये अपनी शिक्षा में सिर्फ लिखने-पढ़ने में आनन्द नहीं पा रहे थे। लेकिन अनजाने में वे दो संस्कृतियों के बीच के मार्ग पर

एक महत्वपूर्ण अन्वेषण यात्रा कर रहे थे। पुस्तक के चित्रो से स्पष्ट दिखाई देता है कि यह अन्वेषण यात्रा सबके लिए कितनी आनददायी यात्रा थी।

सिल्विया वानर ने इस महत्वपूर्ण प्रयोग मे अपने जीवन के लगभग बीस वर्ष बडी निष्ठा से व्यतीत किये थे। बच्चो की लिखी हुई पुस्तको तथा कहानियो के आधार पर वह अपनी पाठ्यपुस्तक बनाती गयी। लाखो कोशिशों के बावजूद उन्हे कभी सन्तोष नही होता था कि ये पुस्तके वास्तव में बच्चो के लिए जीवन्त हैं। शिक्षा के अधिकारी उनके इस अव्यवस्थित तथा अनुशासनहीन पद्धति को पसन्द नही करते थे। लेकिन आखिर म एक शिक्षा अधिकारी निकले जिन्होंने उनके प्रयोग का महत्व समझा। उन्होने उनकी किताबो को एक नये ढग के टाइपराइटर से टाइप करवाया जिसका टाइप बच्चो की किताबो के लायक था। लेखिका बहुत खुश हुई। हालाँकि वह बच्चो की किताबो म बहुत ज्यादा तस्वीर पसन्द नही करती थी फिर भी उनमे तस्वीर भी अच्छी बनी। ६ ६ प्रतियाँ निकाली गयी थी। वे भी धीरे धीरे फट गयी। फिर किताबो को छापने का सवाल आया। उन्होने एक नया सेट बनाकर शिक्षा विभाग को द दिया। लकिन छपाई मे देरी होती गयी बहाने पर बहाने चलते रहे। जब आखिर मे उन्होने कहा कि यदि आप छपवानेवाले नही है तो कम-से-कम मुझे वापस दीजिये तो उत्तर मिला कि गलती से किताबें जला दी गयी है।

उन्होने फिर एक बार अपने मन से किताब बनाने की कोशिश की। लेकिन अब वह वृद्ध हो गयी थी इसलिए उन्होने किताबो को छापने का विचार छोड दिया।

अपने अनुभवो पर आधारित शिक्षक नामक पुस्तक लिखकर उन्होने सात वर्ष तक न्यूजीलैंड मे उसे छपवाने का प्रयत्न किया यह सोचकर कि यह छोटा टापू हमारा परिवार है यहाँ के अनुभव यहाँ पर ही छपने चाहिए और सवप्रथम यहाँ के शिक्षकों को उसका लाभ मिलना चाहिए। लेकिन सात साल की टालमटोल के बाद उन्होने एक अमेरिकी मित्र का आग्रह स्वीकार किया और उन्हे अपने देश मे इस पुस्तक को छपवाने की अनुमति दी।

वास्तव में अपने ही देश मे पैगम्बर की स्तुति कभी होती नही है। और किसी भी क्षेत्र म क्रान्तिकारी प्रयोग करने के लिए हम जनता और सरकार की आलोचना और विरोध को झेलने की तैयारी होनी चाहिए।•

पुस्तकालय-विकास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

पुस्तकालय का महत्व : प्राचीन काल से अर्वाचीन काल तक

तारकेश्वर प्रसाद सिंह
पुस्तकालय अधीक्षक, बिहार

भारत वर्ष शिक्षा मे मानव-सभ्यता का एक प्राचीनतम जन्म स्थान रहा। हजारो वर्ष पूर्व हमने बौद्धिक क्रियाकलापो की एक परम्परा कायम की थी। यहाँ बडे चिन्तक एव दार्शनिक पैदा हुए थे। वेद उपनिषद् का यहाँ जन्म हुआ। बडे बडे ऋषि महर्षियो ने अपने चिन्तनशील विचारो को पत्थर के चट्टान, कांस, ताम्रपत्र, भोजपत्र, ताड के पत्ते, वृक्ष की छाल आदि पर लिख छोडे हैं। जैसे-जैसे इन हस्तलिखित विचारो को विश्व के सामने लाया जाता है, वैसे वैसे ससार प्राचीन ऋषियो के विचारो से प्रभावित होता जा रहा है। विदेश के पुस्तकालयो मे इस प्रकार के बहुत से हस्तलिखित प्राचीनतम ग्रन्थ पाये जाते हैं। मैने डेनमार्क के राजकीय पुस्तकालय मे एक पृथक् विभाग पाया, जिसमे प्राचीनतम देशो जैसे भारतवर्ष, मिश्र, मध्य एशिया, चीन आदि के प्राचीनतम ग्रन्थ सुरक्षित हैं। इस विभाग के पुस्तकाध्यक्ष १८ भाषाओ के ज्ञाता थे। इस तरह दुनिया और विशेषकर एशिया के देश मानव सभ्यता की देन के लिए भारतवर्ष के ऋणी हैं।

प्राचीनतम ग्रन्थों की रक्षा हो

विदेशी आक्रमणों के कारण भारतवर्ष से प्राचीनतम ग्रन्थ केन्द्र छिन्न भिन्न हो गये। आज भी भारतवर्ष का कोई ऐसा गाँव नहीं है जिसमे अमीर उमरा, ब्राह्मण आदि के परिवार म हस्तलिखित ग्रन्थ न पाये जाते हों। इन्ही ग्रन्थों को बाहर के विदेशी विशेषकर मिशनरी लोग मुहमाँगे दाम पर खरीदकर अपने देशों म भेज रहे हैं। हमलोग इन ग्रन्थों का महत्व नहीं समझते हैं। कारण यह है कि भारतवर्ष मे राष्ट्रीय स्वार्थ से व्यक्तिगत स्वार्थ की प्रधानता बढ गयी है। हम अपनी प्राचीन सभ्यता की समझदारी रखने की प्रवृत्ति का विकास नहीं कर पाये हैं। इसलिए हमलोगों का देश विदेशी सभ्यता की मृग तृष्णा का ओर बढता जा रहा है। यह देश के लिए खतरे की बात है। यदि कोई देश अपनी प्राचीन सभ्यता म परिपक्वता प्राप्त करने के पहले अन्य देशों की नकल करना चाहता है तो उसकी हालत वही होती है जो हस के पर लगने वाले कौवे की हुई थी। अत सचमुच मे हम यदि सभ्य बनना चाहते हैं तो पहले हमे अपनी सभ्यता का पूरा ज्ञान होना चाहिए। इसके लिए भारत के गाँवो मे जो प्राचीन सभ्यता के स्रोत हस्तलिखित ग्रन्थ पडे हैं उनका सग्रह विभिन्न पुस्तकालयों मे होना चाहिए। शोधकर्ता विद्वत्मडली उन ग्रन्थों का अध्ययन कर वर्तमान सन्दर्भ मे भारतवर्ष की सभ्यता की नयी रूपरेखा होनी चाहिए उसको देश के सामने लायें।

अत वर्तमान युग मे भारतवर्ष के पुस्तकालय के दो काम होते है—प्रथम प्राचीन से लेकर अर्वाचीन तक हस्तलिखित पुस्तकों का सग्रह करना द्वितीय गाँवो में इन पुस्तकों पर आधारित पुराने एव नये विचारों का प्रचार करना। इसके लिए हम अपने देश के केन्द्रों के ऐतिहासिक पहलुओं का अध्ययन करेंगे।

बुद्ध-युग के पूर्व ज्ञान ऋषि महर्षियों तक सीमित था। ये ऋषि महर्षि गुफाओं एव कुटियों मे रहते थे। उन जमाने म न तो मुद्रणकला का आविष्कार हुआ था और न कागज आदि का। आ ममात्र प्रकाशन की भाषा इतनी परिपुष्ट और परिपक्व भी नहीं हो पायी थी। अत ऋषि मुनि आत्मचिन्तन के बाद अपने विचारों को गुफाओं की चट्टानों पर ताम्र भोज एव ताड पत्र पर तथा चित्रलिपि या टूटे फूटे अक्षरों मे लिख छोडते थे।

प्राचीन आलेख मानव सभ्यता का स्रोत

भारतवर्ष जैसा मिश्र भी एक प्राचीन सभ्यता का देश है। मैंने मिश्र की राजधानी कैरो के अजायबघरों मे इस तरह के बहुत से आलेख देखे हैं। इन

प्राचीन आलेखो को मानव सभ्यता का एक बहुत बड़ा स्रोत समझा जा रहा है। कहना न होगा कि आधुनिक वैज्ञानिक एवं दार्शनिक विचारों का उद्गम स्रोत य आलेख ही हैं। भारतवर्ष में भगवान बुद्ध का प्रादुर्भाव हुआ। भगवान बुद्ध ने अपने धर्म प्रचार के लिए शिष्य मण्डली का विकास किया। इस शिष्य मण्डली ने जगह जगह पर विद्या केन्द्र बनाये। विद्या केन्द्रों में भगवान बुद्ध के उपदेशों के संग्रहालय भी बनाये गये। य संग्रहालय वर्तमान युग के पुस्तकालय जैसे चलते थे। हस्तलिखित ग्रन्थों को बहुत सावधानी से तैयार किया जाता था। उनको मठ राजा महाराजाओं के महल एवं धनी लोगो के घरों में सुरक्षित किया जाता था। ईसा से पूर्व छठवीं शताब्दी में तक्षशिला विद्या का एक मशहूर केन्द्र था। समस्त भारतवर्ष से विद्यार्थी वेद, व्याकरण दर्शन उपनिषद् के विशेष अध्ययन के लिए आते थे। इस तरह तक्षशिला में एक बहुत बड़ा विश्वविद्यालय था। इस विश्वविद्यालय म विभिन्न विषयों के हस्तलिखित ग्रन्थों का एक बहुत बड़ा संग्रहालय था। यह विश्वविद्यालय ईसामसीह के मरने के बाद २८० वर्षों तक चलता रहा, किन्तु बाहरी विदेशी आक्रमणों से तक्षशिला विश्वविद्यालय छिन्न भिन्न हो गया।

प्राचीन पुस्तकालय

फिर भी बौद्धिक मठों में बड़े-बड़े पुस्तकालय बने रहे। जगत टीला नालन्दा उर्द तपुरी बाल भी जैसे मठो म बहुमूल्य पुस्तकों के पुस्तकालय थे। इनमे नालन्दा का पुस्तकालय साज-सज्जा से परिपूर्ण था। नालन्दा का पुस्तकालय एक विशाल क्षेत्र में बना हुआ था। इसमे रत्नागार रत्न सागर और रत्नदधि नाम के तीन विशाल भवन थे। रत्नसागर में नौ मंजिले मकान थे। इस पुस्तकालय म सूत्र तथा तान्त्रिक पुस्तकें सुरक्षित थीं। यह मठ १२ वीं शताब्दी तक बना रहा। इसके अतिरिक्त विक्रमशीला, जगवाल, मगध में विहार, काश्मीर म 'जयेन्द्र, पंजाब में विचनापट्टी, विजनौर जिले में 'महीपुरा, कर्नाल के पास 'भद्रा, आन्ध्र प्रदेश मे 'हिरणाव' और अमरावती क मठों में पुस्तकालय थे। राजा भोज के समय म सरस्वती मंदिर म एक बहुत विशाल पुस्तकालय था। संस्कृत एवं प्राकृत भाषाओं में जैनमंदिरों में काम्बे म ३० हजार हस्तलिखित ग्रन्थ पाये थे। तंजोर म १२ हजार ग्रन्थ पाये है। यह ऐतिहासिक तथ्य है कि राजा वस्तुपाल ने तीन बडे बडे पुस्तकालयों की स्थापना की थी जिनमें १८ करोड रुपये लगे थे।

इस तरह प्राचीन भारत पुस्तकालय क्षेत्र मे अपने गौरवपूर्ण अतीत पर अभिमान कर सकता है। जसे जसे बडे बडे राजा और महाराजाओ के राज समाप्त होते गये वैसे-वैसे सांस्कृतिक क्रियाकलाप भी खतम होते गये। मुसलमानो के आगमन से हिंदू संस्कृति का ह्रास हुआ। और अंग्रेजो के आने से उसी तरह हिंदू मिश्रित हिंदू-मुस्लिम सभ्यता का भी ह्रास हुआ। फिर भी बहुत कुछ अवशेष रह गया है जिसकी पृष्ठभूमि पर सांस्कृतिक उत्थान किया जा सकता है। पुस्तकालय इस काम मे बडी सहायता कर सकते है।

मुगलकाल मे भी बहुत बडे-बडे पुस्तकालयो का निर्माण हुआ था। सम्राट हुमायूं ने आगरे के किले मे राजकीय पुस्तकालय का निर्माण किया था और लालबेग को उसका पुस्तकाध्यक्ष बनाया था। सम्राट अकबर ने भी हस्तलिखित ग्रंथो का लालकिले मे एक पुस्तकालय का निर्माण किया जिसमे २४ हजार हस्तलिखित ग्रंथ थे और जिसकी कीमत ६½ करोड रुपये थी। इस पुस्तकालय का पुस्तकाध्यक्ष उस समय के फारसी के प्रसिद्ध विद्वान फैजी रख गये। टीपू सुल्तान ने यूरोपीय भाषाओ की बहुत सी पुस्तको का एक पुस्तकालय बनाया था। इस प्रकार प्राय सभी मुस्लिम राजाओ के समय पुस्तकालय के निर्माण पर ध्यान दिया गया था।

जनता पुस्तकालय का अभाव

हिंदू राजाओ द्वारा भी बहुत-से पुस्तकालय खोले गये थे। सन् १६२४ मे जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह ने ज्योतिष विद्या पर एक पुस्तकालय का निर्माण किया था। महाराजा रणजीत सिंह ने पंजाब मे एक पुस्तकालय का निर्माण किया था और उस समय के प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता मुंशी सुखावत राय पुस्तकाध्यक्ष बनाये गये थे। उस युग के मराठा सम्राटो द्वारा निर्मित तंजौर मे सरस्वती महल पुस्तकालय आज भी मौजूद है। इस पुस्तकालय मे देवनागरी, तेलुगु, मलयालम, बंगाली, पंजाबी, कश्मीरी और उड़िया अक्षरो मे २० हजार हस्तलिखित ग्रंथ मौजूद हैं। इसमे करीब ८००० ग्रंथ ताड के पत्तो पर हैं। सन् १८१० तक भारतवर्ष मे मुद्रण कला का अभाव रहा इसलिए बहुत से पुस्तकालय मुद्रित वस्तुओ के अभाव मे नहीं खुले। प्राचीन पुस्तकालयो पर दृष्टिपात करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि पुस्तकालय का निर्माण कतिपय व्यक्तियो से सम्बन्धित रहा है। उनके खोलने के कोई निश्चित तरीके भी नहीं थे। कोई अधिनियम भी नहीं बनाये गये थे जिससे विभिन्न पुस्तकालय नियन्त्रित हो। फलस्वरूप जैसे-तैसे पुस्तकालय खोले गये

में सरकार ने कलकत्ते के पब्लिक लाइब्रेरी को खरीद लिया और उसका नाम 'इम्पीरियल लाइब्रेरी' रखा जो अब नेशनल लाइब्रेरी कहा जाता है। इस पुस्तकालय को सार्वजनिक पुस्तकालय बनाया गया।

पुस्तकालय का स्वर्णयुग

पुस्तकालय के इतिहास में इस प्रकार स्वर्ण युग का प्रारम्भ हुआ। सन् १६१० में महाराजाधिराज शैयाजी राव ने अपने बड़ौदा राज्य में अमेरिका के पुस्तकालयाध्यक्ष, डब्यू० ए० बर्डन की सहायता से सार्वजनिक पुस्तकालय सेवा की एक समग्र योजना बनवायी। इस योजना के अनुसार राज्य में एक राजकीय पुस्तकालय होगा, जिसकी बहुत शाखाएँ होंगी। कुछ शाखाएँ चलती फिरती होंगी जो गाँव गाँव में घूम-घूमकर स्त्री और बच्चों को पुस्तक तथा पत्र पत्रिकाओं के पढ़ने की सुविधा देंगी। इन शाखाओं के साथ अन्य दृश्य-विभाग भी रहेगा जो निरक्षर लोगों में चलचित्र द्वारा ज्ञान की बातें दिखायेगा। बड़ौदा में सन् १६१० में पुस्तकालय विभाग खोला गया। धीरे धीरे बड़ौदा में बहुत से पुस्तकालय खोले गये। उन्हें सुचारु रूप से चलाने के लिए पुस्तकाध्यक्षों के प्रशिक्षण की आवश्यकता महसूस हुई। इसलिए बड़ौदा में सन् १६११ में पुस्तकाध्यक्ष-प्रशिक्षण प्रारम्भ हुआ। सन् १६१२ में पुस्तकालय विज्ञान की एक पत्रिका निकाली गयी। शनैः शनैः देश में पुस्तकालय विज्ञान की पुस्तकें निर्मित होने लगी। केन्द्रीय सरकार ने सन् १६१८ में लाहौर में केन्द्रीय पुस्तकालय सम्मेलन बुलवाया। सन् १६२० में अखिल भारतीय 'पब्लिक लाइब्रेरी एसोसिएशन' निर्मित हुआ। सन् १६२६ में कलकत्ते में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस सम्मेलन के साथ-साथ अखिल भारतीय पुस्तकाध्यक्ष सम्मेलन भी हुआ।

राज्यों की सरकारों ने पुस्तकालय के विकास के लिए समितियों का निर्माण किया। पुस्तकालय के विकास में युनेस्को का बहुत बड़ा हाथ रहा है। प्रथम पंचवर्षीय योजना में देश में पुस्तकालय विकास की एक समग्र योजना बनायी गयी जिसमें राज्य पुस्तकालय, जिला राज्य पुस्तकालय और अनुमंडलीय पुस्तकालयों की व्यवस्था की गयी। दूसरी पंचवर्षीय योजना में पुस्तकालय के प्रशिक्षण पर विशेष जोर दिया गया। तृतीय पंचवर्षीय योजना में केन्द्रीय सरकार ने सिन्हा कमेटी नाम की एक सलाहकार कमेटी बहाल किया। उस समिति ने देश में अगले १५ वर्ष में लाइब्रेरी के विकास की एक समग्र योजना बनायी है। देश में जितने प्रकार के पुस्तकालय हैं— राजकीय पुस्तकालय से लेकर जिला स्तर तक—उनके बीच एक प्रकार का समन्वय होगा। तृतीय पंचवर्षीय योजना में केन्द्रीय सरकार ने ऐसा निर्णय लिया था कि जिस राज्य की जनता पुस्तकालयों से लाभान्वित नहीं होती, उस राज्य में ठीक तरह से राज चलाने में कठिनाई होती है। पुस्तकालयों की बढ़ती हुई संख्या को वैज्ञानिक ढंग से चलाने के लिए देश के विभिन्न भागों में 'सर्टिफिकेट कोर्स' से लेकर 'डाक्टरेट' कोर्स तक की व्यवस्था आज देश में की गयी है।

पुस्तकालय विज्ञान आज एक प्रकार का प्रगतिशील विज्ञान समझा जाता है। इसका बहुत कुछ श्रेय डा॰ रंगनाथन् को ही देना चाहिए। स्वर्गीय प्रधान मंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने इस प्रकार का उद्‌गार व्यक्त किया था कि 'प्रत्येक गाँव में एक पुस्तकालय होना अनिवार्य है।' इस तरह भारतवर्ष में पुस्तकालयों का जाल बिछता जा रहा है। उन पुस्तकालयों को सुचारु रूप से चलाने के लिए केन्द्र एवं राज्य में अधिनियम बनना जरूरी है। जिन राज्यों में अधिनियम बन गये हैं, उन राज्यों में पुस्तकालय ठीक ढंग से चल रहे हैं और जिन राज्यों में अधिनियम अभी नहीं बन पाये हैं उन राज्यों में पुस्तकालय जैसे-तैसे खुल जाते हैं और ठीक ढंग से चलते भी नहीं हैं। अभी तक मद्रास, आन्ध्र, एवं मैसूर में अधिनियम बन चुके हैं। वहाँ लाइब्रेरी योजनापूर्वक चल रही है। जिन राज्यों में अधिनियम नहीं बन पाये हैं उन राज्यों में पुस्तकालय-प्रशासन में अस्तव्यस्तता दीख पड़ती है। पुस्तकालय अधिनियम का उद्देश्य 'पुस्तकालय सम्बन्धी शासन को नियंत्रित करना है जिसमें पुस्तकालय कम पैसे में अधिक प्रभावशाली ढंग से चलें।' कहना न होगा कि प्रत्येक राज्य इस प्रकार के अधिनियम की बात सोच रहा है। •

सकल्प के बोल नित्य बोलने से उसमे निहित भावनाएँ हृदय को स्पर्श करती हैं और तदनुसार आचरण करने के लिए व्यक्ति को प्रेरित करती हैं। क्या बच्चे, क्या बडे, सभी अनायास इस दिशा म गतिमान होते हैं और दान की परपरा को पुष्ट करने मे अपना योग देते है। आज की दुनिया मे छाई हुई विषमताएँ—उसको विविध विधाएँ प्रान्त समाज और राष्ट्र को कमजोर करने मे लगी हैं—यह सकल्प और य उठते कदम उनकी चुनौती को स्वीकार कर उन्ह छिन्न-भिन्न करने को आतुर होते है और आशा बँधाते है कि य उभरते क्षितिज अपने जीवनारम्भ म पहले इन्हे ही मिटायेंगे।

कुमार-मन्दिर मे कताई उद्योग मुख्य है। छोटे बडे सभी को नित्य कातना और कितना कात लिया उसकी जानकारी प्रार्थना सभा मे नित्य ही देनी पडती है। सभी सहज भाव स ऐसा करते है। बच्चो की क्षमता के अनुसार जो उत्पादन होता है, उसीसे अकवार छँटनी करके कपडा बुनवाया जाता है। बच्चो की आवश्यकता के आधार पर कपडा बनवाकर दिया जाता है। कताई का वार्षिक लक्ष्य बच्चो की आवश्यकता के आधार पर बनती है। हरेक को साल भर मे ३ कमीज, ३ बनियान, ३ नेकर, ३ चड्डी, १ तौलिया और १ थैली दी जाती है। वस्त्रो की आवश्यकता के अनुरूप कताई बडे बच्चे तो कर ही लेते हैं—बल्कि अधिक भी कर लेते हैं। छोटे बच्चे पीछे रह जाते हैं। उनमे इतनी क्षमता होती नही कि वे अपनी आवश्यकता के अनुरूप गुडियाँ कात सकें। उनकी कमी बडे बच्चे मिलकर पूरी करते हैं। बडे बच्चो की भावना का थोडा अनुमान आपको हो, इसके लिए नीचे का प्रसग देखिए :—

'गृहपतिजी के सामने छात्र-परिषद् बैठी है। वस्त्रो की आवश्यकता की सूची बन रही है। छोटे बालक श्री हरिसिंहजी की बारी आती है। आवश्यकता तो उन्हे भी है। साल भर के लिए ३ बनियान, ३ कमीज, ३ चड्डी, १ तौलिया, १ थैली के अनुरूप कम से कम ५६ गुडियाँ तो कातनी ही होंगी। यह बालक साल भर मे ५६ गुडियाँ कात नही सकता। क्योकि इतनी क्षमता उसमे है नही। तब क्या इन्हे आवश्यकता के अनुसार कपडे नही मिलेंगे? क्या ये औरो को देखकर तरसते रहेंगे? और क्या बडे बच्चे इन्हे तरसने देंगे? नहीं, ये क्यो तरसगे? (श्री गृहपतिजी बच्चो को समझाते हैं, सहकार और समानता के भाव बच्चो मे जगाते हैं, बडे बच्चे प्रेरित होते हैं) दो बालक श्री जितेन्द्र कुमारजी और श्री वशीलालजी खडे होते हैं और श्री गृहपतिजी से कहते हैं :—'भाईजी, श्री हरिसिंहजी को भी आवश्यकता के

अनुसार कपडे दीजिये। अपनी कताई के अलावा इनकी कताई की पूर्ति हम करेंगे। हम दोनो मिलकर इनकी कमी पूरी कर देगे। हम पहनेंगे और ये क्या तरसेंगे? ऐसा हम नहीं होने देंगे। हम सभी एक समान रहेंगे। और क्या त तब दोनो बच्चे श्री हरिसिहजी की कमी को पूरी कर देते है। श्री हरिसिहजी को भी इन दोनो भाइयो की मदद से काफी प्रेरणा मिली। उनका भी उत्साह बढा—स्वाश्रय की भावना जगी क्षमता का विकास हुआ और ३० गुडियाँ उन्होंने भी कातीं।

परिवार की विशद भावना का विकास यहाँ होता है—हवा और पानी का अनुकूलता इन्हे प्रदान की जाती है।

कुमार मदिर के हर सदस्य—छोटे बडे भाई बहन सभी एक-दूसरे से आदर के साथ व्यवहार करते है। वाणी-सयम को इस व्यवहार में प्रमुखता प्राप्त है। सभी को इस मर्यादा का ध्यान रखना होता है कि उनकी वाणी स्खलनशीलता से बच्चो पर बुरा असर न पडे। बच्चे बडे सभी के लिए यह आवश्यक है कि वे एक दूसरे के नाम के आगे जी लगाकर सबोधित करें। गुरुजन भी छात्रो को नाम मे जी लगाकर आदरपूर्वक बुलावें। जैसे—गौतमजी, विवेककुमारजी रमेशजी आदि। सेवको को भी नाम के साथ जी लगाकर बुलाया जाता है। बहनो के नाम के साथ बहन शब्द लगाकर बुलाने की परपरा बनी है।

बालक भगवान होता है। उनमे निहित देवत्व को आदर देना उसकी प्रतिष्ठा करना उसके सद्गुणो को उभारकर विकास की दिशा देना जरूरी होता है। उनके लिए आदर देने का यह परपरा प्रेरक हो सकती है ऐसा अनुभव आने लगा है।

गुरुजनो को मास्टर साहब प्रिंसिपल महोदय', सर' आदि के विभूषणो से परे रहना पडता है। पारिवारिक भावना को दृढ करने के लिए हर नव नियुक्त कार्यकर्तागण का यहाँ नामकरण होता है। बच्चे उन्हे नाम लेकर न पुकारें धृष्टता और अवज्ञा सिर न उठाएँ इसलिए यह विधि सम्पन्न की जाती है। कार्यकर्ताओ के नाम पारिवारिक रिश्तो पर ही आधारित होते हैं—काकाजी बाबाजी दादाजी बप्पाजी मामाजी नानाजी भाईजी जीजी आदि। बच्चे तो इन नामो से सम्बोधन करते ही है कार्यकर्तागण भी अधिकतर इनका प्रयोग करते हैं। इस नामकरण के कारण वातावरण मे आत्मीयता का माधुर्य घुलता है—हम सब अपने परिवार मे ही हैं— ऐसा

लगता है। और हम सतत् खुले दिल दिमाग से एक दूसरे से चर्चा-परिचर्चा—समस्याओं का निराकरण आदि करते हैं। दूरत्व का किंचित भी बोध नही होता। जब किसी नय कार्यकर्ता का स्वागत तिलक लगाकर किया जाता है और उनका नामकरण होता है, तो बच्चो को कितनी खुशी होती है, उसका अनुमान लगाना कठिन है। वे हर्षोत्फुल्ल हो जाते हैं और उन नये व्यक्ति से मिलकर उनका प्यार प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं, उनकी हर सम्भव सेवा का यत्न करते हैं।

कुमार-मन्दिर की हर जिम्मेदारी प्राय बच्चे ही वहन करते हैं। कक्षा की नायकी से लेकर टोलीनायक तक, छात्रालय की व्यवस्था से लेकर मन्दिर की व्यवस्था तक, सब काम और जिम्मेदारियाँ वे ही वहन करते है। शाला-सभा मे वे महत्वपूर्ण निर्णय लेते हैं—उन्हे अमल म लाते हैं—कठिनाइयो के लिए गुरुजनो से मिलकर समाधान ढूँढते है—आपस मे अनायास उत्पन्न होनेवाले संघर्षों का कारण ढूंढकर उसका शमन सौम्य तरीके से करने का काम बच्चे ही करते हैं। जो समस्या उनसे नही सुलझ पाती, केवल उसी के लिए ही गुरुजनो के पास आते हैं। एक दूसरे की शिकायत करने की वृत्ति अभी समूल नष्ट नही हुई है, लेकिन कम अवश्य हुई है। इस दिशा मे प्रयत्न चलता रहता है।

यह क्षेत्र सस्कार और सभ्यता की दृष्टि से अत्यधिक अविकसित है। औसतन ५-६ प्रतिशत लोग साक्षर हैं। साक्षरो मे भी उनकी ही सख्या अधिक है, जो केवल अपना नाममात्र लिख लेते हैं और मामूली बातें समझ लेते हैं। निरक्षरता के इस कलक को मिटाना आज हर शिक्षितो का प्रमुख दायित्व है। इस दिशा मे मन्दिर के बच्चे और गुरुजन प्रयत्नशील हैं। उनकी टोलियाँ बनती हैं, आवश्यक साधन एकत्रित करते हैं और एक एक गाँव मे एक एक टोली जाती है—कौन-कौन साक्षर हैं, इसकी सूची तैयार करनी है—फिर निरक्षरों को हस्ताक्षर करना सिखाया जाता है। यो, इस काम मे काफी कठिनाइयाँ आती हैं, लेकिन असीम उत्साह के आगे कठिनाइयो की यह चमक फीकी पड जाती है। बच्चे ३-३, ४-४ लोगो का अपना नाम लिखना सिखाते हैं—लिखने की आसान विधि बताते है। क्षेत्र की स्थिति, समाज का मानस और कार्य मे आनेवाली कठिनाइयो का बच्चों को अनुभव होता है। उस सम्बन्ध मे बच्चे प्रश्न करते हैं, गुरुजन उनका उत्तर देते हैं। इस प्रकार प्रश्नोत्तर से ज्ञान बढता है।

बच्चे सभी काम एक-दूसरे के सहयोग के आधार पर करते है। किसी काम के लिए टोली बनती है और टोलीनायक के नेतृत्व मे सभी मिलकर संयुक्त जिम्मेदारी से काम संपादन करते हैं। किसी एक ही बालक पर काम का भार नही पड़ता, जैसा कि आमतौर मे देखा जाता है। सहयोग और सहकार की भावना के कारण काम का दबाव महसूस नही किया जाता और काम तो बस, एक खेल हो जाता है। खेल-खेल मे काम पूरा हो जाता है।

बड़े बच्चे सर्वदा छोटो की मदद करते है। उन्हें हताश होने नही देते। अपना काम कर चुकने पर या कभी कभी करने के पहले भी—अपनी सहज सुविधा से वे छोटो की सहायता करते है। छोटे बच्चे उन बड़े बच्चो की छाया में निरन्तर गतिमान होते हैं—उनसे हो सकनेवाले हर काम मे वे भाग लेते हैं।

प्रतिदिन एक घण्टा देशी खेल होता है। विदेशी खेलो की सुविधा और अनुकूलता न होने से देशी खेलो पर ही जोर दिया जाता है। सुविधानुसार गुरुजन भी खेलो मे भाग लेते है। खेलो मे होड की भावना को तो उभारने का यत्न किया जाता है, लेकिन विद्वेष न बढ़े, संघर्ष की स्थिति न आ जाय, खेल के प्रति उदासीनता की वृत्ति न उभरे, इसलिए बड़ी सतर्कता से खेल खेलाये जाते हैं। हार-जीत की भावना को स्फुरित न होने देने के लिए हर सम्भव कोशिश की जाती है। 'मै जीता, तुम हारे—इसके कारण ही तो विद्वेष फैलता है, संघर्ष होता है, उदासीनता-हीनता बढ़ती है। यहाँ इसको पनपने नही दिया जाता। "बस, खेलना हमारा काम है। शारीरिक स्वस्थता के लिए हम खेलते हैं, स्फूर्ति और सुघड़पन हममे आये, खेलो के नियमों-उपनियमों को हम जानें—इसलिए खेलना है—खेलते हैं—हार-जीत से हमारा कोई मतलब नही होता।' इस भावना को बच्चो के मानस मे विविध उपायो द्वारा उतारा जाता है।

हर साथी और बच्चे इसका आग्रह रखते है कि हमारे साथ रहने वाले पेड़-पौधे, कीड़े मकोड़े, जीव जन्तुओं के साथ हमारा व्यवहार सौम्य हो। ये भी हमारे परिवार के अंग हैं। 'हम इन पौधो को बड़ी आत्मीयता से लगाते हैं—इनकी रक्षा करते हैं—इन्हें अन्न पानी देते हैं, सार सभाल करते हैं, विकास की दिशा मे बढ़ने के लिए हर सुविधाएँ जुटाते हैं, तो उन्हे कोई तकलीफ न हो, इसका भी ख्याल हमे रखना चाहिए"—इस भावबोध के

साथ इनके साथ व्यवहार करते हैं। बच्चों को इसका एहसास कराया जाता है कि पेड़-पौधा के पत्ते तोड़ने से उन्हें कष्ट होता है जैसे कि हमको होता है। ये भी हमारी तरह हँसते रोते गाते हैं। दुख का अनुभव करते हैं श्री जगदीशचन्द्र बसु का परिचय इस प्रसग मे दिया जाता है। उनके अनुसन्धानों का परिचय दिया जाता है। परिवारो मे साँपों बिच्छुओं और चूहों की भरमार है। जहा तक बनता है इनके साथ परिवार के सदस्यों का सा व्यवहार होता है मारा नहीं जाता इन्हें पकड़कर दूर ले जाकर छोड दिया जाता है। गोशाला की गायो और बछडा के साथ आत्मीयता बरती जाती है और स्नेह-दान मिलता है।

छात्र निवास के सामने ही पेडों की कतारें हैं। हर पेड़ के इर्द गिर्द मिट्टी और पत्थरों का ओटला बना है। पेडों की जडों के पास कुछ जगह छोड़ी हुई है। ओटले पर ही बैठकर बच्चे दातुन-कुल्ला करते हैं। दातुन के चीर वहीं पात्र में इकट्ठे किये जाते है। अन्यत्र दातुन करने का निषेध है। जगह जगह थूक पात्र रखे है। इधर-उधर थूकना वर्जित है। नाक का मल भी इधर उधर नहीं गिराया जाता। यदि अचानक गिर गया तो तत्काल मिट्टी से ढक दिया जाता है। जगह जगह पेशाबघर बने हैं। छात्र या अन्य कोई भी आश्रमवासी बाहर मल-मूत्र का त्याग नहीं करते।

मंदिर की ओर से बाल विनोद त्रैमासिक निकलता है जो हस्तलिखित होता है। बच्चे ही इसके सारे काम करते हैं। सम्पादक उपसम्पादक बच्चे ही होते हैं। इसमे लेख कहानियाँ कविताएँ आदि अधिकतर बच्चो की होती हैं। उनकी मनोभावनाओं की दिशा इससे जानी जाती है। बच्चो को प्रोत्साहन मिले इसके लिए गुरुजन भी पत्रिका के अनुरूप प्रेरक रचनाएँ देते हैं। हर बच्चे की रचनाएं उनके अपने अक्षरों में लिखी होती हैं। रंग बिरंगे चित्र अल्पना इसमे दी जाती है। परामर्श और व्यवस्था के लिए एक सम्पादक मण्डल गठित है जिसमे ३ गुरुजन हैं। श्री अनन्त जी इसके प्रबन्ध सम्पादक हैं और श्री भामसिंहजी कक्षा ७ इसके सम्पादक हैं। श्री कुमारी चित्रावती बामनिया सम्पादक की सहायता करती हैं। पत्रिका हर वर्ष १५ अगस्त २ अक्तूबर २६ जनवरी और १८ अप्रैल को प्रकाशित होती है। पत्रिका की रूप सज्जा और चित्र सज्जा के लिए श्री अनन्त जी स्वरूप निर्माण और व्यवस्था करते हैं।

—काली प्रसाद 'आलोक'

युवक विद्रोह की पृष्ठभूमि में

अंधी खाइयाँ और तड़पते फूल

विवेकी राय

मेरे सामने ग्रामीण भारत की तड़पती नयी पीढ़ी है जिसके सामने घना अंधकार है। भविष्य के सपनों के नाम पर घोर निराशा की दाहक चिनगारियाँ हैं। परिस्थितियों के मार से टूटा उल्लास है। अभिशप्त जवानी मर्माहत होकर धूल में लोट रही है। रोजी रोटी और नौकरी का भास्वर शिखर तो बहुत दूर है तलहटी की पास-फेलवाली अंधी खाइयाँ हैं जो अनगिनत शिक्षित नाम से पुकारे जानेवाले युवकों के लाशों से पटी हैं। हाय रे वह शिक्षा जो कोरी नौकरी मात्र दिलाती है। हाय रे वह बेढङ्गा जुआ जिसमें तैंतीस अंक से ऊपर प्राप्त करनेवालों के लिए आफिस के बाबू की कुर्सी है और इससे एक अंक भी कम पानेवाले के लिए सीधे रेल की पटरी और हाय रे वह अच्छी सरकार जो इसे देखते-सुनते भी कथन उपकथन की फाइल मात्र बनती जाती है।

तो शुरू करूँ वह कथा ? मगर कथा तो एक पूरी मंथता है। युवकों के हृदय की वेदनाएँ करुणा के रूप में निकलती हैं। उनकी पीड़ा में तूफान होता है उनकी मर्मवेदना में ज्वालामुखी का सा विस्फोट होता है। उसमें झरने की मरमराहट नहीं बल्कि क्रंदन की सनसनाहट होती है। यह वह आग होती है जो पहाड़ का पेट फाड़कर निर्झर के रूप में वह निकलती है। उसके प्रवाह में पत्थर बह जाते हैं। मेरा दिल जो प्रात दिन भर डावाँडोल रहा सो क्या

आश्चर्य ? कमल के पत्र मे ऐसा ही एक बवण्डर है। कई बार पढ गया। नये खून का हाहाकार कागज से उतरकर चित्त पर चढ गया है। शब्द शब्द अपनी गूँज की चुभन ले कर छा गये। भावो की वे सजल मेघ की तरह पंक्तियाँ बिजली जैसी चमक उठती है।

इस प्रकार कमल के पत्र से ऐसे अबूझ बूझ और अलेख लेख की गूँज निक-लती है कि विचलित कर देती है गाँव का यह शिक्षित युवक क्यो ऐसा है ? क्या वह यह नही जानता है कि उसके देश का नवीन निर्माण होने जा रहा है ? क्या उसे यह पता नही है कि उसके ग्रामीण परिवेश का आपाद मस्तक कायाकल्प होने जा रहा है ? क्या उसे यह पता नही कि पचवर्षीय योजनाओं की तथाकथित सफलताओं से स्वर्णाशा का उल्लास सुरभि का सुयोग मिल-जाना चाहिए ? तब वह क्यों निराश है ? क्या रोता है ? किन्तु मैं इन प्रश्नों के उत्तर के पूर्व यह जानना चाहूँगा कि वह जिन लोगो जानवरो, झोपडियो गदी गलिया, खण्डहर से मकानो, भू-खाने सी बैंसवारियां, टूटी चारपाइयो, काई और सेवार-भरी गडहियो की मेखला कचहरी थानेदार की चर्चाओ, कीचड से विचारो, अज्ञान भरे ज्ञानो और मरी हुई जिन्दगियो के बीच रहता है, उसका क्या ठीक-ठीक पता सबको है ? क्या देश के कर्णधार जानते हैं कि स्वराज्य मिले एक युग बीत जाने पर भी ऐसा तिमिरग्रस्त गांवा का मुल्क है जहाँ अपने देश और राज्य के ज्ञान की कोई हल्की विचार किरण भी नही उपजी ? जहाँ इस तरह की कल्पना कि अपने लिए नही देश के लिए जीना है' की भी नही जा सकती, जहाँ जीवन की सीमा बाल बच्चों तक सीमित है, जहाँ शिक्षा का अर्थ केवल यही है कि बालक स्कूल जा रहा है और फीस लग रही है, जहाँ एक पैसे के नमक की चिन्ता करनेवाले लोग फीस की गहरी रकम चुकाते ऐंठ ऐंठकर रह जाते हैं और सहज ही आशा करते हैं कि बेटा बडा होकर कमायेगा, पढ लिख कर घर भर देगा, उसकी नौकरी लगते ही दिन लौट आयेंगे। बस, आगे कुछ नही। कल्पना की दौड इससे आगे जा ही नही सकती है। उनके आगे भावी पीढी की सिद्धि के दो सोपान है। पहला परीक्षा पास करना और दूसरा नौकरी करना। उन्हे क्या पता कि अभी परीक्षा की ताडका के लिए किसी राम का अवतार नही हुआ और न नौकरी की पूतना के लिए किसी गोकुल बिहारी ने ही जन्म ग्रहण किया है। एक हथकडी है दूसरी बेडी। हर भारतीय ग्राम का विफल शिक्षित नौजवान चोर है। अभिभावको के सामने वह खडा है। सिर झुका है। अभिभावक दाँत पीस

कर कहता है 'आवारा हो गया है'। जवानी इस टिप्पणी को सह नहीं पाती। वह उफनती है उबलती है।

कमल लिखता है—

घनघोर निराशा के बीच जब मैंने किसी प्रकार अपने को सँभाला तो आँखो ने आँसू के दो बूंद गिरा दिये। वे आँसू जिनमें मेरी भूतपूर्व परीक्षा और उसकी विफलता का इतिहास लिख गया। सामने किताब फैली मिली। किताब मे वही पाठ खुला मिला जिसकी पीडा आज एकदम बेचैन कर देती है। बी० ए० के द्वितीय वर्ष म परीक्षा देने मे मुझे पूर्ण आशा थी कि सफलता मिलेगी। इसी बीच दुर्भाग्य ने एक खेल खेला। खेल बडा निष्ठुर और कटु रहा। उसे मैंने सह लिया पर यह आज की पीडा? आह! यह तो एकदम असहनीय है। यह जनरल इगलिश का वही पन्ना क्यो खुला है जिसने मेरे भाग्य के मुख पर कालिख पोत दी। ठीक वही पाठ, ठीक प्रश्न पत्र मे आये हुए प्रश्न का अध्याय। अंग्रेजी के लिखित प्रश्न पत्र के दिन ही उनको मौखिक परीक्षा—लिखित परीक्षा ७ बजे सुबह और मौखिक परीक्षा ७ बजे शाम को। ठीक एक ही प्रश्न। मगर भाग्य? वह तो खेल खेल रहा था। कहने की यह आवश्यकता नही कि मेरी सफलता और असफलता के बीच की दूरी महज १२ घण्टे की थी। वे घण्टे कट गये। दिन कट गये। मास कट गये, परन्तु आज के ये क्षण! ओह, ये तो ब्रह्मा के दिन हो गये। पाठ ब्रह्माण्ड होकर मेरे मस्तिष्क शून्य मे चक्कर काटने लगा। क्या सचमुच जीवन की सफलता का अर्थ था कागज पर विदेशी लिपि और भाषा मे लिखा यह पाठ? हाय रे, योग्यता की परीक्षा लेनेवाला मानव? हाय रे! मेरे भाग्य के डूबते सितारे! आज मेरे सामने एकदम अँधेरा है, रोता अँधेरा है। कही से आवाज आती है कि 'फेल हो गया'। तो खून खौल उठता है। जिनके लिए काला अक्षर भैंस बराबर है उनकी दृष्टि मे मैं 'आवारा हूँ। क्या मैं आवारा हूँ? बताइए कहाँ आवारा हूँ? क्या आवारा इसलिए हूँ कि पढ रहा हूँ। क्या मैं दूध की मक्खी इसलिए हूँ कि पैसे का पेड लिए नही घूम रहा हूँ। क्या मेरी परछाई इसलिए हल्की हो गयी है कि 'पूरब' या 'पश्चिम' गाँव छोडकर नही गया? और न परदेश से लौटकर पडोसियो पर धौंस जमायी, न सिनेमा की अभिनेत्रियो और अभिनेताओ की प्रशंसा की, न 'साले' आदि रोबवाले शहरी शब्द का प्रयोग किया न "बाप" को 'पापा' या "डैडी" कहा, न स्त्री को "मैडम" कहा? लोग मुझे घर से निकलने नही देते। निकल पडूँ भी तो शायद सदा के लिए, दूसरी ओर "फेल" के लिए घर में प्रवेश की आज्ञा नही। साँप

छछुन्दर की गति। कहीं मेरा अध्ययन मेरे इस जन्म की निधि कौडी के मोल की न हो जाय? सोने से तौल तो उसकी होगी जिसके पास प्रमाण-पत्र हैं। बिना प्रमाणपत्र के मैं एक फेल इन्सान 'आवारा' हूँ। जिस परम पिता ने हमें विश्व में भेजा, जिसने मुझे हरियाली के बीच खिलने का अवसर दिया, जिसने मुझे सोने चाँदी-सा चमकाया, तो क्या ये मेरे प्रमाणपत्र नहीं? क्या इसलिए कि उस पर सरकार की मुहर नहीं है? पीडितो के खून के बलिदान का मूल्य कहाँ? पखे के नीचे बैठे इसान की कलम के नोक के नीचे जो स्याही है वही असली प्रमाणपत्र के नम्बरो को सही करती है। तब मैं भी चलूँ। अपने खून को स्याही के रुप में बदल दूँ। पुस्तको को उलट दूँ। पाठो को बन्द कर दूँ। लेकिन यह पाठ बन्द होता नहीं। आँखें मूँद लेने पर भी चमकता है। 'दी गाधियन वे'। कोडे पर कोडे मारकर बेचैन कर देता है। नीचे लेखक की जगह लिखे 'एस०' और 'राधाकृष्णन्' शब्द को काश मेरे आँसू गीले कर देते?"

यह है कमल के पत्र का अश। क्या राष्ट्र के इन युवक आँसुओ को कोई समझ सकता है? मैं देश के कोटि-कोटि तडपते कमलो से कहना चाहता हूँ कि प्रतीक्षा करो। गाँव की अधी खाइयो से उठो। अपने को सम्पूर्ण भाव-सम्पत्ति के साथ राष्ट्र के ऊपर छा जाने दो। भविष्य तुम्हारा है। ●

अक्सर माना जाता है कि लड़कों को जिन्दगी के लिए कुछ जरूरी जानकारी देना और उसे कितनी जानकारी हासिल हुई, इसकी एक बार परीक्षा लेना, यही तालीम की कसौटी है। मगर तालीम की यह कसौटी बिलकुल ही एकांगी है। उसमें बहुत हुआ, तो तर्क-शक्ति की, स्मरण-शक्ति की परीक्षा होती है। लेकिन जिसे हम आत्म विकास कहते हैं, उसकी प्रगति लड़कों में कहाँ तक हुई, इसका उससे पता नहीं लग सकता।

—विनोबा

योजना-पाठ-संकेत

वंशीधर श्रीवास्तव

[गत जुलाई अंक में होली की योजना का पाठ संकेत दिया गया है। प्रस्तुत पाठ संकेत उसी क्रम में है।—स०]

दिनांक	कक्षा	घंटा	समय
	४	५ ६	८० मिनट

योजना —होली का उत्सव मनाना।

उपयोजना —रंगमंच के लिए फूलदान सजाना।

सम्बन्धित विषय —सामान्य विज्ञान।

प्रसंग —फूल के भाग और उसके कार्य।

मुख्य उद्देश्य —

क्रिया सम्बन्धी १ फूलदान में फूलों को विभिन्न क्रमों में सजाने की विधि बताना।

ज्ञान सम्बन्धी २ फूल के भाग और उनके कार्य बताना।

पूर्वज्ञान छात्र विभिन्न प्रकार के फूलों से परिचित हैं।

प्रस्तावना १ बच्चो होली के उपलक्ष में तुम्हारी कक्षा को कौन सा कार्य दिया गया है? (रंगमंच के लिए फूलदान सजाना)

२ फूलदान सजाने के लिए किन किन चीजों की आवश्यकता पड़ेगी? (फूलों और फूलदानों की)

३ फूलदान हम क्यों सजाते हैं? (शोभा बढ़ाने के लिए)

४ रंगमंच के लिए फूलदान तुम किस प्रकार सजाओगी? (समस्या)

उद्देश्य कथन आज हम लोग रंगमंच के लिए फूलदान सजाना सीखेंगे।

प्रस्तुतीकरण छात्राध्यापिका विभिन्न प्रकार के फूलदान छात्रों को दिखा कर प्रश्न करेगी।

१ तुम लोग कितने प्रकार के फूलदान देख रही हो? (लम्बे गोल चपटे तिकोने लटकानेवाले दीवारों पर रखनेवाले जग के आकार के इत्यादि।

२ (छात्राध्यापिका सजे फूलदानो को दिखाकर प्रश्न करेगी) इन फूल-दानो को कितनी तरह सजाया गया है ? (गोलाकार त्रिकोणाकार अडाकार, चद्राकार रूप मे)

३ गोलाकार फूलदान को किस प्रकार सजाया गया है ? (विभिन्न प्रकार के फूलो मे गोलाकार रूप बनाया गया है ?) क्यो ?

४ (लम्बे फूलदान की ओर सकेत करके) इस फूल को किस प्रकार सजाया हुआ देख रहे हो ? (लम्बी डठी के एक रग के फूलो से। क्यो ?)

५ चपट फूलदान को किस प्रकार सजाया गया है ? (गुलाब की छोटी डठीवाली फूलो से। क्यो ?)

६ (त्रिकोणाकार फूलदान की ओर सकेत करके) यह त्रिकोणाकार फूलदान किस प्रकार सजाया गया है ? (असमान कोण बनाते हुए तीन फूल रखे हैं क्यो ?)

उपर्युक्त फूलो से सजे फूलदानो के अतिरिक्त छात्र ध्यापिका विभिन्न प्रकार के अन्य फूलदाना के चित्र भी दिखायेगी जिसे वह रूद्रग्राफ पर चिपकाती जायेगी।

७ (विभिन्न प्रकार के फूलो को दिखा कर) यह फूल किस आकार के हैं ? (लम्बी और छोटी डठीवाल घनी व कम पखुडोवाले इत्यादि।

८ फूलो को सजाते समय जो पखुड़ियाँ गिर जाती है उन्हे तुम लोग कहाँ रखोगी ?

(छात्राध्यापिका बतायेगी कि असुन्दर पखुडियो का उपयोग हम इस प्रकार कर सकते हैं कि एक शीशे के कटोरे मे पानी भरकर उस पर उनको फैला देने से सुदरता बढ जाती है। छात्राध्यापिका करके दिखायेगी)

९ फूल को ताजा रखने के लिए क्या करना चाहिए ? (फूलदान मे पानी भरकर रखना चाहिए।)

आदर्श प्रदर्शन (छात्राध्यापिका बतायेगी कि अब तुम्हें विभिन्न फूल दानो के विषय मे ज्ञान हो गया) अब मैं तुम्हें इस तरह का फूलदान सजाना बताऊँगी। (माडल की ओर सकेत करेगी)।

१ फूलो को छाँटकर लगाना।
२ कलापूर्ण ढग से सजाना।
३ रगो का ध्यान रखना।
४ व्यवस्थित ढग से सजाना।

५ फूलदानों के आकारानुसार फूल सजाना।

६ फूल को बरबाद न करना।

७ फूल ताजा रखने के लिए फूलदान मे पानी भरना।

उपर्युक्त सावधानियो को छात्राध्यापिका श्यामपट्ट पर लिखती जायेगी।

सामग्री वितरण छात्राध्यापिका प्रत्येक बालक को डलिया मे फूल और फूलदान देकर उन्हे सजाने का आदेश देगी।

क्रियाशीलन : छात्र अपनी इच्छानुसार फूल सजायेंगे और साथ ही श्यामपट्ट पर लिखी सावधानियो का ध्यान रखेंगे।

निरीक्षण कार्य छात्राध्यापिका प्रत्येक बालक के पास जाकर देखेगी कि वे फूलों को नष्ट न करें। साथ ही उनके बैठने व कार्य करने का ढग सुधारेगी और आवश्यकतानुसार उनकी सहायता करेगी। कक्षा मे अनुशासन रखेगी।

श्यामपट्ट कार्य · उपर्युक्त सावधानियो को अध्यापिका श्यामपट्ट पर लिखेगी ?

विचार विमर्श छात्रो द्वारा सजाये गये फूलदानो को अध्यापिका सामने रखकर छात्रो से उनकी तुलना करवायेगी। छात्र अपनी त्रुटियाँ स्वय निकालेंगे और विचार विमर्श करेंगे।

सम्बन्धित विषय सामान्य विज्ञान

उद्देश्य कथन अब हमलोग फूल के भाग और उसके कार्य के विषय मे पढेंगे।

प्रस्तुतीकरण अध्यापिका प्रत्येक वालक को डठल सहित फूल देगी और उनसे फूल का निरीक्षण करने को कहेगी।

प्रश्न :

१ फूलो का कौन सा भाग तने से जुडा है ? (सबसे नीचे का डठल-वाला भाग)

२ (डठल की ओर सकत करके) इस भाग को क्या कहते हैं ? (डठल)

३ डठल का क्या काय है ? (फूल को ऊपर उठाये रखना और फल तक खाना पहुँचाना।)

४ डठल के ऊपरी सिरे पर फूल का कौन सा भाग देखती हो ? (छोटी-छोटी हरी पत्तियो का भाग)

५. (पुष्पक्र की ओर सकेत करके) इन छोटी हरी पत्तियो के समूह को क्या कहते हैं ? (पखुडियो या पुष्पक्र)•

६. पुटचक्र का आकार कैसा है ? (कटोरी की तरह)

७. पुटचक्र का क्या कार्य है ? (फूल की रक्षा करना)

८ (दलचक्र की ओर संकेत करके) पुटचक्र के भीतर का भाग किस रंग का है ? (लाल)

९ यह लाल रंगीन सुन्दर भाग क्या कहलाता है ? (पखुडियाँ)

१० पखुडियो के पूरे समूह का क्या नाम है ? (दलचक्र)

११. दलचक्र का क्या कार्य है ? (फूलो के कोमल भागो की रक्षा करना)

१२ दलचक्र का रंग सुन्दर तथा भड़कीला क्यो होता है ? (कीडे इसकी ओर आयें)

१३ (पुकेसर की ओर सकेत करके) यह पतला सूत्र क्या कहलाता है ? (चोटी या पुकेसर)

१४ पुकेसर का क्या कार्य है ? (समस्या) (बीज बनने मे सहायता करेगा)

१५ (स्त्री, केसर की ओर सकेत करके) फूल के सबसे बीच का भाग क्या कहलाता है ? (अध्यापिका छात्रो के न बताने पर बतायेगी यह फूल का मादा भाग स्त्री केसर कहलाता है)

१६. स्त्री-केसर का क्या कार्य है ? (बीज पैदा करना)

फूलों के भाग बताते समय अध्यापिका फूल के भाग का चार्ट दिखायेगी और श्यामपट्ट पर खीचते जायेगी।

पुनरावृत्त प्रश्न

१ फूल के कितने भाग होते हैं ?

२. पुटचक्र का क्या कार्य है ?

३. स्त्रीकेसर क्यो फूल का आवश्यक भाग है ?

श्यामपट्ट-कार्य : छात्रो से प्राप्त उत्तरो को सुधारकर अध्यापिका श्यामपट्ट पर निम्न बातें लिखेगी।

१ फूल के भाग :—१ डठल, २. पुटचक्र, ३. दलचक्र, ४ पुकेसर ५ स्त्रीकेसर।

२. पुटचक्र फूल की रक्षा करता है।

३. स्त्रीकेसर मे बीज तैयार होता है।

लिखित व निरीक्षण कार्य : छात्राध्यापिका कापियो पर श्यामपट्ट से उतारेगी। छात्राध्यापिका उनका निरीक्षण करेगी। उनके बैठने व लिखने का ढग सुधारेगी। •

राजस्थान सरकार की शिक्षा-नीति का श्वेत पत्र

भुवनेशचन्द्र गुप्त

[राजस्थान शिक्षा-विभाग की ओर से आयोजित आबू-सगोष्ठी मे राजस्थान सरकार को 'शिक्षा-नीति-श्वेत पत्र' विचारार्थ प्रस्तुत किया गया था। शिक्षाधिकारियो एवं शिक्षा-विशेषज्ञो ने इसके विविध पहलुओ पर स्वतंत्रतापूर्वक अपने अपने विचार प्रस्तुत किये है। नीचे उसकी रूपरेखा दी जा रही है। सं०]

यह श्वेत पत्र संभवतः एक या दो माह मे राज्य विधान सभा में प्रस्तुत कर दिया जायेगा। इस श्वेत के पारित हो जाने पर शिक्षा-विभाग एवं शिक्षा के अन्य अभिकरणों के उद्देश्य तथा लक्ष्य स्पष्ट एवं स्थिर हो सकेंगे।

श्वेत पत्र के प्रारूप मे छह अध्याय है :—

१—उद्देश्य

२—शिक्षा और जीवन, अर्थात् शिक्षा तत्व

३—शिक्षा के लिए अवसर की समानता

४—शिक्षको की शिक्षा, व्यावसायिक उन्नति और स्तर

५—स्तरोत्तर उन्नति

६—वित्त और प्रशासन

कोठारी आयोग के समान प्रस्तुत राजस्थान के श्वेत पत्र में भी भावी शिक्षा-नीति के निम्नांकित चार लक्ष्य रखे गये है —

१—शिक्षा तथा उत्पादन के मध्य के अन्तर को दूर करना

२—शिक्षा प्राप्त करने का सभी को समान अवसर प्रदान करना

३—शिक्षकों के शैक्षिक स्तर समुन्नत करना

४—शिक्षा के समस्त साधनों को उच्च स्तर प्राप्त कराना

श्वेत पत्र मे निम्नांकित समस्याओ पर प्रकाश डाला गया है :

१—राज्य एवं निजी प्रयत्नों की शिक्षा-क्षेत्र मे क्या भूमिका रहेगी ?

२—इस आधार पर भविष्य मे शिक्षा-तंत्र का क्या रूप होगा ?

इस प्रकार श्वेतपत्र मे विज्ञान, उद्योग, भाषा आदि से उत्पन्न सभी समस्याओ पर विचार किया गया है। यह राज्य की स्थायी नीति की एक रूपरेखा मात्र है। शिक्षा आयोग की संस्तुति के अनुसार शिक्षा सम्बन्धी नियमों मे समन्वय करके उन्हे एक अधिनियम का रूप दिया जाना निश्चित किया गया है।

यह श्वेत पत्र राज्य मे शिक्षा की प्राथमिकताएँ निर्धारित करने का एक आधार है। इसके कुछ महत्वपूर्ण निर्णय निम्नांकित हैं —

१ आज पूर्व प्राथमिक शिक्षा की सुविधाएँ केवल ० ५ प्रतिशत बालको को ही मिल पाती हैं। यह सुविधा भी केवल उन बच्चो को ही मिलती है जो कि नगरो मे रहते हैं और सम्पन्न परिवार के हैं। राज्य की शिक्षा नीति (श्वेत पत्र) के कार्यान्वयन से यह सुविधा बढकर १० प्रतिशत बच्चो को मिल सकेगी और उसमे विपन्न परिवार के बच्चो को स्थान मिल सकेगा।

२ राजस्थान राज्य के छह से सात वर्ष तक की आयु के सभी बच्चो को सन् १९८५ से १९८६ तक पहली कक्षा में प्रवेश पाने की व्यवस्था कर दी जायेगी। इसी आधार पर छह से ग्यारह वर्ष तक की आयु के सभी बच्चे कुछ वर्षों मे प्राथमिक शिक्षा के अन्तर्गत आ सकेंगे।

३ इस समय प्राथमिक तथा माध्यमिक विद्यालयो का अनुपात १ १० का है। श्वेत पत्र में यह अनुपात घटाकर १ . ५ करने का विचार है।

४ श्वेत पत्र मे माध्यमिक विद्यालयों (Secendary School) की संख्या प्रत्येक एक लाख की जनसंख्या पर पाँच कर देने का विचार है।

५ इसके पारित हो जाने पर प्रत्येक जिले मे कम से कम एक महाविद्यालय की स्थापना होगी तथा प्रत्येक महाविद्यालय मे विज्ञान-शिक्षा की

व्यवस्था कर दी जायेगी। महाविद्यालयों मे प्रवेश योग्यता के आधार पर ही हो सकेगा।

६ आध्यात्मिक एव अल्पकालीन शिक्षा की सुविधाएँ बढाने की श्वेत पत्र मे संस्तुति की गयी है।

७ इसमे शिक्षको के वेतन मे सुधार का आश्वासन दिया गया है तथा वेतन-मान अध्यापक की योग्यता एव अनुभव के आधार पर किया जायेगा। इस दृष्टि से प्राथमिक शाला में रहकर भी कोई स्नातकोत्तर शिक्षक वरिष्ठ अध्यापक (Senior Teacher) की वेतन शृङ्खला मे आ सकेगा क्योकि वेतन-मान निर्धारण इस आधार पर नही होगा कि वे किस प्रकार के विद्यालय अध्यापन कार्य करते हैं। इसी प्रकार योग्यता एव अनुभव के आधार पर कोई भी प्रधानाध्यापक अपने विद्यालय मे प्रधानाध्यापक बने रहकर भी निरीक्षक एव उप निर्देशक की वेतन शृङ्खला मे स्थान पा सकेगा।

८ सभी शिक्षको को वेतन शृङ्खला एव वेतन मान मे समानता लाने का निश्चय श्वेत पत्र मे किया है। इस सुविधा का लाभ सरकारी, गैर सरकारी, पचायती एव नगरपरिषद के विद्यालयों मे काम करनेवाले सभी शिक्षकों को सेवा, परिस्थितियों, वेतन शृङ्खलाओं आदि मे समानता लायी जायेगी।

९ शिक्षा-नीति निर्धारण मे शिक्षक का सक्रिय सहयोग प्राप्त करने के लिए अध्यापको के व्यावसायिक सगठनो का प्रोत्साहित करने की नीति अपनायी जायगी।

१० निजी सस्थाओ का शिक्षा की उन्नति के लिए प्रोत्साहित करने के लिए शिक्षक-व्यय पर उन्हे शत प्रतिशत अनुदान तथा अन्य स्वीकृत-व्यय पर कुछ प्रतिशत अनुदान देने की नीति अपनायी जायेगी।

११ निरीक्षण को प्रभावकारी बनाने के लिए उन्हे अधिक अधिकार मिलेगे तथा प्रशासन को दृढ़ करने के लिए राज्य शिक्षा परिषद की स्थापना की जायगी। इस प्रकार शिक्षा विभाग को अधिक दृढ़ किया जायेगा।

१२ शैक्षिक स्तर मे सुधार के लिए पाठ्यक्रम सुधार, सेवारत प्रशिक्षण, स्वायत्तशासी विद्यालयों, विद्यालय सगम आदि कार्य कार्यरूप में परिणत किये जायेंगे।

राजस्थान राज्य का यह श्वेत पत्र शिक्षा का अधिकार-पत्र (Charter) कहा जा सकता है। आज के युग में परिवर्तन बडी तीव्रता से हो रहे हैं, इसके साथ सभी को कदम मिलाकर चलना पडेगा, परन्तु साधनों को

अन्यता एक बडी बाधा है। योजनाबद्ध कार्य से साधना को अनावश्यक बर्बादी नही होती, परन्तु योजना बनाने के पूर्व तात्कालिक एव सुदूर भविष्य की आवश्यकताओ का ज्ञान अवश्य होना चाहिए। धन और जन शक्ति का भी पूर्ण उपयोग इस तरह किया जा सकेगा। इस कार्य के लिए एकाग्रता आवश्यक है। इसके लिए श्वेत पत्र मे सगठित सुयोजित समन्वित, सुबद्ध रूप से सघन प्रयास हो सकेंगे। यह आवश्यक है क्योंकि शिक्षा के दूरगामी प्रभाव होते हैं। अत ऐसे उत्तरदायित्व को वहन करने के लिए शिक्षा जगत मे प्राथमिकताओ एव प्रमुखताओ को स्थिर करना पडेगा, अन्यथा कोई उल्लेखनीय उपलब्धि नही हो सकेगी। राज्य म शिक्षा को प्रमुखताएँ तथा प्राथमिकताएँ तय करने के लिए 'श्वेत पत्र एक आधार-स्तम्भ है। ऐतिहासिक महत्व का यह दस्तावेज शिक्षा के सभी अभिकरणो को इस ओर चलाने मे सहायक होगा।

सुझाव और समीक्षा

(१) शिक्षा-क्षेत्र मे श्वेत पत्र से अधिक महत्वपूर्ण काय करनेवाले लोग हैं। उसकी सफलता असफलता इस बात पर भी निभर करेगी कि शिक्षा क्षेत्र में काय करनेवाले लोग इसे कितनी लगन उत्साह तथा ईमानदारी से क्रियान्वित करते हैं तथा अपेक्षित परिणामो की ओर अग्रसर होने मे योगदान देते हैं। समस्त योजनाओ का लक्ष्य एक ही होता है कि छात्रो की अच्छी शिक्षा—और यदि वही नहीं हुई तो सुधार एव परिवर्तन करने की समस्त योजनाएँ निष्फल हो जाएँगी। श्वेत पत्र मे इस पर भी विचार विस्तार से किया जाना चाहिए था।

(२) आज इस बात की आवश्यकता है कि हम सोचें कि शिक्षा का उद्देश्य नौकरी प्राप्त करना ही न हो। इसी प्रकार बालिकाओ को शिक्षा का क्या रूप होगा? क्योंकि कोठारी आयोग की सस्तुति के अनुसार दोनो को शिक्षा एक समान देने की बात कही गयी है जबकि दोनो के क्षेत्र भी भिन्न भिन्न हैं। श्वेत पत्र में इस पर विस्तार से विचार आवश्यक था।

(३) आज की शिक्षा मे लगनशील, ईमानदार एव सच्चे कार्यकर्ता तभी मिल सकेंगे जबकि भारत को सांस्कृतिक धरोहर अर्थात् जीवन के मूल्यो को बालको को देने का प्रयास हो। गुरु-शिष्य की प्राचीन परम्परा एव सम्बन्ध बनाने का ओर प्रयत्न हो। परन्तु श्वेत पत्र में इस बात पर विशेष ध्यान नहीं गया है।

(४) राजस्थान सरकार की शिक्षा-नीति का श्वेत पत्र राजस्थान की शिक्षा के ढांचे में मूलभूत परिवर्तन करने के उद्देश्य से बनाया गया है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् राज्य में शिक्षा की बहुत प्रगति हुई है, किन्तु इस प्रगति ने शिक्षा की मूलभूत कमियों को और अधिक उभार कर सामने प्रस्तुत कर दिया है। शिक्षा-क्षेत्र मे राजस्थान बहुत पिछड़ा हुआ था। पहले शिक्षा पर डेढ़ करोड़ रुपया प्रतिवर्ष व्यय किया जाता था, अब यह रकम बढ़कर तीस करोड़ रुपये प्रतिवर्ष हो गयी है। परन्तु शिक्षा मे जितना परिवर्तन आना चाहिए था उतना नही आया है। सैकड़ो वर्षों से चली आती हुई पद्धति को बदलना इतना सरल भी नही है। इस प्रकार शिक्षा से जहाँ तक सफलता मिलनी चाहिए थी उतनी नही मिली क्योकि शिक्षा-क्षेत्र की प्राथमिकताएँ अथवा प्रमुखताएँ निर्धारित नही की गयी थी। परन्तु व्यक्ति के चरित्र के बिना कुछ नही हो सकेगा।

(५) आगे आनेवाले वर्षो मे शिक्षा स्तर तथा ढांचे के विकास के लिए चेष्टा करनी पड़ेगी। परन्तु सामाजिक विषमता मिटे बिना ऐसा कैसे होगा। सामाजिक विषमता मिटाने की योजना या विचार पर कुछ सोचा नही गया है।

(६) तीसरे, इसके साथ-साथ उन पिछड़े हुए लोगो को भी साथ मे लेना होगा, जिन्होने अब तक शिक्षा की न्यूनतम सुविधाएँ भी नही पायी हैं। इसलिए भविष्य मे शिक्षा के स्तरीकरण के साथ-साथ उनका नियंत्रित तथा योजनाबद्ध फैलाव भी चलता रहेगा। इस दृष्टि से गाँवो में ऐसे लोगों की संख्या अधिक है। अतः गाँवो मे यह कैसे हो सकेगा इस ओर कोई संकेत नही किया गया है।

(७) आज की परिस्थितियो में पर्याप्त परिवर्तन हो गया है और इन परिवर्तित परिस्थितियो में अध्यापक अपनी जिम्मेवारी सभाल सके, इसके लिए यह आवश्यक है कि अध्यापक योग्य हों एवं पूर्णरूपेण संतुष्ट हो। यदि वे सतुष्ट न हुए तो वह अच्छी तरह से कार्य नहीं कर सकेंगे। राज्य का दायित्व है कि वह अध्यापक की स्थिति सुधारे। निजी संस्थाओ मे आज भी न तो पूरे वेतनमान है और न नियत समय पर उन्हे पैसा मिलता है। उनके स्वाभिमान पर सदा चोट की जाती है। उससे उसकी सुरक्षा का भी नियम हो।

(८) जहाँ राज्य अध्यापक का वेतनमान उठाकर उनकी स्थिति मे सुधार करे, वहाँ अध्यापक को भी यह ध्यान मे रखना चाहिए कि वह कारखाने मे

कार्यशील मजदूर से भिन्न व्यक्ति है। अध्यापक के प्रति सम्मान का भाव किसी सरकारी आज्ञा से नहीं प्राप्त किया जा सकता, वह तो अपने स्वयं के प्रयत्नों से ही प्राप्त किया जा सकता है। इसके लिए अध्यापक को सदा ज्ञानार्जन एवं व्यक्तित्व के विकास के अवसर राज्य सरकार को जुटाने चाहिए। इसे भी श्वेत पत्र में रख लेना चाहिए।

(९) बच्चों का विकास करना अध्यापक का प्रमुख दायित्व है। इस कार्य के लिए अध्यापक को बच्चों के सामने आदर्श प्रस्तुत करने पड़ेंगे क्योंकि बच्चे वही सीखते हैं जो कि वे देखते हैं। आदर्श सुख-सुविधाओं के बीच पले विवशता का क्या मूल्य है ? पत्र के अधीन रहनेवाला अध्यापक बच्चे के सामने क्या आदर्श रख सकेगा ?

(१०) शिक्षा-नीति निर्धारित करने से सम्बन्धित समस्त कार्यों में अध्यापकों को सम्मिलित करना चाहिए। क्योंकि नीति का निर्धारण वे ही लोग करें, जिन्हें इसे कार्यरूप में परिणत करना है। यह कार्य अध्यापक ग्रीष्मावकाश में ही प्रारम्भ करते हैं, जबकि वे आगे आनेवाले सत्र के बारे में विचार करते हैं और अपनी योजना बनाते हैं। अतः अवकाश से तात्पर्य कार्य की समाप्ति न समझा जाय अपितु कार्य के आरम्भ से ही समझा जाना चाहिए। इसके लिए राजस्थान राज्य में भिन्न-भिन्न स्तर पर ग्रीष्मावकाश या शीतकालीन अवकाश संगोष्ठी आयोजित करने की योजना पर विचार श्वेत पत्र में होना चाहिए। अध्यापकों के अध्ययन के लिए सुरम्य स्थानों पर पुस्तकालय एवं रहने की व्यवस्था करनी चाहिए। निश्चित समय पर उसे ऐसे कार्य के लिए छूट का प्रावधान श्वेत पत्र में नहीं है। •

स्कूल ने यदि विद्यार्थियों के प्रति अपना पूरा फर्ज अदा किया होगा, तो १४ वर्ष की उम्र के लड़के सच्चे, निर्मल और तन्दुरुस्त होने चाहिए। वे ग्राम-वृत्ति के होने चाहिए। उनका दिमाग तथा हाथ एक से विकसित होने चाहिए। उनमें छलकपट नहीं होगा। उनकी बुद्धि तीक्ष्ण होगी, पर वे पैसे कमाने की चिन्ता में नहीं पड़ेंगे। जो कुछ प्रामाणिक काम उन्हें मिल जाय, उसे वे कर सकेंगे। वे शहर में जाना नहीं चाहेंगे। वे स्कूल में सहयोग व सेवा के पाठ सीखे होंगे। वैसी ही भावना वे अपने आसपास के लोगों में प्रकट करेंगे। वे भीखारी या परोपजीवी कभी नहीं बनेंगे।

—गांधीजी

दिल्ली के बेसिक स्कूलों में कताई-बुनाई की ट्रेनिंग

खादी-ग्रामोद्योग आयोग के आह्वान पर, सन् १९६० मे औद्योगिक सलाहकारी मण्डल, दिल्ली प्रशासन ने बेसिक स्कूलो के शिक्षकों को कताई बुनाई मे ट्रेनिंग का काम अपने हाथ मे लिया। इस कार्य के सचालन एव मार्गदर्शन के लिए एक ड्राफ्ट उप-समिति का गठन किया गया, जिससे ट्रेनिंग के बाद शिक्षक कताई-बुनाई का प्रसार विद्यार्थियो मे सही दिशा मे कर सकें और जिससे उनमें शारीरिक श्रम के प्रति निष्ठा जागृत हो। इस कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए आयोग ने एक लेक्चरर की सेवाएँ भी दिल्ली के लिए उपलब्ध की।

कार्य की प्रगति

प्रारम्भ में अल्पकालीन प्रशिक्षण का आयोजन दिल्ली मे ही हुआ। उसको अधिक नियमित बनाने की दृष्टि से सन् १९६३ मे २४ शिक्षको को नीलो खेडी स्थित खादी-ग्रामोद्योग विद्यालय मे प्रशिक्षण दिलाया गया। दिल्ली मे लेक्चरर की नियुक्ति के बाद ग्रीष्मावकाश में सन् १९६४ से १९६७ तक प्रति-वर्ष निम्न प्रकार शिक्षकों को ट्रेनिंग दी गयी

वर्ष	प्रशिक्षित शिक्षकों की संख्या
१९६४	२४
१९६५	२४
१९६६	८९
१९६७	९३
	२३०

नया माडल चरखा

सन् १९६७ ६८ मे, स्कूलो में नया माडल चरखा और अम्बर चरखा भी प्रारम्भ कराया गया। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद, दिल्ली की ओर से अहमदाबाद से १० नये माडल चरखो का सेट मँगाया गया तथा इस समय स्थानीय लाजपतनगर स्कूल मे उस यूनिट को चलाया जा रहा है। यह यूनिट उक्त स्कूल मे सफलतापूर्वक चल रहा है। इसके अतिरिक्त, शिक्षक-प्रशिक्षण-सस्थान, अलीपुर, व बेसिक स्कूल शाहदरा मे सुधरे हुए अम्बर चरखे भी प्रारम्भ किये गये हैं।

आज दिल्ली मे लगभग ४०० स्कूल एसे हैं जहाँ कताई दस्तकारी का प्रशिक्षण चलता है। इसके अलावा, ३ शिक्षक प्रशिक्षण-केन्द्रो पर लगभग ३०० शिक्षक प्रतिवर्ष इस क्राफ्ट को सीखते हैं।

गत वर्ष कताई का स्वय अभ्यास करने तथा वस्त्र मे स्वावलम्बन की दृष्टि से विद्यार्थियो एव शिक्षको द्वारा लगभग ५०० पेटी चरखे व हजारो तकलियाँ खरीदी गयी। इस प्रकार जो सूत काता गया उससे सुन्दर दरियाँ, डस्टर, तथा निवार बनायी गयी। अच्छे सूत को खादी भण्डारो द्वारा कपडे मे बदलौन किया गया। इस प्रकार बच्चो मे अपने स्कूल की वर्दी तैयार करने पर श्रम के प्रति एक विशेष निष्ठा उत्पन्न होती है।

स्कूलो में देव कपास उत्पन्न करने का भी प्रयास किया गया। कुछ विशेष अवसरो पर कताई प्रतिस्पर्धा भी आयोजित की गयी। उद्योग विभाग, दिल्ली प्रशासन इस ओर विशेष ध्यान दे रहा है तथा उसने अपने यहाँ से कुछ शिक्षको को स्थायी रूप से काम सिखाने के लिए स्कूलो को दिया है। •

सच्चा धर्म शिक्षण साहित्य का विषय नहीं है। चरित्र निष्ठा, ईश्वर विषयक श्रद्धा और देह से पृथक् आत्मा का भान यही धर्म का सार है और वह सत्पुरुषों की संगति से ही मिलता है। इसलिए सुशील शिक्षकों की योजना ही मेरी धर्म शिक्षण की योजना है।
—विनोबा

सर्वोदय-पर्व के मौके पर कुछ शिक्षण-साहित्य

वर्षों से ११ सितम्बर से २ अक्तूबर तक अर्थात् विनोबा जयन्ती से गाधी-जयन्ती तक की अवधि में सर्वोदय-पर्व मनाया जाता रहा है। पू० विनोबाजी ने इस अवधि को 'शारदोपासना' का पर्व कहा है। इस अवधि में अनेक कार्यक्रमों के साथ साहित्य प्रचार का कार्य क्रम मुख्य रूप से चलता है। इस अवसर पर सर्व सेवा सघ प्रकाशन की कुछ शिक्षा सम्बन्धी पुस्तकों के नाम नीचे दिये जा रहे हैं।

धर्मो की फुलवारी	श्रीकृष्णदत्त भट्ट	० ७५
वैदिक धर्म क्या कहता है	' प्रत्येक	० ७५
तीन भाग		
जैन धर्म क्या कहता है ?		० ७५
सिख धर्म क्या कहता है ?		० ७५
बौद्ध धर्म क्या कहता है ?		० ७५
पारसी धर्म क्या कहता है ?		० ७५
यहूदी धर्म क्या कहता है ?	'	० ७५
ताओ और कन्फ्यूशस धर्म क्या कहता है ?	'	० ७५
ईसाई धर्म क्या कहता है ?	"	० ७५
इसलाम धर्म क्या कहता है ?		० ७५

नयी तालीम-साहित्य

शिक्षण विचार	विनोबा	२ ५०
शिक्षण और सरकार		० २५
जीवन दृष्टि	'	१ २५
भाषा का प्रश्न	"	० २५
समग्र नयी तालीम	धीरेन्द्र मजूमदार	१ २५
बुनियादी शिक्षा पद्धति	'	० ६०
बच्चों की कला और शिक्षा	देवीप्रसाद	८ ००
बालक अपनी प्रयोगशाला में	म० भगवानदीन	५ ००
बालक बनाम विज्ञान	"	० ७५
बालक सोचता कैसे है ?	'	० ६०

माता-पिताओं से	म० भगवानदीन	०.५०
बालवाडी (नया संस्करण)	जुगतराम दवे	४.००
हमारा राष्ट्रीय शिक्षण	चारुचन्द्र भण्डारी	२ ५०
बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा	डा० जाकिर हुसेन	१ ५०
बुनियादी शिक्षा क्या और कैसे ?	द० सोनी	१ २५
सुन्दरपुर की पाठशाला	जुगतराम दवे	० ७५
पूर्व बुनियादी	शाता नारूलकर	० ५०
शिक्षण और शान्ति	जयप्रकाश नारायण	० ५०

कथा-कहानी साहित्य

आओ हम बनें : (आठ भाग)	श्रीकृष्णदत्त भट्ट	
" १. उदार और दयालु		१ ५०
" २ मीठे और मुलायम		१ ५०
" ३. साहसी और मेहनती		१.५०
" ४ नम्र और सेवापरायण		१ ५०
" ५ सच्चे और अच्छे		१ ५०
" ६. सुशील और सहनशील		१.५०
" ७ नेक और ईमानदार		१ ५०
" ८ उद्यमी और पराक्रमी		१ ५०
बोलती घटनाएँ (भाग १)	म० भगवानदीन	० ५०
" " (" ३)	"	० ५०
" " (" ४)	"	० ५०

बाल-साहित्य

बिल्ली की कहानी	म० भगवानदीन	३ ००
खेल-खेल मे सीखना	शिरीष	१ ५०
शहद का छत्ता	"	१.००
क से कमला	"	१ ००
कतक थैयाँ घुनूं मनइयाँ	राष्ट्रबन्धु	० ७५
नये अंकुर	श्रीराम चिंचलीकर	०.२५
कुकुहूँ कूँ (बाल-गीत)	रामेश्वरदयाल दुबे	१ ००

विनोबा-जयन्ती ११ सितम्बर के अवसर पर

प्रभात-सहगीत

आज जयन्ती है उस मनुज महान की !
लाज बचायी है जिसने इंसान की !
शान बढ़ायी जिसने हिन्दुस्तान की !

जिसने आजादी की कीमत तोल दिया,
जिसने इंसानों के बन्धन खोल दिया,
जिसने प्यार मुहब्बत की जय बोल दिया,
जिसने अकल सुधार, है शैतान की !
आज जयन्ती है उस मनुज महान की !

जिससे उजड़ी धरती को अभिमान मिला,
जिससे उस सुनसान गगन को मान मिला,
जिससे दीनों को, दलितों को, त्राण मिला,
जिससे हिम्मत पस्त हुई तूफान की !
आज जयन्ती है उस मनुज महान की !

उठो उठो अब नौजवान लो अंगड़ाई,
सूरज निकला, नयी रोशनी है छाई,
'बापू का सन्देश दे रही पुरवाई—
उठो उठो यह बेला है बलिदान की !
आज जयन्ती है मनुज महान की !

*विनोबाजी ७४ साल के हुए—वे शतायु हों यह हमारी कामना है

हम जन का विश्वास बदलने निकले हैं,
हम जग का अभ्यास बदलने निकले हैं,
हम धरती आकाश बदलने निकले हैं—
हम बदलेंगे उलटी चाल जहान की !
आज जयन्ती है उस मनुज महान की !

हम 'बापू' का स्वर्ग धरा पर लायेंगे,
हम 'बाबा' का स्वप्न सजीव बनायेंगे,
हम गांवों मे ग्रामराज्य चमकायेंगे—
आज शपथ है अपनी भारतदान की !

आज जयन्ती है उस मनुज महान की !
लाज बचायी है जिसने इंसान की !
शान बढ़ायी जिसने हिन्दुस्तान की !

—रघुराज सिंह 'राकेश'

सम्पादक मण्डल
श्री धीरेन्द्र मजूमदार—प्रधान सम्पादक
श्री वशीधर श्रीवास्तव
श्री राममूर्ति

वर्ष १७
अंक २
मूल्य ५० पैसे

अनुक्रम

सितम्बर '६८

निवेदन

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- 'नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा छः रुपये है और एक अंक के ५० पैसे।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक-संख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट सर्व सेवा संघ की ओर से प्रकाशित अमल कुमार बसु
इण्डियन प्रेस प्रा० लि०, वाराणसी-२ में मुद्रित।

नयी तालीम : सितम्बर '६८

पहले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की अनुमति प्राप्त

लाइसेंस नं० ४६ रजि० सं० एल १७२३

भूमि-समस्या और ग्रामदान

गांधीजी ने १९४५ में लिखा था :

'किसान याने भूमि जोतनेवाला, चाहे वह भूमिधारी हो या भूमिहीन श्रमिक, सर्वप्रथम आता है। वही भूमि का नमक अथवा प्राण है अतः उसका वास्तविक अधिकारी भी वही है, न कि वह जो केवल मालिक है और जोतता नहीं। लेकिन अहिंसक पद्धति में भूमिहीन श्रमिक न जोतनेवाले मालिक को जबरन बेदखल नहीं करेगा। उसकी कार्य-पद्धति ही इस प्रकार की होगी कि जमींदार द्वारा उसका शोषण असम्भव हो जाय। इसमें किसानों के परस्पर निकटतम सहकार-सद्भाव की अनिवार्य आवश्यकता है। इसके लिए जहाँ भी जरूरत हो, विशेष संगठन या समितियाँ बनायी जायँ। हमारे ज्यादातर किसान बे-पढ़े-लिखे हैं। प्रौढ़ों व स्कूल जाने लायक उम्र के नौजवानों को शिक्षित करना होगा। भूमिहीन श्रमिकों का वेतन-मान इतना तो ऊँचा उठना ही चाहिए, जिससे कि वे एक सामान्य सुखप्रद जीवन बिता सकें। इसका अर्थ है कि उनको सतुलित आहार मिले, रहने को मकान तथा पहनने को कपड़े हों, और उनकी स्वास्थ्य-सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके।"

आप इन करोड़ों किसान भाइयों को अपने पाँवों पर खड़ा होने के लिए समर्थ करने में क्या कर रहे हैं ?

ग्रामदान वह कार्यक्रम है, जिसके जरिए आप अहिंसक पद्धति से यह कर सकते हैं।

सन् १९६९ गांधीजी की जन्म शताब्दी का साल है।
आइए, हम सब तुरन्त इस काम में जुट जायँ।

राष्ट्रीय गांधी जन्म-शताब्दी समिति की गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति द्वारा प्रसारित

आवरण मुद्रक : खण्डेलवाल प्रेस एण्ड पब्लिकेशन्स मानमन्दिर, वाराणसी
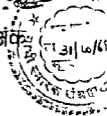
वर्ष : १७ • अंक : ३
अक्तूबर १९६८

वर्ष : १७ अंक : ३

प्रेरणा का स्रोत

पिछले अकाल के समय बिहार ने दुःख और निराशा की जो आम तस्वीर पेश की थी, उसमें कुछ प्रकाश और आशा बिखेरनेवाले बिन्दु भी थे। उनमें एक था, विदेशी स्वयंसेवकों द्वारा लघु सिंचाई और पेय जल की आपूर्ति के कार्यक्रमों के अन्तर्गत किया गया निष्ठापूर्ण सेवा का काम। वे कुएँ खोदते थे, नलकूप गाड़ते थे, चट्टान तोड़ते थे, चट्टान तोड़नेवाली मशीन चलाते थे, भोजनालय-केन्द्रों का संचालन करते थे, कपड़े और दवाएँ बाँटते थे। उनमें से अधिकतर विद्यार्थी थे, जो अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, पश्चिम जर्मनी जैसे अनेक देशों से आये थे। अत्यधिक शीतल जलवायु के आदी होते हुए भी उन युवकों और युवतियों द्वारा अप्रैल, मई, जून की भयानक गर्मी में इतना कठिन परिश्रम किये जाने का दृश्य बड़ा हृदयहारी था। भारत के प्रति अथवा बिहार के करोड़ों अकाल-ग्रस्त लोगों के प्रति उन स्वयंसेवकों का कोई उत्तरदायित्व नहीं था। उनका त्यागमय परिश्रम उस नैसर्गिक भ्रातृत्व भावना का साक्षी था, जो मानव परिवार को जोड़ती है और जाति, धर्म या राष्ट्र के अवरोधों को अस्वीकार करती है।

विदेशी विद्यार्थियों के इस ज्वलंत उदाहरण के बिलकुल विपरीत था बिहार के उन विद्यार्थियों का आचरण जो अपने नागरिक बन्धुओं की दुर्दशा के प्रति उदासीन दीख रहे थे। ये विद्यार्थी चुप बैठे थे, ऐसी भी बात नहीं। जब परिस्थिति उनसे निष्ठापूर्ण सेवा की माँग कर रही थी, उस समय वे गैरजिम्मेवार तोड़-फोड़ के कार्यों में अधिक दिलचस्पी लेते दिखायी पड़ रहे थे।

विदेशी विद्यार्थियो के विपरीत भारतीय विद्यार्थियों के इस ग्राचरण ने हमें लज्जित किया और हमे यह सोचने के लिए बाध्य किया कि चाहे सांकेतिक तौर पर ही सही, इस स्थिति से निकलने का कोई मार्ग हमें सुझाना चाहिए। इस प्रकार विद्यार्थी-अकाल-सेवा-शिविर आयोजित करने के विचार का जन्म हुआ। कुल मिलाकर सात जिलों में सात शिविरो का आयोजन हुआ, जिनमें लगभग ४०० विद्यार्थियो ने भाग लिया और राहत के कार्य किये। इन शिविरों के अनुभव से यह प्रकट हुआ कि बिहार के जो विद्यार्थी उपद्रवकारी और गैर-जिम्मेदार मालूम हुए थे (मैं समझता हूँ कि दूसरे राज्यो में भी यही स्थिति थी) वे अन्दर से बिलकुल ठोस हैं। आवश्यकता एक ऐसे नेतृत्व और मार्गदर्शन की तथा ऐसे स्थायी कार्यक्रम की है, जो उनकी उमड़ती हुई शक्तियों को रचनात्मक दिशा में मोड़ सके।

मूलतः, राष्ट्रीय पुर्ननिर्माण के काम करने के लिए एक विद्यार्थी-सेना का संगठन करने का विचार था। बाद में यह महसूस हुआ कि बेहतर यह होगा कि विद्यार्थियों के सामने और अधिक व्यापक उद्देश्य रखा जाय, और इस नये आन्दोलन में केवल विद्यार्थियों को ही नही, आम तौर पर सभी युवकों को शामिल किया जाय। इस विचार के अनुसार अन्त में यह तय हुआ कि राष्ट्रीय पुर्ननिर्माण विद्यार्थी-सेना बनाने के नये विचार को अखिल भारत शांति-सेना मंडल की वर्तमान युवा-शाखा "किशोर शांति दल" से जोड़ दिया जाय। इस समग्र कल्पना को भारतीय तरुण-शांति-सेना की संज्ञा दी गयी।

युवक और शांति की पुकार

श्री जयप्रकाश नारायण का तरुण शांति-सेना का विचार आज के युवक-संगठनों की भीड़ में एक और युवक-संगठन जोड़ने ही का नहीं है; न यह संगठन अमेरिकन शांति-सेना का अंधानुकरण ही है। यह एक ऐसा विचार है, जो पिछले कई वर्षों से विकसित हो रहा था।

पिछले कुछ वर्षों से छात्रो मे अभूतपूर्व अशान्ति दीख पडी है। उडीसा, मध्यप्रदेश, दिल्ली, उत्तरप्रदेश, बिहार, बगाल और आसाम मे व्यापक स्तर पर हिंसात्मक विस्फोट हुए। अनेक युवको ने एसी हिंसापूर्ण कार्यवाहियो मे भाग लिया, जिसने मद्रास को हिन्दी विरोधी आदोलन से हिला दिया और अनेक उन 'बद' आदोलनो मे हिस्सा लिया, जो देश की सामान्य जिन्दगी का एक-एक अग बन गये हैं।

अध्यापको पत्रकारो और राजनीतिज्ञो द्वारा इन हिंसापूर्ण कार्यों के विरोध मे आवाजें उठायी गयी। कुछ लोगो ने पूछा, 'आप जीपें और बसें क्यो जलाते हैं?' युवको ने जवाब दिया, "क्या पुलिस गोलीकाड मे शहीद हुए नौजवानो से ये बसें और जीपें ज्यादा कीमती हैं?" कुछ लोगो ने पूछा, 'देश के भावी कर्णधार किस तरह का समाज बनाना चाहते है?' नाराज युवको ने उत्तर दिया, "आपकी पीढी ने जैसा समाज बनाया है वैसा तो हरगिज नही!'

प्रधान मन्त्री ने कहा, 'मुझे विद्यार्थियो से पूरी सहानुभूति है, लेकिन उन्हें अपनी समस्याओ का हल सडको पर ढूँढने की कोशिश नही करनी चाहिए।' "लेकिन क्या हमे आपसे कहीं और मिलने की अनुमति है?' उन छात्रों ने पूछा, जो सरकारी अधिकारियो को अपनी बात सुनाने मे असफल हो चुके थे।

इस प्रकार की गरम बातचीत के बीच से एक ऐसी आवाज आयी जिसने छात्रो को समझकर समस्या की जड ढूँढना चाहा, छात्रो के दोष ढूँढ़ने के बजाय उन्हें समझकर समस्या की जड़ तक पहुँचना चाहा। यह आवाज थी 'छात्र बैरोमीटर यत्र की तरह हैं जो समाज का उतार चढ़ाव सूचित करते हैं। यह स्पष्ट है कि जिस समाज मे इतने व्यापक छात्र आन्दोलन हुए हैं उसमे गहरा परिवर्तन होना चाहिए। भारत का छात्रांदोलन कोई इक्की दुक्की घटना नही है, बल्कि यह विश्व-व्यापी आदोलन का एक भाग है जो समाज में परिवर्तन की माँग करता है।'

यह आवाज शाति सेना की आवाज थी, शाति की आवाज थी। इस आवाज ने युवको से कहा, "आपका आंदोलन क्रांति की प्रसवपीडा है, और अगर यह हिंसात्मक बना रहा तो गर्भपात निश्चित है और इससे मातृभूमि का खून बह जायेगा। किन्तु यदि आप शाति के रास्ते पर चलें तो आपमे विधायक सामाजिक क्रान्ति के सभी गुण मौजूद हैं। फिर आफत को अवसर मे क्यो न बदल दिया जाय?' इस चुनौती से एक नये आंदोलन का जन्म हुआ।

—नारायण देसाई

भारतीय तरुणों के लिए पराक्रम का कार्यक्रम

नारायण देसाई

तरुण हमेशा क्रांति के अग्रदूत होते हैं। युग-युगों से देश-देश में यही सिलसिला रहा है। इस प्रकार के क्रांतिकारी परिवर्तन के अग्रदूत आजादी के आन्दोलन में भारत के तरुण हुए थे। इतिहास इसका साक्षी है।

जगत भर में जगह-जगह तरुणों में एक प्रकार की बेचैनी नजर आ रही है। नयी क्रांति के आसार उनके चिंतन और आचरण में नजर आ रहे हैं। इण्डोनेशिया में तरुणों का आन्दोलन महान राजनैतिक परिवर्तन कराता है, जापान में तरुणों का आन्दोलन अमेरिकन मिलिटरी बेस को बढ़ने से रोकता है। अफ्रीका के आजादी आन्दोलन के नेताओं में से शायद ही कोई चालीस साल से ऊपर का होगा। अमेरिका के तरुण वियतनाम के युद्ध में शामिल होने का आदेश देनेवाला 'ड्राफ्ट कार्ड' जलाकर बरसों की जेल भुगतने को तैयार होते हैं, इंग्लैण्ड के ईस्टर मार्च में अगुवाई तरुणों की होती है। फ्रांस में तरुणों के एक सप्ताह के आन्दोलन ने सैकड़ों साल पुरानी शिक्षा-पद्धति जड़ से हिला दी। यूगोस्लाविया के तरुणों के आन्दोलन के सम्बन्ध में वहाँ के राज्यकर्ता पक्ष के एक नेता ने कहा : हमारा पक्ष जो वर्षों में नहीं कर पाया, इन लड़कों ने एक सप्ताह में कर दिया। कहीं रेडगार्ड्स हैं, कहीं बीटल्स हैं, कहीं बीटनीक्स हैं। हर जगह तरुण इतिहास के करवट बदलने के निमित्त बन रहे हैं।

पद्धति में शुद्ध साधनों का आग्रह होता है, वहाँ वह नये युग की भेरी बन जाता है, जहाँ यह आग्रह नहीं होता वहाँ वह अराजकता मात्र रह जाता है।

बेचैनी तो भारत के तरुणों में भी भूरि-भूरि है। अनेक प्रसंगों में यह बेचैनी प्रकट भी होती रहती है। भारत के उन तरुणों के सामने जो बेचैन है, यह एक चुनौती है कि वह अपनी बेचैनी के पीछे मूल्यों का अधिष्ठान रख सकते हैं या नहीं, वे अपनी कार्य-पद्धति में साधनों की शुद्धि ला सकते हैं या नहीं। आज जगत् के तरुणों को नये-नये पुरुषार्थ करने की इच्छा हो रही है। भारत के तरुणों में भी पुरुषार्थ करने की तमन्ना दुनिया के किसी देश के तरुणों से कम नहीं होगी। प्रश्न यह है कि क्या उनके पास कोई ऐसा कार्यक्रम है जो पुरुषार्थ के इस तीव्र आवेग का किसी मूल्य के साथ अनुभव जोड़ सकता है। इस प्रश्न के, इस चुनौती के जवाब मे भारतीय तरुण शांति सेना अपने मूल्य और अपने कार्यक्रम लिये खड़ी हैं।

तरुण शांति-सेना भारत के तरुणों को चार मूल्यों के पीछे जीवन न्योछावर करना सिखाना चाहती है।

प्रथम मूल्य है राष्ट्रीय एकता। स्वराज्य के बीस बरस के बाद भारत में आज वह स्वस्थ राष्ट्रीयता नजर नहीं आती जो स्वराज से पहले थी। स्वस्थ राष्ट्रीयता का स्थान आज आक्रमक राष्ट्रीयता, संकुचित राष्ट्रवाद ने लिया है। फलतः भारत के मानचित्र पर आज भारतीय नागरिक नजर नहीं आता। तरुण शांति-सेना एक राष्ट्रीय नागरिकत्व पैदा करना चाहती है जो जातिवाद, सम्प्रदायवाद, भाषावाद, प्रान्तवाद आदि से ऊपर हो, और जो विश्व-नागरिकत्व की दिशा में प्रथम सोपान-सा हो।

तरुण शांति सेना दूसरा मूल्य लाना चाहती है धर्म-निरपेक्षता या सर्वधर्म समभाव का। भारत के तरुणों से वह कहती है कि धर्म का हमारे लिए उतनी ही हद तक उपयोग है जितनी हद तक वह मानव और मानव को जोड़ता हो। मानव की मानवता बढ़ाने में जो धर्म उपयोगी होता है उसका हम आदर करते हैं। अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए जिसे दूसरे की निंदा का आश्रय लेना पड़ता है वह धर्मांधता हमें नाकबूल है। तरुण शांति सेना जिस तीसरे मूल्य को प्रतिष्ठा करना चाहती है वह है गणतंत्र का मूल्य। न सिर्फ शासन और राजनैतिक क्षेत्र में, बल्कि मानवीय पारस्परिकता के तमाम क्षेत्रों में गणतंत्र वह मूल्य है जो इंसान की इंसानियत की इज्जत करता है। गणतंत्र स्वातंत्र्य का रक्षक विचार है, समता का पोषक है और है मानवता का पूजक। तरुण शांति सेना छात्र

ग्रौर शिक्षकों के सम्बन्धों में, छात्र-ग्रान्दोलन की पद्धति तथा देश के राजनैतिक ग्रौर ग्रार्थिक तंत्र में गणतंत्र की रक्षा ग्रौर विकास करना चाहती है।

तरुण शांति सेना का चौथा मूल्य है शांति। ग्रंतः शांति, बहिः शांति, मानसिक शांति, जागतिक शांति। शांति उसकी पद्धति में होगी, शांति उसका लक्ष्य होगी। लेकिन तरुण शांति-सेना के मन की शांति स्मशान की शांति नहीं है, जिन्दा शांति है। वह ऐसी शांति होगी जिसमें ग्रन्याय का प्रतिकार करने की शक्ति हो, शांतिमय समाज की प्रतिष्ठा करने की शक्ति हो, जिसमें जान हो।

इन चार मूल्यों की ग्राज न सिर्फ हमारे देश को, किन्तु सारे जगत् को ग्रावश्यकता है। इन चार मूल्यों को ग्रादर्श के स्वरूप में रखकर व्यवहार में तरुण शांति-सेना के पास सीधे-सादे, लेकिन व्यापक कार्यक्रम हैं।

प्रथम कार्यक्रम शाला-महाशालाग्रों के चालू रहते करने का है। तरुणों से वह कहती है कि सप्ताह में कम-से-कम ढाई घण्टा दीजिए—श्रम, स्वाध्याय ग्रौर सेवा के कार्यों के लिए। इससे ग्रापके शरीर, दिमाग ग्रौर ग्रन्तःकरण का विकास होगा। राष्ट्रीय कामों को करने का इससे ग्रापको ग्रभ्यास होगा। ग्रौर ग्राप यदि कुशलतापूर्वक ये काम करेंगे तो इससे ग्रापके ग्रासपास के समाज को भी लाभ होगा। किसी गाँव की सेवा का कार्यक्रम, किसी गरीब बस्ती की सफाई का कार्यक्रम, किसी निरक्षर को साक्षर बनाने का कार्यक्रम, ग्रारोग्य के ज्ञान का प्रचार का कार्यक्रम, कोई भी कार्यक्रम ग्राप स्वयं उठा सकते हैं। शिक्षा-पद्धति में ग्रावश्यक सुधार करने की बात भी ग्राप उठा सकते हैं।

दूसरा कार्यक्रम है छुट्टियों में शिविरों का। ये शिविर ऐसे होंगे, जिसमें तरुण किसी राष्ट्रीय निर्माण के कार्य के लिए शरीर-परिश्रम करेंगे, जिसमें भिन्न भिन्न प्रदेशों के भिन्न भिन्न भाषा बोलनेवाले तरुण साथ रहेंगे, साथ कार्य-योजना करेंगे, साथ उन पर ग्रमल करेंगे। ये शिविर तरुणों के लिए गणतंत्रात्मक पद्धतियों के प्रत्यक्ष ग्रनुभव होंगे।

तीसरा कार्यक्रम छात्रों के स्नातक बन जाने के बाद का है। तरुण शांति-सेना ने स्नातकों से एक साल राष्ट्र के लिए देने का ग्रावाहन किया है। इस एक साल में तीन महीने तक उन्हें प्रशिक्षण दिया जायगा ग्रौर बाकी नौ महीने वे कुछ चुने हुए क्षेत्रों में योग्य मार्गदर्शकों की देखरेख में सेवा कार्य करेंगे। ये सेवा-कार्य विभिन्न प्रदेशों में परिस्थिति के ग्रनुसार विभिन्न प्रकार से होंगे।

इसमें राष्ट्र के तरुणो की शक्ति निर्माण कार्य मे लगेगी। आज शिक्षा और जीवन में सीधा सम्बन्ध प्राय नहीं-सा है। एक साल के प्रत्यक्ष सेवाकार्य से, तरुणो को जीवन के लिए कुछ उपयोगी अनुभव मिलेगा, जिससे जीवन मे प्रवेश उनके लिए सहज हो जायेगा, और वर्तमान जीवन को बदलने तथा उन्हें उपरोक्त मूल्यो की ओर टालने की प्रेरणा भी मिलेगी।

तरुण शांति-सेना के सगठन में तरुणो ही का सीधा हिस्सा रहेगा। अध्यापको से वे सलाह और मार्गदर्शन लेंगे, किन्तु उनके सगठन मे अध्यापको की दस्तंदाजी नही होगी। इस सगठन में निर्णय करने के लिए वर्तमान गण-तंत्र को छिन्न करनेवाली बहुमती का प्रयोग नही होगा, लेकिन सर्वसम्मति या सर्वानुमति का आग्रह रखा जायेगा, जिससे विधायक पुरुषार्थ में अलग-अलग मतोवाले तत्त्वो का भी सम्यक् उपयोग करने की उन्हें तालीम मिलेगी।

सर्वोदय आन्दोलन की दृष्टि से तरुण शांति-सेना इस आन्दोलन को एक नया आयाम (डायमेन्शन) देती है। इसके द्वारा सर्वोदय आन्दोलन को नगरो मे तरुणो में तथा बुद्धिजीवियो मे प्रवेश का मौका मिलता है। और भारतीय तरुणो को तरुण शांति-सेना से कुछ मानवीय मूल्यो पर स्थिर राष्ट्रीय पराक्रम का मौका मिलता है।●

तरुण शान्ति-सेना क्यो ?

इसलिए कि

● यह बहुत जरूरी है कि युवक एक मित्र मण्डल के रूप मे संगठित होकर देश की समस्याओ को समझने की कोशिश करें और जिज्ञासा तथा अध्ययनपूर्वक उनके सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करें।

● युवक इस काल में ऐसी अवस्था से गुजरते हैं, जो मनो-वैज्ञानिक दृष्टि से संतोषप्रद तथा भावनात्मक दृष्टि से शान्तिपूर्ण और रचनात्मक होनी चाहिए।

● अनिवार्य सैनिक प्रशिक्षण में जिनका विश्वास नही है, ऐसे नवयुवकों के लिए व्यक्तिगत तथा सामूहिक अनुशासन के अन्य तरीके के विकल्प की जरूरत है।

युवकों की आवश्यकताएँ और उनकी पूर्ति

राधाकृष्ण

युवकों की आवश्यकताएँ क्या हैं और उनकी पूर्ति कैसे हो, इस प्रश्न पर विचार करते समय, सामान्यतया भावी जीवन में उनसे हम जो अपेक्षाएँ रखते हैं, उनको ही सामने रखकर सोचते है, और शिक्षा उसीकी तैयारी है। मनुष्य का भावी जीवन उसकी किशोरावस्था और यौवन के उदयकाल की सफलताओं और विफलताओं पर निर्भर है। इसलिए युवकों की तात्कालिक तथा समुचित आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रश्न टालने जैसा नहीं है।

यदि व्यक्तिगत आवश्यकताओं तथा व्यापक समाज की माँगों की पूर्ति के परिणामस्वरूप कोई बुनियादी संघर्ष छिड़ता हो, तो यह बड़े दुर्भाग्य की बात होगी। स्वतंत्र और आत्मनिर्भर व्यक्तियों का निर्माण ही लोकतांत्रिक संस्कृति का वास्तविक अर्थ है और वही उस संस्कृति का रक्षक भी है। इसलिए युवकों का कोई भी कार्यक्रम ऐसा होना चाहिए जो प्रत्येक व्यक्ति की उसकी आन्तरिक आवश्यकताओं की, और तद्द्वारा समाज की आवश्यकताओं की भी पूर्ति कर सके।

बुनियादी आवश्यकताएँ सबसे पहले आती हैं, और यह स्वाभाविक ही है। यदि समाज से हम दारिद्र्य, दीनता, दुःख, जीवन का नीचा स्तर और बेकारी को मिटा सकें तो बड़ों के समान युवक भी उन्नत होंगे, संतोषी होंगे और उनका व्यवहार भी सुधरेगा। हम इस बुनियादी सत्य से इनकार नहीं कर सकते कि हमारी वर्तमान आर्थिक-सामाजिक रचना लोगों को दबानेवाली, शोषण करनेवाली, अन्यायपूर्ण और विषमता से भरी हुई है। इस समाज में करोड़ों को अपनी प्राथमिक शिक्षा, कारीगरी और जीविका के लिए उन मुट्ठीभर लोगों से संघर्ष करना पड़ता है, जिनके हाथों में समाज के साधन-स्रोतों का अधिकांश एकत्रित हो गया है।

विकसित और उन्नत देशों में भी वहाँ की असमानता का प्रभाव युवकों की भावनाओं पर पड़ता ही है। अमरीका के एक शिक्षाशास्त्री का कहना है कि "शालाएँ अपने द्विविध दायित्वों से मुक्त नहीं हो सकतीं, एक यह कि युवकों में जो तनाव, निराशाएँ और उत्तेजनाएँ हैं, जिनका मूल कई स्तरों में विभक्त समाज में है, उन्हें दूर करना, और दूसरा, युवकों के सामने ऐसे कार्यक्रम प्रस्तुत करना जिनसे वे अपनी क्षमताओं को पूर्णतया विकसित कर अपना सुख

तथा समाज के लिए अपनी उपयोगिता दोनो सिद्ध कर सकें।" हमारे समाज की विफलताएँ हमारे युवको के व्यवहार मे प्रतिबिम्बित होती हैं, और चूँकि किशोरो में एक आक्रमक वृत्ति होती है, युवकों मे उत्साातिरेक के कारण कुछ भी कर गुजरने का जोश होता है, इसलिए उसे आसानी से या थोड़े मे समाप्त नही किया जा सकता।

युवको के असन्तोष की—जो शीघ्र ही विद्रोह मे बदल जाता है—जड़ें अधिक गहरी हैं। पश्चिम के प्रगत राष्ट्रो में युवक उपयोग-प्रधान समाज के विरुद्ध कर रहे हैं, और पूव के युवक विकासशील राष्ट्रो मे उत्पादन-प्रधान समाज के खिलाफ बगावत कर रहे हैं। एक में वे उद्देश्यहीन जीवन से त्रस्त हो उठे हैं, और दूसरे में उन्हें जीविका का साधन बहुत कम मिलता है, क्योंकि उनसे संदिग्ध भविष्य के लिए आज भूखे रहने की माँग की जाती है।

समुदाय की विफलता

युवको का असन्तोष समाज को अस्वस्थता का और समाज नेताओ की विफलता का द्योतक है। युवको का समुचित लालन पालन परिवार शाला और समाज, तीनों का मिला जुला दायित्व है। परन्तु आज इन तीनो मे से कोई भी अपना दायित्व ठीक से निभा नही रहा है। आज अच्छे परिवार का अर्थ यही है कि उसमे बडे और बच्चे सब यथास्थिति को स्वीकार करके, परम्परा से जो जैसा चला आया है उसी रिवाज और रहन सहन को निभाते चलें, बाकी सुख-दुःख की ओर ध्यान देने की कोई आवश्यकता न रहे। अच्छा बच्चा वह है जो माता पिता का कहा मानता है और अपना रोजगार जुगाने मे व्यस्त है। अच्छा स्कूल वह माना जाता है, जिसमे परीक्षा पास करनेवाले और विशेष योग्यता से उत्तीर्ण होनेवाले छात्रो का प्रतिशत अधिक हो, या वहाँ से निकलनेवाले शिक्षितों को ठीक काम मिल जाता हो। अच्छा समाज, जैसे ऊपर कहा गया है, आज हम देख ही रहे हैं। तब, युवक अपना सन्तोष कहाँ ढूँढे ?

परिवार आज बच्चो मे सुदृढ चारित्र्य का निर्माण नही कर पा रहे हैं जिससे युवको मे हिम्मत, आगे बढने का उत्साह, आदर्श की निष्ठा और मानव-प्रेम विकसित हो सके। आज के स्कूल हमारे युवकों को किसी प्रकार का उद्योग सिखाने में या समाज मे उन्हे अपने पैरों पर खडा होने योग्य बनाने मे असमर्थ हैं, भले ही कुछ स्कूल अच्छा बौद्धिक शास्त्र पढा देते हों। परिवार युवकों मे अन्तर्मुखता, समझदारी, दायित्व भावना, नेतृत्व शक्ति, स्वास्थ्य और दक्षता,

प्रत्यक्ष कार्यानुभव तथा सृजनशील और शैक्षिक मनोरंजन की सुविधाएँ दे नहीं पा रहे है, जो पारिवारिक या सामुदायिक जीवन जीने से ही प्राप्त हो सकती हैं।

इसलिए जो भी युवको के कार्यक्रम बनें वे वर्तमान परिस्थिति के असन्तुलन को ठीक करनेवाले और सुधारनेवाले होने चाहिए। वे ऐसे होने चाहिए कि उनसे "युवको को पहल करने की प्रेरणा मिले, उनकी कल्पना शक्ति और शोधवृत्ति को प्रोत्साहन मिले, जो उनकी यौवन-सुलभ उत्साह शक्ति को आक्रामक या विध्वंसक मार्ग पर मुडने से बचायें, उनमे आत्मविश्वास जगायें, जो उन्हे सफलता की प्राप्ति के प्रति आशावान् बनायें, निर्भय बनायें, उत्तेजना और उद्रेको से मुक्त करें और उनकी अवरुद्ध भावनाओ की अभिव्यक्ति का स्वस्थ अवसर प्रदान करें। वे ऐसे भी होने चाहिए कि 'युवको को उनकी मनोवृत्तियो और स्तरो को ठीक से विकसित करने को प्रोत्साहित करें, जिससे वे अपनी फुरसत के उपयोग के लिए स्वस्थ कार्यकलापो को चुन सकें, उन्हे भिन्न भिन्न कलाएँ सीखने, सुरुचि और ज्ञान की वृद्धि करने के अवसर दें ताकि वे अपने को किसी-न किसी सृजनशील प्रवृत्ति मे संलग्न रख सकें, उनमे स्कूल के पाठ्यक्रम के बाहर के भी कामो में जो कि शिक्षाप्रद हो और आरोग्य-विज्ञान से सम्बद्ध हो, अग्रसर होने की वृत्ति जगायें, और घर और समाज, दोनो को एकत्र लाकर उनकी फुरसत का सदुपयोग करने की अधिक उत्तम सुविधा प्रदान करें।'

भारतीय तरुण शान्ति-सेना

देश में आज की एक बहुत बडी आवश्यकता की पूर्ति करने का प्रयत्न भारतीय तरुण शान्ति सेना कर रही है। परिवर्तन की जो मॉंग आज है, जिससे युवको का वर्तमान व्यवहार प्रेरित हुआ है, वह कुछ राष्ट्रीय रचनात्मक प्रवृत्तियो मे लगने की आवश्यकता के साथ जुडी हुई है। यदि इस असन्तोष को हम भावी क्रान्ति की प्रसूतिवेदना स्वीकार करते हैं तो उस क्रान्ति को शान्तिमय साधनो के द्वारा सिद्ध करने का एक विकल्प युवको को विश्वशान्ति की भावना और दृष्टिकोण का शिक्षण देने के द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा है। जीवन के अन्तरंग और बहिरंग दोनो पहलुओ का समन्वय करने की दृष्टि से, जिससे जीवन पूर्ण और सार्थक हो सके, इसमे युवको के व्यक्तित्व विकास पर विशेष बल दिया जाता है। चूँकि शिक्षा का वर्तमान तन्त्र और पद्धति असफल हो गयी है, इसलिए युवको का ध्यान शैक्षिक समस्याओं को शान्तिमय साधनो से हल करने की ओर खींचने की आवश्यकता है। तरुण शान्ति-सेना, कालेजो और विश्वविद्यालयो में स्वयंसेवको की एक इस प्रकार की टोली

तैयार करने का प्रयत्न करती है जो शान्ति और नवरचना की भावना को लेकर समाज की सेवा करने की इच्छा रखते हो, योग्यता रखते हो और उसके लिए पर्याप्त तैयारी कर चुके हों। तरुण-शान्ति सेना ऐसे युवकों में अभिक्रम, अनुशासन, सहकार और उत्तरदायित्व बढ़ाने की दृष्टि से प्रशिक्षण देने का भी प्रयत्न करती है।

भारतीय तरुण शान्ति-सेना युवकों का एक स्वतंत्र और स्वैच्छिक संगठन है। इसमें १४ से २२ वर्ष तक की कोई बहन या भाई शामिल हो सकता है जो शान्तिमय समाज की स्थापना के लिए संकल्प करता है, पड़ोसी की सेवा का विशेष ध्यान रखता है, जो राष्ट्र की किसी रचनात्मक प्रवृत्ति के लिए वर्ष भर में एक महीने का समय—चाहे लगातार एक बार, या १५-१५ दिनों के हिसाब से दो बार—समर्पित करें, जो लोक-तांत्रिक जीवन, धर्म-निरपेक्षता और राष्ट्रीय एकता के लिए वचन बद्ध हो। इस प्रकार राष्ट्रीय एकता, धर्म-निरपेक्षता, लोकतंत्र और विश्वशान्ति—इन चार खम्भों पर तरुण शान्ति-सेना का संगठन खड़ा है।

प्रत्येक स्कूल और कालेज में इसकी अपनी एक इकाई हो सकती है। इकाई के सदस्यों की संख्या को कोई मर्यादा नहीं है। इकाई का नायक सर्व-सम्मति से एक वर्ष के लिए चुना जायेगा। इकाई की बैठक बुलाना, सदस्यों का रजिस्टर रखना, हाजिरी रखना, और कार्यवाही की रिपोर्ट भेजना उसका काम होगा। प्रत्येक जिले की एक जिला स्तरीय शाखा होगी। जिला-संगठन के सदस्यों और संयोजक की नियुक्ति राष्ट्रीय संगठन करेगा।

तरुण-शान्ति दल का अपना गणवेश है। युवकों के लिए सफेद कुर्ता और सफेद हाफ-पैण्ट, युवतियों के लिए सफेद स्कर्ट और ब्लाउज, सलवार-कुर्ता या साड़ी होगी। केसरिया रंग की खादी का एक पट्टा कमर में बाँधना होगा, उसी रंग का एक स्कार्फ गले में। यह युवक युवती दोनों के लिए समान है। सीने पर 'भारतीय तरुण शान्ति दल' का एक बिल्ला लगाना होगा।

जो शिक्षक तरुण शान्ति-सेना के उद्देश्यों से सहमत हैं, वे मार्गदर्शक और सलाहकार के रूप में बहुत महत्वपूर्ण योग दे सकते हैं। शान्ति-दल के सदस्यों से अपेक्षा है कि वे सप्ताहांत शिविर आयोजित करें, अध्ययन मण्डल, स्वाध्याय तथा एक एक महीने के शिविर करें, जिसमें अध्ययन और शारीरिक श्रम दोनों चलें।

तरुण-शान्ति-सेना का कार्यक्रम

कोई भी कार्यक्रम उसके उद्देश्यों के आधार पर बनते हैं। राष्ट्रीय रचनात्मक प्रवृत्तियों में साक्षरता-अभियान से लेकर स्वास्थ्य-सफाई तक, या कृषि सम्बन्धी

सहायता-कार्य तक अनेक काम शामिल हैं। इसका मुख्य हेतु कोई समाजोपयोगी अथवा आर्थिक स्थिति सुधारनेवाला शारीरश्रम किया जाय। वास्तविक काम तो इस बात पर निर्भर है कि स्वयंसेवकों की कुशलता और लगन में तथा समाज की पूर्वनिर्धारित आवश्यकताओं और अवसरों में कितना मेल होगा।

युवकों के व्यक्तित्व के विकास के लिए उनके कार्यक्रमों में शारीरिक क्षमताओं और कला-कौशल के विकास का स्थान अत्यन्त महत्त्व का है। तरुण-शान्ति-सेना के कार्यक्रम शैक्षिक दृष्टि से नियोजित किये जाते हैं, जिनके अभाव में बाकी सारे काम निरर्थक हो जाते हैं। जो भी काम शिक्षण की दृष्टि से किया जाय, और समाज से अभिन्न रहकर किया जाय, तो उससे व्यक्तिगत विकास अवश्य होगा। कार्यक्रमों का नियोजन इस ढंग से करना चाहिए, जिससे युवकों को औद्योगिक कार्यक्षमता का पदार्थपाठ मिल सके, उनमें सादे औजार काम में लेने की, काम को अन्त तक निभाने की, योजना बनाने और उसे कार्यान्वित करने की कला आ सके।

लोकतान्त्रिक वृत्ति और सजगता का सारभूत अर्थ यही है कि युवक सामाजिक कला-कौशल सीखें, चर्चा और गोष्ठियों का आयोजन करें, सर्वसमावेशक निर्णयों पर पहुँचें, सन्देशों को अविकल रूप से और पूरी दक्षता के साथ एक जगह से दूसरी जगह पहुँचा सकें, चालू परिस्थितियों पर चर्चा-गोष्ठी चला सकें, राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय समस्याओं को समझें, और सबसे अधिक सामनेवाले के दृष्टिकोण को समझने का प्रयत्न करें और सर्वसहमत निर्णय पर पहुँचें।

विश्व-शान्ति के लिए शिक्षा देने और समस्याओं का शान्तिमय समाधान खोजने का अर्थ है अपनी समस्याओं को वस्तुनिष्ठ दृष्टि से तटस्थ भाव से समझना, और मुक्त और स्पष्ट चर्चा के द्वारा उनका समाधान खोजना। युवकों को जागतिक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए और मानव में निहित दैवी गुणों पर विश्वास करना चाहिए तथा उस दैवी गुणों को प्रकट करने का प्रयत्न करना चाहिए। सेवा और स्वाध्याय के द्वारा अकेले या सामूहिक रूप से तरुण-शान्ति-सेना के कार्यक्रमों में भाग लेना समाज को, जिसके वे भी एक अंग हैं, सेवा द्वारा अपने को पहचानने की एक यात्रा है। जहाँ शिक्षा असफल रही और समाज लापरवाह रहा, वहाँ वर्तमान न्यूनता को सुधारने के अत्यावश्यक उपाय के तौर पर तरुण-शान्ति-सेना युवकों के विकास का एक उत्तम साधन प्रस्तुत हुई है।•

[तरुण शान्ति-सेना सम्बन्धी अधिक जानकारी के लिए अ० भा० शान्ति-सेना मण्डल, राजघाट, वाराणसी–१ से पत्र-व्यवहार किया जा सकता है। पत्रोत्तर के लिए आवश्यक जवाबी टिकट भेजना उत्तम परम्परा है।]

युवकों के बदलते दायित्व

मनमोहन चौधरी

छात्र असन्तोष गत बीस वर्षों स हमारे लिए एक समस्या बना हुआ है। हममें से कई लोग उसे प्राय समुचित अनुशासन के अभाव का एक प्रकट रूप ही मानते हैं, और कुछ नहीं। वे अपने बचपन के वे भले दिन याद करते हैं, जब अपने बुजुर्गों के सामने वे जबान तक नहीं हिला पाते थे और बडो की बात चूं चपट किये बिना माना करते थे। कुछ अन्य लोग युवकों का दिमाग खराब करने का सारा दोष पाश्चात्य देशों से आये हुए नये विचारों को देते हैं। उनकी दृष्टि में यह एक ऐसी घटना है जिसे रोकने की या दबाने की आवश्यकता है और जब तक पाश्चात्य राष्ट्रों मे व्यापक रूप से छात्र-असन्तोष बढ़ नहीं गया, तब तक लोग लगभग यही मानते थे कि यह अजीब परिस्थिति केवल इस देश मे ही पैदा हुई है।

मैं मानता हूँ कि यद्यपि अलग अलग राष्ट्रों के छात्र असतोष के सन्दर्भ और स्वरूप भिन्न भिन्न हैं, फिर भी इनके पीछे एक तत्व है, जो *सर्वत्र समान* है और ये असन्तोष समाज में एक नयी शक्ति के आविर्भाव के लक्षण हैं।

पुरानी लीक

बुजुर्ग लोगों के बीते दिनों की याद करने मे एक सत्य है और वह यह कि उन दिनों उनके सामने कोई बडी समस्या थी नहीं। आज भी शहरों से दूर कोनों मे पड़े हुए आदिवासियों के इलाकों मे हम देखते हैं कि उनके सामने कोई समस्या नहीं है।

जहाँ बाहरी प्रभावों का स्पर्श नहीं हुआ है उन आदिवासियों का समाज देखते हैं तो मालूम होता है कि उनकी सामाजिक रचना न मालूम कितनी सदियों से एक-सी चली आ रही है, उसमे कोई परिवर्तन हुआ ही नहीं है। उनके सामाजिक रीति रिवाज, शिकार का धधा, अन्न संग्रह का तरीका, भाषा, पोशाक, औजार, बरतन आदि सब आज तक ज्यों के त्यों चले आ रहे हैं। उनके विश्वास, पूजापाठ, लोककथाएँ, सगीत, नाच गान सभी, बिना रत्तीभर फरक किये, पीढ़ी दर-पीढ़ी युगों से एक-से बने हुए हैं। परस्पर का सम्बन्ध कैसा होना चाहिए, गाँव मे किस परिवार का क्या स्थान और क्या मान होना चाहिए, और हरएक व्यक्ति के कर्तव्य और जिम्मेदारियाँ क्या हैं, आदि सब बातें बारीकी से निश्चित की हुई है और वैसी ही चली आ रही हैं।

ऐसे समाज मे जो बच्चा पैदा होता है उसका स्थान और दायित्व पहले से ही सुनिर्धारित रहता है। ज्यो-ज्यो वह बड़ा होता जाता है, उसे अपना यह दायित्व निभाने की क्षमता अपने में पैदा करनी होती है। उसके जीवन का ब्योरेवार तौर तरीका पहले से तय है, जिस पर उसे जीवनभर चलना है, अत धीरे धीरे उसे अपने को उस पुरानी लीक के लायक बना लेना होता है। उसे खुद सोचने के लिए बहुत कुछ नही रह जाता है कुछ जानना परखना या अपने लिए कुछ चुनना, यह सब उसके लिए सुतराम् अनावश्यक है। वह जानता है कि उसका समाज एक अचल और अपरिवर्तनीय सांचा है और उसे खुद उस सांचे के अनुरूप ढलना है।

तेजी से बदलता हुआ विश्व

परन्तु आधुनिक समाज का, जैसे किसी एक शहर का, चित्र देखें तो वह इससे बिलकुल विपरीत दिखाई देगा। उस समाज मे कई दिशाओं में निरन्तर परिवर्तन होते हुए दिखाई देंगे, जैसे कि उत्पादन की नयी पद्धति चालू हो गयी है नयी-नयी वस्तुएँ पैदा हो रही है, आवागमन के तथा समाचार-सचार के नये नये प्रकार दाखिल हुए है, और इन सबका उपयोग बढ़ता जा रहा है। इनके कारण और ऐसे दूसरे दूसरे परिवर्तनों के कारण मनुष्यो के स्वभाव मे भी परिवर्तन होने लगा है। उनका रहन सहन, उनके काम की पद्धति, फुरसत का उपयोग, उनके मनोरजन का स्वरूप—सब बदल गये हैं और बदलते जा रहे हैं। लोगो के जीवन मे और समाज की प्रवृत्तियो मे होनेवाले इन सब परिवर्तनों के कारण मनुष्य-मनुष्य के बीच के सम्बन्ध बदलते है और उनके तौर-तरीके बदलते हैं।

ऐसे खुले समाज मे विश्वव्यापी तेज सचार-साधनो के कारण विचार और जानकारियाँ जनता तक पहुँचाना सहज हो जाता है। लोग केवल अपने परम्परागत विश्वासो, रूढ़ियों और दार्शनिक तत्त्वो को ही नहीं, बल्कि दूसरे समाजो की सस्कृति और सभ्यता को भी शीघ्र ही जान लेते हैं और उनकी परस्पर तुलना करके देखने का अवसर भी उन्हें मिलता है।

ऐसे समाज में हम लोगो की आकांक्षाओं और आदर्शों को भी तेजी से बदलते हुए देखते हैं। युगो-युगो से सामान्य जनता ने अपनी वर्तमान स्थिति को भाग्य का अथवा ईश्वर का विधान मान लिया था और उत्तम स्थिति लाने के लिए किसी भी प्रकार के सुधार का विचार तक नही किया था। परन्तु अब

तो निरन्तर उत्तरोत्तर होनेवाले परिवर्तनों के कारण सामान्य जनता की भावाएँ और आकांक्षाएँ भी जाग उठी हैं। प्रत्येक आदमी को विश्वास हो चला है कि उसका आर्थिक और सामाजिक स्थान मान सुधारा जा सकता है। लोग आज विषमता अन्याय और शोषण को गृहीत मानकर चलने को तैयार नहीं है। इसीका परिणाम हम देखते हैं कि ससारभर मे क्रान्तिकारी आन्दोलन प्रारम्भ हो गये हैं, जो विवेक और समझ बूझ के साथ तेजी से समाज को बदल देने और आज से अच्छी स्थिति म पहुँचने को उद्यत हैं।

इन सबका आशय यह है कि विश्व के इतिहास म पहली बार विशाल जन-साधारण के सामने अपने जीवन की उन्नति की दृष्टि स अपने लिए अनुकूल वस्तुओं को चुनने का वास्तविक अवसर उपस्थित हुआ है। यह विकल्प अन्न-वस्त्र आवास मनोरजन आदि साधारण बातो से लेकर आजीविका और जीवन पद्धति ही नहीं जीवन मूल्यो एव राजनैतिक-सामाजिक पद्धतिया और दृष्टिकोणों तक, सभी क्षेत्रों में प्रस्तुत हुआ है। बदली हुई नयी परिस्थिति से स्वाभाविक ही आज के युवक विशेषत छात्र बहुत हद तक प्रभावित हो रहे हैं। उनको जन्म देनेवाली उस एकांगी सस्कृति की सीमाओं में अब वे अधिक समय तक आँख मीचकर चल नहीं सकते। परम्परा से जो पद्धति चली आयी है उसीसे आज की समस्याओ और परिस्थितियों का समाधान वे नही कर सकते। इस स्थिति मे उपर्युक्त अवसर उनमे एक नयी शक्ति का भान करा रहा है। आखिर वह शक्ति प्रस्तुत विकल्प मे से किसी एक को चुनने की स्वतत्रता में ही है। तो हम विश्व के चारों ओर युवकों को इसी अवसर का लाभ उठाने में व्यस्त देख रहे हैं।

इस अवसर का उपयोग करने का रूप पुरानी पीढ़ी के लोगों को कहीं भला लगता है कहीं कम भला लगता है तो कही एकदम बुरा भी लगता है। लेकिन उन प्रवृत्तियो के बारे मे निर्णय करते समय हमे उनके पीछे निहित बुनियादी और प्रमुख तत्त्वो को नजर-अदाज नही करना चाहिए। हमें भूलना नहीं चाहिए कि यह असन्तोष मानव इतिहास म एक नयी प्रचण्ड शक्ति—सृजन शील मानस की शक्ति—के आविर्भाव का लक्षण है।

मनुष्य सदा सृजनशील ही रहा है। परन्तु उसकी गुप्त सृजनशीलता की बूँद भर ही अब तक काम मे ली गयी है। लाखों-करोडो युवको की शक्ति पिछले युगो मे समाज द्वारा परम्परा से मान्य पद्धतियों के अनुरूप बनने मे और अपना गुजारा चलाने मे ही खर्च हुई है। इन लाखो-करोडो युवको की शक्ति मुक्त

होती है तो यह मानव-समाज के नवनिर्माण में, जो आज से अधिक उत्तम और सुन्दर जीवन जीने का अवसर देगा, बहुत काम आ सकती है।

भारत तथा विश्व के युवक

विश्व की बात मैं नही जानता, पर यहाँ भारत मे इस बदलते विश्व के स्वरूप और परिणामो को जाननेवाले बहुत कम लोग हैं। अधिकांश लोग समाज की बनी-बनायी लीक के अनुरूप ही सोचने के आदी है, भले उसमे इधर-उधर कुछ फेर फार कर लें, कि नयी पीढ़ी को उस लीक के अनुरूप ही बनना चाहिए। वे इस बात के लिए उत्सुक है कि जो भूत बोतल से बाहर निकल पड़ा है, उसे फिर से बन्द कर दिया जाय। हमारी शिक्षा पद्धति युवको को बदलते विश्व के योग्य बनाने मे, परिवर्तन के प्रवर्तक और स्वामी के रूप मे गढने मे, सर्वथा अयोग्य है। वे जिस विश्व में जी रहे हैं उस वर्तमान नये और अजीब विश्व का सही भान कराने की क्षमता उस शिक्षा-पद्धति में बिलकुल नही है।

इसलिए हमारे यहाँ के युवको को बदलते विश्व की हवा का स्पर्श तो हो गया है, परन्तु उसके स्वरूप और उसमें निहित शक्ति से अवगत होना अभी बाकी है, और वे उससे बहुत दूर हैं। अर्ध जागृति की अवस्था मे वे अस्थिर होकर भटक रहे हैं।

इस बात की पूरी आशंका है कि कोई भी व्यक्ति और हर एक व्यक्ति इस नयी आकस्मिक शक्ति का लाभ अपना अपना मतलब साधने के लिए करना चाहेगा। इस तरह, हम देख रहे है कि राजनैतिक लोग अपने आन्दोलनो मे छात्रों को ढाल बनाकर चलने की चेष्टा करते हैं और उद्योगपति हिप्पियो और बीटलों के बहुचर्चित फैशनो के चलते खूब पैसा बना रहे हैं।

भारत के तथा विदेश के युवको में एक बहुत बड़ा अन्तर यह है कि विदेश के युवको का प्रवेश आधुनिक ज्ञान और विचारो के भण्डार मे काफी मात्रा मे हो गया है जो नये विश्व के साथ एकरस होने के लिए आवश्यक दृष्टिकोण निर्माण करने के लिए जरूरी है। यहाँ, भारत के युवक, परम्परा की जंजीरो से मुक्त तो हो गये हैं, लेकिन उस नये ज्ञान भंडार मे अभी इनका प्रवेश अत्यल्प ही हो पाया है। इसीलिए प्रत्यक्ष में हम देख रहे हैं कि पाश्चात्य देशो के छात्र आन्दोलन का वर्तमान जागतिक ज्वलन्त समस्याओं से सम्बन्ध रहता है, जैसे—वर्णभेद की समाप्ति, उपनिवेशवाद का विरोध, वियतनाम का युद्ध,

सर्व सहयोगी लोकतन्त्र आदि। परन्तु यहाँ भारत मे विशाल और वास्तविक दृष्टिकोण के अभाव के कारण युवक अपने सकीर्ण दायरे मे ही अपने रगीन चश्मे से समस्याओं को देखते हैं और उसीके अनुसार काम करते हैं।

दूसरा भी एक भेद है और वह है आर्थिक स्थिति का। पश्चिम मे सम्पत्ति मे काफी विषमता के होते हुए भी प्रत्येक व्यक्ति आश्वस्त है कि उसे जीविका का कोई-न-कोई साधन मिलेगा ही। यहाँ तो, हमारी बेढगी अर्थनीति के कारण प्रत्येक शिक्षित युवक और युवती को अनिश्चय और अनाश्वासन के निराशामय अनुभवों से गुजरना ही पडता है। इसकी बुरी छाप यहाँ के युवकों के सम्पूर्ण चारित्र्य पर पडती है। यह स्थिति उनको विशाल और व्यापक प्रश्नो के बजाय व्यक्तिगत और तात्कालिक प्रश्नो पर ही ध्यान केन्द्रित रखने के लिए विवश करती है।

फिर भी उनके कुछ ऐसे आन्दोलन हुए हैं, जिनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध उनके अपने हितों से नहीं था, बल्कि उनमे विद्यार्थियो के अन्दर व्यापक समाज के साथ, मानवता के साथ, एकरूप होने की आकाक्षा व्यक्त हुई थी। लेकिन हाँ, वह एकरूपता प्राय राज्य की सीमा तक, भाषा या धर्म या जाति की सीमा तक ही फैलकर रह गयी थी। यह इसलिए हुआ था कि उनके दृष्टिकोण की सीमा ही वहीं तक थी। इसमे उनका अपना दोष नही था, बल्कि दोष उनका था जिन पर उन्हें शिक्षित करने का दायित्व है।

इस प्रकार, मेरी दृष्टि से, समस्या सबसे पहले बडो की है कि वे वर्तमान समाज मे युवको के बदलते हुए स्थान और दायित्व को समझें और उसकी पूर्ति मे अपनी मदद दें। यह दायित्व, जैसा मैंने सकेत किया है, जीवन के सभी क्षेत्रो को बदलने का है। इसके लिए उचित दृष्टि, सक्षम साधन और योग्य कुशलता से सम्पन्न होने की जरूरत है। इस बात को ठीक से समझ लेना चाहिए कि नयी पीढी को परिवर्तन के भी पूर्वनिर्धारित तरीको का ही पालन करने के लिए विवश करना ही घोर आत्मवचना ही है। मार्क्स, लेनिन या गाधी ने अपना उत्कृष्ट योगदान अवश्य दिया है और उनकी देन भविष्य मे अधिक समय तक स्मरणीय रहनेवाली है, परन्तु नयी पीढी को नये विश्व का सामना करना है, नयी ही समस्याओं से मुकाबिला करना है और उसमे से नयी अन्तर्दृष्टि और नये सत्य का दर्शन करना है। इस समझदारी के साथ प्रयत्न करें, तभी युवक-समस्या का समाधान खोजने का कार्यक्रम कुछ हद तक सफल हो सकेगा।•

तरुण शान्ति सेना : एक परिचय

• यह १४ से २२ वर्ष के बीच के युवक-युवतियों के उत्तरदायित्व के प्रशिक्षण तथा आत्म प्रकाशन के माध्यम द्वारा अपने व्यक्तित्व के विकास करने का रचनात्मक मार्ग है।

• युवकों में स्वस्थ संस्कार डालने और उनको स्वावलम्बन तथा सामुदायिक प्रयत्नों के कार्यक्रम उपलब्ध कराने का आन्दोलन है।

• विद्यार्थियों और युवकों में राष्ट्रीय पुनर्रचना के कामों के प्रति उत्तरोत्तर अधिक रुचि उत्पन्न कराने और उनमें प्रत्यक्ष भाग लेने के लिए उत्साह बढ़ाने का संगठित प्रयास है।

• युवकों में ऐसी वृत्तियाँ तथा दृष्टिकोण तैयार करने के प्रशिक्षण का प्रयास है, जिससे देश और दुनिया में शांति स्थापित हो।

• शिक्षा-प्रणाली के दोषों को शांतिपूर्ण तरीकों से दूर करने का एक विधायक कार्यक्रम है।

कौन शामिल हो सकता है ?

कोई भी युवक या युवती, जो

• १४ से २२ वर्ष की उम्र का हो, (विशेष परिस्थिति में अपवाद किया जा सकता है) शांतिमय समाज के लिए काम करने के तरुण शांति-सेना के प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करे, और अपने मानव-बन्धुओं की सेवा के लिए तत्पर हो।

• राष्ट्र-निर्माण के विधायक काम में सालभर में एकसाथ एक महीना या दो बार में दो पक्ष का समय देने के लिए तैयार हो।

• लोकतांत्रिक-पद्धति, सर्व-धर्म समभाव, राष्ट्रीय एकता और विश्वशांति में विश्वास रखता हो।

• जो १ रु० वार्षिक शुल्क जमा करता हो।

पूर्व-पीठिका

तरुण शांति सेना की पूर्व संस्था किशोर शांति दल के नाम से गुजरात मे सं १९६२ मे हुई थी। गुजरात की नयी तालीम की पाठशालाओ मे इसका प्रारम्भ हुआ। बाद मे शांति सेना मंडल की युवक शाखा के रूप मे इसका विकास हुआ। इस दल ने गुजरात के ग्रामीण क्षेत्र मे रचनात्मक कार्यों में हिस्सा लिया।

अखिल भारत शांति सेना मण्डल ने अगले वर्ष इस विचार को आगे बढाया और हर साल अखिल भारतीय स्तर का 'श्रम-स्वाध्याय शिविर' युवक और युवतियो के लिए आयोजित किया गया।

इन शिविरो मे जो विद्यार्थी आये थे, उन्होंने अपने यहाँ किशोर शांति-दल के केन्द्र स्थापित किये।

अब तक निम्नांकित राज्यो में किशोर शांति दल के केन्द्र गठित हुए हैं। १. आसाम, २ प० बंगाल, ३ बिहार, ४ गुजरात, ५ केरल, ६ मद्रास, ७ महाराष्ट्र, ८ मध्यप्रदेश, ९ उडीसा, १० राजस्थान, ११ त्रिपुरा, १२ उत्तरप्रदेश। इन दलो को अब तरुण शांति सेना के रूप मे परिवर्तित किया जाएगा।

'विद्यार्थियो मे अशांति' के प्रश्न पर लक्ष्मीनारायणपुरी (बिहार) में आचार्य विनोबाजी के सान्निध्य मे नवम्बर १९६६ मे दो दिन का शिविर आयोजित किया गया। इसमें जयप्रकाश नारायण और काकासाहेब कालेलकर दोनो दिन उपस्थित थे। आठ प्रदेशो के विद्यार्थियो ने इसमें हिस्सा लिया।

देश के विभिन्न प्रांतो मे छुट्टियो के दिनों में प्रादेशिक शिविर भी किये गये। केवल सन् १९६७ ही में ऐसे १७ शिविर हुए।

इन शिविरों मे आये हुए विद्यार्थियो मे से ३०० से अधिक विद्यार्थियो के साथ बराबर पत्र-व्यवहार चल रहा है। पत्र के विषय भिन्न भिन्न विद्यार्थियो के अनुसार भिन्न भिन्न होते हैं। भारत की अन्न समस्या, घेराव, पक्ष परिवर्तन और नक्सलबाडी जैसे राष्ट्रीय स्तर के प्रश्न, और 'पश्चिम एशिया का संघर्ष', 'भारत-पाकिस्तान का सम्बन्ध' इत्यादि अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व के प्रश्न से लेकर व्यक्तिगत समस्याओ से सम्बन्धित प्रश्न तक विषयो पर पत्र-व्यवहार होता है।•

संगठन

प्रत्येक स्कूल या कालेज की अपनी 'तरुण शांति सेना' इकाई हो सकती है। इकाई का नेता सर्वसम्मति से एक साल के लिए चुना जायगा। वह इकाई की बैठक बुलायेगा, सदस्यों की सूची और उनकी उपस्थिति का रजिस्टर रखेगा और वाराणसी स्थित राष्ट्रीय कार्यालय को तथा प्रादेशिक कार्यालय को त्रैमासिक रिपोर्ट भेजेगा।

तरुण शांति सेना इकाई में कितने सदस्य होंगे, इसकी कोई सीमा नहीं है। तरुण शांति सेना के बुनियादी सेल में कम-से-कम दो सदस्य रहेंगे। जहाँ दस सदस्य होंगे वहाँ यह 'दस्ता' कहलायगा। हर दस्ते में ९ सदस्य रहेंगे और एक दस्ता नायक रहेगा। ३० सदस्यों का दल जत्था कहलायेगा। इसमें तीन दस्ते, एक सहायक जत्थानायक और एक जत्थानायक रहेगा।

प्रत्येक जिले का अपना जिला संगठन हो सकता है जिसमें जिले की विभिन्न इकाइयाँ रहेंगी। जिला संचालक प्रादेशिक या राष्ट्रीय संगठन द्वारा मनोनीत किया जायगा। राष्ट्रीय संगठन प्रदेश संचालक या समिति को भी मनोनीत करेगा। जिला और प्रदेश के संगठन काम के प्रबंध के लिए एक दूसरे के साथ तथा अन्तर प्रादेशिक कार्यक्रमों एवं राष्ट्रीय जिम्मेदारियों के लिए राष्ट्रीय कार्यालय के साथ संबंधित रहेंगे। सभी मामलों में, जहाँ आम राय नहीं हो सकेगी अंतिम निर्णय राष्ट्रीय संस्था के हाथ में रहेगा।

तरुण शांति सेना के कार्यक्रम की योजना में मार्गदर्शन करने और सलाह देने के लिए प्रादेशिक तरुण शांति सेना जिला स्तर पर सलाहकार समितियाँ गठित करेगी। राष्ट्रीय तरुण शांति सेना प्रादेशिक सलाहकार समिति का गठन करेगी।

तरुण शांति सेना की वर्दी लड़कों के लिए सफेद कमीज और सफेद हाफपैंट तथा लड़कियों के लिए सफेद स्कर्ट और ब्लाउज या सलवार-कुर्ता या साड़ी होगी। लड़का और लड़की दोनों के लिए केसरिया रंग की खादी पट्टी कमर के चारों ओर और उसी रंग का रूमाल गर्दन के चारों ओर बाँधने के लिए रहेगा। तरुण शांति सेना का छोटा सा पदक छाती पर लगा हुआ रहेगा।

तरुण शांति सेना के उद्देश्यों तथा उसके संकल्प को स्वीकार करनेवाले शिक्षक इस कार्यक्रम में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं। कल्पना यह है कि वे तरुण शांति सेना के सदस्य के रूप में नहीं बल्कि मार्गदर्शक या सलाहकार के रूप में काम करेंगे। इसके शिविरों तथा इसके पाठ्यक्रमों में उनके योगदान का स्वागत किया जायगा।

प्रशिक्षण का पाठ्यक्रम

तरुण-शांति-सेना के प्रशिक्षण मे निम्नलिखित कार्यक्रम शामिल होंगे :—

१. शारीरिक प्रशिक्षण : जैसे कवायद, योगासन, उत्पादक श्रम तथा खेल कूद आदि।

२. समाज सेवा : छात्र-समुदाय या स्कूल के बाहर के समुदाय के बीच सेवा-कार्य।

३. सामान्य शिक्षण . देश-विदेश की तात्कालिक घटनाओं और वर्तमान समस्याओं का अध्ययन।

४. सामूहिक जीवन : ऐसे शिविरों मे भाग लेकर सहजीवन का अभ्यास करना, जिनमे सामुदायिक सेवा और राष्ट्रीय उत्थान के लिए पराक्रम युक्त कार्य हाथ मे लिए गये हो।

प्रशिक्षण की रूपरेखा

(क) शारीरिक कुशलता : प्रत्येक व्यक्ति की शारीरिक अवस्था को ध्यान मे रखते हुए उसकी क्षमता मे विकास—जैसे चलना, दौड़ना, उछलना, तैरना, कूदना, फेंकना, साइकिल चलाना और योगासन आदि मे विकास।

(ख) संगठन की कुशलता : तरह-तरह की सामूहिक कवायद, पहरा चौकी, कुशलता के साथ सही संदेश भेजना, जनतांत्रिक ढग से सभा का आयोजन, सर्वसम्मत निर्णय पर पहुंचना, यात्रा और शिविरों की योजना बनाना तथा सामूहिक गान आदि।

(ग) व्यावहारिक कुशलता : छोटे मोटे औजार, घरेलू तथा अन्य सामान्य उपयोग में आनेवाले साधनो की सम्हाल और मरम्मत तथा उनके प्रयोग की क्षमता। शिविर-व्यवस्था के लिए आवश्यक कुशलताएँ सीखना—जैसे तम्बू गाड़ना, छप्पर या पर्दे लगाना, रस्से बटना तथा गाँठें लगाना, खाई खोदना, नाली बनाना, सादा भोजन पकाना, खुली जगह में चूल्हे लगाना, कम-से-कम सामग्री और कम-से कम समय मे अच्छा भोजन पकाना आदि।

मानचित्र का अध्ययन, मार्ग ढूँढना, मार्ग की दिशा देना और अनुसरण करना, व्यक्तिगत सामग्री को इस तरह बांधना कि पीठ पर सुविधा के साथ ढो सकें। सामूहिक कार्य मे भाग लेने की क्षमता, कार्यक्रम की योजना बनाना, उसका सचालन तथा मूल्यांकन करना।

(घ) सेवा की तैयारी अपने निवास तथा अध्ययन कक्ष की सफाई, पोषण के सरल सिद्धान्त और उनके अनुसार साधारण भोजन का चुनाव तथा उसकी तैयारी।

सफाई और स्वास्थ्य स्वच्छ और स्वस्थ रहन-सहन के मूल सिद्धान्त और उनका प्रयोग बीमारों की देखभाल प्राथमिक चिकित्सा। आग बुझाना और लोगों को बचाना।

सूचना इस भाग में शास्त्रीय ज्ञान, प्रयोग और प्रदर्शन तथा स्थानीय जनता की सेवा से अनुबन्धित रहेगा। परिस्थिति के अनुसार सब्जी उत्पादन और बागवानी का कार्य भी इस कार्यक्रम में शामिल हो सकता है।

(च) तात्कालिक घटना चक्रों का अध्ययन (१) स्थानीय क्षेत्र का दैनिक जीवन उसका आर्थिक सामाजिक और सांस्कृतिक पहलू राजनैतिक व्यवस्था रोजगारी स्वास्थ्य शिक्षा मनोरंजन संभावित तनाव के क्षेत्र शिविर-क्षेत्र के पड़ोस का अध्ययन और निरीक्षण पड़ोस की समस्या।

(२) अपने देश का रहन सहन, इसकी भाषायी सांस्कृतिक और आर्थिक भिन्नता, अनेकता में एकता की समस्याए, प्राकृतिक साधन और विकास की समस्याएँ।

(३) संसार जिसमें हम रहते हैं इसके राजनीतिक सामाजिक और आर्थिक ढाँचे में तेजी के साथ मूल परिवर्तन। तेज गति से बढ़ते हुए अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के साथ साथ राष्ट्रीयता की भावना की बढ़ती ताकतें। अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाए और उनका कार्य।

(४) विज्ञान का प्रभाव सोचने के रूढ़िग्रस्त तरीके तथा उनके प्रति अणुशक्ति तथा स्वचालित यन्त्रों की चुनौती।

(५) संघर्षों का हल आये दिन होनेवाले संघर्षों का ऐसे तरीकों से अध्ययन करना जिनके द्वारा वे आसानी से सुलझाये जा सकें। ऐसे संघर्ष निम्न लिखित क्षेत्रों में हो सकते हैं

(१) आपसी सम्बन्ध परिवार, व्यापारिक शैक्षिक या अन्य संस्थाओं के सदस्यों के बीच होनेवाले तनाव।

(२) एक दूसरे समुदाय के बीच सम्बन्ध धार्मिक परंपरा, रीति रिवाज, सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठ-भूमि तथा भाषाओं की भिन्नता एवं आर्थिक स्वार्थ आदि के कारण उत्पन्न होने वाले तनाव।

(३) अन्तरप्रान्तीय सम्बन्ध राष्ट्रीय, राजनैतिक और आर्थिक स्वार्थ की विषमता से उत्पन्न होनेवाले तनाव।

मेल मिलाप की कला और शास्त्र : सामाजिक न्याय, व्यक्तिगत और राष्ट्रीय आजादी और विवेक की स्वतन्त्रता के लिए किये जानेवाले संघर्षों में अहिंसा के प्रयोग के ऐतिहासिक उदाहरणों तथा शांति और अहिंसा के नायकों का अध्ययन।

मेल-मिलाप करानेवालों के आवश्यक व्यक्तिगत गुण : १ वह ध्यान आदि के द्वारा स्वानुशासन प्राप्त कर चुका हो। और २ यह आस्था रखता हो कि मनुष्य अपने आप में एक अच्छा प्राणी है जो अच्छाई और आध्यात्मिक सत्य की ओर आकृष्ट होता है। ३ अपने इस विश्वास के आधार पर वह अहिंसक कार्यक्रम का आयोजन कर सकने में समर्थ हो।

सूचना : घ, च और छ में बताये गये विषयों के सैद्धान्तिक पहलू का अध्ययन सावधानी और अनुशासित ढंग से करना चाहिए। इन विषयों में केवल भाषण प्रणाली को न अपनाकर छात्रों के पूर्ण सहयोग द्वारा अध्ययन की सक्रिय विधियाँ अपनानी चाहिए। इन विधियों में निरीक्षण और अनुभव, लेख-पाठ, ग्रुप-चर्चा और वाद-विवाद आदि पर आधारित विद्यार्थियों के विवरण आदि शामिल हो सकते हैं।

कार्यक्रम का संयोजन

तरुण शांति सेना के कार्यक्रम निम्न प्रकार होंगे :

शिविर

तरुण-शांति-सेवक साल भर में तीस दिन शिविरों के लिए दें, ऐसी अपेक्षा है। ये शिविर 'श्रम-स्वाध्याय-शिविर' होंगे, जिनमें क्षेत्र और मौसम की अनुकूलता के अनुसार तरह-तरह के कार्यक्रम जैसे—सफाई, फसल-कटाई, रास्ते बनाना, कुएँ खोदना इत्यादि लिये जा सकते हैं। शिविर के कुछ समय का उपयोग देश की परिस्थिति के विश्लेषणात्मक अध्ययन, भारत की सांस्कृतिक परम्परा की महत्ता, और हाथ में लिये गये कार्य के चिन्तन के लिए किया जायगा।

उपर्युक्त कार्यक्रम सैनिकों के लिए अनिवार्य हैं। इसके अलावा उन्हें सालभर में निम्नांकित कार्यक्रम के लिए भी प्रोत्साहित किया जायगा।

(अ) सप्ताहान्त शिविर : हर सप्ताह के अन्त में युवक इकट्ठा होकर सामूहिक रूप से स्वावलम्बन, अध्ययन, और शरीर-श्रम के कामों में शरीक होंगे।

(आ) अध्ययन गोष्ठी : विद्यार्थी-जगत् से सम्बद्ध प्रश्नों पर समय-समय पर चर्चा-गोष्ठियों का आयोजन।

(इ) स्वाध्याय-योजना शांति सेना मण्डल द्वारा आयोजित पत्र-पाठ योजना में शामिल होकर स्वाध्याय।

(ई) विशिष्ट कार्यक्रम सम्प्रदाय निरपेक्ष पद्धति से उत्सव मनाना, साग सब्जी फल फूल आदि के उत्पादन-कार्यक्रम में हिस्सा लेना उसका संयोजन करना, गरीब जनता के साथ सक्रिय सहानुभूति के तौर पर एक समय का भोजन खर्च बचाकर भेजना सद् साहित्य का प्रचार करना शांति बिल्ले शांति-कार्डों और शांति आंदोलन सम्बन्धी पत्रिकाओं की बिक्री करना इत्यादि।

(उ) एक वर्ष स्नातक आप यदि स्नातक हैं और एक वर्ष अपनी सेवा देने को तैयार हैं तो —

शांति-सेना मण्डल ऐसे स्नातकों की अर्जियाँ विशेष कार्यक्रमों को हाथ में लेने के लिए स्वीकार करेगा। चुने हुए स्नातकों को एक वर्ष के लिए साधारण जीवनमान के आधार पर निर्वाह व्यय भी दिया जायगा। स्नातकों को ग्रामीण पुनर्निर्माण के काम में लगे युवकों के साथ किसी देहाती क्षेत्र में या ऐसे सुदूर सीमावर्ती क्षेत्र में जहाँ शांति-सेना का काम चल रहा है काम करने के लिए भेजा जा सकता है।

सप्ताहान्त शिविर का संयोजन

(क) सप्ताहान्त शिविरों के निम्नलिखित लक्ष्य हो सकते हैं —

१ आंदोलन में रुचि लेनेवालों को इकट्ठा मिलने का अवसर प्रदान करना
२ नये लोगों से सम्पर्क
३ युवकों को जन सेवा में लगाना
४ नये शांति सैनिक प्राप्त करना

(ख) शिविर में भाग लेने वालों और जनता की सुविधा को ध्यान में रखते हुए शिविर का स्थान और समय पहले तय कर लेना चाहिए। शिविर के लिए (१) श्रमिक बस्ती (२) हरिजन बस्ती (३) मध्यमवर्गीय क्षेत्र और (४) शैक्षणिक केन्द्र जैसे स्थल चुनना चाहिए।

(ग) शिविर में भाग लेनेवालों को स्थान और समय का पूरा विवरण पहले ही भेजना चाहिए।

१ तारीख के साथ दिन का भी नाम दीजिए।
२ शिविर में आने का सही समय बताइए।
३ शिविर के पते में सड़क का नाम क्षेत्र का नाम और मकान का नम्बर भी लिखें।

४ शिविर जिसके निवास पर हो उस व्यक्ति का नाम लिखिए।

नोट —उपर्युक्त सूचनाएँ पोस्टकार्ड या साइक्लोस्टाइल कागज पर स्पष्ट छपी होनी चाहिए। स्थानीय समाचार-पत्रों में भी सूचना देनी चाहिए।

(घ) शिविर का प्रारम्भ किसी एक गीत द्वारा करना चाहिए।

(च) सबसे पहले दिनभर का कार्यक्रम तय कर लें। (अच्छा होगा कि पूर्व-गोष्ठी में ही कार्यक्रम की रूपरेखा तय कर ली जाया करे।)

१ कार्यक्रम स्वयं न तय करें

२ छात्रों को अपने विचार स्वयं रखने दें, किन्तु इस बात का ध्यान रखा जाय कि शिविरार्थियों की अभिव्यक्ति की लालसा का यह अवसर वाद विवाद का रूप न धारण कर ले। अभिव्यक्ति की आजादी के साथ साथ समरसता बनी रहनी चाहिए।

३ दैनिक कार्यक्रम

(क) छोटी प्रार्थना या ध्यान

(ख) स्थानीय क्षेत्र में जन-सम्पर्क

(ग) शिविरार्थियों की आपस में मुक्त चर्चा

(घ) स्वाध्याय, अथवा सामूहिक अध्ययन

(ङ) खेल, कवायद आदि

(च) सांस्कृतिक कार्यक्रम

(छ) प्रार्थना के चुनाव में सावधानी

१ यह पृथक्‌तावादी और साम्प्रदायिक न हो।

२ भाषा सरल हो। किन्तु ऐसे श्लोक जो अधिकांश शिविरार्थियों को याद हो, गाये जा सकते हैं।

३ अपने खुद के उच्चारण पर सतर्क रहें। भविष्य में आप इस योग्य हो सकते हैं कि दूसरों के उच्चारण शुद्ध करा सकें।

(ज) मौन प्रार्थना या ध्यान

१ शिविरार्थियों के लिए प्रार्थना या ध्यान का समय बहुत लम्बा न हो।

२ मौन प्रार्थना का उद्देश्य समझाइए, जो भाईचारे और सेवा की भावना का विस्तार तथा उच्चतर सत्‌कर्म व सत्य की खोज के लिए की जाती है।

३. कुछ पुस्तकों—जैसे 'सत्य के प्रयोग' और 'गीता प्रवचन' आदि के प्रसंग भी पढ़कर सुनाइए।

(ठ) खेल कूद :

तरुण शांति सेना शिविर मे खेल सबसे महत्वपूर्ण अंग है। खेल के संयोजन को निम्न बातें ध्यान मे रखनी चाहिए

१ निष्पक्ष होना। २ प्रतियोगिता को बढावा न देना।

३ प्रत्येक व्यक्ति को अपना रिकार्ड रखने के लिए प्रोत्साहित करना, जिससे वह अपनी क्षमता का विकास कर सके।

४ ऐसे खेलो को प्रोत्साहित करना, जिसमे सामूहिक और सहकारी प्रयत्न की आवश्यकता महसूस हो।

५. उन खेलों को, जिनमें मजबूत लडको को अपने से कमजोर लडको की सहायता करने का मौका मिल सके, प्रोत्साहित करना।

(ड) कवायद :

कवायद के समय तरुण शांति सेना संगठन को काफी सावधान रहना चाहिए। कवायद से जो अनुशासन हम सीखते है, उससे लाभ उठाने का उद्योग तो करना चाहिए, लेकिन फौजो की तरह कवायद मे लादे जाने वाले अनुशासन से हमें बचना चाहिए।

१ आदेश देने के पूर्व उनका अर्थ भली भाँति समझा दें।

२ आदेश स्पष्ट हो।

३ किसीसे गलती हो जाय तो व्यग्र या नाराज न हो।

४ तरुण शान्ति सेवको को भी नेतृत्व करने और आदेश देने का अवसर प्रदान करें। ५ कार्यक्षमता के साथ विनोदप्रियता बनाये रखें।

६ बिना फौजी तरीका अपनाय लोकनृत्य द्वारा भी अनुशासन का प्रशिक्षण किया जा सकता है।

(ढ) सांस्कृतिक कार्यक्रम .

शिविर मे प्रस्तुत किये जानेवाले सांस्कृतिक कार्यक्रम का स्तर संगठक की रुचि सूझबूझ और अनुभव पर आधारित होता है।

१ कार्यक्रम के चुनाव मे शान्ति सेना के मूल्यो को प्रथम वरीयता देनी चाहिए। (संकुचित क्षेत्रीय भावना और संकुचित राष्ट्रीयता से बचना चाहिए।)

२ आयोजन में भाग लेनेवालो को आत्माभिव्यक्ति का पूर्ण अवसर दें।

३ शांति सेना के आदर्शों को प्रस्तुत करते हुए यह ध्यान रखें कि कलात्मकता का ह्रास न हो और अक्षमता न आने पावे।

(ग) सप्ताहान्त शिविरों में स्थानीय लोगों से सम्पर्क करना बहुत महत्वपूर्ण है। नये भर्ती होनेवालों को उन सवालों को समझने का मौका मिलता है, जो तरुण शांति सेवकों से लोग पूछते हैं, और अनुभवी सेवकों को आंदोलन के प्रति लोगों के उत्साह की मात्रा जानने का अवसर मिलता है। इससे स्थानीय समस्याओं के अध्ययन का भी अच्छा मौका मिल जाता है।

सम्पर्क के तरीके —

१. जन-सेवा—जैसे सफाई, बच्चों की देखभाल, चिकित्सा सहायता
२. विद्यालयों में सफाई, या बागवानी के काम में मदद देना
३ प्रचार-कार्य जैसे साहित्य बिक्री और पाम्फ्लेट (पुस्तिकाएँ) बाँटना
४ सांस्कृतिक आयोजन जैसे नाटक, सायंकालीन संगीत, खेल कूद आदि
५ तथ्य इकट्ठे करना—जैसे प्रारम्भिक ढंग का सामाजिक और आर्थिक सर्वे करना।

जन-सम्पर्क के समय तरुण शांति सेवक निम्नांकित बातों का ध्यान रखें.

१ भाषा सरल और सौम्य हो।
२. कटु आलोचना सुनने को सदा तैयार रहे।
३ अपनी पहले की कमियाँ और गलतियाँ बेहिचक स्वीकार करें। सप्ताहान्त शिविरों में जनसम्पर्क ही आगामी सम्बन्ध का प्रारम्भ हो सकता है।
१. आंदोलन में रुचि रखनेवालों का नाम-पता नोट करें।
२ उनसे दूसरी बार मिलने का समय निश्चित करें।
३ सभी प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयत्न न करें। कुछ ऐसे उत्तर हो सकते हैं, जिनकी पूरी जानकारी तरुण शांति सेवक को न हो। ऐसे प्रश्नों से आंदोलन के नेताओं को अवगत कराते रहें।
४. कुछ लोगों को कुछ पढ़ने की राय भी दें। अध्ययन-सामग्री यदि पास में न हो तो परेशान न हों, इससे दुबारा सम्पर्क का मौका मिलेगा।
५ दूसरी बार के साक्षात्कार का जो समय तय करें, उस समय पर पहुँचने का पूरा ध्यान रखें।

(ङ) अध्ययन के समय में :

१. सबसे पहले अध्ययन के लिए पुस्तक का एक अंश चुन लें।
२. चुना हुआ अंश किसी एक से पढ़वायें और अंत में सभी विचार-विमर्श करें।

शान्ति के लिए एक वर्ष

इस योजना में प्रति वर्ष लिए लगभग सौ स्नातक चुने जायेंगे।

अभ्यर्थियों को निम्नांकित शर्तें पूरी करनी होंगी :—

(क) वे स्नातक या उसके समकक्ष की कोई परीक्षा उत्तीर्ण हों।

(ख) वे शांति-सेना मण्डल द्वारा आयोजित 'चुनाव शिविर' में भाग लेकर शांति-सेना-मण्डल द्वारा नियुक्त विशेषज्ञों की समिति द्वारा ली गयी परीक्षा में उत्तीर्ण हो चुके हों।

(ग) उन्हें तीन महीने का पूर्व-प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

(घ) उन्हें देश-सेवा के लिए (पूर्व प्रशिक्षण-अवधि सहित) एक वर्ष देने की शपथ लेनी होगी।

कार्यक्रम

चुनाव शिविर में चुने गये अभ्यर्थियों को निम्नलिखित स्तरों से गुजरना होगा।

(क) पूर्व-प्रशिक्षण (ख) सेवा-कार्य (ग) विचार-विमर्श सभाएँ

पूर्व-प्रशिक्षण—

इसके तीन भाग होंगे :

(१) शांति सेना मण्डल के प्रशिक्षण-विद्यालय में शांति सेना के सिद्धान्त और प्रयोग का प्रारंभिक शिक्षण—अवधि लगभग १५ दिन।

(२) कुछ उपयोगी कौशल और क्षमताओं का प्रशिक्षण —अवधि लगभग २ माह।

(३) किसी ऐसे सम्मानित व्यक्ति के साथ रहना जो सामाजिक कार्य में स्नातक के मार्गदर्शक के रूप में शांति सेना-मण्डल द्वारा चुना गया हो—अवधि लगभग १५ दिन।

नोट :—पूर्व प्रशिक्षण के उपयुक्त क्रम आगे-पीछे भी हो सकते हैं। पूर्व-प्रशिक्षण की अवधि अभ्यर्थियों की योग्यता के अनुसार निश्चित की जा सकती है।

सेवा-कार्य

प्रत्येक स्नातक को पूरे वर्ष के लिए एक निश्चित कार्य के लिए नियुक्त किया जायगा। ऐसे विद्यार्थियों का एक दल शांति-सेना द्वारा चुने गये एक व्यक्ति के मार्गदर्शन में काम करेगा।

समाज सेवा के लिये चुना गया कार्य स्थान की भिन्नता के हिसाब से भिन्न भिन्न होगा। कार्य का चुनाव निम्न तथ्यों के आधार पर किया जायगा —

क—उम्मीदवार की योग्यता और झुकाव

ख—कार्य क्षेत्र की आवश्यकता

ग—कार्य अपने आपमे इतना चुनौतीपूण हो कि वष के अन्त मे उम्मीदवारो को उसकी सफलता का भान हो सके।

कार्यक्रम का चुनाव शांति सेना मण्डल की राय से स्थानीय सगठक करेंगे। कार्यक्रम में शांति केन्द्रो का सगठन, विद्यालयो की बागवानी मे सहायता और सफाई की व्यवस्था आदि कार्य उठाय जा सकते हैं। शिविर मे सडक बनाना, तालाब खोदना, सिचाई, क्षेत्र विकास, जनोपयोगी सेवाम्रा मे सुधार, जगल लगाना, भूमि रक्षण शिक्षण और स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्य हाथ में लिए जा सकते हैं।

कुछ अनुभव

"इस शिविर मे मेने जिस परिश्रम और खुशी के साथ काम किया है अपनी जिन्दगी मे कभी नही किया", ये शब्द केरल के एक शिविरार्थी के थे।

सभी शिविरो मे शिविर जीवन के सामुदायिक रहन सहन के पहलू पर सबसे अधिक जोर दिया गया था। सामुदायिक रहन-सहन ने देश के भिन्न-भिन्न भाग से आये हुए शिविरार्थियो को एक दूसरे मे हिल मिल जाने और एक उन्मुक्त तथा स्वस्थ वातावरण मे जन तान्त्रिक रूप से कार्य करने का अवसर दिया। प्रत्येक शिविर मे विशिष्ट मेहमान और वक्ता आये और उनके प्रवचनों तथा भाषणो पर खुलकर चर्चाएं हुई। यद्यपि विश्व और अपने देश के आज के अनेक महत्त्वपूर्ण प्रश्नो पर शान्ति सेना मडल का अपना एक विचार है फिर भी शान्ति सेना मडल इन शिविरो मे अपने विचार लादने का आग्रह नहीं किया क्योंकि इन प्रश्नो पर विद्यार्थी स्वयं अपने स्वतन्त्र निर्णयो पर पहुँचें शान्तिसेना मण्डल चाहता है कि नेफा के कुछ छात्रो ने इस वाता-वरण का अपने ढग से वर्णन करते हुए लिखा है, "हम लोगो में से प्रत्येक को एक साथ काम करने, खाने और खेलने से भिन्न भिन्न प्रकार के लोगो के विचार इकट्ठे करने का महान अवसर मिला। यद्यपिसैद्धान्तिक रूप से हमारे समूह मे भिन्न भिन्न धर्म के लोग थे फिर भी हम एक-दूसरे धम के बीच कोई पृथकता नही पा सके। हमारी धारणा बनी कि इतनी अच्छी जनतान्त्रिक सस्था हमने कभी नही देखी। शिविर में किसी भी काय के लिए दबाव नही डाला गया।

हम यह कह सकते हैं कि वह एक ऐसा शिविर था जहाँ हर युवक-युवती को अपनी योग्यता और चरित्र की परीक्षा का पूर्ण अवसर मिल सका। इसे राष्ट्रीयता की एक प्रयोगशाला कहा जा सकता है।''

बिहार के शिविर में आये हुए छात्रों का अनुभव बहुत कीमती है। उड़ीसा का एक छात्र लिखता है, "मुझे एक अकाल का कड़ुवा अनुभव मिला, लेकिन दुःखित लोगों के लिए किये गये काम के संतोष द्वारा वह मीठा बन गया।" बिहार के बाहर के बहुत-से छात्रों को नये वातावरण में काम करने का एक अतिरिक्त अनुभव मिला। उन्होंने स्थानीय भाषाओं से नये शब्द सीखे और विभिन्न सामाजिक रीति-रिवाजों से भी परिचित हुए। एक बहुत ही कम हिन्दी जाननेवाले मद्रासी छात्र ने लिखा है, ''मुझे भाषा सम्बन्धी कोई कठिनाई नहीं हुई। लोग प्रेम की भाषा अच्छी तरह समझते हैं।''

बहुत से शिविरार्थियों ने अपने प्रांतों में राहत कार्य जारी रखने का तय किया। कुछ ने पैसे और कुछ ने कपड़े इकट्ठे किये। लेकिन विद्यार्थियों में राष्ट्रीय समस्याओं से सम्बन्धित जो रुचि उत्पन्न हुई वह इन शिविरों का सबसे महत्वपूर्ण परिणाम था। सैकड़ों युवकों, जिनसे शान्ति सेना मंडल का नियमित पत्र-व्यवहार चलता है, उनमें से कुछ ने कहा कि उन्होंने शिविर में भाग लेने के बाद अखबारों को एक भिन्न दृष्टि से पढ़ना शुरू किया है। गुजरात और महाराष्ट्र के लगभग एक दर्जन छात्रों ने लिखा है "बिहार में वर्षा की खबर पढ़कर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई, लेकिन क्या आप यह बताने की कृपा करेंगे कि उस जिले में भी पानी बरसा है जहाँ हम लोग काम करने गये थे।"

•

तरुण शांति सेना

(आवेदन पत्र)

मंत्री,

अ० भा० शांति सेना मण्डल,

राजघाट, वाराणसी–१

प्रिय मित्र,

तरुण शांति सेना के सम्बन्ध में मैंने जानकारी प्राप्त की है। मैं लोकतान्त्रिक पद्धति, सर्व धर्म समभाव और राष्ट्रीय एकता में विश्वास रखता हूँ और यह चाहता हूँ कि भारत के तरुणों की शक्ति रचनात्मक राष्ट्रीय कार्यों तथा विश्व-शांति के प्रयासों में लगे।

मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि शांतिमय समाज के लिए मैं निरन्तर काम करूँगा।

मैं तरुण शांति सेना का सेवक बनना चाहता हूँ। इसकी वार्षिक सदस्यता शुल्क रु० १.०० म० ओ० । डाक टिकट । नकद भेज रहा हूँ।

कृपया मुझे तरुण शांति सेना का सेवक बनाया जाय। मैं अपने बारे में पूरी जानकारी नीचे दे रहा हूँ।

विनीत,

परिचय

(हस्ताक्षर)

१. पूरा नाम ....

२ वर्तमान पता ....

३ स्थायी पता ....

४ जन्म तिथि ....

५ शिक्षा ....

६. तरुण शांति सेना के निम्न काम में सहयोग दूँगा (कृपया उस काम के सामने चिन्ह कीजिये, जो काम करने की आपकी तैयारी हो।)

अ–अपने स्थान पर तरुण शांति सेना केन्द्र बनाऊँगा।

आ–एक साल राष्ट्र सेवा में दूँगा।

इ–साल में एक महीना शिविर में दूँगा।

ई–साप्ताहिक शिविरों में योग दूँगा।

उ–पत्र पाठ योजना में शामिल होऊँगा।

ऊ–तरुण शांति सेना के विशिष्ट कार्यक्रमों में शामिल होऊँगा।

अर्वाचीन युवक-मानस का समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य

प्रो० मार्सल रियो

गत कुछ वर्षों से कई देशो के युवको ने शिक्षको और सशोधनकर्ताओ का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। वे अपने माता-पिता के लिए तथा सामाजिक व्यवस्था के लिए उत्तरोत्तर अधिक चिन्ता और परेशानी का कारण बने हुए हैं। प्राय यह पूछा जाता है कि ये युवक अपने बुजुर्गों की रीति-नीति और रहन सहन को सहज भाव से क्यो नही अपनाते, प्रचलित समाज से अलग ढग का जीवन जीने पर क्यो उतारू हैं।

युवको के असन्तोष के विषय पर विशेषतया द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद से चर्चा आरम्भ हुई है। सन् १९४९ मे सार्त्र ने लिखा था—"आज हमारे युवक बेचैन हैं। अब ये अधिक समय तक छोटा बने रहने को तैयार नही हैं। देखते-देखते ये युवक समाज का एक महत्त्वपूर्ण वर्ग बन जायेगे। उनका बचपन नाहक लम्बा नही किया जा सकेगा, प्रतिष्ठित परिवारो मे आज तक बडे लोगो ने उन्हे जिस उत्तरदायित्वहीन स्थिति मे रख छोडा है, वह स्थिति अब नही रहेगी, अब श्रमिक किशोरावस्था से क्रमिक सक्रमण के बिना ही, एकदम प्रौढावस्था मे पहुंच जायेगे।'

युवक-समस्या के दो दृष्टिकोण

इस समस्या पर दो दृष्टिकोणो से, दो प्रकार से विचार किया जा सकता है। एक दृष्टिकोण तो युवको को प्रचलित समाज के अनुरूप मोडने का है। युवको के व्यवहारो, मनोवृत्तियो, जीवन मूल्यो और बुराइयो का अनेकशः परीक्षण करके इस व्याधि के अचूक निवारणोपाय सुझाये गये हैं। यह रोग निवारण का तरीका है, जो क्रियाप्रधान है। इस तरीके मे यह गृहीत है कि समाज को वर्तमान स्वरूप मे बनाये रखना है और जो उसकी प्रथाओ, रीति-नीतियो और मूल्यो की अवहेलना करने पर तुले हुए हैं, उन्हे समाज के अनुरूप बनाना है। वे गुमराह हैं, उन्हे रास्ते पर लाना है, ताकि समाज का काम सहज भाव से चल सके। यह मार्ग सबसे अधिक कारगर है, सर्वथा रूढिवादी और पूर्णत 'सहज' मार्ग है; यह व्यवस्था का मार्ग है। दूसरा मार्ग—जिसको हमने यहाँ स्वीकार किया है—क्रियाप्रधान कम है, व्यापक अधिक है। कोई समाज अपने

को चाहे जितना प्रगत और समुन्नत मान ले, फिर भी, जैसे आज तक सभी समाजो मे होता आया है, उस समाज मे विकास का सिलसिला बराबर चालू रहता है। इसलिए यह सोचने के बजाय कि युवको की इस व्याधि का निवारण कैसे किया जाय और उन्हें सीधे रास्ते पर कैसे लाया जाय, हमें यह विचार करना होगा कि इन 'गुमराह' युवको के इन उच्छृङ्खल व्यवहारो में कही भावी सामाजिक और सास्कृतिक विकास के नवप्रभात के सकेत तो नही हैं। मूल्यो और विचार धाराओ के सघर्ष का उन्मूलन करने की कल्पना करने के बजाय, हमें यह खोजबीन करनी चाहिए कि वतमान टेक्नालाजी से उत्पन्न नयी उत्पादन क्षमता के प्रतिसाद (रेस्पान्स) स्वरूप नवसमाज के अरुणोदय का तो यह लक्षण नही है।

समाज-निर्माता और औद्योगिक क्रान्ति

चूंकि युवक-असन्तोष आज अनेक समाजो मे दिखाई देता है, इसलिए प्रत्यक्ष व्यापक समाज के स्तर पर हमे उस प्रश्न पर सोचना चाहिए। इसमे मानव की देखी हुई विभिन्न तकनीकी क्रान्तियाँ समायी हुई है। पहली औद्योगिक क्रान्ति के समय—जब कोयले और भाप की शक्ति काम में ली जाने लगी—समाजशास्त्रियो को इसी तरह की समस्या का सामना करना पडा था। उन्नीसवीं शताब्दी के बुर्जुआ वर्ग ने समाज का ऐसा सगठन कर लिया था कि उसमे हर सम्भव लाभ अपने लिए ही प्राप्त कर सके। उस समय की व्यवस्था उस वर्ग की अपनी व्यवस्था थी। श्रमिक लोग उस युग के 'गुमराह' थे। लेकिन श्रमिको ने चालू व्यवस्था मे उथल-पुथल मचायी थी। समाज के लक्ष्य के बारे मे उनकी दृष्टि बुर्जुआ लोगो की दृष्टि से भिन्न थी। आज औद्योगिक क्रान्ति के तृतीय चरण के समय युवको का जो विद्रोह हम देख रहे हैं, इसकी तुलना क्या मानव-समाज की पिछली उथल पुथलो के साथ की जा सकती है? आगे जो विवेचन किया जायेगा, वह इसी निष्कर्ष को ठीक से समझने का प्रयत्न है। दूसरे शब्दों में, हम वही प्रश्न पूछ रहे हैं जो एक शताब्दी पहले मार्क्स ने पूछा था।

सन् १९६६ के हमारे समाज का परीक्षण किया जाय और प्रश्न किया जाय कि इस समाज मे कौनसा ऐसा वर्ग है जो समाज परिवर्तन का वाहक बन सकता है जैसे ६००० वर्ष पहले नगरवासी लोग थे, और गत सौ वर्षों में मजदूर थे, उस प्रकार का कौनसा वर्ग आज क्रान्तिवाहक बनेगा, तो उत्तर क्या आयेगा? क्या मार्क्स की तरह हम भी यही कहेंगे कि मजदूर वर्ग ही क्रान्तिदूत होगा?

मार्क्स अपने पहले से अनेक समाजों के इतिहास के और उसके अपने जमाने के उद्योगप्रधान समाज के गहरे अध्ययन के बाद इस नतीजे पर पहुँचा था कि समाज-निर्माता-वर्ग वही समुदाय बनेगा जो समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है, और जो भावी परिवर्तन के लिए प्रत्यक्ष जिम्मेदार है। मार्क्स ने समाज-निर्माता वर्ग की यह व्याख्या केवल बीते समाजों के विकासक्रम को दर्शाने के लिए ही नहीं, बल्कि भावी समाज के परिवर्तन के निर्देशक तत्त्व के रूप में की थी। १६ वीं शती के पूँजीवादी समाज का सूक्ष्म अध्ययन करके मार्क्स ने अनुमान लगाया कि सर्वहारा मजदूर-वर्ग संगठित होकर, व्यवस्थित योजना द्वारा समाज में गुणात्मक व्यापक परिवर्तन ला सकेगा। जिस प्रकार सबसे पहले शहरी क्रान्ति ने समाज को नगरवासियों और ग्रामवासियों में बाँट दिया था, और नगरवासी लोग समाज-परिवर्तन के अग्रदूत बने थे, उसी प्रकार औद्योगिक क्रान्ति ने समाज को नये 'वर्गों' में बाँट दिया, तब मार्क्स ने कहा कि एक समय नगरवासियों ने जो काम किया था वही काम अब सर्वहारा श्रमिक वर्ग करेगा। पुराने विभाजन को मिटाना तो दूर रहा, परन्तु बुर्जुआ और सर्वहारा वर्ग का जो ध्रुवीकरण हो गया, उसने देहातियों पर शहरियों का आधिपत्य ही अर्जित किया। गत सौ वर्षों का इतिहास देखने से पता चलता है कि मार्क्स की बात सच थी। चाहे शान्तिमय साधनों से या विद्रोही मार्ग से, श्रमिक वर्ग अपनी प्रतिष्ठा जमाने में, कई राष्ट्रों में सत्ता हस्तगत करने और अन्य देशों की सामाजिक रचना को बदल देने में सफल रहा।

वर्तमान समाज का ध्रुवीकरण

क्या हम कह सकते हैं कि आज औद्योगिक समाज आमूल बदल गये हैं और पिछले दशकों में श्रमिक वर्ग ने जो काम किया था वही काम करनेवाला एक नया ऐतिहासिक क्रान्तिवाहक वर्ग आगे आ रहा है? जैसे काण्ट ने कहा, १६वीं शताब्दी में जो श्रमिक वर्ग देश में नये सिरे से उदित हो रहा था और चालू समाज से पृथक् अस्तित्व रखता था, वह अब पूरे समाज में घुलमिल गया है, एकरूप हो गया है। वह अब समाज का ही एक अभिन्न अंग बन गया है और जैसे कई राष्ट्रों में हम देख रहे हैं, वह पूरे राष्ट्र का, न्यूनाधिक मात्रा में भाग्य-विधाता बना हुआ है। यह उसकी सफलता तो है, पर साथ ही वही आज उसकी दुर्बलता का भी कारण बना है। समाज के साथ एकरूप होने के ही कारण समाज-व्यवस्था को चुनौती देने की शक्ति श्रमिक वर्ग की नहीं रही।

जब से समाज के आन्तरिक ढांचे मे परिवर्तन के साथ अनेक समुदायो का ध्रुवीकरण निश्चित हो चला है, इस औद्योगीकरण के उत्तरकालिक समाज में, जो कई राष्ट्रो में स्पष्टतर हो रहा है, कौनसा समुदाय है जो समूचे समाज पर विशिष्ट दबाव ला सकता है, जिससे वह समुदाय अन्य सब समुदायो का अग्रदूत सिद्ध हो सकता है ? आज का समाज, जिसका हम पृथक्करण करने जा रहे हैं, यंत्र, विद्या और धन-सम्पदा की दृष्टि से समृद्ध और सुविकसित समाज है। समाज का यह स्वरूप लगभग सारे विश्व मे फैला हुआ है और अलाइन। टूरिंग के शब्दो मे वह स्वरूप न केवल सबका लक्ष्य बना हुआ है, बल्कि कानूनन प्राप्त करने योग्य सिद्धान्त का रूप ले रहा है। इस प्रकार विकसित हो रहे समाज की ओर हमे किस दिशा से देखना चाहिए ?

नये समाज का प्राण कौन ?

औद्योगीकरण के उत्तरकालीन इस समाज का वणन करते हुए कोलम्बिया विश्वविद्यालय के डेनियल बेल कहते हैं—"औद्योगीकरण के उत्तरकालीन समाज की अधिष्ठात्री शक्ति वाणिज्य नहीं है बल्कि बुद्धिजीवी वर्ग है। यह सही है कि समाज का बहुसख्यक वग बुद्धिजीवी नही हो सकता, फिर भी समाज की चेतना, समाज का प्राण उसके सघर्षों का क्षेत्र, प्रगति और सकल्पो का अधिष्ठान बुद्धिजीवी वग होगा। समाज की प्रमुख सस्था विश्वविद्यालयो, शोधसस्थानो और संशोधन मण्डलो की सम्मिलित संस्था होगी।' आज यह आन्दोलन पूरी गभीरता के साथ प्रारम्भ हो चुका है। प्रतिवर्ष तकनीकी विषय की पत्र पत्रिकाएँ ५०हजार के लगभग निकलती हैं, जिनमे १२ लाख लेख छपते हैं। तकनीक और विज्ञान के विशेषज्ञ व्यक्तियो की ६०० श्रेणियाँ बनी हुई हैं। सशोधन पर जो खर्च हो रहा है उसका अनुमान लगाया गया है और वह सन् १९५० में २८४ करोड डालर था, और सन् १९६० मे १४०० करोड हो गया है। हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि प्रगत राष्ट्रो में विश्वविद्यालयो और वैज्ञानिक शोध-सस्थानो की सख्या बढाने की होड-सी लगी है। और यह निश्चित है कि जो राष्ट्र वैज्ञानिक और बौद्धिक विद्याओ में अधिकाधिक निष्णात होगा, वही कायम रहेगा।

इस युग की दूसरी विशेषता यह है कि इसमें परिवर्तन उपादेय हुआ है, वह आज वर्ज्य नही रहा, और उसकी गति और दिशा को हम नियन्त्रित करने को उद्यत हैं। औद्योगीकरण के उत्तरकालीन वर्तमान समाज का सही-सही वणन करना हो तो उदाहरण के लिए यह कह सकते हैं कि आज प्राथमिक और

उत्पादक प्रवृत्तियों का जोर घट रहा है और शिक्षा, स्वास्थ्य, फुरसत आदि सेवाओं का महत्त्व बढ़ रहा है। इस प्रकार से समाज का एक और बड़ा वैशिष्ट्य स्वयंचालित यंत्रों का प्रचलन माना जा सकता है।

पुरानी और नयी पीढ़ी का संघर्ष

मानव जिस प्रकार के समाज मे आज प्रवेश कर रहा है उसमे कौन समुदाय है जो सर्वाधिक गतिशील है, जो समाज के गहरे से-गहरे संघर्ष का प्रतिनिधित्व करता है, कौन ऐसे हैं जिनकी वृत्तियाँ समाज को बदलेंगी, और जिन्होने वह प्रक्रिया आरम्भ भी कर दी है ? यह प्रश्न दुहरा है हम विश्लेषण के लिए किस समुदाय को चुनें, जो इस प्रकार के समाज के विशिष्ट दबाव का आधार है ? और दूसरा यह कि कौनसा समुदाय है, जो १६ वी शताब्दी के सर्वहारा वर्ग के समान, आज के समाज का निषेध करने को तैयार है, क्योंकि इस समाज का अस्तित्व ही इन समुदायो के भावी समाज के निर्माण के लिए 'मूले कुठार' है। इस प्रकार मैं यह प्रमेय उपस्थित करना चाहता हूँ कि कृषकों और नगरवासियो मे, बुर्जुआ और सर्वहाराओ मे जिस प्रकार ध्रुवीकरण हुआ था, उसी प्रकार इस युग मे महत्त्वपूर्ण ध्रुवीकरण अगर है तो वह है वयस्कों और युवकों मे। मुझे लगता है कि पुरानी और नयी पीढ़ियो के आन्तरिक संघर्ष को आज बुनियादी महत्त्व प्राप्त हो रहा है। समाज के इन समुदायो की ओर, इन पीढ़ियो की ओर हम जिस दृष्टि से देख रहे हैं उसके समर्थन मे वर्तमान समाज-रचना के ध्रुवीकरण का क्या महत्त्व है, यह अब देखें।

आज युवक, श्रमिको की ही तरह, मनुष्य और समाज की, वयस्कों के समाज से भिन्न व्याख्या की खोज मे है। यह एक रिवाज बन गया है कि युवकों की विरोधवृत्ति और नटखटपन को हम प्राय बाल-अपराध कह देते हैं और ज्यो ज्यो बढता गया त्यों-त्यो उसे गरीबी और अभावो के साथ जोड़ने लगते हैं। उत्तरोत्तर यह स्पष्ट होता जा रहा है कि यह केवल गरीबी का प्रश्न नही है। स्वीडन कल्याणकारी राज्य का स्वर्ग ही माना जाता है, परन्तु वहाँ बाल अपराधो की सख्या सबसे अधिक है। अमरीका की आमदनी सर्वाधिक है, और वहाँ उदार मतवाद ही चलता है। पर वहाँ भी स्वीडन की-सी ही स्थिति है। जापान, और प० जर्मनी जैसे अत्यधिक औद्योगीकृत राष्ट्रों में भी बाल-अपराधो की सख्या कम नही है। केनेडा मे गत एक दशक मे बाल अपराधो मे २४० प्रतिशत की वृद्धि हुई है। धनी राष्ट्रों मे इस अपराध की समस्या को सर्वथा गरीबी के साथ कैसे जोड़ा जा सकता है ? जोन मेक्मरटी के कथना-

नुसार, कैनेडा मे जितने बाल-अपराधी दडित हुए है, उनमे आधे से अधिक बच्चे ऐसे परिवारो के है जिनकी आय बहुत अधिक है, और माता-पिताओं द्वारा अपने बच्चो के दुराचरणों पर लाख परदा डालने का प्रयत्न करने के बावजूद यह तथ्य सामने आया है।

बाल-अपराध और किशोर-संस्कृति

केवल बाल-अपराध कह देने से क्या सारा चित्र स्पष्ट हो जाता है? व्याधि-निवारण का प्रवृत्तिप्रधान मार्ग तो यही मानता है। फिर भी वस्तुस्थिति मे कहीं कोई सशय नही है। युवको की ऐसी कई कृतियाँ हैं, जिनसे यह बात खण्डित होने लगती है कि किशोरावस्था के बाद वयस्कता आती है, बल्कि कुछ दूसरी ही बात का पूर्वाभास मिलता है। इसके निदर्शन के तौर पर जार्ज लैपसेड की अनुपम पुस्तक से कुछ अश उद्धृत करूँगा। "···· "सन् १६५६ के दिसम्बर ३१ की शाम ५,००० युवको ने स्टाकहोम के राजमार्ग कंग्स्टन पर धावा बोल दिया और कई घण्टो तक 'सडक पर कब्जा' किये रहे, आने-जानेवालो को छेडते रहे, कारो को उलटते रहे, दुकानो की खिडकियाँ तोडते रहे, सारा कारोबार ठप्प हो गया था।······ कुछ लोग पास के चर्च के इर्द-गिर्द कब्रिस्तान के पत्थर उठा उठाकर फेंकने लगे और कागज की थैलियो मे जहरीली गैस भर भरकर कंग्स्टन तक फैले हुए ऊँचे पुलो पर से उछालने लगे।······गवाहो ने आँखो देखा हाल जो सुनाया वह इस प्रकार है "(१) यह प्रदर्शन किसी स्पष्ट और पूर्वनिर्धारित माँगो के लिए नही था, उसमे न किसी व्यक्ति का विरोध करने का हेतु था, न किसी संस्था की अवहेलना करने का उद्देश्य था। (२) फिर भी वह बालसुलभ आमोद प्रमोद की ही अभिव्यक्ति नही थी।······(३) प्रदर्शनों के साथ बाल अपराधो की खासियतें भी मिली हुई थी, जिनका स्वरूप ही कुछ और हो गया था···आक्रामक, विध्वंसक, निरुद्देश्य और दिशाहीन।" ऐसी ही अन्य अनेक घटनाओ से यह धारणा पक्की होती है कि ये सब केवल बाल-अपराध के ही चिह्न नही हैं, बल्कि वस्तुत वर्तमान समाज के आमूल विभाजन के द्योतक हैं।

युवक-विद्रोह का मूल प्रयोजन

लैपसेड आगे कहते है "वर्तमान संसार के सर्वाधिक औद्योगीकृत राष्ट्रो मे भी यह स्पष्ट देखा जा रहा है कि सामूहिक जीवन मे युवको को शामिल करने की वृत्ति बडों मे नही है, और इसीलिए तथाकथित 'वयस्क'-जीवन की परि-

स्थितियों का युवक विरोध कर रहे हैं। संसार भर में जहाँ-तहाँ युवक लोग छोटी-मोटी संख्या में अनौपचारिक ढंग से एकत्र होते हैं, सादगी और गरीबी से गुजारा चलाते हैं, आत्मिक वृत्ति को पुष्ट करते हैं, प्रचलित रहन-सहन से सर्वथा भिन्न रहन-सहन और तौर-तरीकों के द्वारा आम जनता का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हैं। युवकों के असन्तोष के बारे में व्याख्यान होते है, कि वे उद्देश्यहीन विद्रोह करने पर आमादा हो जायें। ·····सारी स्थिति देखने पर ऐसा लगता है कि समूचा समाज असन्तोष और उन्हें दबाने के साधनों की तैयारियों का मात्र आलेख बन गया है।"

युवक और वयस्क

क्या हम यह समझ सकते हैं कि वयस्कों का तिरस्कार करके युवक उस वयस्कजीवन का, वयस्कों की उस जीवन-पद्धति का तिरस्कार कर रहे है जो अब तक समाजमान्य रही है? इसका सीधा-सादा अर्थ क्या यही नहीं है कि युवक समय से पहले ही, अपनी प्राथमिक अवस्था में ही, वयस्क बन जाना चाहते हैं? चूँकि यहाँ संघर्षरत दोनो समूह एक ही समाज के अंग हैं, इसलिए जैसा किसी भी द्वन्द्वमूलक आन्दोलन में होता है, दोनो समूहों में परस्पर कुछ-न-कुछ आदान-प्रदान होता ही है। प्रश्न यह है कि इसमें आदान-प्रदान का तत्त्व क्या है और वह किस मात्रा मे होता है?

यदि आदान-प्रदान के तत्त्वों का हम वर्गीकरण करके देखने लगें तो मालूम होगा कि दोनों समूहों के बीच जो अन्तर रहा है वह अब घटता जा रहा है। (१) वयस्कों का एक लक्षण तो यह है कि वे किसी-न-किसी रोजगार या धन्धे में लगे होते हैं, वे ही समाज के उत्पादक हैं और समाज की अर्थव्यवस्था में उनका महत्वपूर्ण स्थान होता है। लेकिन आज हम स्पष्ट देख रहे हैं कि बहुत बड़ी संख्या में किशोर भी समाजमान्य किसी-न-किसी उत्पादक प्रवृत्ति में लगे हुए हैं: वे हैं छात्र। कई राष्ट्रों मे उन्हें पढाई करने के लिए क्या वेतन नही दिया जाता? इसके अलावा वयस्कों को भी फिर से छात्र बनना और युवकों में घुलना-मिलना पड़ रहा है। (२) वयस्कों का दूसरा लक्षण उनकी राजनैतिक जिम्मेदारी और कानूनी अर्हता है। इसमें सीमा-रेखा अपना स्थान बदलती हुई दिखायी देती है। क्योंकि किशोरवय लम्बी होती जा रही है और चूँकि कई राष्ट्रों में १८ वर्ष की अवस्था में ही मतदान का अधिकार मिल जाता है, इसलिए, किशोरावस्था पार किये बिना ही वे राजनैतिक दायित्व और कानूनी योग्यता के अधिकारी बन जाते हैं, या अपने को उस कोटि मे देखने लगते हैं।

(३) यह भी माना जाता है कि वयस्क वह है जो रुपये पैसे के मामले मे स्वाधीन है अपनी जरूरत की चीज स्वयं प्राप्त कर सकता है। लेकिन आज के जमाने मे छात्रो को छात्रवृत्तियाँ दी जाती हैं, छात्रावस्था मे भी वेतन दिया जाता है, और नौकरी की कई सुविधाएँ भी दी जाती हैं, जिनके कारण वयस्क बनने से पहले ही युवक लोग भी धन के विषय में स्वायत्त हो जाते हैं या वैसी भावना उनमें उत्पन्न हो जाती है। (४) वयस्क का एक और प्रमुख लक्षण यह है कि समाज उसके वैध दाम्पत्य जीवन को विवाह सस्कार के द्वारा मान्यता देता है। लेकिन क्या युवको और वयस्को के बीच इसे वास्तविक विभाजक रेखा कहा जा सकता है ? नही। आज तो अनेकानेक लोग छात्रावस्था मे ही विवाह कर लेते हैं। औद्योगिक दृष्टि से विकसित और प्रगत राष्ट्रो मे विवाह की आयुमर्यादा परम्परागत समाज की मर्यादा की तुलना मे धीरे-धीरे नीचे आने लगी है। जब कि युवक वयस्क समाज के नीति नियमों का उल्लघन ही करने पर तुले हुए हैं, तब विवाह-सस्कार से प्राप्त होनेवाली वैधता से उन्हे क्या लेना देना ? इस प्रकार यहाँ भी सीमा रेखा निश्चित नही रह गयी है।

युवक उपसस्कृति

उपर्युक्त प्रकार से यदि युवक अपने और वयस्को के बीच की सारी विभाजक रेखाओ को मिटाने पर तुले हुए हैं और बडो की उन सारी प्रवृत्तियो को, जिन्हें वयस्को ने अपने तक ही सीमित रखा था, हथियाने लगे हैं, तो यह कहने मे भी कोई हर्ज नही है कि औद्योगिक क्षेत्र मे प्रगत समाजो के अन्दर युवक लोग वयस्को की सस्कृति से भिन्न अपनी एक उपसस्कृति निर्माण करने चले हैं। इस विशिष्ट तथ्य के कारण यह निष्कर्ष अधिक सुदृढ होता है कि कुछ समाजो में वयस्को और युवको का ध्रुवीकरण ही सर्वाधिक मूलगामी विभाजन है। जिस प्रकार पिछले युगो के विभाजनो—नगर और ग्रामवासियो के बुर्जुआ और सर्वहारा के विभाजनो—ने अपनी रचना के कारण ही नही, बल्कि व्यापक समाज के अन्दर अपनी एक उप-सस्कृति की निर्मिति से भी अपना पृथकत्व सिद्ध किया था, उसी प्रकार, जैसे जैसे नगरीकरण फैलता जा रहा है, और जनसाधारण की अबाध उपभोग-क्षमता के कारण सामाजिक वर्गों मे सास्कृतिक भेद मिटता जा रहा है वैसे-वैसे वयस्को और युवकों का विभाजन भी एक नयी उपसस्कृति का रूप ले रहा है और दिन ब दिन अधिकाधिक महत्त्व प्राप्त करने लगा है। इसे अमरीका में 'किशोर-सस्कृति' (टीन एज कल्चर) कहते हैं। वहाँ यह रूढ हो चली है और वहाँ के लोग इसका परीक्षण-पृथक्करण कर रहे हैं प्रतिवर्ष यह ज्यादा-से-ज्यादा हावी होती जा रही है।

एक सामान्य निष्कर्ष : सुदीर्घ बाल्यावस्था

पुनः हम औद्योगीकरण के उत्तरकालीन समाज पर लौट आयें। हमने जिन लक्षणों का अब तक परीक्षण किया और उस समाज के किशोरों के जिस प्रकार के व्यवहारों की रूपरेखा देखी, इस पर से हम एक सामान्य निष्कर्ष पर पहुँच सकेंगे कि एक तो उस समाज के कारण उत्पन्न विशिष्ट दबाव की दृष्टि से और दूसरे, उन युवकों के रहन-सहन और तौर-तरीकों की दृष्टि से भी हम वर्तमान समाज के विकास और प्रगति का अर्थ ठीक से समझ सकेंगे। मन में प्रश्न उठता है कि कहीं हम 'सुदीर्घ बाल्यावस्था' की परिस्थिति का ही साक्षात्कार तो नहीं कर रहे है। मनुष्य को मनुष्य बनाने में शैशव की लम्बी अवधि का जितना बड़ा प्रमुख स्थान है, वही स्थिति सुदीर्घ किशोरावस्था की भी है। मानव शिशु जन्म से ही बड़ा कोमल होता है, और वह बड़ा भी बहुत धीरे धीरे होता है, लेकिन इसीसे उसके अन्दर, दूसरे प्राणियों की तुलना में अधिक निरन्तर विकास-क्षमता और अपनी पिछली पीढ़ियों से भिन्न, अधिक और मौलिक भिन्नता विकसित हो पाती है। यही कारण है कि 'बाक' को कहना पड़ा कि मानव एक 'शैशव-प्रधान' (फेटलाइज्ड) प्राणी है, अर्थात् बड़े बड़े चिंपजियों में उनकी शैशव और किशोरावस्था के कई गुण उनके वयस्क होते ही गायब हो जाते हैं, लेकिन मनुष्य में वे बने रहते हैं। दूसरे शब्दों में, मनुष्य का सादृश्य छोटे चिंपजियों से अधिक है, बनिस्बत बड़े चिंपजियों के। इस अन्तर का कारण वही 'सुदीर्घ बाल्यावस्था' है। इसलिए 'सुदीर्घ बाल्यावस्था' का अर्थ यह है कि पूर्ववर्ती पीढ़ी के शैशव और किशोरावस्था के कई गुण परवर्ती पीढ़ियों में, उनकी वयस्क अवस्था में भी बने रहते हैं। प्राणिशास्त्र का यह सिद्धान्त पूरी सफलता के साथ सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र पर भी लागू किया जा सकता है। इससे वर्तमान समाज की गतिविधियों को स्पष्ट समझने में मदद मिलेगी।

वयस्क के बाद किशोरावस्था !

आज तक सभी प्रकार के समाजों में हम यही देखते हैं कि किशोरावस्था के बाद वयस्क अवस्था आती है। लेकिन आजकल इससे बिलकुल विपरीत देखने में यह आ रहा है कि वयस्क अवस्था के बाद किशोर अवस्था आ रही है। दूसरे शब्दों में, औद्योगीकरण के उत्तरकालीन समाज में वयस्क अपने में किशोरावस्था के कुछ गुणों को बनाये रखने को विवश हो रहे हैं। अब तक की तरह अब यह माना नहीं जा सकता कि किशोरावस्था चचल होती है और अपरिपक्व होती है, इसलिए वयस्कावस्था की बराबरी नहीं कर सकती।

किशोरावस्था की दीर्घता प्राणिशास्त्र की उत्क्रान्ति को सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र मे भी दाखिल करती है, जिससे मानव की बाल्यावस्था काफी लम्बी होती है और अन्य सभी प्राणियों में मनुष्य की उत्कृष्टता बनी रहती है।

परम्परागत धारणा अकाट्य नहीं

जन्म के समय मनुष्य बड़ा अधूरा प्राणी होता है। और ऐसा प्रतीत होता है कि सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में भी मनुष्य का यह अधूरापन बढ़ता जा रहा है। परम्परागत धारणा यह रही है कि शुरू में मनुष्य शारीरिक रूप से अधूरा प्राणी होता है। (उसके हृदय के कपाट पूरे सटे नहीं होते और ऐसे ही अनेक अंग अभी सही स्थिति में विकसित नहीं हुए होते।) और ज्यों ही वह वयस्क होता है त्यों ही शरीर से और संस्कृति से भी वह पूरा और परिपक्व होता है। लेकिन आज यह क्रम धीरे धीरे उलटता जा रहा मालूम होता है। मनुष्य जल्दी ही शारीरिक दृष्टि से पूर्ण होने लगा है यौवन जल्दी आता है, महत्त्वपूर्ण अंग और बनावट जल्दी ही परिपक्व होती है, शैशव छोटा होता है और किशोरावस्था उतनी ही लम्बी होती है। दूसरी ओर, हम जिस समाज में प्रवेश करने जा रहे हैं, उसका स्वरूप सांस्कृतिक दृष्टि से अपरिपक्व और अधूरा है। दूसरे शब्दों मे, विकास के इन सामान्य लक्षणों को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि कल के वयस्क को अपने में कुछ किशोर-गुणों को अनिवार्य रूप से बनाये रखना होगा, और ये आखिर वे ही गुण होंगे (जैसे—दीर्घविकास क्षमता लचीलापन, संस्कार-क्षमता, ग्रहणशीलता आदि) जिनके कारण मनुष्य तकनीकी विकास और उसके प्रभावों के अनुकूल बन सकेगा।

वयस्क जब तक किशोर नहीं बन जायेंगे, तब तक कल के संसार मे वे टिक नहीं पायेंगे। देखने को यह बड़ा अजीब और अटपटा लगता होगा, परन्तु एक भूभाग से दूसरे भू भाग में जाकर बसनेवाले लोगों में अल्प परिमाण में यही सब प्रत्यक्ष घटित हो रहा है। सब जानते हैं कि नये स्थान के साथ एकरूप होने मे बड़ों को ही बड़ी कठिनाई पड़ती है और छोटे बच्चों के लिए वह बहुत ही सहज सध जाता है, बल्कि थोड़े ही समय मे बच्चे ही अपने बड़ों को नये स्थान के बारे मे बहुत कुछ सिखाने लग जाते हैं। हाँ, यह सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र की सुदीर्घ-बाल्यावस्था का एक लघुरूप कहा जायेगा।

ऐसा मालूम होता है कि सुदीर्घ बाल्यावस्था की सामान्य प्रक्रिया समाज मे अन्दर-ही अन्दर चालू हो गयी है। हमने देखा कि रूढ़िवादी और परम्परागत

समाज की अपेक्षा हमारे आज के समाज में किशोरावस्था की अवधि अधिक लम्बी होती जा रही है। बाल्यावस्था को पार करने में हमें देर नहीं लगती, हम जल्दी ही किशोरावस्था में पहुँच जाते हैं, और उस अवस्था में लम्बे अरसे तक बने रहते हैं। दूसरी ओर वृद्धावस्था की अवधि घटती जाती है। कई ऐसे टेकनिकल धन्धे हैं, जिनमें ३५ वर्ष से अधिक आयुवाले लोगों को प्रवेश ही नहीं मिलता। औद्योगीकरण के उत्तरकालीन समाज में ऐसे व्यक्तियों की माँग अधिकाधिक रहेगी जो उत्साही हैं, सदा किसी भी काम के लिए तैयार हैं, अपने को हर स्थिति के अनुकूल बना सकते हैं और टेक्नालाजी के विकास के साथ कदम से कदम मिलाकर आगे बढ़ सकते हैं। आज ऐसे प्रशिक्षण की व्यवस्था की बात जोरों पर है, कई क्षेत्रों में शुरू भी हो गयी है, जिससे वयस्क लोग भी पढ़-सीखकर ताजा और अद्यतन हो सकें। 'पेरेण्ट रिपोर्ट' के शब्दों में कहना हो तो हम विकास के उस दौर में प्रवेश कर रहे हैं, जिसमें शिक्षण स्थायी और अन्त तक चलनेवाला विषय हो गया है। पिछले जमाने में उम्र और अनुभव का बड़ा महत्त्व था। आज स्थिति बदल गयी है। यौवन ही आज की अमूल्य सम्पत्ति बन गया है, उम्र और अनुभव तो यौवन को कुंठित और जड़ बनानेवाला बाधक तत्त्व सिद्ध हो गया है।

तरुण-समस्या का दूसरा अर्थ

आज की इस तरुणों की समस्या का दूसरा भी अर्थ लगाया जा सकता है। कुछ लोगों का कहना है कि यह समस्या वास्तव में अकाल पकता की समस्या है, बच्चों में जल्दी यौवन का प्रादुर्भाव हो जाता है और वे विवाह कर लेते हैं, इसलिए वे जल्दी ही वयस्क बनकर यथासम्भव सामाजिक जिम्मेदारियाँ सभाल लेने को उतावले हैं। वयस्क लोग युवकों की इस इच्छा को दबाना चाहते हैं और इसीसे पुरानी और नयी पीढ़ियों का झगड़ा उठ खड़ा होता है। लेकिन दूसरी ओर से हम पूछ सकते हैं कि क्या वास्तव में आज के ये युवक शीघ्र वयस्क बनना चाहते हैं? आज तक जो मूल्य और प्रतीक बड़ों के ही अधिकार में थे, उन्हें अपने हाथ में लेने को युवक छटपटा रहे हैं। इसका अर्थ यही नहीं है कि वे वयस्क बनना चाहते हैं अथवा वयस्क लोग अपने समाज में जो मूल्य और दृष्टि मान्य करते आये हैं उन्हें युवक अपनाना चाहते हैं। जहाँ तक मैं समझ पाया हूँ, आज के युवकों में दो बातें विशेष दिखाई देती हैं - एक ओर वे उन विशेषताओं और गुणों का जो अभी हाल तक मात्र वयस्कों की बपौती के रूप में थे, अपने लिए लाभ उठाना

चाहते हैं, और दूसरी ओर अपने माता-पिताओं की तरह वयस्क बनने से इनकार भी करते हैं। आज के युवकों में और पिछले जमाने के मजदूरों में एक प्रमुख अन्तर यह है *कि आज के युवक या उनमें कुछ युवक—अपने वर्गों* को, बुर्जुआ समाज को जानने के बाद, उसमें रहते हुए भी उसका निषेध करते हैं, उसका तिरस्कार करते हैं, जब कि मजदूर समृद्धि चाहते हुए भी शासक वर्ग का, कम-से-कम इस हद तक अनुकरण ही चाहता था। ऐसा मालूम होता है कि औद्योगीकृत समाज में ये जो चन्द युवक हैं वे ही वर्तमान समाज के विरोध के आन्दोलन का नेतृत्व करनेवाले हैं।*

---

*मांट्रियाल विश्वविद्यालय के समाजशास्त्र विभाग के प्रो० मार्सेल रियो के मूल अंग्रेजी लेख के आधार पर।

'आचार्यकुल'

दमन प्रक्रिया से शान्ति पुलिस का काम है। शमन प्रक्रिया से शान्ति आचार्यों का काम है। इसके लिए उन्हें पक्षों से मुक्त रहना है। आचार्यों के अलावा स्वतन्त्र चिंतनवाले अन्य विद्वान् भी 'आचार्यकुल' में लिये जायें—चाहे वे हिन्दू हों, मुस्लिम हों ईसाई हों।

चेकोस्लोवाकिया पर रूस का आक्रमण हुआ, मैंने व्याकुलता महसूस की। अब दुनिया में कोई ऐसी आइडियालाजी (विचारधारा) नहीं रही जो आक्रमणकारी न हो। अमेरिका का वियतनाम में चीन का तिब्बत में रूस का चेकोस्लोवाकिया में—तीनों का रवैया एक ही है। वे वहाँ चाहे राज नहीं करें, पर अपना इनफ्लुएन्स' (प्रभाव) रखना चाहते हैं। पचास विद्वान् चेकोस्लोवाकिया भेजकर अपना विचार समझाता रूस के लिए उचित होता। किन्तु सेना भेजी। भारत ने दब्बू आवाज से विरोध किया। क्योंकि हम रूस के ऋणी हैं।

रूस हमारे सैकड़ों कारखानों को मदद देता रहा है, मित्र है इसलिए कन्डेम नहीं कर सकते। आचार्यकुल द्वारा भारतभर के प्रोफेसरों की कान्फरेन्स बुलाकर 'युनानिमस रेज्योल्युशन (सर्वानुमत प्रस्ताव) करते। इससे लोकशिक्षा होती। जनता को उत्तम गाइडेन्स' (मार्गदर्शन) मिलता, आचार्यों का प्रतिष्ठा मिलती जो आज नहीं है। आज नौकरों की जमात है। ५०० शिक्षकों को आने जाने का खर्च और दो दिन खाना देते। यह सूझा ही नहीं। यानी आचार्यकुल हवा में है। चम्पारण में अभी अभी इतना जोरदार ग्रामदान अभियान चला, लेकिन प्रोफेसर ठंडे। एक भी प्रोफेसर नहीं लगा। स्कूल के शिक्षक लगे। चेकोस्लोवाकिया के बारे में सोचा तक नहीं। आचार्यकुल के लिए नये हस्ताक्षर भी नहीं प्राप्त किये। वेतन का एक प्रतिशत देना भार है!

बिना पैसे चल सकेगा? पत्र-व्यवहार एक प्रोफेसर का पूरे समय का खर्च प्रवास, कान्फरेन्स में सबका भोजन सब जगह जाकर समझाना, नये हस्ताक्षर लेना आदि अनेक काम रहेंगे। ग्रामदान में बीसवां हिस्सा जमीन देना, चालीसवां हिस्सा उपज देना मालकियत ग्रामसभा को देना, तीनों कठिन। फिर भी धड़ाधड़ हस्ताक्षर हुए। आचार्यकुल में प्रतिशत देना है—फिर क्यों हस्ताक्षर नहीं हो रहे हैं?*

---

* ७ सितम्बर '६८ को मुजफ्फरपुर के प्रोफेसरों के सम्मुख विनोबा का उद्बोधन।

कितनी सादगी है यहाँ। अपने देश के ढंग से बैठे हैं। 'परिषद' यानी बहुत बड़ी सभा, जिसमें हजारों लोगों के बीच व्याख्यान हो, और 'उपनिषद्' यानी नजदीक बैठे हुए, बातचीत के ढंग से चर्चा, जिसमें हृदय से हृदय बात कर रहा हो। व्याख्यान नहीं—चर्चा, बातचीत। जंगलों में खुली हवा में, आचार्य शिष्यों को समझाते थे "यह जितना विशाल आकाश है, यह मेरे अन्तर-हृदय में है।" यही वाक्य क्लासरूम में बोलें तो जितना छोटा आकाश क्लासरूम में है उतना ही छोटा हृदय में होगा। जंगलों में विशाल आकाश, विशाल हृदय। ऐसी सादगी से प्राचीनों ने विद्या बढ़ायी। इतनी दरिद्रता, ब्राह्मण निष्कांचन। विद्या, प्रेम और सादगी अपने यहाँ की विद्या की विशेषता रही। जितना सुनें उससे ज्यादा चिन्तन करें, जितना श्रवण, उससे सौ गुना मनन, जितना मनन, उससे लाख गुना ध्यान करना चाहिए। सन् १९१८ में हम बड़ौदा कालेज में पढ़ते थे, अंग्रेज प्रिंसिपल का क्या रोब था! सीधी नजर से देखना कठिन! नीची नजर से हम देखते—जैसे शेर के सामने गाय का व्यवहार हो। वे बारह सौ रुपये मासिक वेतन पाते थे, यानी आज के छह हजार रुपये। आज पैसे के दाम गिरे हैं। मैं एक पैसे में तरकारी, नीबू, अदरक, धनिया सब खरीदता था। प्रिंसिपल मुश्किल से प्रतिदिन डेढ़ घंटा पढ़ाते थे, वह भी वर्ष में छह माह, और घर में एकाध घंटा लिखते होंगे, जिसकी तनख्वाह बारह सौ।

एक दिन क्लास में जाहिर हुआ, वे 'इनडिस्पोज्ड' (अस्वस्थ) हैं। चाहे प्रोफेसर मराठीभाषी हो, पर मातृभाषा में नहीं बोल सकते थे। किसीकी मजाल थी, जो मातृभाषा में बोलें!

अंग्रेजी में सादी-सी कविता थी, जिसमें गायों के चिल्लाने का, निसर्ग का वर्णन था। हमने उसे पढ़ाया। 'यह व्याख्यान प्रिंसिपल से बराबरी कर सकता है' ऐसा सब छात्रों ने कहा—'सिवाय इसके कि उनके उच्चारण नहीं समझ में आते थे, आपके आते हैं।'

आपके वाइस चांसलर (श्री जुहार) सादगी की मूर्ति हैं। बाजार जायें तो कोई पहचानेगा नहीं, शायद धक्का देकर निकल जायेगा! जब कि चारों ओर विलासप्रियता इस कदर बढ़ रही है, यह देखकर आशा उत्पन्न होती है कि ये सचमुच ब्राह्मण-संस्कृति के प्रतिनिधि हो सकते हैं। उत्तर प्रदेश में राजाराम शास्त्री, आचार्य जुगलकिशोर आदि 'कुल' में हैं। महाराष्ट्र में भी आचार्यकुल बनाने की बात चल रही है। मुजफ्फरपुर की तरह भागलपुर में भी प्रोफेसरों में सादगी देखी। यह अलग बात है कि कुछ हुआ नहीं अब तक।

ब्रह्मस्वरूप। ब्रह्म का वर्णन आता है कि वह निष्क्रिय शान्त, व्यवहारातीत, क्रियातीत है। हम ऐसे हो जायें, तब तो ठीक है लेकिन संसार की शेष सारी क्रियाएँ तो करते रहते हैं।

हड़तालें, कोर्ट केसेस परीक्षाओं का मौसम बीमारी ये सारी कठिनाइयाँ आपके सामने आयी होंगी मैं समझ सकता हूँ कि इससे आचार्यकुल का काम नहीं बढ़ सका। एक प्रतिशत देना सादी-सी बात है जिससे अनेक कामों में सुविधा होगी।

हमने कार्लमार्क्स का कैपिटल पढ़ा था। उसमें हिंसा का मार्ग प्रतिपादित है ऐसा हमें नहीं लगा। मुझे कुछ कम्युनिस्टों ने कहा 'हृदय-परिवर्तन को हम नहीं मानते। मैंने पूछा तलवार में मानते हो? आप स्वयं हृदय परिवर्तन के उदाहरण हैं। क्या कार्लमार्क्स तलवार लेकर आपके पीछे पड़ा था? आपने पुस्तक पढ़ी, उसीसे कम्युनिस्ट विचार आपको जँचा। फिर हृदय परिवर्तन कैसे नहीं मानते?

मुख्य बात है गरीबी मिटाने की। बाइबिल में क्राइस्ट का वचन है: गरीब तो तुम्हारे साथ हमेशा रहनेवाले हैं इसलिए उनका खयाल रखो। कम्युनिस्ट कहते हैं, तो क्या उन्हें हमेशा गरीब ही रखनेवाले हो, जिससे दान प्रक्रिया द्वारा आपको पुण्य मिले। गरीबी मिटानी चाहिए, यह कार्लमार्क्स ने सबसे पहले आवाज उठायी।

तिब्बत, वियतनाम अब चेकोस्लोवाकिया। वियतनाम हमें नहीं चाहिए, हमारी 'आइडियालाजी' (विचारधारा) पर प्रहार हो रहा है" अमेरिका कहता है। मतलब सब 'आइडियालाजीज का एकमात्र 'सँक्शन (अन्तिम बल) 'आर्मी (सेना) इसका विकल्प है आचार्यकुल। विद्वानों ज्ञानियों की राय का सारे समाज पर असर होता है।

(१) अभी तक यहाँ डेढ़ दो सौ दस्तखत हुए हैं। बिहार भर में दस हजार प्रोफेसर हैं, जिनमें से चार सौ के हुए हैं। मैं जहाँ छोड़ गया, वहाँ से बात आगे नहीं बढ़ी। जाकर समझाते, दस्तखत लेते—वह नहीं हुआ।

(२) बिहार में सत्तर हजार गाँव हैं पौने दो लाख शिक्षक हैं। ग्रामदान में मदद करते तो आपकी प्रतिष्ठा बढ़ती। नहीं कर सके।

(३) चेकोस्लोवाकिया पर सब मुख्य लोग साथ बैठकर निवेदन मैनिफेस्टो बनाते। विशेष प्रसंग पर राय जाहिर करना नहीं हुआ। कोई हर्ज नहीं। आगे आप कीजिएगा। १ प्रतिशत पैसे मैं बिना हो सके तो बाबा तो नाचेगा कि इतना बड़ा कार्य कांचनमुक्ति से हो रहा है। मिसाल दूँ, "गीता

प्रवचन" की सभी भाषाओं की तरह लाख प्रतियाँ खपी हैं, क्या बिना पैसे उसे आप खरीद सकेंगे ? बरसों पदयात्रा में बाबा का एक कौड़ी खर्च नहीं हुआ। फिर भी, हर साल एक लाख रुपये से कम खर्च नहीं हुआ होगा। बिहार में एक एक पड़ाव पर तीन-चार सौ लोग खाते थे। हमने पूछा, इतने लोग क्यों ? बोले : 'बाबा, शादी आदि पर इससे अधिक खाते हैं, आप उससे कम महत्त्व के थोड़े ही हैं।'

सोचा, इतने लोग घर में भी तो खाते होंगे। यहाँ खाये इतना ही अन्तर हुआ। कोई बात नहीं, बिहार है। लेकिन क्या एक रुपया देना भार है ? सोचें। यह 'बाई-ला' (कानून) नहीं है। आप लोगों के प्रति मेरे मन में बहुत इज्जत है। आपके ज्ञान और जीवन का समाज पर असर पड़े, यह मेरी कामना है।

एक प्रश्नकर्त्ता—

शिक्षकों से उनकी समस्याओं पर अलग चर्चा की जाय ?

विनोबा—

शिक्षक स्वीकार करें या नहीं करें, इसकी मुझे चिन्ता नहीं। मुझे ग्रामदान का 'एम्प्लायमेंट' (रोजगार) है, 'आइ ऐम फुली एम्प्लायड'—मेरे पास पूरा काम है—'*आचार्यकुल*' पुस्तक पढ़िए। *मुझे जितना काम करना था, किया,* समझाया। मेरी ७३ वर्ष की आयु हो गयी। मर गया, तो कोई यह नहीं *कहेगा कि अल्पायु में मर गया। काम भी काफी किया, मरने का हक है।* ज्यादा समझाता रहूँ, यह प्रेरणा मुझे नहीं है। जिन प्रोफेसरों की समझ में आये, वे दूसरों को समझायें, बत्ती से बत्ती जलती है। किन्तु उन्हें ऐसी प्रेरणा नहीं हुई, तो मुझे दुःख नहीं होगा।

गौतम बुद्ध का उनके रहते उतना असर नहीं हुआ जितना पाँच सौ वर्ष बाद अशोक ने किया। ईसामसीह के 'क्रूसिफीकेशन' (सूली) के पचीस साल बाद सेंट पाल निकले, और तीन-चार सौ साल बाद ईसाई धर्म फैला।

'ब्राडकास्ट' (व्यापक प्रसार) पर बाबा का विश्वास नहीं है। 'डीपकास्ट' (गहरे प्रसार) पर है। एक मनुष्य पर भी हुआ तो वही औरों को समझायेगा। शिक्षकों की व्यक्तिगत समस्याएँ सुनना, प्रेरणा देना, विचार दाखिल करना, बाबा इन सबसे उदासीन है।•

• १ सितम्बर '६८, को आर. डी. कालेज मुजफ्फरपुर में प्रोफेसरों के सम्मुख विनोबा का उद्बोधन

श्री धीरेन्द्र मजूमदार—प्रधान सम्पादक
श्री वंशीधर श्रीवास्तव
श्री राममूर्ति

वर्ष १७
अंक ३
मूल्य ५० पैसे

अनुक्रम

अक्तूबर '६८

●

निवेदन

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- 'नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा छः रुपये है और एक अंक के ५० पैसे।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक संख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट सर्व सेवा संघ की ओर से प्रकाशित अमल कुमार बसु
इण्डियन प्रेस प्रा० लि० वाराणसी-२ में मुद्रित।

नयी तालीम . अक्तूबर '६८

पहले से डाक-व्यय दिये बिना भजने की अनुमति प्राप्त

लाइसेंस न० ४६ रजि० स० एल १७२३

देश के आर्थिक जीवन मे गलत प्रवाह

गाधी दर्शन के अनन्य भाष्यकार स्व० श्री कि० घ० मशूवाला ने हिंदुस्तान के गाँवो का जो चित्र आजादी के पहिले खींचा था वह आज भी ज्यों-का-त्यों बना है।

हिंदुस्तान गाँवो म बसा है यह बात तो बारम्बार कही गयी है पर हिंदुस्तान की सम्पत्ति सम्बन्धी आज की अधिकाश योजनाएँ गाँवों के हित की दृष्टि से नहीं बनायी गयी हैं। इसका नतीजा यह हुआ है कि जीवन के बहुतेरे साधन जो गाँव के खेतो और जगलो मे लगभग मुफ्त मिल सकते हैं उनके बदले शहरो और विदेशो मे बना हुआ देखने मे थ डा-बहुत सुविधाजनक लेकिन अधिकाश मे दिखावे के लिए ही आवश्यक और अच्छा लगनेवाला माल काम म लाने का फैशन बढ जाने से देहात के बहुत-से उद्योग और मजदूरी के धधे नष्ट हो गये और होते जा रहे हैं।

इसके सिवा व्यापारियो की सकुचित और तुरत मुनाफा कमा लेने की स्वार्थ दृष्टि ने बहुत से देहाती माल को मशीन के माल की अपेक्षा पडते मे महगा न होते हुए भी खरीददार के लिये महगा बना दिया है। इससे जो बाजार सहज मे देहात के हाथ मे रह सकता है वह भी कारखानो और विदेशियो के हाथ मे चला गया है।

इस प्रकार आज सपत्ति देहात से शहरो मे खिंची जा रही है और देहात हर दृष्टि से कगाल होते जा रहे हैं।

इस प्रवाह को बदलने की जरूरत है।

यह कैसे बदलेगा?

त्रिविध कार्यक्रम (ग्रामदान, गामाभिमुख खादी एव शांति सेना) के जरिये।

सन् १९६९ गाधीजी की जन्म शताब्दी का साल है।

आइए इस प्रवाह को बदलने मे जुट जायँ।

राष्ट्रीय गाधी जन्म शताब्दी समिति की गाधी रचनात्मक कार्यक्रम-उपसमिति द्वारा प्रसारित

अ वरण खण्डेलवाल प्रेस मानमदिर वाराणसी।

हमारे प्रथम प्रधान मंत्री— जिन्होंने सत्ता में रहते हुए भी मनुष्यता नहीं खोयी, और प्रौढ़ होते हुए भी बच्चों की सहजता, बनाये रखी।

जॉनसन की भेंट

मानना पड़ेगा कि चलते-चलते जॉनसन ने दुनिया को एक अच्छी भेंट दी है। १ नवम्बर को जब उन्होंने घोषणा की कि उत्तरी विएतनाम की बमबारी बन्द रहेगी तो वर्षों की प्रतीक्षा के बाद दुनिया ने सुख की साँस ली।

विएतनाम पर जो लाखों टन बम गिरे—लगातार गिरते ही रहे—लेकिन एक छोटे से देश का मनोबल नहीं तोड सके, वे बम अब नहीं गिरेंगे। बमों का गिरना बन्द होगा तो विएतनाम का जो प्रश्न अब-तक के युद्ध से नहीं हल हो सका है, उसे अब पेरिस में सार्थक राजनीतिक चर्चा से हल करने की कोशिश की जायेगी। युद्ध से कब किस समस्या का हल निकला है? चर्चा तो ६ महीने से चल रही थी, लेकिन साथ साथ युद्ध भी चल रहा था। जॉनसन की घोषणा से आशा हुई है कि अब सुव्यवस्थित संधि-वार्ता होगी। उम्मीद है चर्चा की राजनीति फिर इतनी गर्म नहीं होगी कि दुबारा युद्ध छिड़ जाय। यह जानी हुई बात है कि जब राजनीति गर्म होती है तो लड़ाई होती है, और जब शत्रुता पराकाष्ठा पर पहुँचती है तो संधि होती है। कौन नहीं मानेगा कि शत्रुता पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी है? अब बारी है संधि की।

वर्ष : १७
अंक : ४

१९४५ मे अमेरिका के हाथ अणुबम आया। ४ साल बाद रूस अमेरिका का साथी बना। तब से, ऐसा लगता है, दुनिया इन दो महाशक्तियो के हाथ गिरवी रख दी गयी है। इनकी भौंहो पर दुनिया का भविष्य टिका हुआ है। हो सकता है कि छोटे देश अब तक इसी-लिए बचे हुए हैं, क्योकि रूस और अमेरिका दोनो के पास असीम सहार-शक्ति है। यह सहार-शक्ति दुनिया को खत्म करेगी, लेकिन बम फेकनेवाले को छोड देगी, यह भरोसा दोनो में से किसीको नही है। शायद दोनो के बीच भय का यह सतुलन ही शेष दुनिया के लिए जीवन का आश्वासन है।

ऊपर-ऊपर से यही दिखाई देता है कि आज की दुनिया अमेरिका और रूस के प्रभाव-क्षेत्रों मे बंटी हुई है। लगता है जैसे ये दोनों इन्द्र हैं और दूसरे देश इनके दरबारी है। लेकिन, अन्दर क्या दिखाई देता है? बम और डालर से लैस अमेरिका ने विएतनाम की कोई बरबादी उठा नही रखी, लेकिन वह विएतनाम को पराजित नही कर सका। रूस ने चेकोस्लोवाकिया को नीचा जरूर दिखाया, और उसे नागफांस मे कसने की कोशिश भी कर रहा है, लेकिन उसके टैंक चेकोस्लोवाकिया की प्रतिकार-शक्ति को कुचल नही सके। फ्रास, क्यूबा, विएतनाम का अमेरिका क्या बिगाड सका? और, चेकोस्लोवाकिया, रूमानिया, और चीन का रूस ही क्या कर पा रहा है? दिखाई तो यह देता है कि आज भले ही अमेरिका और रूस के प्रभाव-क्षेत्र की बात कही जाती हो, लेकिन वह दिन सभवत दूर नही है जब न उनका प्रभाव रह जायेगा, और न अपने देश के बाहर कोई प्रभाव क्षेत्र! उन्हें लडना होगा तो लडेगे जाकर चन्द्रलोक में! इस मृत्युलोक को तो युद्ध से मुक्त ही करना है!

शायद छोटे देशो के दिन आ रहे हैं। लेकिन उन्हे समझना चाहिए कि सकीर्ण राष्ट्रवाद मे न सुख है, न शान्ति। राष्ट्रवाद के बाद साम्राज्यवाद के सिवाय दूसरा कुछ नहीं है। सुख और शान्ति सह-

अस्तित्व और विश्व-परिवार भावना में है, न कि बडे साम्राज्यवादियो के साथ छोटा साम्राज्यवादी कहलाने मे।

कठिनाई यही है कि इस वक्त छोटे देशों में जो नेतृत्व है वह अपने देश और नयी दुनिया की नियति को नही पहचान रहा है। वह स्वयं पूँजीवादी-सैनिकवादी-राज्यवादी-विस्तारवादी है। और, इन देशों की भी जनता अभी इन मोहक नारों के जादू से निकल नही पायी है। सारे एशिया और अफ्रीका में स्वतत्रता की जो छीछालेदर हुई है, और उपनिवेशवाद को 'विकास' का छद्मवेष बनाकर दुबारा घुसने का जो मौका मिलता जा रहा है उससे चिंता होती है कि ये नये देश अपने भविष्य को कभी पहचानेंगे भी या नही।

कुछ भी हों, अमेरिका कुछ भी चाहे, दक्षिण विएतनाम की सरकार कुछ भी कहे, वहाँ की जनता को आत्म-निर्णय का अधिकार तो मिलना ही चाहिए। आत्म-निर्णय आत्म-सम्मान की माँग है, और सह-अस्तित्व की पहली शर्त है। दक्षिण विएतनाम साम्यवादी हो जायेगा, इसीलिए उसे आत्म निर्णय से वचित रखना है, और किसी न-किसी रूप में अमेरिका को वहाँ बनाये रहना है, यह मानने लायक बात नही है। मानने ही नही, कहने लायक भी नही है। दक्षिण विएतनाम साम्यवाद की ओर न जाय, और चेकोस्लोवाकिया पूँजीवाद की ओर न जाय, यह ठीकेदारी अमेरिका और रूस को किसने सौंपी? जिस तरह दुनिया के अनेक देशों मे प्रतिरक्षा और लोक-कल्याण के नाम में फासिस्टवाद बढ रहे हैं उसी तरह विश्व कल्याण और राष्ट्रीय सुरक्षा के नाम में नये साम्राज्यवाद बढ रहे हैं। यह काम जनता का है कि वह कल्याण के इस नये नारे को समझे, और ठीकेदारो से मुक्ति का रास्ता निकाले।

अगर पेरिस में विएतनाम की समस्या का कोई हल निकल आता है तो हो सकता है कि अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धो मे नया मोड आये और मनुष्य की मुक्ति के कुछ रास्ते खुलें। —*राममूर्ति*

आचार्य मन से ऊपर उठें

—विनोवा

[काशी के आचार्यकुल की सभा वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय में ३ अक्तूबर को हुई। इस सभा में प्रवचन करते हुए विनोबाजी ने अपनी शुभकामना प्रकट की और आचार्यों को मन से ऊपर उठकर तथा राजनीति से अलग रहकर संसार को मार्गदर्शन करने की सलाह दी। वह प्रवचन आपके सामने प्रस्तुत है। —सं०]

मुझे यहाँ पर अभी ज्यादा बोलने का नही रह गया है। 'शुभास्ते पथानः सन्तु।' आपका यह गुण-कार्य है और मार्ग आपका शुभ हो, सुखमय रहे इतनी शुभकामना करना ही मेरा कार्य रह जाता है। मुख्य चीज जो समझने की थी, वह मेरा खयाल है आप लोगो ने समझ ली है। और, वह यह कि आचार्यों का अपना एक विशिष्ट स्थान है। विशिष्ट स्थान कहने से कोई ऊँचा, मानवीय सामाजिकता से अधिक ऊँचा, ऐसा कोई मेरा आशय नही। आचार्यों का अपना विशिष्ट स्थान है, जिस तरह सेवकों का विशिष्ट स्थान होता है, मजदूरो का भी विशिष्ट स्थान है। अगर आचार्यों का काम आचार्य निष्काम बुद्धि से, ईश्वरार्पण बुद्धि से करते हैं तो परमेश्वर के यहाँ वे प्रिय होगे। वैसे मजदूर भी अपना कर्तव्य यथाशक्ति, यथाभक्ति, निष्काम बुद्धि से करेगा तो उसको भी वही ईश्वर का प्रेम प्राप्त होगा। दोनो को प्राप्ति समान होगी। दोनों के अपने अपने विशिष्ट क्षेत्र हैं।

आचार्यो का स्वधर्म

लेकिन इन दिनो हर क्षेत्र में घुसपैठ हो गयी है। इसको इंग्लिश मे 'इन्फिल्ट्रेशन' कहते हैं। इसके लिए अपनी भाषा मे 'घुसपैठ' शब्द है। राजनीति की भी और राजनीतिज्ञों की भी घुसपैठ। अब परिणाम यह हुआ है कि भिन्न भिन्न कालेज अखाडे बन गये, राजनीति के अखाडे। और यही हालत विद्यार्थियों की हुई। तो समझने की मुख्य बात यह है कि हमारा स्थान राजनीति को 'गाइडेंस' देने का है, न कि राजनीति मे दाखिल होने का। जो गाइडेंस' देनेवाला होना है, जिसे 'जजमेंट देना होना है, कोई काम ठीक चल रहा है, बेठीक चल रहा है, यह देखना पडता है, उसको उस काम से अपने को अलग रखना पडता है। साक्षीरूपेण जब वह होता है तभी उसको ज्ञान होता है—सम्यक् ज्ञान कि क्या चल रहा है, क्या नहीं चल रहा है। अगर हम राजनीति म दाखिल होते हैं तो

राजनीति के साक्षी, उसके मार्गदर्शक, उसको गलत राह पर जाने से रोकनेवाले हम नही हो सकते। हम उसके अन्दर एक पुर्जा बन सकते हैं, उस यत्र का अंग। इसलिए हमको उससे अलग रहना चाहिए। यह हमारा आचार्यों का स्वधर्म है। वह स्वधर्म चाहे अन्योन्य हो तो भी श्रेयस्कर है। यह भगवती गीता ने हमको समझाया है—*'श्रेयान् स्वधर्मो विगुणोऽपि'* तो कोई कहे कि आपका जो स्वधर्म है, आचार्यों के लिए आपने माना है, उससे अधिक योग्यतावाले भी स्वधर्म हैं दुनिया मे। हम ना नही कहेंगे। हो सकते हैं, लेकिन यह जो स्वधर्म है वह चाहे विगुण हो, कम योग्यतावाला हो तो भी आचार्यों के लिए वह ही श्रेयस्कर है। राजाओ, महाराजाओं तथा सम्राटो से भिन्न शक्ति है आचार्यों की, जो तारक, प्रेरक और पूरक है।

दुनिया मे दो विचारक हो गये—एक, कार्ल मार्क्स और दूसरे, काउण्ट लियो टालस्टाय। दोनो प्रेरक थे। लेकिन टालस्टाय का विचार तारक है, प्रेरक होने के साथ साथ। और, कार्ल मार्क्स का सिद्धान्त तारक साबित नही हुआ। यह तो मैंने जरा विषयान्तर कर दिया समझाने के लिए कि तारक और प्रेरक, ये दो स्वतत्र शक्तियाँ हैं और दोनो इकट्ठी हो जाती हैं तो वही ताकत शिव-शक्ति, शुभ शक्ति जो भी नाम दीजिए—पैदा होती हैं। और मैंने कहा कि पूरक है। पूरक यानी बाकी के समाज से भिन्न भिन्न लोग, कुल मिलाकर जो भी करेंगे अधूरा रह जायेगा, अगर आचार्यों का अपना स्वतत्र कार्य न रहा तो। *अगर आचार्य उन्ही राजनीतिज्ञो में शामिल होकर काम करने लगें,* तो उनकी शक्ति पूरक शक्ति बनेगी नहीं। यह पूरक शक्ति एक प्रकार से परमेश्वरी शक्ति है। परमेश्वर पूर्ति करता है। जहाँ, कमी होती है, न्यूनता होती है, वहाँ पूर्ति के लिए वह दौडा आता है। वह पूरक शक्ति है। 'गुरवे नम' हमेशा हम कहते आये—भगवान गुरु को नमस्कार। यानी गुरु और भगवान साथ-साथ। शिष्यों की भावना गुरुजनो के लिए कि गुरु और भगवान एक हैं; क्योकि वे पूरक हैं।

आचार्य मन से ऊपर उठे

यह जो त्रिविध शक्ति आचार्यों की है, वह नही प्रकट होगी जबतक वह राजनीति से अपने को मुक्त नहीं रखेंगे, ऊपर नही उठेंगे। बल्कि एक नया शब्द *मैं आपके सामने इस्तेमाल करूँगा, वैसे नया तो नही है, इस जमात मे नये सिरे* से मैं इस्तेमाल कर रहा हूँ कि हमको तो मन के ऊपर जाना चाहिए, आचार्यों का काम है उन्मानसम्— मन के ऊपर उठना। बाकी के जो लोग ह ते हैं, उनका अपना-अपना क्षेत्र होता है, उनका अपना मन बन जाता है,

और उसी मन से वे चिन्तन करते हैं। इसलिए वे समग्र चिन्तन नहीं कर पाते। लेकिन आचार्यों का चिन्तन उन्मानस होगा यानी अपना मन वे नहीं रखेंगे, उससे ऊपर उठकर के वे सोचेंगे। इस वास्ते व 'गाइडेन्स' दे सकते हैं। मैंने कई दफा मिसाल दी है कि थर्मामीटर को खुद बुखार रहे तो दूसरो का बुखार नापने मे वह अक्षम रहेगा। लेकिन वह सबका बुखार ठीक नापता है, क्योंकि उसको अपना बुखार नही है। उसी प्रकार दुनिया के मन को, चित्त को, अगर ठीक समझना है तो हमको मन नाम के तत्त्व से अलग होना चाहिए। विकारो को पहचानने के लिए विकारो से अलग होना पडता है। तब हम विचारो को, विकारो को पहचान सकते हैं। विकारो से अलग होनेवाले, मन से अलग होनेवाले दो जन होते हैं। एक होता है परम सन्यासी, विरक्त, योगी, सम्राट, उसको समाज से मतलब नहीं। वह स्वयमेव निर्विकार है। वह ससाराभिमुख नही है और उसके साथ साथ निर्विकार है। उसकी जो मिसाल है, उसका उदाहरण हमारे सामने ध्रुव तारे के मुताबिक है। वह हमको 'गाइडेन्स' खुद देता नही। हमको उसे देखना होगा, देखकर पहचानना होगा। और दिशा समझकर चलना होगा। उसका अपना उपयोग है, लेकिन वह स्वय अभिमुख नही है। मन से अलग रहनेवाले दूसरे लोग ये आचार्य हैं। और वे जो आचार्य होंगे वे ससार अभिमुख होंगे। और अभिमुख होते हुए मन से परे होंगे। इसलिए वह समाज को गाइडेन्स दे सकते हैं निर्विकार बुद्धि से निर्णय दे सकते हैं। ऐसी निर्णायक शक्ति अगर मानव में हो सकती है, किसी मानव मे, या किसी मानव-समूह में, तो वह आचार्यों में हो सकती है। और, आपने जोड दिया था कि आचार्यों के अलावा दूसरे भी विद्वान् हैं उन्हें भी शामिल किया जाय। आपने सुझाव दिया था और उसे मैंने माना था। उनको भी मैंने आचार्य माना। तो यह जो आचार्य समूह है उसकी यह विशेषता है कि वह ससाराभिमुख रहकर अपने को ऊपर रखेगा। और, क्या कहाँ गलती हो रही है उसके बारे में वह निदर्शन दे सकता है।

यह जो बहुत बडा काम अपने महान् भारत में होना जरूरी था वह आज तक हुआ नही और सारे समाज का नियन्त्रण सब प्रकार से राजनीतिज्ञो के हाथ मे रखा गया। उसका परिणाम यह हुआ है कि नौका ऐसी चल रही है कि उसको कोई दिशा नही—किधर जायेगी, क्या होगा मालूम नही।

आचार्यों की शक्ति कैसे प्रकट होगी ?

अभी एक प्रसग आया। चेकोस्लोवाकिया पर रूस ने हमला किया, यह कहकर कि 'हम उनके उद्धार के लिए जा रहे हैं। उनके अन्दर ऐसी ताकत

अभी पैदा हुई है कि जो उनकी असलियत को समाप्त करेगी। इस वास्ते हम उनकी मदद करने के लिए जा रहे है।' अगर रूस यह करता कि चेकोस्लोवाकिया में विचार में गलती हुई है इस वास्ते हम दस बीस आचार्यों को वहाँ भेज रहे हैं, रूस के आचार्यों को और वे गाँव गाँव जायेंगे, विचार समझायेंगे। तब तो हम समझ सकते थे कि ठीक है, कुछ गलत विचार उनका हो गया ऐसा लगा, इस वास्ते उन्होंने ऐसी योजना की और उनके मार्गदर्शन के लिए आचार्यों को भेजा। लेकिन उनके लिए फौज का क्या काम पडा ? गलत रास्ते पर थे तो उनको अच्छे रास्ते पर लाने के लिए फौज की क्या जरूरत पडी ? और अभी वहाँ सेना कायम है। पक्का बन्दोबस्त कर लिया है, कस लिया है सब तरह से। अब इस मामले मे भारत का क्या रुख है ? यही कि तेरी भी चुप, मेरी भी चुप। उनसे जिन देशो को मदद मिलती है वे देश बिलकुल खुले शब्द से बोल नहीं सकेंगे। बेचारे दबी जबान से बोलते हैं। तो हमारे यहाँ के विज्ञों ने कह दिया कि 'चेकोस्लोवाकिया आजाद होना चाहिए ऐसा हम चाहते हैं, यह आक्रमण वापिस होना चाहिए ऐसा हम चाहते हैं, लेकिन हम 'कंडेम' नहीं करते।' अब सवाल इतना ही रहा कि गर्दभ कहना कि गधा कहना ! गधा कहेंगे तो सामनेवाला लात मारना शुरू करेगा। क्योंकि गधा ही है वह। इस वास्ते उसे गर्दभाचार्य कह दिया, तो शायद इतना वह समझेगा नहीं और अपनी मदद वदद जारी रखेगा, हमारे-उसके सम्बन्धो में फरक नहीं पडेगा। अब ऐसी कल्पना करके यह किया गया। जिन्होंने किया उनको जरा भी मैं दोष नहीं देता। इसलिए कि वे पेच मे हैं। अनेक राष्ट्रों के बीच मे हमारा एक राष्ट्र। इधर हमारा झुकाव होता है तो वह नाराज होता है, उधर झुकाव होता है तो यह नाराज होता है। तो दोनो को राजी रखना, सबको राजी रखना, यह कोशिश हो रही है। एक प्रकार की कसरत समझिए—व्यायाम अपना करते हैं ये राजनीतिज्ञ। तो उनको हम दोष नहीं देते। क्योंकि उनकी दृष्टि सीमित है। परन्तु मान लीजिए, भारत में आचार्यों की शक्ति होती और वे आचार्य ऐसे मौकों पर, हिन्दुस्तान के मुख्य मुख्य आचार्य एकत्र होकर, अपनी सर्वसम्मत राय प्रकट करते तो संसार के सामने हमारी एक शक्ति प्रकट होती।

अध्ययन तो करना ही होता है आचार्यों को। उन्होंने किया ही या कुछ-न-कुछ, ऐसा मानना चाहिए। और उन्होंने इकट्ठा हो करके अपना एक मत प्रकाशित किया तटस्थ बुद्धि से 'यूनेनिमसली' (सर्वसम्मत), जो मत बना सो।

अगर मान लीजिए, ऐसा हमने किया होता, कर सके होते, तो इस वक्त भारत की एक अपनी स्वतन्त्र आवाज, उसकी प्रज्ञा दुनिया मे असर करती। यह ठीक है भारत की गवर्नमेंट ने एक रख अख्तियार किया, और आचार्यों ने तटस्थ बुद्धि से सोचकर यह फैसला दिया। तो उसका असर जनता पर पडता, जनता को गाइडेंस मिलता। यह मैंने एक मिसाल दी।

काशी आचार्यकुल सर्व सेवा सघ की भूमिका

हमारे सामने एक मसला खडा हुआ था। ऐसे मसले इण्टरनेशनल भी आयेंगे नेशनल भी आयेंगे राष्ट्रीय भी आयेंगे, और प्रातीय भी आयेंगे। ऐसे मामलो पर अपना तटस्थ अभिप्राय देने की शक्ति आचार्यों में होनी चाहिए। यह यहा के आचार्यजन समझे है और जहाँ तक काशी का ताल्लुक है मैं समझता हूँ कि ये सारे एक होकर के यहाँ उत्तम से उत्तम आयोजन करेंगे। उनको सर्व सेवा सघ की मदद उस काम मे मिल सकती है। सर्व सेवा सघ भारत की सेवा के लिए, पक्षमुक्त सेवा के लिए गाधीजी के आदेश पर स्थापित हुआ सघ है। गाधी ने तो बहुत बडा आदेश दिया था उतना बना नही। गाधी ने क्या आदेश दिया था ? जब काग्रेस का एक कार्य समाप्त हुआ—स्वराज्य प्राप्ति का तो गाधीजी ने काग्रेस से कहा कि उसे लोकसेवक सघ बनना चाहिए ताकि भिन्न भिन्न लोग राजनीति में जो खडे होगे, इलेक्शन के लिए वगैरह वगैरह उन सब पर नियन्त्रण रखना, उनको गाइडन्स देना इत्यादि काम तटस्थ बुद्धि से वह लोक-सेवक सघ कर सके। बापू का आखिर का वसीयतनामा इसको कहना चाहिए, लेकिन काग्रेस के लोगो ने उसका अमल नही किया। उन्होने जो किया बिलकुल ही गलत किया ऐसा मैं कहना नहीं चाहता। ठीक किया एक परिस्थिति के अन्दर। उनको जो कहना जरूरी लगा वह उन्होने किया। लेकिन बाद में भी वे सुधारते और काग्रेस को लोक सेवक सघ बनाते तो काग्रेस एक यूनिफाइंग फैक्टर बनती सारे भारत को जोडने वाली कडी बनती। इसके बदले मे काग्रेस बनी रही। पार्टी बन गयी। पार्ट मानी टुकडा। टुकडा हो गयी, खण्ड हो गयी। जोडनेवाली कडी नही हुई। ऐसी हालत मे जोडनेवाली कडी होने की जिम्मेदारी बेचारे सर्व सेवा सघ पर आयी। उसमें कुछ मनीषी हैं, दादा धर्माधिकारी आदि लोग हैं, जयप्रकाशजी जैसे लोग हैं कुछ लोग हैं, बाकी सामान्य सेवक लोग है। अब उनकी शक्ति बढते-बढते समय जायेगा थोडा। अगर काग्रेस लोक सेवक सघ हुई होती तो सारे भारत में एक ऐसी शक्ति बन जाती जो सरकार के ऊपरवाली शक्ति

होती। सरकार की शक्ति नम्बर दो और लोक-सेवक संघ की शक्ति नम्बर एक, ऐसा होता। अब ऐसा हो गया कि सत्ता-शक्ति सर्वश्रेष्ठ हो गयी। और बाकी की संस्थाएँ उनकी मातहत आ गयी, गौण हो गयीं। तो यह उन्होंने सलाह दी थी। वह न मानने का यह परिणाम हो गया। खैर, जो हुआ सो हुआ।

यह सर्व सेवा संघ है छोटा-सा। अब उसको किसी प्रकार बड़ा होना ही है। यह नसीब है उनका, क्या करेंगे बेचारे। जो परिस्थिति है उसमें छोटे मनुष्यों को भी जिम्मेदारी आती है बड़े बनने की। अब क्या किया जाय? बाप मरता है तब बेटा नाहक बड़ा बन जाता है। लेकिन यह ईश्वर की सृष्टि में है, बड़े मनुष्य चले जाते हैं, छोटे रह जाते हैं। सारे भारत को मार्गदर्शन करने के लिए जब आचार्यकुल खड़ा होगा, तब होगा। यह सर्व सेवा संघ उतना अखिल भारतीय शक्तिशाली होगा न होगा यह मैं कहता नहीं, यह भी कोशिश कर रहा है अपना शरीर फुलाने की। फिर भी मेंढकी अपना शरीर कितना भी फुलाये बैल तो नहीं बन सकती। इसलिए उसकी जो मर्यादा है उस मर्यादा में रहेगी। तो जहाँ तक काशी का ताल्लुक है, मेरा खयाल है इनकी शक्ति और आपकी शक्ति मिलकर 'सहयोगेन' उत्तम कार्य यहाँ हो सकता है।

विद्यार्थी राजनीति से मुक्त हों

कल कुछ विद्यार्थी मेरे पास आये थे। और वे विद्यार्थी खूब सख्त विरोध करते थे आचार्यों का, कुलपति, उपकुलपतियों का। मैं उनको समझा रहा था कि तुम लोग राजनीति से मुक्त हो जाओ। वे कहते थे कि यहाँ आचार्यों में राजनीति पैठी हुई है, ऐसा उनका आक्षेप था। तो मैंने कहा कि इसकी तलाश में मैं नहीं पड़ूँगा लेकिन मैं उनके सामने राजनीति से मुक्त होने की बात रख रहा हूँ, और वे कबूल कर रहे हैं ऐसा मेरे ऊपर असर है। तुम भी ऐसा करो कि हम भी राजनीति से अलग रहेंगे। यह मैंने उनके सामने बात रखी। और मुझे कहने में बड़ी खुशी है, इतनी जल्दी आशा नहीं थी मुझे, उन्होंने स्वीकार किया कि बात आप ठीक कह रहे हैं। हम भी सब तय करेंगे कि राजनीति से अलग रहेंगे। तो मैंने कहा, सब बराबर हस्ताक्षर करो, तुम्हारा अच्छा आर्गनाइजेशन है। छात्रसंघ के द्वारा सब विद्यार्थियों के हस्ताक्षर हासिल करो कि हम राजनीति से मुक्त रहेंगे, जब तक विद्या पाते हैं तब तक राजनीति से मुक्त रहेंगे। और वे तो प्रतिज्ञा कर ही रहे हैं राजनीति से अलग होने की। इस तरह से तुम दोनों समान भूमिका में आ जाओगे।

तुम्हारी समस्याएँ बहुत हल होगी एसे ही। तो वे बोले कि यह ठीक है लेकिन हमको रेस्टिकेट किया गया है निकाल दिया गया है, उसका क्या होगा ? मैंने कहा—देखो तुम नये बनो। तुम नये बनो और वे बनेंगे नये। तुम यह बात मत बोलो कि वे पुराने हैं और वे यह बात नही बोलेंगे कि तुम पुराने हो। जैसे रवीन्द्रनाथ ने गाया—नूतन आवे—हर आदमी नया हो गया है। कल का गुलाब आज नही है आज गुलाब का नया फूल पैदा हुआ है। कल का फूल चला गया आज नया फूल है। इस प्रकार सृष्टि में आज नया सूर्य है नया चन्द्र है नयी तारिकाएँ हैं सब मानव नये हैं और मैं नया हूँ और आप नये हैं। कल की बात हम भूल गये। कल के आज हम हैं नही। यह तुम करो तो सोचा जा सकता है। तुमको जिन लोगो ने रेस्टिकेट किया वे दयालु तो हैं ही आचार्य ही हैं वे तुमको माफ कर सकते है। लेकिन तुम इतना निश्चय करो कि पुरानी बातें भूलना, और उन्हें एक वेद सुनाया, वह मैं आप लोगो को भी सुना दूँ।— नवो नवो भवति जायमान । वेद मे दशम मण्डल में है— नवा नवो भवति जायमान । चन्द्र का वर्णन किया है कि चन्द्र तो रोज नया नया रूप लेता है। कल का चन्द्र आज नही आज का कल नही। एसा सृष्टि का सारा स्वरूप है। प्रवाह नित्यता है सृष्टि मे, अखण्ड प्रवाह बह रहा है। आज का पानी कल नही कल का पानी आज नही। परसो का पानी कल नही था। परमात्मा से जो ससार प्रवाहित हुआ है अखण्ड चल रहा है इसलिए तुम लोग पुरानी बात भूल जाओ और सारे विद्यार्थी समाज के हस्ताक्षर करके लाओ। राजनीति से सुद को मुक्त करो।

अब उनसे यह काम करवाना है। सव सेवा सघ के साथियो से उनकी मुलाकात करवायी। और कहा कि भाई देखो ये आपको मदद देंगे। और आप किस तरह से आगे बढ रहे है मुझे इत्तला देते रहियेगा। साक्षात् मार्गदर्शन आपको सव सेवा सघ से मिलेगा। विशेष मौके पर मैं आपको सलाह दे सकता हूँ। अगर आप राजनीति से मुक्त हो जाते हैं और वे राजनीति-मुक्त हो जाते हैं तो मुक्त आचार्य मुक्त गुरु, मुक्त विद्यार्थी मुक्त शिष्य। फिर क्या पूछते हो ताकत बढेगी। अद्भुत शक्ति बनेगी। इसमें कोई शक नहीं। शिष्य और आचार्य इकट्ठ हुए सहनाववतु सहनौभुनक्तु सहवीर्य करवावहै। हम लोग एकसाथ वीर्य सपादन करें यह उनकी प्रार्थना है। हम दोनो एकसाथ। दोनो यानी गुरु शिष्य। सहवीर्य करवावहै —तेजस्वि नावधीतमस्तु हमारा अध्ययन तेजस्वी हो। तब आशा करता हूँ कि यह रोशनी काशी मे बनेगी और जैसी प्रगति होगी जानकारी मिलती रहेगी। वाराणसी ३–१०–६८

बुनियादी शिक्षा की बुनियाद

विनोबा

बुनियादी तालीम में श्रेष्ठ कनिष्ठ है नहीं। यह जो दूसरी तालीम चलती है, उसमें हेडमास्टर, मास्टर वगैरह होते हैं, तनख्वाह कम-बेशी होती है। और बिलकुल विपरीत बात चलती है कि जो हेडमास्टर होता है, यानी जिसको ज्यादा बुद्धि और अनुभव होना है उसको सिखाने के लिए नीचे के वर्ग देने के बदले ऊपर के वर्ग देते हैं। असल में जो सबसे अधिक अनुभवी, कुशल और बुद्धिमान मास्टर होगा उसको बिलकुल पहले वर्ग को सिखाने को कहना चाहिए, क्योंकि वहाँ शून्य में से तैयार करना होता है, इसलिए अधिक कुशलता की आवश्यकता रहती है।

कैसे सीखें ?

आप जानते हैं कि भारत के एक बहुत बड़े आचार्य थे—रवीन्द्रनाथ। उनका *खयाल था कि पढ़ाई नाम की कोई वस्तु नहीं होनी चाहिए। बल्कि* गाना गाते जायें, बोलते जायें, विद्या पाते जायें, पता ही न चले कि विद्या पा रहे हैं, ऐसा हो। उस पर हमने लिखा था कि भास नहीं होना चाहिए कि हम सीख रहे हैं, भास होना चाहिए कि हम कुछ-न-कुछ काम कर रहे हैं। हम सीख रहे हैं, यह पता नहीं चल रहा है और काम करते करते विद्या पाते जायें। जैसे खेलते हैं, तो पता नहीं चलता कि व्यायाम मिल रहा है और व्यायाम मिलता है। किसान खेत में काम करता है तो उसको मालूम नहीं होता है कि उसका व्यायाम हो रहा है और व्यायाम हो जाता है।

हमारे आश्रम में हम हाथ चक्की पर पीसते थे। एक बार मैं पीस रहा था और मेरे साथ एक बारह साल का लड़का भी पीस रहा था। उसी समय एक सज्जन मुझसे मिलने के लिए आये। उन्होंने देखा, तो बोले, यह तो 'चाइल्ड लेबर' हुआ। बच्चों से इस प्रकार 'लेबर' करवाना ठीक नहीं। हमने कहा ठीक है। कल हम इसी चक्की पर बैठेंगे—इसी तरह चक्की घुमायेंगे—एक बार दायीं ओर से एक बार बायीं ओर से, लेकिन उसमें अनाज नहीं डालेंगे, यानी पीसा कुछ नहीं जायेगा—पर इसी तरह चक्की घुमाते रहेंगे तो फिर वह 'चाइल्ड लेबर' नहीं होगा, वह 'एक्सरसाइज' होगी। अगर उस श्रम में से कुछ पैदा हुआ, तो वह श्रम होगा, नहीं तो व्यायाम होगा।

परिश्रमहीन जीवन की गहरी जड़े

एक बार, हमने एक किताब पढ़ी थी'—'थ्री मिनट्स एक्सरसाइज—तीन मिनट में व्यायाम। कुछ नहीं करना कमरे में यहां से वहां तक दरी बिछा देना और उस पर इधर से उधर, उधर से इधर लेटकर लुढ़कना, बस। ऐसा बिना श्रम का व्यायाम।

आज हमारा सारा जीवन परिश्रम-हीन हो गया है। यह बात हममे पैठ गयी है। इसके दो कारण हैं। एक कारण तो है जाति व्यवस्था और दूसरा वर्णाश्रम-व्यवस्था। ऊँची जाति के लोग काम करेंगे नहीं। और तीसरा, अंग्रेज आने के बाद उन्होंने ऊँची जाति को अंग्रेजी सिखा दी। वे अंग्रेजी बोलने में अंग्रेज जैसे बरतने में बड़प्पन मानने लगे। मदर कहने में उनको विशेष आदर प्रतिष्ठा महसूस होती है 'माँ' कहने में अप्रतिष्ठा लगती है। तो वह एक वर्ग तैयार हो गया, जो परिश्रम को हीन मानने लगा। तो वर्ण व्यवस्था के अनुसार ऊँचा वर्ग और अंग्रेजी शिक्षा के कारण और ऊँचा हो गया। उसकी ऊँचाई की सीमा नहीं रही। और ऊँच-नीचता बनी रही। फलाना काम ऊँचा, फलाना नीचा—यह भावना आयी। अब यह सारा तोड़ना होगा। तब भारत बचेगा।

हमारे यहाँ परिश्रमनिष्ठा बहुत बड़ा तत्त्व है। वह बुनियादी तालीम का बहुत बड़ा तत्त्व है। लेकिन आज का समाज उसके लिए अनुकूल नहीं।

प्रश्न आप भारत भर में ग्रामदान, प्रदेशदान का आन्दोलन चला रहे हैं। नयी तालीम का काम तो अधिक महत्त्व रखता है। क्या उसके लिए आन्दोलन में कहीं स्थान नहीं कि भारत में नयी तालीम का अमल हो ?

बुनियादी विद्यालय का आधार कैसे बने ?

उत्तर इस पर सतत अमल हो रहा है। सन् '५१ से ६८ तक भारत की पदयात्रा हुई। उसमें सतत नयी तालीम का कार्य चला। शिक्षा में अहिंसक क्रान्ति लाने का काय चला। उसके पहले कौन पैदल चलता था ? हमारी यात्रा के बाद ऐसा असर हुआ कि चुनाव के लिए खड़े होने पर बड़े बड़े लोग भी पदयात्रा करने लगे। लेकिन उनकी पदयात्रा कैसी थी ? 'पदयात्रा' एक समास है। बड़े-बड़े लोग जो पदयात्रा करने लगे वह 'पदयात्रा' मध्यम पदलोपी समास है। पदप्राप्ति के लिए यात्रा। इतनी पदयात्रा की प्रतिष्ठा हो गयी।

आज की जनता को शिक्षित किये बिना बेसिक एजूकेशन (बुनियादी शिक्षा) को बुनियाद ही नहीं मिलेगी यह ध्यान मे आया नायकम्‌जी को। वे हमारे साथ तमिलनाड मे घूम रहे थे। अभी तो वे हमारे बीच मे नहीं हैं।

बिलकुल ऊँचा शरीर, हजार लोगों में भी दीखेगा, ऐसा। उन्होंने कहा कि हरएक बच्चे को तालीम मिलनी चाहिए। लेकिन भारत में करोड़ों लोगों को खाने को मिलता नहीं। और परिवार में पाँच-छह साल का लड़का भी अर्निंग (कमाऊ-सदस्य) होगा। भैंस की पीठ पर बैठकर उसे चराने ले जायेगा। वह न हो, तो भैंस का दूध मिलेगा नहीं। पाँच साल का लड़का, पर अर्निंग मेम्बर है। वह आपके स्कूल में कैसे जायेगा? इसलिए प्रथम तो सब बच्चों के लिए इंतजाम होना चाहिए खाने पीने का। उसके बिना बुनियादी स्कूल को आधार नहीं है। यह उन्होंने देखा, तब कहा कि अब ध्यान में आया कि नयी तालीम विद्यालय केवल विद्यालय तक सीमित नहीं होना चाहिए। पूरे गाँव को विद्यालय मानना चाहिए। फिर नयी तालीम के सम्मेलन में उन्होंने प्रस्ताव पास किया कि पूरे गाँव को स्कूल मानकर प्रयोग किया जाये और विद्यालय व्यापक किया जाये। इसका अर्थ यह हुआ कि बुनियादी तालीम के लिए आधार ग्राम ही है। गाँव ग्रामदान हो जाता है, तो ग्राम सभा के द्वारा हर बच्चे के लिए तालीम का इन्तजाम होगा। ऐसी व्यवस्था होगी कि बुनियादी तालीम घर के हर बच्चे तक पहुँचे।

डा० जाकिर हुसेन नयी तालीम के बड़े आचार्य हैं। उन्होंने माना है कि बुनियादी तालीम जब ग्रामीण आधार पर खड़ी होगी, तभी उसकी असलियत प्रकट होगी, नहीं तो नहीं। सरकार ने क्या किया? कुछ सरकारों ने बुनियादी तालीम को माना और किया क्या? जो लड़का वह तालीम पायेगा, उसको हाई स्कूल में प्रवेश नहीं। यानी बुनियाद बनायी त्रिकोणी और ढाँचा चतुष्कोणी। अगर ऊपर का ढाँचा भी त्रिकोणी हो तो ठीक, नहीं तो बुनियाद चतुष्कोणी हो। बापू के आग्रह के खातिर बुनियादी तालीम चलायी और आखिर उसको भी पटक दिया। आज बुनियादी तालीम के नाम पर भारत में जो चलता है, वह बिलकुल ही गलत है।

बुनियादी तालीम का विचार बहुत व्यापक है और उसके लिए अवसर ग्रामसभा के बिना होगा नहीं। यह विचार गांधीजी ने दिया था और उसका अमल किया जापान ने। वहाँ उन्होंने 'हाफ-हाफ' स्कूल चलाया है। तीन घण्टे श्रम और तीन घण्टे ज्ञान। तमाम विद्यार्थियों को इसी तरह तालीम मिलेगी। वर्ग, जाति, ऊँच-नीच का भेद नहीं। जो भी स्कूल में जायेगा, उसको श्रम करना पड़ेगा। यही बापू ने कहा था कि तालीम में ज्ञान और कर्म साथ-साथ होना चाहिए। भारत में आज कल वैसा है नहीं।

[बुनियादी शिक्षकों के बीच : बेतिया, ८-८-'६८]

स्वावलम्बन की ओर

प्रेमनारायण रुसिया

बात अभी बहुत पुरानी नहीं है, जब दो वर्षों के भयानक सूखा से उत्पन्न संकट का सामाना करने और भविष्य में देश को खाद्यान्न में आत्मनिर्भर बनाने के लिए देश का ध्यान उन्नतिशील खेती की ओर गया था। हमने भी उसके साहित्य को मँगाया, उसका अध्ययन किया और उसके विशेषज्ञों से कई बार विचार-विमर्श किया और अन्त में मैक्सिको के गेहूँ और रासायनिक खाद की चर्चा प्रशिक्षणार्थियों से की। वे इस नयी पद्धति को समझने एवं इस प्रकार खेती करने को आतुर हो उठे।

गेहूँ की खेती का तुलनात्मक प्रयोग

चार खेत तैयार किये गये—एक में प्राचीन पद्धति से खेती हुई, दूसरी में देशी खाद में मैक्सिको का गेहूँ बोया, तीसरे में रासायनिक खाद में मैक्सिको का गेहूँ बोया और चौथे में रासायनिक खाद में देशी गेहूँ बोया गया। इन प्रयोगों को देखने के लिए ग्रामवासियों को भी आमन्त्रित किया। आरम्भ में तो कम ग्रामवासी आये, किन्तु ज्यों-ज्यों फसल बढ़ती गयी, दर्शकों की संख्या और प्रशिक्षणार्थियों की रुचि बढ़ती गयी। जब चारों खेतों में फसलें तैयार हुईं तब तो वहाँ रात-दिन देखनेवालों का मेला-सा ही रहने लगा। जो भी आता घण्टों खड़ा-खड़ा फसलें देखता, प्रश्न पूछता और आश्चर्यचकित रह जाता।

अनुबंधित ज्ञान

दर्शकों को समझाने के लिए प्रशिक्षणार्थियों की टोलियाँ बनानी पड़ी। इसके लिए प्रशिक्षणार्थियों को भी गहराई से अध्ययन करना पड़ा, रासायनिक खाद किस प्रकार बनती है? वह कितनी प्रकार की होती है? प्रत्येक प्रकार की रासायनिक खाद का पौधों पर क्या प्रभाव पड़ता है? किस खाद के उपयोग की अवधि व विधि क्या है? देशी खाद व हरी खाद के गुण क्या हैं? मैक्सिको के गेहूँ के गुण क्या हैं तथा उसको कैसे बोते हैं, आदि बातों को विस्तार से एवं तुलनात्मक आधार पर प्रशिक्षणार्थियों ने समझा और समझाया। चार माह का समय बड़े उत्साह, आनन्द और जिज्ञासा के बीच व्यतीत हुआ। अन्त में जब फसलें काटी गयी तो प्रत्येक खेत के परिणाम इस प्रकार रहे :

तुलनात्मक परिणाम

खेत क्रमाक	विधि	उपज प्रति एकड	उत्पादन का मूल्य रुपये	लागत प्रति एकड रुपये	लाभ प्रति एकड रुपये
१.	सिंचाई सहित देशी खाद में देशी गेहूँ की उपज	१२ मन	४००	१३०	२७०
२	सिंचाई सहित रासायनिक खाद में देशी गेहूँ की उपज	१८ मन	५६०	२४०	३२०
३	सिंचाई सहित देशी खाद में मैक्सिको के गेहूँ की उपज	१५ मन	४८०	१५०	३३०
४	सिंचाई सहित रासायनिक खाद में मैक्सिको के गेहूँ की उपज	६५ मन	१८२०	३४०	१४८०

फसल के परिणामों से किसान, प्रशिक्षणार्थी और हमारे शिक्षक भाई उत्साहित हो उठे। किसानों ने इस प्रयोग से आश्वस्त होकर वैज्ञानिक ढंग से गेहूँ की उन्नतिशील खेती करने का संकल्प लिया और अपने पुरुषार्थ के कारण मई '६८ मे उन्होंने एक करोड रुपये के अतिरिक्त गेहूँ शासन को बेचा। यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक है कि यह जिला अभी तक खाद्यान्न में कमीवाला जिला होने के कारण अपनी आवश्यकता की पूर्ति-हेतु बाहर से गेहूँ मँगाता था।

प्रशिक्षणार्थियो पर प्रभाव

प्रशिक्षण प्राप्त करने के पश्चात् घर लौटनेवाले अधिकाश प्रशिक्षणार्थी अपने-अपने घर की खेती मे लग गये और सस्था के एक भृत्य बधु ने, जो अभी तक ६० रु० माह पर सस्था मे नौकरी कर रहे थे, इस प्रयोग को देखकर सरकारी नौकरी ही छोड़ दी और एक ही वर्ष में वह अब नयी मोटरसाइकिल पर प्रसन्नतापूर्वक घूमते हुए दिखाई देते हैं।

बुनियादी शिक्षक का कौशल

मैं एक बार नयी तालीम के एक प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री द्वारा संचालित नयी तालीम की एक प्रशिक्षण-सस्था देखने गया। हम लोग बातें करते-करते एक खेत पर जा पहुँचे। इस खेत मे कद्दू लगे थे। वे सज्जन कहने लगे, "हम तो छात्रों को व्यावहारिक ज्ञान देकर भावी जीवन के लिए ही उन्हें तैयार करते हैं, किन्तु फिर भी सरकार हमारी नयी तालीम को मान्यता नहीं देती है।" मैंने

पूछा कि आपके इस एक एकड़ के खेत में कितना कद्दू पैदा होगा ? उन्होंने सहज भाव से उत्तर दिया, "यही, लगभग ४०० रु० का कद्दू पैदा हो जायेगा।" मुझे उनके उत्तर से अत्यधिक निराशा हुई, क्योंकि मुझे तो २३००रु० प्रति एकड़ हिसाब से कद्दू पैदा करने का अनुभव है। इससे तो किसान ही अधिक पैदा कर लेते हैं, तो इतनी कम उपज में नयी तालीम का नयापन क्या है ? हमें काम करते समय विनोबाजी के इस कथन को सदैव सामने रखना चाहिए—"बुनियादी शिक्षक किसी भी किसान से, बुनकर से, या बढ़ई से, कम कुशल नहीं होंगे, बल्कि ज्यादा कुशल होंगे। किसान, बढ़ई आदि को जो चीजें नहीं सूझती होंगी वे उन्हें सूझेंगी। किसान, बढ़ई आदि अपने काम में जो रफ्तार हासिल नहीं कर सकते वह रफ्तार उन्हें हासिल होगी। वह उन्हें सूझेगी। किसान को अगर अपनी रोटी हासिल करने में ८ घण्टे लगते होंगे तो बुनियादी शिक्षक कहेगा कि यह काम ४ घण्टे में हो सकता है।"

अध्यापक के पास व्यावहारिक ज्ञान और सर्वसाधारण से अधिक कौशल होगा तभी वह दूसरों को कुछ दे सकेगा। ऐसे शिक्षक के पास बालक, युवक और वृद्ध, सभी स्वेच्छा से सीखने के लिए भागे चले आयेंगे। किन्तु वस्तु-स्थिति दूसरी ही है।

आज अधिकांश पाठशालाओं में उत्पादन के नाम पर भद्दी और भोंडी वस्तुओं के निर्माण को देखकर एक ही निष्कर्ष निकलता है कि अध्यापकों का सही प्रशिक्षण नहीं हुआ है। अध्यापकों की योग्यता उनके प्रशिक्षण के स्तर पर निर्भर होती है। जैसा उनको प्रशिक्षण मिलेगा वैसा ही उनके कार्य एवं ज्ञान का स्तर होगा। गांधीजी ने स्वयं अनेक प्रयोग किये हैं। अपने एक प्रशिक्षण-केन्द्र के परिणामों का उल्लेख करते हुए वे लिखते हैं :—"एक विद्यार्थी ने १० घण्टे में ७० तोला सूत काता। १ घण्टे में ७ तोला हुआ। ५ तोला फी घण्टे तो ज्यादातर विद्यार्थियों ने काता, इन सबमें से किसीको भी ५ माह से ज्यादा की तालीम नहीं मिली है।"

आज ऐसी कितनी बुनियादी शिक्षण और प्रशिक्षण-संस्थाएँ देश में होंगी, जो यह कह सकती हैं कि उनका कोई भी शिक्षार्थी एक वर्ष के पश्चात् भी एक घण्टे में ५ तोला सूत कातने लगा हो ?

प्रशिक्षण-संस्थाओं का दायित्व

अगर प्रशिक्षण-संस्थाएँ अध्यापकों में कार्य के प्रति आस्था, श्रम के प्रति निष्ठा और उद्योगों में दक्षता का निर्माण कर सकें तो उससे निकलनेवाले ऐसे

शिक्षक जिस किसी भी पाठशाला मे पहुँचेंगे वहाँ बालको के साथ साथ समस्त ग्राम के प्रेरणा और आकर्षण का केन्द्र बनेंगे। जबतक प्रशिक्षण संस्थाओं में श्रेष्ठ अध्यापकों का निर्माण नही होगा तब तक विद्यार्थियों से स्वावलम्बन की आशा करना दुराशा मात्र ही है।

सोचने की बात है कि जब अध्यापको की बनायी वस्तुएँ निम्न स्तर की होगी तब बच्चों के कार्य का स्तर कैसे ऊँचा उठ सकेगा? अत हमारी ऐसी मान्यता है कि अध्यापको के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए बुनियादी प्रशिक्षण संस्थाओं में प्रशिक्षण के समय अध्यापकों में निम्नांकित योग्यताओं का आ जाना नितान्त आवश्यक है—

• वे काम में इतने कुशल हो जायें कि उनके द्वारा बनी हुई वस्तुएँ साधारण अपढ कारीगरो की वस्तुओं से श्रेष्ठ सस्ती तथा मजबूत हो।

• उनको किसी भी काम में साधारण उद्योगवालो की अपेक्षा कम समय लगे।

• वे उद्योग की प्रत्येक प्रक्रिया के वैज्ञानिक पहलू से पूर्ण भिज्ञ हो।

• उन्हें अपने उद्योग की समस्त उपक्रियाओं का व्यावहारिक ज्ञान हो।

• वे केवल कोरे मिस्त्री न बनें, वरन् उन्हें उद्योग और ज्ञान दोनो में समान दक्षता प्राप्त हो।

• जितना रुपया कच्चा माल खरीदने मे व्यय हो, वह उत्पादन के द्वारा नगद रूप मे निकल आये।

प्रशिक्षण महाविद्यालय, कुण्डेश्वर, टीकमगढ के प्रयोग

इन सिद्धान्तो को लेकर उद्योग प्रशिक्षण में स्वावलम्बन के आर्थिक पहलू पर राजकीय बुनियादी शिक्षा, प्रशिक्षण महाविद्यालय कुण्डेश्वर, टीकमगढ़ (म० प्र०) में कई वर्षों से प्रयोग हो रहे हैं। यहाँ पर उन प्रयोगो का उल्लेख करना मेरी समझ मे विषयान्तर न होकर लाभप्रद ही सिद्ध होगा।

कुण्डेश्वर में प्रति वर्ष १२४ विभागीय अध्यापक तथा नये उम्मीदवार प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। प्रशिक्षण काल में प्रत्येक प्रशिक्षणार्थी को दो मुख्य उद्योग अर्थात् कृषि एव बागवानी तथा कताई एव बुनाई और एक सहायक उद्योग तथा अभिरुचि के रूप में कुछ सुगम उद्योग सिखाये जाते हैं। समय-सारिणी के अनुसार प्रतिदिन ३ घण्टा उद्योग एव ३½ घण्टा सैद्धान्तिक विषयो का प्रशिक्षण होता है। यहाँ पर कई वर्षों से स्वावलम्बन के सिद्धान्त पर गहराई से प्रयोग चल रहे हैं। कच्चे माल के खरीदने में व्यय होनेवाला रुपया

तो दो वर्ष पश्चात् ही उत्पादन की विक्री से प्राप्त होने पर राजकीय कोष में जमा होने लगा था। किन्तु १३ वर्षों मे उत्पादन के स्तर व परिणाम मे निरन्तर वृद्धि होने के कारण यहाँ प्रति वर्ष लागत मूल्य से कई गुना अधिक रुपया राजकीय कोष में जमा किया जाता है। सस्था के १ वर्ष के उत्पादन की निम्न तालिका से उत्पादन को हमारी स्थिति को भलीभाँति समझा जा सकता है

	उद्योग	लागत मूल्य	उत्पादन का मूल्य	लाभ	राजकोष मे जमा निधि	विशेष
१	बागवानी एव कृषि	५१२ ६४	४६६१ ५५	४१७८ ६१	३७०५ ४२	१६६० ६७ रु०
२	कताई एव बुनाई	१४२ २६	११२२ ५६	६८० ३०	७३० ४१	का सामान बिक्री-केन्द्र मे
३	अन्य उद्योग	५५३ ०५	१३०६ ४७	७५३ ४४	६६४ ०८	शेष है।
	कुल	१२०८ २५	७१२० ५८	५६१२ ३५	५१२६ ६१	१६६० ६७

उत्पादन की विशेषताएँ और परिसीमाएँ

सस्था के विभिन्न उद्योग कक्षा से प्राप्त उत्पादन का समस्त सामान इसी सस्था के बिक्री-केन्द्र द्वारा बेचा जाता है। निर्मित वस्तुओ के बेचने में किसी भी प्रकार की कठिनाई नही होती है, क्योकि वे अपनी श्रेष्ठता और सस्तेपन के कारण दूर दूर तक ख्याति प्राप्त कर चुकी हैं। उत्पादन के उपरोक्त आँकडे इस बात का ज्वलन्त प्रमाण हैं कि यहाँ प्रशिक्षणार्थी प्रशिक्षण की अवधि में नि सन्देह ही उद्योगो में वाछनीय कौशल प्राप्त कर लेते हैं तभी इतने श्रेष्ठ एव इतने अधिक उत्पादन का होना सम्भव है।

यहाँ पर मैं एक बात विशेष रूप से स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि शासकीय सस्था होने के कारण हमारी कुछ परिसीमाएँ भी हैं, जैसे कि हमें उद्योग-प्रशिक्षण हेतु बहुत ही थोडा रुपया मिलता है। इस थोडे-से रुपयो से उत्पादित सामान को बेचने पर प्राप्त रुपये को राजकीय कोष मे तत्काल जमा करना पडता है। यदि हमें बिक्री का रुपया जमा न करना पडे तो उस रुपये से हम पुन कच्चा माल मगाकर पुन उद्योग कार्य को आगे बढा सकते हैं। इस प्रकार उतने ही रुपये से एक ओर हमारा उत्पादन कई गुना बढ सकता है तो दूसरी

ग्रोर विद्यार्थियो को ग्रधिक से ग्रधिक कार्य करने का ग्रवसर मिल सकता है, इससे उनकी कार्यक्षमता बढेगी, काम मे सफाई आयेगी, अपव्यय कम होता जायगा ग्रौर उनके मन मे ग्रात्मविश्वास पैदा होगा।

सूत कताई उत्सव का माधुर्य

जुलाई से प्रारम्भ होनेवाले प्रत्येक सत्र का स्वागत हम सूत्र यज्ञ से करते हैं। एक ग्रोर जहाँ दूसरो ने जुलाई को प्रवेश का महीना कहा है, वहाँ हमने इसे सूत कताई का उत्तम ग्रवसर माना है। सस्था खुलते ही प्रशिक्षक एव प्रशिक्षणार्थी, दोनो ही किसान चरखे पर ग्रासन लगाकर बैठ जाते हैं। प्रत्येक अपने हाथ से रूई की लुनाई, धुनाई करके अच्छी-से ग्रच्छी पूनी बनाता है, ताकि वह समान, साफ ग्रौर पक्का सूत कातकर अपने लिए एक कुर्ता ग्रौर एक पाजामा अपने ही सूत से तैयार कर सके। ग्रामतौर से २१ गुण्डी सूत मे ही ग्रौसत एक कुर्ता ग्रौर एक पाजामा बनकर तैयार हो जाता है। १४० चरखो की मधुर गुजार मे तन्मयता के साथ सूत कातनेवालो को देखकर मन प्रसन्न हो उठता है।

जहाँ एक ग्रोर वस्त्र-स्वावलम्बन में सभी लोग एकसाथ बैठते हैं, वहाँ दूसरी ग्रोर कृषि-काय मे भी मिलकर हाथ बँटाते हैं। भोजन ग्रौर वस्त्र, दोनो ही जीवन की ग्रनिवार्य ग्रावश्यकताएँ है, ग्रत दोनो उद्योगो का व्यावहारिक एव शास्त्रीय ज्ञान प्रत्येक प्रशिक्षणार्थी के लिए ग्रनिवार्य कर दिया गया है। प्रात ७ बजते ही प्रत्येक व्यक्ति अपने हाथ मे गैती, खुरपी या फावडा लेकर अपनी टोली के साथियो के साथ खेत की ग्रोर चल देता है। अपने श्रम सीकरो से वे कभी टमाटर, गोभी ग्रौर मटर के पौधो को सँवारते हैं, तो कभी नीबू, ग्राम ग्रौर ग्रमरूद के पेड़ो को खाद-पानी देते हैं। उनके कौशल की साक्षी देशी गुलाब के वे पौधे देते हैं, जो अपनी एक टहनी पर लाल रग का, दूसरी पर पीले ग्रौर तीसरे पर नीले रग का गुलाब खिलाते रहते हैं। देशी ग्राम पर दशहरी, लगडा ग्रौर बनारसी ग्रादि ग्रनेक प्रकार के ग्रामों की कलमें बाँधने में उन्हें ग्रानन्द ग्राता है। नीबू तथा ग्रमरूद के पौधे बनाकर चार ग्राने प्रति पौधे की दर से ग्रामवासियो को बेचने म उनको सेवा-वृत्ति को सतोष मिलता है, क्योकि विकास खण्ड द्वारा ये ही पौधे दो रुपये पचास पैसे में बेचे जाते हैं।

सुगम उद्योग : साबुन ग्रौर चाक

सुगम उद्योगों में साबुन का काम दैनिक उपयोगिता के कारण सर्वाधिक ग्राकर्षण का केन्द्र रहता है। ठण्डी रीति से, गरम रीति से ग्रौर ग्राधी गरम

रीति से छात्र नाना प्रकार के साबुन स्वयं बनाते हैं उनका प्रयोग करते हैं और बेचते हैं। वैसे तो साबुन के अतिरिक्त संस्था में बांस, ताड़पत्ती, मिट्टी गत्ता और चित्रकला आदि सहायक उद्योग अनवरत रूप से निर्माण का केन्द्र बन रहते हैं किन्तु चाक बनाने का काम आय की दृष्टि से लाभकारी होने के कारण बहुत अधिक चलता है। प्रत्येक आयु और प्रत्येक कक्षा के बालक चाक बनाने के काम को करते हैं। मिट्टी का घोल बनाना, साँचे भरना, चाक सुखाना डिब्बे बनाना प्रत्येक डिब्बे में १०० चाक गिनकर भरना और डिब्बे की पैकिंग करना आदि भिन्न कार्यों को प्राथमिक तथा माध्यमिक शालाओं के छात्र बड़ी रुचि से करते हैं। जब छात्र ४० मिनट के एक घण्टे में चाक बनाने का कोई भी काम करता है तो उसे इस काम के लिए पारिश्रमिक रूप में १० पैसे मिल जाते हैं, यह पैसे उसके मध्यान्तर आहार पर व्यय किये जाते हैं।

यहाँ पर मैं इतना उल्लेख करना आवश्यक समझता हूँ कि इतना काम करते हुए इस संस्था के प्रशिक्षणार्थी मण्डल द्वारा आयोजित वार्षिक परीक्षा में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त करके विनोबा के इस कथन की पुष्टि करते हैं कि 'कर्म से तपी हुई बुद्धि ज्ञान ग्रहण करने को सदैव तैयार रहती है।

उद्योग-प्रणाली की विशेषताएं

वैसे तो संस्था का सम्पूर्ण जीवन-क्रम ही शिक्षा है किन्तु यहाँ संस्था के उद्योग शिक्षण प्रणाली का विवरण देना ही उचित होगा —

• संस्था में प्रत्येक उद्योग की सम्पूर्ण क्रियाओं का प्रशिक्षणार्थियों को पूर्ण अभ्यास कराया जाता है। उदाहरणार्थ कताई में खेती से लेकर वस्त्र बुनने की समस्त क्रियाएँ अर्थात् कपास का बुनाई धुनाई, पूनी बनाना, कताई, बँटाई, रंगाई ताना डालना, वय भरना, कँघी करना आदि का समावेश है।

• प्रत्येक उद्योग में कार्य-क्षमता की निम्नतम सीमा निर्धारित है। साधारण शिक्षार्थी को इतना अभ्यास करना आवश्यक है कि वह सुगमता से निर्धारित कार्य क्षमता का अभ्यासी हो जाय।

• अपने उद्योग-सम्बन्धी समस्त सामग्री व साज-सज्जा की मरम्मत और सुरक्षा का व्यावहारिक अनुभव प्रत्येक शिक्षार्थी के लिए अनिवार्य है—जैसे कि बुनाईवालों को लूम खोलना, फिट करना और अगर कोई साधारण सा हिस्सा टूट गया है तो उसकी मरम्मत करना। इसके लिए बुनाईवालों को काष्ठकला का काम अभिरुचि के तौर पर सिखाया जाता है।

• प्रत्येक उद्योग के लिए एक निश्चित अवधि मे उत्पादन की न्यूनतम सीमा निर्धारित है। अतः इसके लिए यह आवश्यक है कि प्रशिक्षणार्थी के कार्य की क्षमता मे वाछित गति आ जाय, अन्यथा वह उत्पादन की निर्धारित सीमा को पूरा न कर सकेगा।

• उत्पादन की श्रेष्ठता का स्तर न गिरने पाये, अतः यह निश्चित कर दिया गया है कि अमुक उद्योग मे, प्रत्येक प्रशिक्षणार्थी (जो उद्योग को सीखेगा) को कम-से-कम अमुक मूल्य का उत्पादन पूर्ण सत्र में या अमुक अवधि में अवश्य ही करना होगा।

• ज्ञान के विकास तथा प्रेरणा के लिए प्रशिक्षणार्थी का अपने-अपने उद्योगो का सर्वेक्षण करने तथा विशेषज्ञो की कार्यप्रणाली का अवलोकन करने हेतु सरकारी एव गैरसरकारी प्रयोगशालाओ के साथ-साथ उद्योग करनेवाले कारीगरो के घर और दुकानो पर जाने का अवसर प्रदान किया जाता है। ऐसा करने से ज्ञानवर्द्धन के साथ-साथ उनमे कार्य मे रुचि एवं स्वाभिमान उत्पन्न होता है।

सस्था के उद्योगो की प्रयोगशालाओ की कुंजियाँ प्रशिक्षणार्थियो के ही पास रहती हैं, अतः वे अवसर मिलने पर स्वेच्छा से प्रयोगशालाओ का उपयोग करते हैं। इससे उत्पादन और कार्य-क्षमता बढने के साथ-साथ उनके मन में संस्था के प्रति अपनत्व और कार्य के प्रति उत्तरदायित्व की भावना का निर्माण होता है।

• यहाँ जुलाई से दिसम्बर तक, प्रशिक्षणार्थियों को उद्योग का अभ्यास कराया जाता है, और सैद्धान्तिक ज्ञान दिया जाता है। इस अवधि में जब वे उद्योग मे पूर्ण दक्ष हो जाते हैं तब अध्यापन-अभ्यास का कार्य जनवरी से प्रारम्भ किया जाता है। क्योकि हमारी मान्यता है कि प्रशिक्षणार्थी को उद्योग मे दक्षता, उसका समस्त समवायी ज्ञान और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का निर्माण करा देने के पश्चात् ही उसे अध्यापन अभ्यास के लिए, पाठशालाओ में भेजा जाय। जब तक प्रशिक्षणार्थी इतनी पूर्वतैयारी न कर ले तब तक उसे कक्षा मे अध्यापन-अभ्यास के लिए भेजना अनुचित है। क्योकि अनभिज्ञ प्रशिक्षणार्थी से बालको का और उसके स्वयं का समय और जीवन नष्ट होगा।

इन प्रयोगो के आधार पर, हमारा दृढ विश्वास है कि यदि अनुकूल वातावरण मे प्रयत्न किया जाय तो बुनियादी शिक्षा द्वारा पूर्ण स्वावलम्बन प्राप्त किया जा सकता है।•

आर्थिक वातावरण और समवाय

वशीधर श्रीवास्तव

बालक का सामाजिक वातावरण समवाय का अक्षय स्रोत है। अत सामाजिक वातावरण से समवायित कर पढाया जाय तो समवाय की सम्भावनाएँ बहुत बढ जाती हैं। बाहर जो प्रकृति का ससार है, इसके अलावा मनुष्य का एक और दूसरा ससार भी है। यह वह ससार है, जिसे उसने पाया नहीं, बल्कि स्वय बनाया है। यह ससार उसका समाज है। मनुष्य का समाज उसकी समस्त ऐतिहासिक, भौगोलिक, नागरिक, नैतिक, राजनैतिक, आर्थिक और सास्कृतिक सस्थाओ का पूँजीभूत मूर्तिमान रूप है। इन सस्थाओं का अध्ययन बालक के लिए उसके अपने जीवन का अध्ययन ही है, क्योंकि ये उसके जीवन के अभिन्न अग हैं। बालक अपने सामाजिक वातावरण से उसी प्रकार घिरा रहता है, जैसे उस प्राकृतिक वातावरण से जिसमें वह साँस लेता है। दोनों ही उसके जीवन का पोषण करते हैं। अत यह आवश्यक है कि बालक अपने सामाजिक वातावरण को समझे बूझे और सामाजिक सस्थाओ के उद्भव और विकास की कहानी जाने।

समाज के क्रियाकलापो मे सबसे महत्त्वपूर्ण वे क्रियाकलाप है, जिनका सम्बन्ध मनुष्य के आर्थिक जीवन से है। अपनी नित्यप्रति के जीवन की आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए मनुष्य नाना प्रकार के उद्योग-धन्धों में लगा रहता है। बालक इन उद्योग धन्धो के माध्यम से बहुत सा उपयोगी ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। इन उद्योग धन्धो के विकास की कहानी मानव-सभ्यता के विकास की कहानी है। इनका वैज्ञानिक अध्ययन किया जाय तो अत्यन्त रोचक ढग से बहुत उपयोगी ज्ञान बालकों को दिया जा सकता है और सामाजिक ढग से अनेक विषय पढाये जा सकते हैं।

आर्थिक विकास की प्रारम्भिक सीढ़ियाँ

प्रारम्भ मे मनुष्य के आर्थिक समाज का रूप बहुत सरल था। मनुष्य पहले आखेटक था। पशु-पालन सीखने के बाद गो चारण उसका धधा हुआ, खेती के आविष्कार के बाद वह किसान बना और पाले हुए पशुओ की सहायता से खेती करने लगा। खेतो के बीच मे उसने छोटे-छोटे गाव बसाये। पहले वह खेती, गोपालन, कताई बुनाई, बतन बनाना आदि सब धधे स्वय करता था। फिर श्रम विभाजन हुआ और इन धधो के करनेवालो का अलग वर्ग बना। मनुष्य की बढती हुई आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए नये नये धधे प्रारम्भ हुए। *बनिये का एक नया धधा शुरू हुआ। यह वर्ग स्वय उत्पादन नही* करता था। दूसरो की बनायी हुई या पैदा की हुई चीजो को एकत्र करके उस स्थान पर ले जाता था, जहाँ उसकी आवश्यकता होती थी। कालान्तर में इसी वग का विकास पूँजीपति वर्ग मे हुआ। भूमि पर अधिकार करके दासो या मजदूरो को रखकर खेती कराने का धधा भी प्रारम्भ हो गया और जमीदारो का एक नया वर्ग बना।

१८ वीं सदी की औद्योगिक क्रान्ति के बाद मनुष्य का समाज पहले से बहुत जटिल हो गया। अबतक उसका समाज छोटे-छोटे गांवो का समाज था। क्रान्ति के बाद यन्त्रचालित बडे बडे उद्योगो के चालू होने पर उन्हीके चारो ओर मनुष्य के बसने से बडे-बड़े नगर बसे और परम्परागत पुराने वर्ग-सम्बन्धो का विघटन हुआ और नये नये वर्ग बने।

आज के सकुल समाज की आवश्यकताएं

फलत आज का समाज देहातो और नगरो का एक सकुल समाज है। इस समाज को सुरक्षा की आवश्यकता है। इसकी व्यवस्था मनुष्य की प्रगति के लिए आवश्यक है। फिर मनुष्य को रोटी से अधिक कुछ और चाहिए। सगीत, साहित्य, कला, विज्ञान, धर्म उसकी इसी इच्छा के परिणाम हैं और उसकी *मानवता के प्रमुख लक्षण हैं। यही उसे पशु से अलग करते हैं।*

इस मानव समाज की सारी सकुल जटिलता—आज के बालक को दाय के रूप मे मिली है। उसको इसे समझना-बूझना है, इस प्रगति के साथ उसे अपने को सचालित करना है। जब तक वह ऐसा नही कर पाता, वह समाज की प्रगति में योगदान नहीं कर सकता, जो उसका परम पुनीत कर्तव्य है। यहाँ समाज को इसी ढग से समझने बूझने की चेष्टा की गयी है। ज्ञान देने की प्रक्रिया को निम्न प्रकार की इकाइयो मे बाँटकर पढाया जाय तो ज्ञान प्राप्ति का कार्य अधिक व्यवस्थित होगा

समुदाय का आर्थिक जीवन

क्रिया-कलाप	अध्ययन के लिए छात्रों द्वारा कार्य	समवायित ज्ञान
१–व्यवसाय और धन्धे–मुख्य और सहकारी।	१–भ्रमण और निरीक्षण— २–धन्धा करनेवालो से सम्पर्क स्थापित करना और उनसे बात-चीत और साक्षात्कार। ३–समुदाय के प्रतिष्ठित व्यक्तियो द्वारा इन धन्धे के विषय में भाषण। ४–डायरी भरना और विवरण लिखना। ५–सर्वेक्षण-चार्ट और फार्म भरना।	१–समुदाय के प्रमुख धन्धे–सहकारी धन्धे–इनके विकास की कहानी। श्रम-विभाजन। धन्धों के आधार पर जाति और वर्ग का विकास। २–समाज में विभिन्न धन्धे करनेवालों की स्थिति–आर्थिक और सामाजिक। (क) खेतिहर। (ख) जमींदार अथवा भूमिधर। (ग) दुकानदार। (घ) शिल्पकार। (च) श्रमिक। (छ) साधु और पुजारी। (ज) भिक्षुक। इनका परस्पर सम्बन्ध—शोषित और शोषक के दो प्रधान वर्ग। लोकतंत्र में इनके सम्बन्धो में परिवर्तन–समाजवाद का तकाजा—सर्वोदय का लक्ष्य।

२–धन्धों में काम आनेवाले कच्चे माल और औजार।	सर्वेक्षण और अध्ययन	१–प्राप्ति के साधन आयात-निर्यात गाँव और शहर। २–कर्ज—कर्ज की संस्थाएँ— (अ) प्राचीन जमींदार-साहूकार। (ब) नवीन सहकारी समितियाँ, बैंक-बीमा कम्पनियाँ, इनकी कार्य-प्रणाली।
३–तैयार माल का उपयोग और वितरण।	" "	१–(अ) जमींदार और किसान—मजदूर-शोषण। (ब) बनिया और किसान—मुनाफाखोरी। (स) आयात-निर्यात, गाँव और शहर। वितरण और विनिमय में विषमता—विषमता के दुष्परिणाम—दूर करने के प्रयास।

आर्थिक संस्थाएँ

आर्थिक संस्थाएँ	अध्ययन के लिए क्रियाएँ	समवायित ज्ञान
१–सहकारी समितियाँ। २–बैंक। ३–जीवन बीमा कम्पनियाँ।	१–स्कूलों में बाल सहकारी समिति और बाल सहकारी बैंक का संगठन करना। २–संस्थाओं का निरीक्षण और सर्वेक्षण	१–सहकारिता के आन्दोलन का इतिहास। (अ) सहकारिता से मानव संस्कृति का प्रारम्भ, सहकारिता के भिन्न-भिन्न रूप, उत्पादन में सहकारिता का उपयोग आखेट युग-कृषि युग-गाँवों में और आदिम जातियों में इसका रूप।

आर्थिक संस्थाएँ	अध्ययन के लिए क्रियाएँ	समवायित ज्ञान
		(ब) सहकारिता का आधुनिक आन्दोलन । समाजवाद और लोकतंत्र के विकास से आन्दोलन को बल—सहकारी समितियाँ समाजवादी व्यवस्था का अनिवार्य अंग—उपभोक्ता समितियाँ ।
		२–बैंक—संग्रह मनुष्य की आदिम प्रवृत्ति सहकारी बैंक-आधुनिक बैंक व्यवस्था ।
		३–स्कूल में बच्चो को उपभोक्ता सहकारी समिति और बाल बैंक का संगठन ।
		४–जीवन बीमा कम्पनियाँ—वृद्धावस्था के लिए निश्चिन्तता का बीमा कार्यप्रणाली का अध्ययन ।
४–कृषि के आधुनिक फार्म ।	निरीक्षण और सर्वेक्षण ।	औद्योगिक क्रान्ति, आधुनिक यंत्र और टेकनालोजी की देन—
५–कारखाने और मिलें ।		१–मानव की वैज्ञानिक प्रगतिके परिणाम, प्राचीन सास्कृतिक मूल्यों का विघटन, शोषण और मुनाफाखोरी, कारखाने और मिलें, घने आबादीवाले शहरो के केन्द्र, छोटे छोटे गाँवों की दस्तकारियो और उद्योगों द्वारा विकसित भाईचारा, सहकारिता और सहिष्णुता, प्रेम आदि जीवन-मूल्यो का ह्रास, रक्षित स्वार्थ की वृद्धि ।

		२–विकेन्द्रीकरण—प्राचीन सांस्कृतिक मूल्यों और विज्ञान तथा टेक्नालॉजी के बीच का समझौता—विकेन्द्रीकरण से लाभ। सर्वोदय और ग्रामस्वराज्य में इसका रूप। बेसिक शिक्षा और विकेन्द्रीकरण।

सामाजिक संस्थाएँ

सामुदायिक—शासकीय—लोकसेवा सम्बन्धी और शैक्षणिक

संस्थाएँ	अध्ययन हेतु क्रियाएँ	समवायित ज्ञान
सामुदायिक— कुटुम्ब (परिवार) कबीला, जाति, समुदाय, समाज, राष्ट्र।	१–घर घर घूमकर निरीक्षण।	१–कुटुम्ब (परिवार) आदि सामुदायिक इकाई—कुटुम्ब की संस्था का विकास—कबीला, जाति समुदाय समाज-राष्ट्र आदि।
	२–गाँवों में लोकगीत, लोकनृत्य, कथा, संगीत, और भजन, कीर्तन का आयोजन।	२–विभिन्न जातियों की सांस्कृतिक परम्पराएँ—जन्म से मरण तक। इनमें लोकगीत, लोकनृत्य, कथा-वार्ता का स्थान, स्वस्थ परम्पराएँ और अन्धविश्वास, समुदाय का संघटन और विघटन।
	३–सर्वेक्षण—साक्षात्कार और बातचीत—प्रश्नावली और सूची।	

संस्थाएँ	अध्ययन हेतु क्रियाएँ	समवायित ज्ञान
प्रान्तीय-शासन सुरक्षा और न्याय।	१-निरीक्षण।	१-मुखिया, जमींदार, सामन्त, राजा, राजाधिराज (सम्राट) राजतन्त्र की कहानी।
	२-सर्वेक्षण।	२-पचायत—पचायत की संस्था—आवश्यकता और विकास-विरादरी की पचायत, गाँव पचायत, स्थानीय परिषद (जिला परिषद, नगरपालिका और नगरमहापालिका) विधानसभा, लोकसभा, राज्यसभा, सयुक्त राष्ट्रसंघ, इनकी कार्य प्रणालियाँ।
	३-संस्था के अधिकारियों और कार्यकर्ताओं के कर्तव्यो और अधिकारों का व्यावहारिक अध्ययन।	३-विधायक—अधिकारी वर्ग, चौकीदार, पटवारी, कानूनगो, तहसीलदार, डिप्टी कलक्टर, कलक्टर, कमिश्नर, गवर्नर, इनके कर्तव्य और अधिकार।
	४-अध्ययन प्रश्नावली और सूची विवरण लिखना, चार्ट, ग्राफ, चित्र मानचित्र आदि बनाना।	४-पचायत—कचहरी, दीवानी, फौजदारी, हाईकोर्ट, सुप्रीम कोर्ट, अन्तरराष्ट्रीय कोर्ट, इनकी कार्य-प्रणालियाँ।
	५-संगठन और कार्य प्रणाली का अभिनय।	५-शासन का केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण—राजतन्त्र और लोकतन्त्र, शासन-मुक्त समाज।

सुरक्षा-पुलिस और फौज	१–संगठन का अध्ययन, साक्षात्कार और बातचीत द्वारा।	१–पुलिस की आवश्यकता— पुलिस संस्था के विभिन्न युगों में विभिन्न रूप—संस्था के विकास की कहानी—अंग्रेजों द्वारा पुलिस-संस्था का निर्माण—क्यों ?
	२–कर्मचारियों के कर्तव्यों और अधिकारों का अध्ययन—प्रश्नावली और सूची द्वारा।	२–पुलिस का संगठन—कर्मचारियों के कर्तव्य और अधिकार। नगरों में ट्राफिक पुलिस। गाँवों में चौकीदार–थाना–कोतवाली–पुलिस लाइन।
	३–पोस्टर, चित्र और चार्ट बनाना।	३–पुलिस विभाग में भ्रष्टाचार सुधार के उपाय।
	४–धार्मिक अभिनय द्वारा कार्य-प्रणाली का अध्ययन करना।	
		१–फौज की आवश्यकता— विभिन्न युगों और देशों में सेना संगठन के विभिन्न रूप। यूनान, रोम और इंग्लैंड।
		२–भारत का प्राचीन सेना-संगठन—पैदल, हयदल, गजदल, रथदल—महाभारत की अक्षौहिणी सेना।
		३–मुसलिम काल में सेना का संगठन—तोपखाना-जलसेना, मनसबदारी।

संस्थाएँ	क्रियाएँ	समवायित ज्ञान
		४-अंग्रेजों द्वारा सेना का पुनर्संगठन—पैदल घुड़सवार, बन्दूकें और तोपें, जलसेना, वायुसेना, नये प्रक्षेपक—अणुबम ।
		५-सेना की नौकरी— पूरे समय का काम—नियमित परेड—सैनिक शिक्षा के लिए सैनिक स्कूल—सैनिक अनुशासन ।
		६-शांति-काल में सेना का उपयोग—अहिंसक समाज और सेना, शान्ति सेना ।

लोकसेवा की संस्थाएं

जनस्वास्थ्य, संचरण यातायात, शिक्षा

संस्थाएँ	अध्ययन के लिए क्रियाएँ	समवायित ज्ञान
१-जनस्वास्थ्य	संस्था की कार्यप्रणाली का अध्ययन । १-स्वयं देखना, निरीक्षण, साक्षात्कार और कर्मचारियों से बातचीत करके । २-संस्था के प्रमुख कर्मचारियों के	१-मनुष्य का स्वास्थ्य—शरीर देवता का मन्दिर । आरोग्य शास्त्र की प्राचीनता । प्राकृतिक चिकित्सा और जड़ी-बूटियों द्वारा चिकित्सा । शल्यक्रिया की प्राचीनता । आदिमवासियों में चिकित्सा, झाड़ फूंक, तंत्र मंत्र, जड़ी-बूटी और शल्यक्रिया । २-जनस्वास्थ्य संस्था के विकास की कहानी ।

	व्याख्यान सुनना और उनके विवरण लिखकर। ३–कार्यप्रणाली से सम्बन्धित चार्ट, पोस्टर, चित्र और माडल बनाकर। ४–इसका आयोजन स्कूल मे योजनाओ के रूप मे करके। ५–धार्मिक अभिनय द्वारा। ६–इनसे सम्बन्धित साहित्य पढकर।	१–मौर्य युग में मनुष्यों और पशुओं के चिकित्सालय। बौद्ध धर्म से चिकित्सा-कार्य को प्रेरणा—हिन्दू काल के प्रसिद्ध वैद्य धन्वन्तरि-जीवक, सुश्रुत और चरक, हिन्दू युग का शल्य-शास्त्र। २–मुसलिम काल—यूनानी पद्धति-हकीम-शफाखाने-अकबर-नामा मे दरबारी हकीमो की चर्चा। ३–अंग्रेज काल—डाक्टरी चिकित्सा डाक्टर-अस्पताल, ईसाई-मिशनरियो का चिकित्सा कार्य में योगदान। ४–जन-स्वास्थ्य विभाग का सगठन—प्रादेशिक केन्द्र मे निदेशन और उपनिवेश, प्रत्येक जिले में अस्पताल के सिविल सर्जन और उनके सहायक डाक्टर। जिला स्वास्थ्य अधिकारी। ५–अस्पताल मे एक दिन अस्पताल के परिचारक और परिचारिकाएं सेवा का व्रत। भ्रष्टाचार और सुधार की योजनाएँ।
२–सार्वजनिक निर्माण विभाग		१–सार्वजनिक निर्माण विभाग के विभिन्न कार्य—सड़क और पुल-निर्माण, सिचाई के लिए नहरें बनाना, भवन-निर्माण, बांध और हाईड्रोएलेक्ट्रिक का काम आदि।

संस्थाएँ	अध्ययन के लिए क्रियाएँ	समवायित ज्ञान
		२–संगठन—चीफ इंजीनियर, इंजीनियर, सहायक इंजीनियर, ओवरसियर, आदि; इनके कर्तव्य और अधिकार।
		३–कर्मचारियो का प्रशिक्षण—इंजीनियरिंग कालेज और प्राविधिक संस्थाएं (पोलीटेकनिक्स), प्रवेशके नियम।
		४–इंजीनियरिंग कालेज में एक दिन।
		५–सार्वजनिक विभाग की कार्य-प्रणाली—मध्यस्थ ठीकेदार—भ्रष्टाचार, सुधार के उपाय। पूरे काम का राष्ट्रीयकरण—कठिनाइयाँ। विकेन्द्रीकरण—पंचायतों और स्थानीय परिषदों के पास सार्वजनिक विभाग के काम—विकेन्द्रीकरण के परिणाम।
		६–संस्था के विकास की कहानी—राज्यों द्वारा सेना के आने-जाने के लिए सड़क और पुलों का निर्माण, संस्था का आदिम रूप। प्राचीन भारत—मौर्य और गुप्त काल के राजपथ, उन पर बनी सरकारी धर्मशालाएँ। सिंचाई के लिए नहरें। राजपथ और पुलो का निर्माण—कला में रोमन साम्राज्य का अपूर्व योगदान, मुसलिम काल की सड़कें और नहरें। सड़को पर बनी सरायें, डाक के लिए पड़ाव।

७–अंग्रेजों के काम में वैज्ञानिक पुलो और पक्की सडको की व्यवस्था—इस काम के साथ नहरो, भवन निर्माण आदि के लिए अलग विभाग का निर्माण। कर्मचारियो के प्रशिक्षण के लिए प्राविधिक सस्थाएँ।

३–सचरण

१–डाक की सस्था का विकास—अत्यन्त प्राचीन काल की प्रथा—हरकारा द्वारा—शीघ्रता के लिए घोडो और ऊँटो का प्रयोग। कबूतरों का प्रयोग—विशेषत युद्ध के समाचार के लिए। दमयन्ती का राजहस। मुसलिम काल में डाकव्यवस्था—शेरशाह और अकबर। डाक ले जानेवाले घुडसवार। अंग्रेजो के समय में रेल के आविष्कार से डाक की व्यवस्था मे क्रान्ति।

२–डाक तार टेलीफान, बेतार का तार, रेडियो, टेली-विजन। इनके आविष्कारको की कहानी—इनके आविष्कार के परिणाम।

३–पोस्ट आफिस की कार्यप्रणाली। पोस्ट आफिस मे एक दिन।

४–पोस्ट आफिस के कर्मचारी—उनके कर्तव्य-अधिकार।

५–गाँव का डाकखाना।

४–यातायात

युगो युगो मे यातायात का विकास—

संस्थाएँ	अध्ययन के लिए क्रियाएँ	समवायित ज्ञान
		१–यातायात के साधन— (क) स्थल पर—पशु और गाडी साइकिल, रेल और मोटर। (ख) जल मे—बेडा, नाव, और जहाज—डांड, मस्तूल और पाल का प्रयोग—इजन से चलनेवाले आधुनिक जहाज। (ग) आकाश में—गुब्बारे और वायुयान। अन्तरिक्ष-यान। प्रत्येक के विकास की कहानी। २–रेल के इजन के आविष्कारक—जेम्स वाट और जार्ज स्टीफेंसन। ३–वायुयान के आविष्कारक—राइट बन्धु। ४–अन्तरिक्षयान अन्तरिक्ष यात्री—रूस के, अमेरिका के। ५–रेलवे स्टेशन की कार्यप्रणाली—सवारी गाडी और मालगाडी। ६–रेलवे कर्मचारी—उत्तरदायित्व और अधिकार। ७–रोडवेज—एक मोटर का कारखाना। ८–यातायात की व्यवस्था—यातायात का राष्ट्रीयकरण—रेल और हवाई जहाज का पूर्णत राष्ट्रीयकरण—रोडवेज का अशत। ९–हवाई अड्डा—हवाई जहाज से यात्रा।

धार्मिक संस्थाएँ

संस्थाएँ	क्रियाएँ	समवायित ज्ञान
मन्दिर, मसजिद, गुरुद्वारे, गिरजाघर, मठ और अखाड़े।	१–संस्थाओं का निरीक्षण और सर्वेक्षण। २–संस्थाएँ।	इन संस्थाओं का विकास– १–मनुष्य को रोटी से भी अधिक कुछ चाहिए—आदिम ओझाई, टोना, जादू, मन्त्र तन्त्र, टोटमवाद-ओझाई और मन्त्रतन्त्र औषधि और धर्म के आदिम रूप। २–ओझा-तान्त्रिक-पंडे पुजारी, पादरी और मुल्ला आदि की समाज को आवश्यकता और समाज में उनकी स्थिति। जीवन से मरण तक के विभिन्न संस्कारों के संरक्षक। मानव के आत्मिक संतोष के साधन। ३–इन संस्थाओं का मानव संस्कृति के विकास में हाथ–लिखने-पढ़ने की कला, चित्र-कला, मूर्ति-कला, स्थापत्य कला, साहित्य, गणित और विज्ञान के उद्गमस्थल और प्रेरणाकेन्द्र—विभिन्न युगों—बेबीलोनिया, मिश्र और भारत के उदाहरण। ४–मन्दिर, मसजिद, गिरजा आदि शिक्षा के केन्द्र—इस दिशा में इनकी देन—भारत की पाठशालाएँ और मकतब।

संस्थाएँ	क्रियाएँ	समवायित ज्ञान
		५–देव सम्पत्ति की धरोहर—मठो मे विशाल धन सम्पत्ति का सग्रह—सम्पत्ति और विलासिता मठाधीशो का जीवन—उनके विरुद्ध प्रतिक्रिया और आदोलन।
		६–इन सस्थाओ के जीवन का अध्ययन—इनकी चल अचल सम्पत्ति और शक्ति का लोककल्याणकारी कार्यों मे उपयोग—विभिन्न माग—इस दिशा मे आधुनिक प्रयास।
१–सास्कृतिक सस्थाएं— (क) सगीत और नाटक समितियाँ। (ख) लोक सस्कृति सघ। (ग) साहित्य गोष्ठियाँ। (घ) आधुनिक क्लब।	१–इन सस्थाओ की काय प्रणालियो का छात्रा द्वारा निरीक्षण। २–इनका स्कूलों में सगठन। रगमच का निर्माण, वस्त्र और वेशभूषा की व्यवस्था, पेंटिंग और ड्रेसिंग, गीत, नृत्य और अभिनय का रिहर्सल। दर्शकों को निमत्रण देना और इनका स्वागत, उनके बैठने का प्रबन्ध। गीत नृत्य अथवा अभिनय का कार्यक्रम।	१–सास्कृतिक सस्थाओ का महत्व–इनके काय लोकगीत, लोक नृत्य लोककथा लोककला, शास्त्रीय सगीत, और नृत्य, नौटकी, स्वाग, यात्रा, मूक अभिनय, छाया अभिनय, अभिनय। २–सगीत, नृत्य और अभिनय के विकास की कहानी—लोक कला, शास्त्रीय कला का आदिम रूप। इन कलाओ के मूल में धर्म और अर्थ की भावना। कला के उद्गार और अभिव्यक्ति–आदिमवासियो का नृत्यगीत और अभिनय, उनके दैनिक जीवन का अभिन्न अगमात्र शृङ्गार नहीं—मात्र रजन भी नहीं।

	३–कठपुतली नृत्य के लिए विषय चुनना और तदनुसार कठपुतलियाँ बनाना—उनके लिए वस्त्र और आभूषण बनाना, नृत्य के लिए रंग-मंच बनाना। कठपुतली नचाने का अभ्यास करना, दर्शकों के बैठने का प्रबन्ध करना–कठपुतलियाँ नचाना।	३–लोकसंस्कृति और नागरिक संस्कृति—लोकसंस्कृति की रक्षा की आवश्यकता—उसके लिए कार्य। ४–स्कूलों में सांस्कृतिक समितियों, गोष्ठियों और क्लबों की स्थापना—उनके लिए विधान बनाना और उनकी नियमित बैठक करना। ५–कठपुतली का नृत्य— कथा, गीत और नृत्य का सम्मेलन—कठपुतली नृत्य भारत की प्राचीन लोककला—साहित्यिक ग्रन्थों में इसका उल्लेख। कठपुतली नचानेवालों का जीवन—उनके नृत्यों के विषय—कठपुतली नचाने की नयी शैली-स्कूलों में श्रव्य दृश्य-साधन के रूप में व्यवहार।
२–रंजनात्मक	१–इनका स्कूलों में संगठन। २–इनका गाँवों में संगठन।	१–भारतीय खेल—कबड्डी, कुश्ती, मलखम, मुग्दर फेरना, दंगल। विदेशी खेल—हाकी, फुटबाल, वालीबाल, बेडमिंटन, टेनिस, टेबुल टेनिस, क्रिकेट आदि। खेलने का नियम—अन्तर्विद्यालय और अन्तर्संस्था, अन्तप्रादेशिक प्रतियोगिताएँ–अन्तर्ग्राम प्रतियोगिता। २–ओलम्पिक प्रतियोगिताएँ–ओलम्पिक की कहानी।●

बालक के विकास में सामाजिक तथा सांस्कृतिक तत्त्व का स्थान

श्रीमती मंजु श्रीवास्तव

व्यक्ति का मानसिक, शारीरिक तथा आध्यात्मिक विकास सामाजिक वातावरण में होता है। सामाजिक परिस्थिति में व्यक्ति की प्रतिक्रिया ही उसका व्यवहार या आचरण होता है। किसी कार्य के बार-बार करने से अभ्यास या आदत बन जाती है। सामूहिक अभ्यास या आदत व्यवहार, रीति अथवा चलन बन जाते हैं। समाज के लोग इन्हे किसी बाधा या विचार के बिना मान लेते हैं। कालान्तर में यही परम्परा बन जाती है। रीति या परम्पराएँ समाज के अलिखित नियम हैं, जिन्हे समाज में यथार्थ जीवन बिताकर तथा अनुभव करके व्यक्ति अपने जीवन मे अपना लेता है। परम्परा ही समाज के वर्तमान और भविष्य के सदस्यों को एक सूत्र मे बाँधने का काम करती है।

होती हैं। सामाजिक वातावरण में प्रतिरोध के अवसर कम होते हैं। कभी-कभी ग्रन्थियों तथा मांसपेशियों की कार्यक्षमता अधिक बढ जाती है और आवश्यकता पडने पर व्यक्ति अपनी क्षमता से अधिक परिश्रम करने को तत्पर हो जाता है। देश, राष्ट्र अथवा समाज के आपत्कालीन परिस्थिति में साहस, त्याग बलिदान के लिए स्वत प्रेरित हो जाना इसीके उदाहरण हैं। सामान्यतः व्यक्ति समाज में दूसरों की भावनाओ और विचारो से प्रभावित होता है। सामाजिक परम्पराएँ व्यक्ति के आचार, व्यवहार बनाने उनमें आवश्यकीय सुधार करने, उसको सयत रहने तथा पारस्परिक समजन की शिक्षा देने का एक महत्वपूर्ण तथा प्रभावशाली माध्यम है। व्यक्ति जब समाज के आदर्श और परम्पराओ को ग्रहण कर लेता है तो वह एक प्रकार की सुरक्षा का अनुभव करते हुए निश्चिन्त रहता है। वह जीवन मे सुख, आनन्द पाने लगता है। स्वास्थ्य की उन्नति विकास हेतु अखाडे, क्लब, व्यायामशाला, खेल कूद प्रतियोगिताएँ आयोजित होती हैं।

संस्कृति की सामाजिक देन

समाज के रीति-रिवाज, प्रथाएँ, नियम, आदर्श, अन्ध-विश्वास, मान्यताएँ, धर्म, भाषा, वेष-भूषा, कला, मनोरंजन, शिक्षा आदि सभी की समष्टि का नाम संस्कृति है। संस्कृति ही समाज में उन विशिष्ट सामाजिक वातावरण का निर्माण करती है जिसमें पलकर व्यक्ति उस समाज की मान्यताओ के अनुसार आचरण करता है तथा प्रवृत्तियो और भावनाओ को अपनाता है। आचरण करने के ढग तथा आदतो का नियत्रण भी संस्कृति पर आधारित होता है। व्यक्ति के व्यक्तित्व, आचरण, सवेगों को व्यक्त करने का ढंग, उसकी भाषा और चिन्तन-प्रणाली संस्कृति द्वारा ही नियमित एव निर्धारित होती हैं। विशेष संस्कृति के अनुसार किसी देश की एक विशिष्ट वेश-भूषा, लोक-नृत्य तथा व्यायाम की पद्धतियाँ होती हैं। शारीरिक संस्कृति के अन्तर्गत शरीर चर्चा, पर्यटन, देशाटन, विशेष ऋतुओ में विशेष भोजन का सेवन इत्यादि की व्यवस्था रहती है।

सामाजिक प्रथाओ को रीति-रिवाज कहते हैं। शरीर-सम्बन्धी विभिन्न रीति-रिवाज जैसे पर्वों पर स्नान, उपवास, खाने और उपासना के पहले हाथ-पैर धोना तथा भोजन का तरीका प्रचलित है, जिनके पालन से स्वास्थ्य-रक्षा-सम्बन्धी स्वस्थ आदतो का निर्माण होता है। जब रीति-रिवाज अधिक स्थायी होते हैं, तो परम्पराएँ बनती हैं। व्यायाम, ब्रह्मचर्य इत्यादि स्वस्थ परम्पराएँ हैं। परम्पराओ के कारण ही अच्छे आचरण एक पीढी से दूसरी पीढ़ी तक

जाते हैं। परम्पराओं के परिणामस्वरूप आदतें बनती हैं। प्रत्येक समाज का अपना भोजन करने का, स्वच्छता का तथा अंग-सचालन का स्वीकृत ढग होता है। इन आदतो का प्रभाव शारीरिक विकास पर पडता है।

विद्यालयी जीवन की प्रतिक्रियाएँ

विद्यालय तो समाज का एक लघु रूप होता है। वहाँ बालक के बाह्य आचरण, हृदयगत भावनाएँ, प्रवृत्तियाँ तथा आदर्श विद्यालय के सामाजिक वातावरण के प्रभाव से बदलते तथा दृढ होते है। धीरे धीरे बालक विद्यालय के सामाजिक वातावरण का नैतिक समर्थक बनकर अन्य साथियो के अनुरूप बन जाता है। नम्रता, दूसरो से सीखना और अधीनता स्वीकार कर लेना, बचपन से ही सामाजिक परम्पराओ और रीति रिवाजो के बन्धन में रहने के कारण ही आते हैं। यह भी देखा गया कि कुछ बालक विद्यालय की सामाजिक व्यवस्था की उपेक्षा करते हैं या विद्रोह भी करते हैं। ऐसी प्रतिक्रियाएँ कभी-कभी विद्यालय-जीवन में प्रकट होती हैं और कभी-कभी आगे आनेवाले जीवन मे। कुछ बालक अपनी मानसिक कमजोरी के कारण विद्यालय की परम्पराओ को बाहरी तौर मे तो पालन करते हुए दिखाई देते हैं, परन्तु अपने भीतर-ही-भीतर वे उनसे दूर रहते है। उदासीन, शान्त, और नीरस बालक इसके उदाहरण हैं। ऐसे बालक आगे चलकर जनतन्त्रवादी जीवन के विरोधी होकर समाज और राष्ट्र के असामाजिक तत्त्व बन जाते है।

सामाजिक प्रवृत्तियो, जैसे खेल, अनुकरण, सहानुभूति आदि के सम्पूर्ण विकास का क्षेत्र विद्यालय-समाज है। यहाँ क सामाजिक जीवन मे रुचि लेकर बालक अपनी योग्यतानुसार सामाजिक क्रियाओं में भाग लेना सीखता है तथा सहयोग और आगे बढने के लिए स्वस्थ स्पर्धा की भावना का विकास होता है। सामाजिक क्रियाएँ ही उसकी अतिरिक्त ऊर्जा या शक्ति के निकास का मार्ग हैं। वे उसकी बुराइयो का रेचन करके उचित मार्ग की ओर प्रेरित करती है।

बालक के सर्वांगीण विकास के लिए विद्यालय समाज का सगठन इस प्रकार होना चाहिए कि वहाँ समाज को सस्कृति और परम्पराओ की झलक मिले। वहाँ वास्तविक सामाजिक परिस्थिति का निर्माण करके बालक को सामाजिक क्रियाओं में सक्रिय ढग से भाग लेने के लिए अवसर एव प्रोत्साहन प्रदान करना चाहिए। विद्यालय की रुचि, उद्देश्य, और कार्य प्रणाली बाहर के वास्तविक समाज के अनुरूप हो, जिससे बालक विद्यालय में यथार्थ जीवन बिताकर भविष्य मे सामाजिक जीवन बिताने के योग्य बन सके।●

पुस्तकालय : आपका अभिभावक
पुस्तकें : आपकी मित्र

परमानन्द दोषी

अपने जीवन को सतुलित, नियमित क्रमबद्ध और अपेक्षित ढग से विकसित करने के लिए हर व्यक्ति को अभिभावक की आवश्यकता होती है। अभिभावक जो उसे पथ निर्देशन प्रदान करता है मार्गदर्शन देता है और उस पर सतत नियत्रण रखकर उसे भटकने-बहकने से रोकता है। उसका मन भरम न जाय चित्त चचल न हो जाय मस्तिष्क म्रियमाण न हो जाय उसके पाँव कुठाँव न पड जायँ, उसके जीवन विकास की गति मन्द न पड जाय इसलिए हर व्यक्ति का अभिभावक उसे सचेत और खबरदार करता है।

पुस्तकालय आजीवन अभिभावक

यह अभिभावक कौन हो सकता है? माँ बाप चाचा-मामा शिक्षक रिश्तेदार बिरादर तथा इसी प्रकार के अन्य लोग या तो सभी के सभी। पर आपने कभी सोचा है कि हाड-माँस के शरीरधारी मानव के अतिरिक्त अन्य कोई भी आपका अभिभावक बनने का अधिकारी हो सकता है? जी हाँ पुस्तकालय भी आपका अभिभावक ही है। वह किसी काल विशेष तक का ही अस्थायी अभिभावक नहीं वरन् जीवनभर का अभिभावक है वह आपका। आप ज्यों-ज्यो बडे होते जायेंगे आपकी बुद्धि ज्यो-ज्यो विकसित होती जायेगी आपका मस्तिष्क ज्यों-ज्यो सुलझता जायेगा आपके विचार ज्यो ज्यों प्रौढत्व को प्राप्त करते जायेंगे आपका विवेक ज्यो-ज्यों परिपक्व होता जायेगा त्यो त्यो उसके नियत्रण का अकुश पैना होता जायेगा—इसका अन्दाज पुस्तकालय को होता है। आपकी योग्यता क्या है—यह भी पुस्तकालय को ज्ञात है आपका प्रिय विषय क्या है—यह भी पुस्तकालय जानता है आपका अध्ययन कितना और कैसा है—यह भी पुस्तकालय से छिपी हुई बात नही है अपने जीवन को आप किस ओर लिये जा रहे हैं—यह बात पुस्तकालय को सुविदित है। साराश यह कि आपके चित्त चरित्र आशा-आकाक्षा-सम्बन्धी सारी बातें आपका पुस्तकालय जानता है और यदि आप सही रास्ते पर सही ढग से बढ रहे हैं तो ठीक है अन्यथा विपथगामी होने पर वह आपकी गति पर ब्रेक लगा देता है। ये सब लक्षण एक सफल अभिभावक के ही हैं। और इस तरह पुस्तकालय भी आपका अभिभावक है।

पुस्तकालय आपकी अध्ययन दिशा को सुनिर्देशित करता है, अच्छे अच्छे संस्कार आपके व्यक्तित्व में उत्पन्न हो—इसके लिए अपनी पाठ्य सामग्रिया का टानिक देने मे पुस्तकालय आपकी मदद करता है। आपका ज्ञान हर क्षेत्र में अद्यतन रहे, ऐसा उपक्रम पुस्तकालय करता है और अपने में आपको आसक्त रखकर, अपनी पुस्तको मे आपको रमाये रखकर आपको अन्यत्र मारा-मारा फिरने आपको अवकाशरहित बनाकर आपके खाली मस्तिष्क को पैशाचिक कारखाना नही बनने देता।

ग्रन्थ सच्चे मित्र

पुस्तकालय यदि आपका अभिभावक है तो उसकी पुस्तकें आपकी मित्र है। आज के अवसरवादी मित्र नही, आपके सच्चे मित्र है ग्रन्थालयो के ग्रन्थ। आप उनसे मेल बढाइए, आपकी वे मदद करेंगे, उनके साहचर्य मे आइए वे आप को सहयोग देंगे आप उनका अध्ययन कीजिए, वे आपको उन्नतशील करेंगे, आप उनमें वर्णित बातो को जीवन और आचरण मे उतारिए वे आपके लिए अनमोल साबित होगे।

आप उदास रहते हैं—मित्रो के पास जाकर गप्प करते हैं—उदासी छू मन्तर हो जाती है। उदासी के क्षणो मे पुस्तकें भी आपकी ऐसी ही सहायता करेंगी। आप दुखी हैं—मित्र सान्त्वना के दो शब्द से आपको सहलायेंगे, पुस्तकें अपने अमर प्रेरक वाक्यों द्वारा आपकी दुखती रगो पर चन्दन का लेप चढ़ायेंगी। आप खुश रहते हैं, तो भी आप अपने मित्रो से मिलकर अपनी खुशी को द्विगुणित करते हैं। पुस्तकें भी आपकी खुशी मे चार चाँद लगायगी। आप खुश होकर खुले दिल से उन्हें पढिए तो।

जीवन की सफलता के लिए अभिभावक आवश्यक है, तो मित्र अनिवार्य। एक आपके अभियान के लिए मार्ग बतलाते हैं तो दूसरे उस पर चलते समय साथ देते हैं।

यह जरूरी नही कि जो अभिभावक हो वह मित्र भी हो अथवा जो मित्र हो वह अभिभावक भी हो। पर पुस्तकालय और उसकी पुस्तक तो दोनों है—आपके अभिभावक भी, आपको मित्र भी। यदि आप इन दोनो से सम्पर्क मात्रिध्य से अवतक वंचित हैं—तो अभी अविलम्ब ही किसी पुस्तकालय की शरण में चले जाइए, उसका अभिभावकत्व स्वीकार कर उसके चरणा मे बैठ जाइए और उसमें संगृहीत पुस्तकों से मित्र लाभ का मजा लीजिए।•

हम अध्यापक अब समाज की ओर चलें

विश्वेश्वर प्रसाद

एक बार हम तात्कालिक समाज का सिंहावलोकन करें। क्या समाज वह बन सका, जिसकी हमने स्वतन्त्रता के पूर्व परिकल्पना की थी ? क्या समाज वह प्राप्त कर रहा है, जो उसे प्राप्त करना चाहिए था ? बनने और प्राप्त करने की बात तो अलग रही, क्या समाज वही रह गया है, जो स्वतन्त्रता के पूर्व था ? यदि नहीं रहा और समाज की अवनति हुई तो दोष किसका ? हम इसका दोष अब भी "सरकार" को दें तो अपने दायित्व को औरों पर फेंकने के दोषी होंगे। आखिर वर्तमान सरकार है क्या ? एक पार्टी का गीत गानेवाला दल। जो बहु संख्या मे रहा उसी दल का स्वर ऊँचा मालूम पडा। फिर दूसरे-दूसरे दल भी तो अपना-अपना गीत गाते ही रहते हैं। समवेत स्वर तो सुना नहीं जाता है। कभी एक की संख्या बढी तो उसका स्वर ऊँचा हुआ, जब दूसरे की संख्या बढी तो दूसरे का। यों कहें कि पहले हम जो वर्ग और वर्ण में बँटे थे उस कोढ पर यह दलगत राजनीति खाज बनकर आयी। अब तो एक ही वर्ग और वर्ण में राजनीति के अनेक दल हैं परन्तु कोई सबके कल्याण के लिए विकल नहीं है। डाक्टर सब हैं, हमदर्द कोई नहीं। फोडे को देख रहे है सब परन्तु सब झगड रहे हैं, नश्तर कोई चलाता नहीं। फोडे की पीडा बढने देने की चाहना है, जिससे पीडित व्यक्ति विकल हो और ये डाक्टर उसकी व्याकुलता से लाभान्वित हो सकें, उससे अपने मन की कहलवा सकें, अपने मन की करवा सकें।

देश गाँव का है। गाँव बिगडता गया। बिगाडनेवाले स्वदेशी हैं—दल में विभक्त। इसीमें एक वर्ग था जो मौन देखता रहा, बरन् यह कहें कि उसे मौन रहने के लिए बाध्य किया गया नैतिकता के झूठे प्रश्न उठाकर। कभी-कभी यह वर्ग भी फँसा लिया गया दल के दल-दल में। जो दल सबल होता वह इस अध्यापक वर्ग को अपनी कृपा पर जीनेवाला मान अपने दल के लिए खुलकर उपयोग करता। यदि कभी स्वतन्त्र चिन्तन की बात इस अध्यापक-वर्ग से निकल जाती तो सबल दल उपदेश दे देता—"राजनीति में

मत पडो अध्यापकों को राजनीति में भाग नहीं लेना चाहिए, और यह वर्ग चुप।

इसी व्यामोह मे बीस वर्ष बीत गये। स्वस्थ विचारक जो पेड की शिराओं की तरह गाँव गाँव में छाये थे मौन रहने लगे। उनके मुँह पर कानूनी ताले जडे गये। हाँ यह ताला खोला जाने लगा—अपने स्वार्थ साधन के लिए शासक दल के द्वारा प्रत्येक पाँच वर्ष मे।

सौभाग्य से एक झटका आया है। पूज्यपाद संत विनोबा ने बिगुल फूँका है। शर्त इतनी ही है कि अध्यापक सभी प्रकार के बन्धन से ऊपर उठकर देखें। अच्छों को अच्छा अवश्य कहें, परन्तु बुरों की बुराई से बचने के लिए चिल्लाकर आवाज दें। उनके इस निःस्वार्थ कार्य एवं कथन को काल स्वयं राजनीति से परे प्रमाणित कर देगा।

चौथे आम चुनाव के बाद हमारे नायकों के चरित्र की अस्थिरता उभडकर सामने आयी है। कौन क्या है और क्या हो जायगा, कहा नहीं जा सकता। आज किसीकी पोशाक देखकर जो विश्वास जगा, कल वह विश्वास हिल गया उसी की पोशाक और नारा देखकर। अन्त शक्ता, बहि शैवा सभा मध्ये च वैष्णवा अक्षरश चरिताय हो रहा है। जिसका नारा है समाजवाद का उसे प्यारा है पूँजीवाद और अपने स्वार्थ-साधन की घडी उनकी सारी क्रियाएँ सामंतवाद को मात कर देती हैं।

राष्ट्र के साधनों का दुरुपयोग मुट्ठीभर जन दल के माध्यम से कर रहे हैं। जन कहीं और तंत्र कहीं फिर भी जनतंत्र की दुहाई दी जा रही है और दानव लीला हो रही है। मानव-जीवन सुविधाविहीन हो बुल्बुला रहा है। क्या कोई सत्तारूढ दल मानव जीवन मे लगी आग को बुझाने के लिए व्याकुल है? आज का नेतृत्व कर्तव्यहीन हो चुका है। आज की पीढ़ी दिशा दर्शन के बिना भटक रही है। आकुल मानव मार्ग दर्शन चाहता है। आज सब कुछ अस्त व्यस्त है।

आइए हम अध्यापक इस चुनौती को स्वीकार करें। हम अपना हाथ दे इस भटकती पीढ़ी को ऊपर उठा अपनी उपयोगिता और सार्थकता प्रमाणित कर दें। आज हम सरकार से माँगते हैं, परन्तु सरकार तो यातीदार है समाज की। फिर हम समाज मे प्रवेश से क्यों घबरायें, समाज से माँगने में क्यों लज्जा अनुभव करें? समाज में हमारा प्रवेश शासन पद्धति को बदल देगा—शासक को सही सोचने और सही करने को बाध्य करेगा। •

विएतनाम की बम-वर्षा बन्द होने से विश्व-शान्ति की सम्भावना सबल

विएतनाम का युद्ध अमेरिका की वैदेशिक नीति के गले में फाँस बनकर अटका हुआ था। न अमेरिका विएतनाम में झुकना चाहता था और न ही विरोधी को पराजित कर पा रहा था। वर्षों से अमेरिकी जनमत विएतनाम-युद्ध के खिलाफ अपनी नाराजगी और चिन्ता प्रकट करता रहा है।

अमेरिका के राष्ट्रपति जॉनसन ने १ नवम्बर को वाशिंगटन में उत्तर विएतनाम पर बम-वर्षा बन्द करने की ऐतिहासिक घोषणा की। अपने राष्ट्र को सम्बोधित करते हुए राष्ट्रपति ने कहा कि यह कदम उन्होंने सेना के सर्वोच्च सलाहकारों की सहमति के बाद उठाया है। उन्होंने आशा व्यक्त की कि इस निर्णय से विएतनाम युद्ध को शान्तिपूर्ण ढंग से समाप्त करने की दिशा में प्रगति होगी।

अमेरिकी राष्ट्रपति की इस घोषणा का दुनिया के देशों में हार्दिक स्वागत हुआ।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के महामंत्री श्री ऊ थाँ ने इस घोषणा का भरपूर स्वागत करते हुए इसे एक ऐसा आवश्यक कदम माना, जिसकी एक अर्से से आवश्यकता थी। उन्होंने श्री जॉनसन के निर्णय पर अपनी हार्दिक प्रसन्नता प्रकट की।

पश्चिमी यूरोप के देशों में राष्ट्रपति जॉनसन की घोषणा का तुरन्त स्वागत हुआ। पश्चिम जर्मनी के सरकारी प्रवक्ता ने कहा कि इस निर्णय ने एक बार फिर से यह साबित किया है कि अमेरिकी सरकार विएतनाम-युद्ध समाप्त करने को कितनी तैयार है।

ब्रिटिश सरकार के अधिकारियों ने भी घोषणा की तारीफ की। ब्रिटिश वैदेशिक विभाग के प्रवक्ता ने कहा कि इस सम्बन्ध में सविधि घोषणा प्रधानमन्त्री श्री विल्सन यथासमय करेंगे। प्रवक्ता ने कहा कि इस निर्णय की पूर्वसूचना ब्रिटिश सरकार को दी गयी थी।

फ्रांस के राष्ट्रपति श्री देगाल ने श्री जॉनसन की इस घोषणा का स्वागत करते हुए इसे विएतनाम युद्ध समाप्त करने का ठीक कदम माना।

भारत की प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने बम-वर्षा बन्द होने की सूचना मिलते ही इसे 'शान्ति की दिशा में उठाया गया कदम' कहकर इसका स्वागत किया। उन्होंने कहा कि सचमुच यह बड़ी अच्छी खबर है। अमेरिकी राष्ट्रपति के इस 'साहस और सूझ-बूझ भरे' काम के लिए इन्दिरा गांधी ने उन्हें बधाई दी और उन सब लोगों को धन्यवाद दिया जिन्होंने इस परिस्थिति के निर्माण में अपना योगदान दिया।

भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने कहा कि श्री जॉनसन की यह घोषणा वस्तुतः विश्व-मत की विजय है। उन्होंने कहा कि यह तथ्य हो सकता है कि यह घोषणा अमेरिकी राष्ट्रपति के आसन्न चुनाव को मद्देनजर रखकर की गयी हो तो भी इसका निश्चित महत्त्व है।

कांग्रेस अध्यक्ष श्री निजलिंगप्पा ने आशा प्रकट की कि श्री जॉनसन के इस निर्णय से सिर्फ विएतनाम में ही शान्ति का मार्ग नहीं खुलेगा, बल्कि सारे संसार में शान्ति की समझदारी बढ़ेगी।

स्वतन्त्र पार्टी के वरिष्ठ नेता श्री राजगोपालाचारी ने कहा कि श्री जॉनसन के इस निर्णय से विएतनाम की शान्तिवार्ता के वातावरण में सुधार होगा ऐसी सम्भावना उन्हें नहीं दीखती।

एसोसियेटेड प्रेस के वाशिंगटन स्थित संवाददाता ने समाचार भेजा कि अमेरिका का रिपब्लिकन दल बम-वर्षा बन्द करने के राष्ट्रपति के निर्णय को एक चुनाव जिताने की दृष्टि से चली गयी चाल मानता है।

राष्ट्रपति-चुनाव के तीनों प्रत्याशियों १. डेमोक्रेटिक प्रत्याशी श्री हूबर्ट हम्फ्री, २ रिपब्लिकन प्रत्याशी श्री रिचर्ड निक्सन तथा ३. अन्य दलीय प्रत्याशी श्री जार्ज वैलेस ने जॉनसन की घोषणा का स्वागत किया।

श्री जॉनसन की घोषणा पर अपनी राय प्रकट करते हुए श्री हम्फ्री ने कहा कि श्री जॉनसन का यह निर्णय शान्ति-स्थापना में सहायक होगा। मैं इसकी पूरी तरह ताईद करता हूँ। जैसा कि राष्ट्रपति ने कहा है, उन्होंने यह निर्णय इस आशा से लिया है कि इसके द्वारा युद्ध का नर संहार कम होगा और इससे शान्ति-स्थापना में मदद मिलेगी।

श्री जार्ज वैलेस ने कहा कि मैं आशापूर्वक प्रार्थना करता हूँ कि राष्ट्रपति जॉनसन के निर्णय से दक्षिण पूर्व एशिया में शीघ्र सम्मानपूर्ण समझौते का रास्ता मिलेगा।

श्री निक्सन ने कहा : 'मेरे इस कथन में मेरे दल के उपराष्ट्रपति-पद के प्रत्याशी भी शामिल हैं—कि राष्ट्रपति के प्रत्याशी की हैसियत से मैं कोई ऐसी बात नहीं कहूँगा, जिससे शान्ति की सम्भावना को क्षति पहुँचे।

सिनेटर मैकार्थी ने कहा कि बम वर्षा के बन्द होने से पेरिस शान्ति-वार्ता में मदद मिलेगी।

'स्टेट्समैन' (अंग्रेजी) ने बम वर्षा की घोषणा को राष्ट्रपति जॉनसन की ओर से भेंट किया गया 'विदाई का बड़ा उपहार' कहा है। अपने सम्पादकीय में 'स्टेट्समैन' ने लिखा है कि बम वर्षा बन्द करने की घोषणा करने में एक मिनट की भी जल्दबाजी नहीं हुई है। यद्यपि अमेरिका के राष्ट्रपति के चुनाव का समय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है, किन्तु बम-वर्षा के बन्द करने में जिस साहस और निर्णय का समझदारी दिखायी गयी है उसका अपना विशेष महत्त्व है। यह शान्ति नहीं है। यह युद्ध विराम का समझौता भी नहीं है। राष्ट्रपति जॉनसन ने तो यह भी माना है कि सम्भवतः स्थल पर घमासान लड़ाई की शुरुआत हो सकती है। फिर भी उत्तर वियतनाम के विरुद्ध हवाई आक्रमण का यह स्थगन एक 'नयी उपलब्धि' है···अमेरिका के इस निर्णय के पीछे कोई ऐसी बात नहीं है, जो हनोई या उसके समर्थकों को बहुत बुरा कर सके। इसके पीछे कोई शर्त नहीं है, लेकिन आशाएँ बहुत हैं।

—रुद्रभान

श्री धीरेन्द्र मजूमदार—प्रधान सम्पादक
श्री वशीधर श्रीवास्तव
श्री राममूर्ति

वर्ष १७
अक ४
मूल्य ५० पैसे

अनुक्रम

नवम्बर '६८

निवेदन

- नया तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा छ रुपये है और एक अक के ५० पैसे।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक-संख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट सर्व सेवा सघ की ओर से प्रकाशित, अमन कुमार वसु इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी-२ मे मुद्रित।

नयी तालीम : नवम्बर '६८

पहले से डाक व्यय दिये बिना भेजने की अनुमति प्राप्त

लाइसेंस नं० ४६ रजि० सं० एल १७२३

गांधी शताब्दी वर्ष १९६८-६९

गांधी विनोबा का ग्राम स्वराज्य का संदेश गाँव गाँव, घर-घर पहुँचाइए और जन जन को उसके लिए कृत संकल्प कराइए। सच्चे स्वराज्य का अब यही रास्ता है।

इस निमित्त राष्ट्रीय गांधी जन्म शताब्दी समिति की गांधी रचनात्मक कार्य क्रम उपसमिति द्वारा निम्न सामग्री पुरस्कृत/प्रकाशित की गयी है —

पुस्तकें—

(१) जनता का राज्य—लेखक श्री मनमोहन चौधरी, पृष्ठ ६२, मूल्य २५ पैसे।

(२) शांतिसेना परिचय—लेखक श्री नारायण देसाई, पृष्ठ ११८, मूल्य ७५ पैसे

(३) हत्या एक आकार की—लेखक श्री ललित सहगल, पृष्ठ ९६, मूल्य रु० ३.५०। गांधीजी के हत्यारे के हृदय में हत्या से पूर्व चलनेवाले मानसिक द्वन्द्व का प्रभावपूर्ण सशक्त चित्रण।

(४) Freedom for the Masses—जनता का राज्य का अनुवाद पृष्ठ ७६ मूल्य २५ पैसे।

(५) A Great Society of small Communities—ले० सुगतदास गुप्ता पृष्ठ ७८, मूल्य रु० १०.००।

वितरण और प्रदर्शन की सामग्री—

फोल्डर—(१) गांधी, गाँव और ग्रामदान (२) गांधी और शांति (३) ग्रामदान क्यों और कैसे ? (४) ग्रामदान क्या और क्यों ? (५) ग्रामदान के बाद क्या ? (६) ग्रामसभा का गठन और कार्य (७) गाँव गाँव में खादी (८) सुलभ ग्रामदान (९) देखिए ग्रामदान के कुछ नमूने।

पोस्टर—(१) गांधी ने चाहा था सच्चा स्वराज्य (२) गांधी ने चाहा था स्वावलम्बन (३) गांधी ने चाहा था अहिंसक समाज (४) ग्रामदान से क्या होगा ? (५) गांधी जन्म मनाइए और सर्वोदय-पर्व।

सामग्री मर्यादित रूप में निम्न स्थानों से प्राप्त की जा सकती है —

(१) गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति (राष्ट्रीय गांधी जन्म शताब्दी समिति) दुकलिया भवन कुन्दीगरों का भैरों, जयपुर—३ (राजस्थान)। (२) सर्व सेवा संघ प्रकाशन राजघाट वाराणसी-१ (उत्तर प्रदेश)
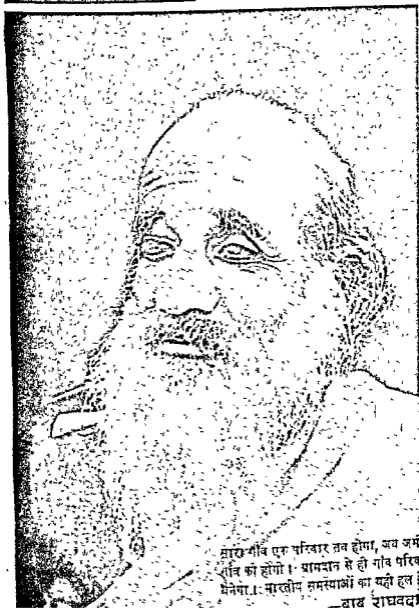
मुद्रक ओमप्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल प्रेस, वाराणसी।

यी तालीम
दिसम्बर
वर्ष :
गाँव एक परिवार तब होगा, जब जमी
की होगी। ग्रामदान से ही गाँव परिव
भारतीय समस्याओं का यही हल
—बाब राघवदा

शिक्षकों, प्रशिक्षकों एवं समाज शिक्षकों के लिए

भूखा शिक्षक

कौन नही मानेगा कि शिक्षक भूखा है ? और इससे भी किसे इनकार होगा कि भूखा शिक्षक देश के लिए खतरा है ? उत्तर प्रदेश के शिक्षकों को इस वक्त ये बात जुलूस मे नारे लगा लगाकर बतानी पड रही हैं। शिक्षक भूखा है। पुलिस का सिपाही भूखा है। दफ्तर का बाबू भूखा है। रिक्शेवाला भूखा है। दस्तकार भूखा है। छोटा किसान भूखा है। खेत का मजदूर भूखा है। शिक्षित युवक भूखा है। कौन कहेगा कि ये भूखे नही हैं, और इनका भूखा रहना देश के लिए खतरा नही है ?

दूसरी ओर अफसर भूखा है ऊँची कुर्सी का। मालिक भूखा है दौलत का। नेता भूखा है गद्दी का। क्या कोई कह सकता है कि इनकी भूख देश के लिए कम भयंकर खतरा है ?

ढूंढना पडेगा कि अब इस देश मे कौन बच गया है जो भूखा नही है ? भूख चाहे रोटी-कपडे की हो, और चाहे सत्ता-सम्पत्ति की या और किसी चीज की, अतृप्त भूख खतरा तो होती ही है। अतृप्त भूख जलने मे आग से भी तेज होती है। आज हमारा देश दोनों तरह की भूखों का शिकार है। पहली भूख देश को तोड रही है। और दूसरी देश को जला रही है।

वर्ष : १७
अंक : ५

भूखे लोगों की सरकार से यह मांग है कि वह उनकी भूख शान्त करे। सरकार के सिवाय मांग भी किससे की जाय ? भगवान की शक्ति अपने वश की है नही, समाज की शक्ति का पता नही है, तो सरकार ही एक बच गयी है जिसकी शक्ति कभी कभी पुलिस और फौज के रूप मे दिखाई दे जाती है, इसलिए उसीसे मांगें की जाती हैं। लेकिन शायद मांग करनेवालो को यह पता नही है कि सरकार के पास केवल सत्ता है, शक्ति नही सत्ता से दमन हो सकता है, किन्तु सृजन के लिए तो शक्ति चाहिए। अगर वह शक्ति सरकार के पास होती तो इतने वर्षो में देश की बुनियादी समस्याएँ कुछ हल होती दिखाई देती। क्या किसीको दिखाई दे रही हैं ? जब गरीबी के साथ विषमता भी जुड़ जाती है तो दोनो दुगुनी असह्य हो जाती हैं। पिछले वर्षों मे विषमता बहुत बढी है। शिक्षक गरीब तो हैं ही, पर उनमें विषमता भी कम नही है। प्राइमरी स्कूल से लेकर विश्वविद्यालय तक के शिक्षको में विषमता की कई सीढियां हैं। सरकारी और गैर-सरकारी शिक्षकों मे जबरदस्त खाई है। एक ही विभाग मे काम करनेवाले शिक्षकों और शिक्षा के शासको में बहुत फासला है। सरकार की पूरी शक्ति इन विषमताओं को दूर करने के बजाय कायम रखने मे लगी हुई है।

भूख का हल मांग मे नही है बल्कि यह जान लेने मे है कि आज की सामाजिक और सरकारी व्यवस्था मे भूख का हल है ही नही। जो व्यवस्था भूख को पैदा करती है और विषमता को बढाती है, वही उन्हे मिटा कैसे सकती है ? यह बात साफ समझ मे आ जायगी, अगर हम पूरे देश को सामने रखकर सोचें। लेकिन अगर समाज के हर टुकडे को अलग रखकर सोचेंगे तो सिवाय नारे लगाने और सरकार से मांग करने के दूसरा कुछ सूझेगा नही। इतना ही नही, एक की मांग दूसरे की मांग से इस तरह टकरायेगी कि किसी भी मांग की पूर्ति का रास्ता नही निकलेगा। शिक्षक कहता नही लेकिन चाहता है कि फीस बढ़े, दूसरी ओर विद्यार्थी किसी तरह राजी नही होता

कि फीस बढे। इसके अलावा जब बाजार समाज और सरकार दोनो की काबू से बाहर हो गया है तो मांगे पूरी होकर भी पूरी नही होगी। मांगों और मूल्यो मे दौड होती रहेगी। मूल्य जीतेंगे, मांगे हारेगी, और मांग करनेवालो के हाथ निराशा के सिवाय दूसरा कुछ नही आयेगा।

जब भूख के साथ चेतना जुडती है तो भूखा व्यक्ति भिखारी न रहकर क्रान्तिकारी बन जाता है। भिखारी की भूख अभिशाप और अपमान है, जब कि क्रान्तिकारी की स्वेच्छा से स्वीकृत भूख उसका गौरव है। उस भूख में ज्वालामुखी की शक्ति होती है। भला यह शक्ति सरकार के कानून या नौकरशाही की योजना में कैसे आ सकती है ?

जब विनोबा ने शिक्षक के सामने 'आचार्यकुल' की बात रखी थी तो सम्भवत' उनके मन में यह आशा जरूर रही होगी कि शिक्षकों का चेतन समुदाय अपनी चेतना को भूख के साथ जोडकर कुछ नया चिंतन करेगा, और समाज को चिंताओ से मुक्त करने की दिशा मे नया कदम उठायेगा। लेकिन शायद शिक्षक के सामने भूख की चिंता के साथ साथ राजनीति का चक्कर भी है। क्या शिक्षक आज तक यह नही समझ सका है कि राजनीति बराबर नये चक्कर पैदा करती जायगी, और शिक्षक उसमे फंसता जायगा, और समस्या जहां थी वही रह जायगी ?

आज चाहे जो हालत हो, लेकिन भूख तब मिटेगी जब भूखे लोग अपनी भूख मिटाने के लिए मिलकर खुद सामने आयेंगे। ग्रामदान इसी सामूहिक पुरुषार्थ के लिए ग्रामीण जनता का आवाहन कर रहा है। शिक्षक इस व्यापक पुरुषार्थ का अगुआ क्यों नही बन पा रहा है ? क्या वह सामान्य भूखों की जमात से अलग अपने को विशिष्ट भूखो की कोटि मे गिनना चाहता है ? कहने को तो हजार-दो हजार पानेवाले लोग भी अपने को भूखा कहते हैं, और हडताल की धमकी

देते हैं। लेकिन उन भूखों की 'जाति' दूसरी है। शिक्षक के लिए ग्रामदान द्वारा प्रस्तुत यह बहुत बडा अवसर है, जो स्वतंत्रता के बाद पहली बार सामने आया है, कि वह समाज मे अपना स्थान तय करे, और उसके अनुरूप अपना आचार विकसित करे।

एक बात और है। हम चाहे जो करे, अभी बरसों तक हमारा देश गरीबी से मुक्त नही हो सकेगा। गरीबी से लडाई लडते हुए हम इतना तो फौरन कर सकते हैं कि हम गरीबी बाँटें और हमारे हिस्से जो आये उसमें ही गुजर करने के लिए तैयार हों। इस देश में गरीबी से लडाई का अर्थ है समता की लडाई। अभी तक हमने समता का इतना ही अर्थ समझा है कि किसी तरह ऊपरवाले के मुकाबिले पहुँच जायँ, न कि नीचेवाले के साथ एक हो जायँ। इसे मत्सर कहते हैं, समता नही। अगर हमे समता प्रिय है तो विषमता से मुक्ति सबसे पहले सबसे नीचेवाले को दिलाने की कोशिश करनी चाहिए।

शिक्षक अपने स्कूल मे 'नौकर' है, और बाहर सडक पर 'एजिटेटर'। कब और कहाँ वह 'टीचर' है? शिक्षक की समस्याओं का समाधान उसी दिन शुरू हो जायगा जिस दिन उसमें अपने सही 'रोल' की प्रतीति पैदा होगी। उसका काम है नयी चेतना का समर्थ वाहक बनना, नारे लगाना और धक्के खाना नही। शिक्षक भूखा है, पर वह सचेत कब होगा?

आचार्यों की शक्ति : पक्षमुक्ति

आचार्यों को यह समझना है कि उनके स्वतन्त्र रहने से भारत में उनकी एक ताकत बनेगी। अगर वे पार्टियों से मुक्त रहेंगे, तो गुरु की हैसियत में आयेंगे और सबकी सम्मिलित आवाज प्रकट होगी। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों पर उनकी राय प्रकट होगी और उसका असर भारत की राजनीति पर पड़ेगा।

आचार्यों को मतदान का अधिकार है, 'इलेक्शन' में खड़े होने का अधिकार है, सब अधिकार हैं। वे अधिकारों से वंचित होते, तो अधिकार-संन्यास का कोई अर्थ ही नहीं होता, लेकिन जब अधिकार हासिल हैं और ऊँचे उद्देश्य से प्रेरित होकर वे उन अधिकारों को छोड़ देते हैं, तो उनकी योग्यता ऊँची बनती है। बाबा की मिसाल लीजिए। बाबा को वोट का अधिकार है, पार्टी बनाने का अधिकार है और चुनाव में खड़े होने का अधिकार भी है। फिर भी बाबा ने यह सब छोड़ा है, इसलिए उसकी इज्जत बढ़ी है। मैंने कई बड़े-बड़े लोगों से पूछा है कि मान लीजिए, बाबा पार्टी बनाता, पार्लियामेण्ट में जाता, तो क्या उसकी आवाज देश को ज्यादा मान्य होती या आज ज्यादा मान्य है? सबने कहा कि आपकी शक्ति पार्लियामेण्ट में जाने से बढ़नेवाली नहीं है, घटने ही वाली है। फिर मैंने उनसे पूछा : 'आप क्यों पार्लियामेण्ट में जाते हैं?' उन्होंने कहा : 'हमारी इतनी ही शक्ति है, वहाँ जाने तक की ही शक्ति है।'

आचार्यों के पास एक विद्यादान का काम है और दूसरा घर-संसार का है। इसके अलावा वे कितने काम करेंगे? यदि वे पार्टियों में दखल देंगे, तो उनकी बड़ी विचित्र दशा होगी। इसलिए उन्हें पार्टियों से मुक्त होना चाहिए। उन्हें राजनीति में भाग लेने का अधिकार है और इसीलिए उन्हें अधिकार-संन्यास लेना है, क्योंकि अधिकार-मुक्ति का भी उन्हें अधिकार है।

माँ का बच्चे पर जो अधिकार है, वह सिर्फ प्रेम का अधिकार है। उसी तरह आचार्यों को भी प्रेम का अधिकार है। उन्हें हर गाँव का प्रेमी, मार्गदर्शक और मित्र बनना है। माता पिता का मार्गदर्शन प्रेमयुक्त होता है, लेकिन वह ज्ञानयुक्त भी होता हो, यह जरूरी नहीं है। किन्तु आचार्यों का मार्गदर्शन प्रेमयुक्त और ज्ञानयुक्त भी होना है। यह सारी स्थिति उन्हें समझनी चाहिए।

प्रश्न : आज कुछ शिक्षकों के लिए शिक्षा गौण और राजनीति प्रधान है, ऐसी हालत में हम क्या करें?

विनोबा शिक्षा उनके लिए गौण है ही, विद्यार्थियों के लिए भी गौण है। आज कोई भी विद्यार्थी नहीं है जो है सो परीक्षार्थी है। इससे भी बेहतर नाम देना हो तो वह नौकरी पर्थी है। शिक्षकों को यह समझना होगा कि स्वतंत्र भारत में विद्या नहीं पनपी तो राज्य नहीं पलेगा। विद्या के बिना राज्य नहीं चलता इसलिए उत्तम विद्याभ्यास चलना चाहिए।

प्रश्न : क्या आचार्यकुल शिक्षकों की व्यक्तिगत समस्याओं की ओर ध्यान दे?

विनोबा माँगें व्यक्तिगत हैं लेकिन सच्ची हैं तो आचार्यकुल जरूर ध्यान दे। अभी बिहार में शिक्षकों की हड़ताल हुई ता कुल आचार्य उसमें सम्मिलित हुए। मैंने उनसे कहा कि भारत के हिसाब से आपका वेतन ज्यादा है इसलिए सबका वेतन बढे यह माँग करने की अपेक्षा यह माँग करते कि नीचेवालों का वेतन बढे तो आपकी ताकत बढती। आप यह प्रस्ताव करते कि देश की आज की हालत में नीचेवालों के लिए हम अपनी आमदनी का इतना प्रतिशत देते हैं तो आपकी ताकत बढती।

आचार्यकुल का काम चलाने के लिए यह जरूरी है कि कोई एक प्रोफेसर मुक्त होकर यह काम करे। यह सबसे काण्टक्ट (सम्पर्क) करेगा पत्र व्यवहार करेगा। उसके लिए रु० ४०० प्रति मास और आफिस के लिए दो क्लर्कों को तनख्वाह प्रति मास रु० ४०० और आफिस का खर्च मिलाकर कुल एक हजार रुपए चाहिए। सब आचार्य मिलकर इतना कर दें। १ प्रतिशत देंगे तो काम बनेगा। यह कोई टक्स नहीं है। इतना खर्च चलाने के लिए जितना देना जरूरी है देना चाहिए।

प्रश्न क्या जिन्होंने संकल्प पत्र पर हस्ताक्षर नहीं किये उन्हें भी आचार्यकुल की चर्चा में सम्मिलित कर सकते हैं?

विनोबा यह 'डीटेल्स' का यानी ब्योरे का विषय है। आचार्यकुल में कितने लोग सम्मिलित हैं इस पर यह निर्भर करता है। सवाल इतना ही है कि दूध में पानी मिलाना है या पानी में दूध मिलाना है। अगर बहुत-से लोग शामिल हुए हों तो थोड़ा पानी मिलाया जा सकता है। काशीवालों ने एक बात सुझायी कि प्रोफेसरों के अलावा दूसरे भी जो निष्पक्ष विद्वान हैं उन्हें शामिल किया जाय। यह सुझाव मुझे मान्य है।

—अम्बिकापुर (सरगुजा) के १६–११–६८ के प्रवचन से

श्रीलंका का लोक-दर्शन

नरेन्द्र

[श्री नरेन्द्र भाई अनेक वर्षों तक श्री धीरेन्द्र भाई के सान्निध्य में रहकर 'ग्राम भारती' के शैक्षिक प्रयोगों का अनुभव ले चुके हैं। पिछले अक्तूबर में वे सपत्नीक श्रीलंका की यात्रा पर थे। प्रस्तुत विवरण वहीं से प्राप्त हुआ है।—सं०]

विजया नाम का राजकुमार २५११ साल पहले भारत से श्रीलंका पहुँचा। उसके साथ सात सौ अनुयायी भी थे। ये लोग श्रीलंका के उत्तर-पश्चिम किनारे पर आकर बस गये। धीरे-धीरे वे सारे देश में फैल गये। विजया और उसके अनुयायी सपत्नीक श्रीलंका में आये थे। इनकी सन्तानें अपने को सिंहली जाति के नाम से पुकारती हैं, ये लोग अपने को आर्यों के ही वंश मानते हैं।

श्रीलंका अर्वाचीन परिचय

श्रीलंका की जनसंख्या एक करोड दस लाख है जिसमें ७० प्रतिशत सिंहली, १९ प्रतिशत तमिल तथा शेष ११ प्रतिशत में 'मूर' (अरब से आये लोग), बरगर्स (डच और पुर्तगाल से आये व्यक्ति), यूरेशियन, मलायी, पारसी, योरोपियन तथा वेदा (श्रीलंका के आदिवासी) हैं।

सोलहवीं सदी के प्रारम्भ से ४ फरवरी, १९४८ तक श्रीलंका पर पुर्तगाल, हालैंड, तथा इंग्लैण्ड का राज्य क्रमश रहा। अब श्रीलंका एक स्वतन्त्र देश है। देश की राज्य-व्यवस्था के सचालन के लिए एक गवर्नर जनरल होता है। यह रानी एलिजावेथ द्वारा नियुक्त किया जाता है। इसके बाद प्रधान मन्त्री और उसका मन्त्रीमंडल मनोनीत ३० सदस्यों की एक 'सीनेट' होती है और १५७ प्रतिनिधियों की एक संसद है। श्रीलंका के राजनैतिक जीवन पर भी बौद्ध धर्म की गहरी छाप है। सारे देश में बौद्ध भिक्षुओं का विशेष सम्मान होता है। इस समय प्रधान मन्त्री श्री डी० एस० सेनानायक हैं तथा विरोधी पार्टी की नेता श्रीमती भंडारनायक हैं।

राज्य सचालन में आम तौर पर सिंहली, तमिल और अंग्रेजी भाषाओं का व्यवहार होता है। लेकिन वर्तमान सरकार ने श्रीलंका (सिंहल द्वीप) की भाषा सिंहली होगी, ऐसा घोषित कर दिया है। भाषा को लेकर देश में बड़ा तनाव है। सिंहली, तमिल समस्या इस देश की प्रधान समस्याओं में से है।

एक बार तो हिन्दू-मुस्लिम की तरह यहाँ के तमिल सिंहली बर्बरतापूर्ण ढंग से आपस मे झगडा कर चुके हैं।

श्रीलंका का क्षेत्रफल २५,३३२ वर्गमील है। ११ लाख एकड मे धान की खेती होती है। पूरे देश को दो भागो मे बांटा जा सकता है—सूखा क्षेत्र और तर क्षेत्र। तर क्षेत्र मे धान, रबर, चाय तथा नारियल बहुत मात्रा मे होता है। हिन्दुस्तान के गाँवो जैसी कोई बस्ती श्रीलंका मे नही होती। आम तौर पर घर नारियल के बगीचो में होते हैं। सब अपना घर अपने बगीचे में बनाते हैं। जिनके पास जमीन नही है, वे थोडी जमीन किराये पर लेकर उसीमें अपना घर तथा बगीचा बना लेते हैं। गाँवो में घर आम तौर पर मिट्टी की दीवार और नारियल के पत्तो के छप्पर के होते हैं। ईंट की दीवारें बनाकर उस पर भी नारियल के पत्तो का छप्पर लगाने का रिवाज है। इधर कुछ टीन और सीमेंट की चादरो का उपयोग भी होने लगा है।

चाय, रबर और नारियल तथा इसके रेशे से बने सामान बाहर बेचकर, आवश्यकता की बहुत सी सामग्री बाहर से मँगानी पडती है। कपास इस देश में पैदा नही की जाती। अत कपडे के लिए यह देश पूरी तरह से दूसरों पर ही निर्भर करता है।

ग्राम-व्यवस्था

गाँव में क्षेत्रीय स्तर पर 'विलेज कौंसिल' (ग्राम सभा) होती है। यह कौंसिल ही स्थानीय टैक्स आदि वसूल करती है और इस धन से ग्राम-विकास की योजना बनाती है। ग्राम कौंसिल का सीधा सम्बन्ध मिनिस्टर के मार्फत केन्द्रीय सरकार से होता है। केन्द्रीय सरकार ग्राम विकास की योजनाओं के लिए कुछ रकम ग्राम कौंसिल को देती है। सरकार की तरफ से प्रतिमाह श्रीलंका के हरेक नागरिक को चार नाप (करीब ४ किलो०) चावल मुफ्त मिलता है, और प्रारंभिक कक्षा से लेकर विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा मुफ्त दी जाती है।

मुफ्त चावल मिलने की योजना का गहराई से अध्ययन करने पर मालूम हुआ कि वितरण मे बडी अव्यवस्था है। बहुत लोग ऐसे हैं जो काम करने से कतराते हैं। सोचते हैं, चावल तो मिल ही जायेगा। कुछ लोग चावल बेच-कर शराब पी जाते हैं। हरेक को भोजन मिलना चाहिए, यह अच्छा विचार है लेकिन इससे भी अच्छा यह है कि हरेक को काम मिलना चाहिए।

परन्तु इस विचार को व्यावहारिक रूप देने की तैयारी अभी किसीकी दीखती नहीं।

श्रीलका-निवासी रावण-वशज नही !

भारतीय नागरिक, खास तौर पर उत्तर भारत के लोग श्रीलका और रावण का सम्बन्ध जोडते हैं, लेकिन सिंहली नागरिको का इतिहास राजकुमार विजया के बाद शुरू होता है। रावण जैसे किसी व्यक्ति का सम्बन्ध सिंहली इतिहास से नही है, फिर भी श्रीलका के कई स्थान ऐसे हैं, जहाँ रावण के नाम से सम्बन्धित यादगारें हैं। न्युमारा ऐलिया के पास रावण ऐल्ला, (रावण झरना) तथा सीता ऐल्लिया (सीताग्राम) नाम के स्थान हैं। यही पर अशोक वन के नाम का भी एक स्थान है। यह स्थान बहुत ही सुन्दर है। श्रीलका के उत्तरी पूर्वी कोने पर ट्रिकोमाली नाम का स्थान है। यहाँ सात कुएँ हैं, जिनका पानी गरम है। इन कुओ के साथ भी रावण की कहानी जुडी है। यही पर एक मन्दिर भी है, जिसका सम्बन्ध रावण से जोडा जाता है। तमिल साहित्य मे श्रीलका के साथ रावण का सम्बन्ध मिलता है। रावण एक द्रविड राजा था।

मुख्य त्योहार . वेशभूषा खान-पान

नवरात्रि, सरस्वती पूजा और दीपावली श्रीलका के तमिल लोग व कुछ अन्य नागरिक धूमधाम से मनाते हैं। यहाँ बौद्धो का मुख्य त्योहार वैशाखी पूर्णिमा है, जो महात्मा बुद्ध का निर्वाण दिवस है। उस अवसर पर ४–५ दिन श्रीलका में स्थान-स्थान पर बौद्धों के उत्सव बडी धूमधाम से मनाये जाते हैं। हर उत्सव में कथानक और नाटक के रूप में बुद्ध भगवान की जीवन लीला का प्रदर्शन होता है, जैसे व्रज मे रासलीला के मार्फत कृष्ण की जीवन लीलाओ का प्रदर्शन किया जाता है।

यहाँ की राष्ट्रीय वेशभूषा एकदम निराली है। जो पुराने व्यक्ति हैं वे पुरुष सिर पर पूरे बाल रखते हैं और जूडे की तरह पीछे बालों मे एक गाँठ लगा लेते हैं। पेटीकोट की तरह की सिली हुई लुङ्गी (तहमद) कुर्ते को नीचे करके बाँधते हैं, ऊपर से एक पेटी (बेल्ट) कसकर बाँध लेते हैं। सिर पर बाल रखने का रिवाज कम हो रहा है, लेकिन सिली हुई लुङ्गी व कुर्ता बहुत व्यक्ति पहनते हैं। स्त्रियाँ भी रग बिरगी लुङ्गियाँ तथा एक छोटा-सा ब्लाउज पहनती हैं। सिर ढकने का रिवाज नहीं है। श्रीलका के शहरी जीवन पर पाश्चात्य सभ्यता का बाहरी रंग बडी तेजी से चढ रहा है। इसका प्रवाह गाँवो की ओर भी है।

विदेशों से हर साल बहुत से पर्यटक आते हैं, इसके कारण होटल बहुत बढ़ रहे हैं। शाकाहारी होटल बहुत ही कम हैं। श्रीलंका का मुख्य भोजन चावल और कढ़ी है। सिंहली लोग सूखी मछली का पाउडर (मोल्डी फिश पाउडर) बड़े शौक से खाते हैं। सब्जियाँ नारियल के दूध मे एक विशेष ढंग से पकायी जाती हैं, इसीको कढ़ी कहते हैं। आम तौर पर ये लोग चाय और काफी बिना दूध की ही पीते हैं। मिठाइयाँ खाने का रिवाज बहुत कम है।

राष्ट्रीय धर्म

बौद्ध धर्म श्रीलंका मे राष्ट्रीय धर्म है ऐसा कह तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। क्योंकि यहाँ के स्कूलो में बुद्ध की मूर्ति का एक विशेष स्थान होता है। राजनैतिक नेता भी बौद्ध मुनियो का विशेष सम्मान करते हैं। यहाँ की राजनीति पर भी बौद्ध भिक्षुओ का बहुत गहरा असर है। यह प्रत्यक्ष रूप में २ अक्तूबर को देखने को मिला, जब प्रधान मन्त्री भाषण देने के लिए खड़े हुए तो उन्होंने उच्च सिंहासन पर बैठे बौद्ध भिक्षुओं को नतमस्तक होकर, प्रणाम किया। देश भर मे बौद्ध विहार अनगिनत संख्या में है। यहाँ पर भिक्षुओ का विधिवत् शिक्षण होता है। यहाँ बौद्ध अपने को हिंदुओ से अलग मानते हैं परन्तु हिन्दू देवी देवताओं का और बौद्ध मन्दिरो का एक अजीब संगम है। मुस्लिम, ईसाई, हिन्दू, बौद्ध—सभी धर्मों के लोगों में आपस में धर्म के कारण वैर-भाव या मतभेद नही है।

विद्यार्थी भविष्य की थाती

अप्रैल से जून, और सितम्बर से दिसम्बर महीनो में श्रीलंका मे एक विशेष चहल पहल रहती है। रेलगाडी से या बसो से, विद्यार्थी हजारो की तादाद मे किसी छोटे से स्टेशन पर उतरकर खड़े हो जाते है। हर स्कूल के विद्यार्थियो के हाथ में उनके स्कूल का झंडा होता है। इन विद्यार्थियो का स्वागत करने के लिए ग्रामीण किसान पहले से स्टेशन पर मौजूद रहते हैं। गाँव के मुखिया के हाथ में श्रीलंका का राष्ट्रीय झण्डा रहता है।

जैसे ही ट्रेन या बस से विद्यार्थी उतरते हैं, वे अपने स्कूल का झण्डा गाँव के मुखिया के हाथ मे थमा देते हैं और मुखिया राष्ट्रीय झण्डा स्कूल की टोली के नेता के हाथ में थमा कर कहता है, 'राष्ट्र के भविष्य की जिम्मेदारी तुम्हारे हाथ मे है।'

विद्यार्थियो की यह टोली ग्रामीणो के पीछे पीछे चल पड़ती है। शिक्षक भी साथ होते हैं। गाँव के खेतो में पहुँचकर झण्डो को खेत की मेड पर गाड़ दिया जाता है, इस प्रकार से ये 'खेत विद्यालय' शुरू हो जाते हैं। विद्यार्थी धान

के खेतो की निराई का काम शुरू कर देते हैं। और लाखो हाथ मिलकर आनन-फानन में धान के खेतो से घास को निकालकर बाहर फेंक देते हैं।

खेत विद्यालयों का चमत्कार

धोलका के किसान आम तौर पर धान की दो फसलें तो लेते ही हैं, अतः रोप तैयार करना, धान रोपना, और काटना आदि कार्य करने मे घास निकालने के लिए समय ही नही मिल पाता है। धान के खेतो की घास इस देश की बहुत बडी समस्या थी। धान के खेतो में रासायनिक खादो का उपयोग करने से धान के पौधे के साथ-साथ घास भी बहुत तेजी से बढती थी। नतीजा यह होता था कि यह घास धान के पौधे को दबा लेती थी। श्रीलका की सरकार का ध्यान इस समस्या की तरफ गया और स्कूलो मे पडे लाखो बेकार हाथ धान के खेतों मे पहुँच गये। धान के खेतो से घास गायब होने लगी। घास रहित धान के खेतो मे जब रासायनिक खादो का प्रयोग शुरू किया गया तो कहीं कहीं तो पैदावार तीनगुनी बढ गयी। सन् १९६६ से यहाँ को सरकार ने इस कार्यक्रम को बहुत गभीरता से उठाया है। नतीजा यह हुआ है कि धान की पैदावार पूरे देश में २५ लाख बुशल बढ गयी है। यह धान दूसरे देशो से ५ करोड डालर खर्च करके लेना पडता था। इस देश में ११ लाख एकड जमीन में धान की खेती होती है। यदि पूरी जमीन की औसत पैदावार ६५ बुशल प्रति एकड हो जाये तो अन्न की आवश्यकता की पूर्ति अच्छी तरह से हो सकती है।

'खेत-विद्यालय' की योजना के अन्तर्गत विद्यार्थियो ने जहाँ धान के खेतो में से घास निकालने का काम किया है, वहाँ जो किसान पहले ३८ बुशल प्रति एकड की उम्मीद करता था, वहीं अब ८० बुशल प्रति एकड तक पैदावार होने लगी है। इस परिणाम के कारण किसान, विद्यार्थी, और सरकार, तीनो मे इस काम के लिए जबरदस्त उत्साह का निर्माण हुआ है।

इस कार्यक्रम से पैदावार बढने के साथ साथ और भी बहुत से लाभ हुए हैं। जब विद्यार्थी खेतो मे काम करने के लिए पहुँचते हैं तो उन्हे अपने देश को जानने का मौका मिलता है और उन लोगो से प्रत्यक्ष सम्पर्क होता है, जो देशभर के लिए खाना पैदा करने का काम करते हैं।

शहर के बहुत से बच्चे जिन्होंने धान के खेत नही देखे हैं, जब वे धान के कीचड भरे खेतो में घुसकर ग्रामीणो के साथ साथ घास निकालने या धान रोपने का काम करते हैं, तो उनको जानकारी होती है कि ग्रामीणो का जीवन कैसा है।

इस कार्यक्रम से ग्रामीणो की जिन्दगी मे भी एक नया उत्साह तथा श्रम-प्रतिष्ठा का भाव पैदा हुआ है।

पुब्बिलिया गाँव के एक युवक ने 'ग्रायु बो वन' कहकर हाथ जोडते हुए हमारा स्वागत किया। हमने भी उत्तर में 'ग्रायु बो वन' कहकर हाथ जोडे। श्रीलका में जब किसीसे मिलते हैं या विदा लेते हैं तो 'ग्रायु बो वन' कहकर हाथ जोडने का रिवाज है। सस्कृत में 'ग्रायुष्मान भव' का जो ग्रर्थ है वही 'ग्रायु बो वन' का है।

जिस युवक ने हमारा स्वागत किया वे पुब्बिलिया गाँव के स्कूल के प्रधान-शिक्षक हैं—श्री एच० डी० जिमोनीज। ग्रभी इनको पुब्बिलिया गाँव में ग्राये थोडे ही दिन हुए हैं, लेकिन पूरा गाँव इनसे बहुत प्रभावित है तथा इनके मार्ग-दर्शन में काफी विकास कर रहा है।

जहाँ फावडा भी पढाई का ग्रंग है

हम लोग जब पुब्बिलिया गाँव के स्कूल मे पहुँचे तो स्कूल की छुट्टी का समय हो रहा था। बच्चो की किताब के थैले के साथ फावडा ले जाते हुए देखकर मुझे कुछ कुतूहल हुग्रा तो मैंने श्री जिमोनीज से पूछा कि ये बच्चे फावडा क्यो लिये हैं ?

जिमोनीज मुस्कराते हुए बोले—"इस स्कूल का हरेक बच्चा रोज पुस्तको के साथ फावडा भी लाता है क्योकि शरीरश्रम भी पढाई का एक ग्रग है।"

पुब्बिलिया गाँव मे ८७ परिवार रहते हैं, जिनमे ७६ भूमिवान हैं, शेष ११ भूमिहीन हैं गाँव में खेती लायक करीब ६०० एकड जमीन है, ५०० जन-सख्या है, ७ माह पहले श्रीलका-सरकार की तरफ से एक बाँध बनाने की योजना बनायी गयी थी। इस योजना के ग्रन्तर्गत तीन गाँव, जिनका क्षेत्रफल १२०० एकड होता है, इस बाँध के पेट में समा जानेवाले थे, बाँध के बाहर करीब १५०० एकड जमीन दो-तीन बडे बडे जमीदारो की थी—ग्रत· गरीबो को बाँध के पेट मे झोककर जमीदारों को ही लाभ होनेवाला था। वास्तव मे बात यह थी कि सिचाई-विभाग के विशेषज्ञो ने यह योजना जमींदारो के सुझाव पर कोलम्बो मे ही बैठकर बना ली थी, मौके पर कोई नही गया था।

स्कूल-शिक्षक का ग्रभिक्रम

स्कूल शिक्षक श्री जिमोनीज को जब यह सारा किस्सा मालूम हुग्रा तो उन्होंने गाँव के लोगो को इकट्ठा किया ग्रौर कहा कि हम सब मिलकर यदि इस बात को सरकार के पास पहुँचायेंगे तो हमारी बात जरूर सुनी जायेगी, लेकिन हम सबको मिलकर रहना चाहिए, ग्रौर सबके भले की दृष्टि से काम करना चाहिए। इसी सिलसिले मे उन्होने गाँववालो को सर्वोदय तथा ग्रामदान की

बात बतायी। गाँव में सर्वोदय-केन्द्र के मार्फत बांध-योजना का विरोध किया गया, क्योंकि वास्तव मे कर्मचारियो ने मौके पर आकर योजना नहीं बनायी थी। अन्त म बाँध बनाने की वह योजना स्थगित हो गयी। इस प्रारंभिक सफलता से गाँववालो को अपनी सामूहिक शक्ति का दर्शन हुआ। इसके बाद श्री जिमोनीज के मार्गदर्शन में इस सामूहिक शक्ति ने ग्राम निर्माण का काम शुरू किया। पहला निर्णय इन लोगों ने यह लिया कि गाँव की सारी जमीन सर्वोदय की है, अत जमीन पर भूमिहीनो का भी अधिकार है। गाँव की सगठित सामूहिक शक्ति के आधार पर गाँव मे छोटे छोटे दो तालाबो का निर्माण हुआ। मुख्य सडक से गाँव को जोडने के लिए डेढ मील की एक सडक बनायी गयी।

गाँव मे पानी का बहुत अभाव है अत कुएँ खोदने का आंदोलन भी शुरू हो गया है। लोग कुआँ अपने श्रम से खोद लेते हैं और जिन लोगो के पास अधिक साधन नही हैं, उनको सीमेण्ट आदि की मदद सर्वोदय केन्द्र की तरफ से दी जाती है।

गाँव मे सर्वोदय निधि एकत्र करने का एक अच्छा तरीका इन लोगो ने निकाला है। ७६ भूमिवान परिवारो ने अपने अपने नारियल के बगीचे में एक-एक पेड सर्वोदय के लिए दे दिया है। जो पेड सर्वोदय के लिए निश्चित किया गया है उस पर 'सर्वोदय' लिख दिया है। इस प्रकार ७६ नारियल के वृक्ष सर्वोदय के लिए दिये गये हैं। इन ७६ पेडो से हर दो माह बाद ४०० से ५०० के बीच नारियल मिलते हैं, अर्थात् साल में करीब २५०० नारियल। एक नारियल की कम से कम कीमत यहाँ २५ पैसे होती है, जिसका अर्थ होता है ६२५ रुपये प्रति साल। करीब ४०० रुपये इन वृक्षो के पत्ते आदि से मिलेंगे। अत साल में कुल एक हजार रुपयो का सामान मिलेगा। इसके अलावा चार एकड धान का खेत और ढाई एकड जमीन सर्वोदय आश्रम बनाने के लिए दी है। ये लोग इस गाँव को ग्रामदान के आधार पर विकसित करना चाहते हैं।

सर्वोदय का अर्थ

इन लोगो के लिए सर्वोदय का सीधा सा अर्थ यह है कि सबकी भलाई की दृष्टि मे किया गया काम सर्वोदय का काम है। और ग्रामदान का अर्थ है—सब मिलकर सोचें और मिलकर करें।

हम लोग गाँव घूमने गये तो देखने को मिला कि कई कुएँ ऐसे हैं जो खोदे गये, लेकिन पानी न मिलने के कारण मेहनत बेकार गयी। इसके लिए ये लोग बडे परेशान थे। मैंने उनको बताया कि यदि आप लोग और कुएँ खोदना चाहते हैं तो मैं बता सकता हूँ कि जमीन के अन्दर पानी का खजाना किस स्थान पर

मिलेगा। इस पर सब लोग बड़े खुश हुए। थोड़ी ही देर मे गाँव के पचासों स्त्री-पुरुष इकट्ठे हो गये। मैंने नीम की हरी लकड़ी लेकर हरेक के नारियल के बगीचे में जाकर पानी का खजाना बताया। वे सब बहुत खुश थे।

सर्वोदय के लिए दिये गये नारियल के वृक्ष तथा जमीन एक प्रकार से इन लोगो के लिए 'ग्रामकोष' का काम करते हैं। अभी तो स्कूल के प्रधान अध्यापक ही सारा सयोजन करते हैं, लेकिन धीरे धीरे वे गाँव के कुछ जवानो को तैयार कर रहे हैं। रोज एक घण्टे के लिए गाँव के स्त्री-पुरुष स्कूल के हाल मे इकट्ठे होते हैं, यहाँ लोकशिक्षण की दृष्टि से विभिन्न विषयो की चर्चा होती है। एक प्रकार से स्कूल ग्राम विकास का केन्द्र बना हुआ है।

हमलोगो के साथ कई विषयों पर चर्चा हुई। मल-मूत्र का उपयोग, गोबर गैस तथा वनस्पति से 'कम्पोस्ट' बनाने की बातें इनके लिए बिलकुल नयी थीं। ग्रामीणो ने बडी दिलचस्पी से चर्चा में भाग लिया।

अन्त मे 'भापु बो वन' की गूँज के साथ हम लोगों ने ग्रामीणों से विदा ली।●

वल्लभ विद्यालय, बोचासन : कार्य-परिचय

शिवाभाई गो० पटेल

बोचासन गुजरात प्रदेश में खेडा जिले का एक मध्यम कोटि का गाँव है। खेडा जिले मे बारैया पाटनवाडिया जाति की आबादी करीब आठ नौ लाख याने जिले की आबादी की ४५ प्रतिशत है। यह जाति स्वराज्य-प्राप्ति के पहले अपराधी-जाति मानी जाती थी और उपस्थिति की हर रोज गिनती होती थी। स्वतत्रता पाने के बाद वह कानून रद्द किया गया।

यह जाति सामाजिक दर्जा के अनुसार पिछडी हुई जाति नही गिनी जाती। लेकिन शिक्षा और आर्थिक दृष्टि से यह हरिजनो से भी ज्यादा पिछडी हुई है। किसी भी गाँव में खेत मजदूर के लिए बारैया पाटनवाडिया से ज्यादा लोग हरिजन को पसद करेंगे, क्योंकि हरिजन मेहनती (परिश्रमी) वर्ग है। इसीलिए हरिजन सुखी भी हैं और उनके बालक बड़ी सख्या में पाठशाला में जाते हैं।

इस परिस्थिति का खयाल करके गुजरात विद्यापीठ ने बारैया पाटन-वाडिया जाति को ध्यान में रखकर वल्लभ विद्यालय की स्थापना की। उनकी शिक्षा के लिए निम्नलिखित दृष्टिकोण सामने रखे गये :

(१) बच्चो मे शारीरिक कार्य करने की जो शक्ति है, वह कम न हो जाय, लेकिन उनकी बौद्धिक क्षमता बढे। इसके लिए पाठशाला के साथ छात्रालय को अनिवार्य माना गया है, क्योंकि सुबह से शाम तक की, अर्थात् सुबह मे बिस्तर छोडे तब से सोने तक की, सब प्रवृत्तियाँ समझदारी से हो तभी छात्रो के जीवन में परिवर्तन हो सकता है।

(२) बालकों के माध्यम से पालकों के पास पहुँचना और उनके कुटुम्ब के सस्कार में परिवर्तन लाने का प्रयास करना।

(३) छात्रों की सर्वांगीण शिक्षा की दृष्टि से छात्रालय-जीवन मे किसी

भी प्रकार का नौकर-वर्ग, रसोइया आदि नहीं रखना और छात्रालय-जीवन के रसोई, सफाई वगैरह कार्य शिक्षा के महत्वपूर्ण उपकरण समझकर उनका आयोजन और संचालन करना।

(४) कक्षा सात श्रेणी का अभ्यासक्रम समाप्त करने तक छात्रों में कपास से कपड़ा तैयार करने और खेत में अन्न और सब्जी पैदा करके पकाकर खा लेने की निपुणता उत्पन्न करना।

(५) छुआछूत के भेदभाव विद्यार्थियों के मानस पर से दूर हो जायें, इस हेतु से ब्राह्मण से भंगी तक की सभी जातियों के छात्रों को छात्रालय में एक-साथ रखना।

उपरोक्त दृष्टिकोण को खयाल में रखकर इस संस्था में पूर्व बुनियादी (बालवाड़ी) से लेकर प्राथमिक शिक्षकों के लिए बुनियादी अध्यापन मंदिर तक की शिक्षा की व्यवस्था का प्रबन्ध किया गया है। इसमें से कुमार-मंदिर और विनय मंदिर के कार्य का विवरण देते हुए कुछ महत्त्वपूर्ण बातें प्रस्तुत की गयी हैं।

इस संस्था में आज तक नयी तालीम की दृष्टि से जो प्रयोग हुए हैं, उसके लिए निम्नलिखित पुस्तकें गुजरात विद्यापीठ की ओर से प्रकाशित की गयी हैं :

१. जीवन द्वारा शिक्षा
२. बुनियादी शिक्षण का प्रयोग
३. समूह-जीवन और छात्रालय
४. कताई विद्या
५. बुनाई प्रवेश
६. गाँव की सफाई

बोचासन की बुनियादी शाला मुख्यतया आवासिक संस्था (रेजिडेंसियल स्कूल) है। यहाँ पाँच से सात कक्षा के तीन वर्ग हैं। करीब-करीब सभी विद्यार्थी शिक्षा और आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए गाँवों से आये हुए हैं। यहाँ मुख्य उद्योग वस्त्र विद्या, गौण उद्योग कृषि है।

सुबह और शाम, दो वक्त पाठशाला चलती है। बीस साल के अनुभव के आधार पर हमें यह समय शिक्षा की दृष्टि से उचित मालूम हुआ है। सुबह साढ़े तीन घंटा और शाम को चार घंटा, इस तरह कुल साढ़े सात घंटा पाठशाला का कार्य नित्य चलता है। उद्योग का वक्त हर रोज दो घंटे नियत है—सुबह की बैठक में एक घंटा और शाम की बैठक में एक घंटा। गौण उद्योग का वक्त दो घंटे में ही शामिल होता है।

पाठशाला में अलग-अलग छुट्टियाँ नहीं दी जाती हैं। महत्त्व के त्योहार में

विविध शैक्षणिक कार्यक्रम का आयोजन किया जाता है। इतवार के सिवाय पाठशाला का कामकाज हमेशा पूरा दिन चलता है।

पाठशाला का कामकाज वर्ष में २५२ दिन चलता है।

शाला की सामान्य समय-सारिणी

घंटा	मिनट
०	२५ प्रार्थना, सम्मेलन
०	३० सूत्र-यज्ञ
२	१० उद्योग
०	३० क्रीडा-व्यायाम
२	५५ पाठ्यक्रम के साक्षरी विषयों का अभ्यास
०	३० शिक्षक की देखरेख में स्वाध्याय
०	३० दो लघु विश्रांति

गुजरात राज्य सरकार द्वारा नियत किया हुआ बुनियादी शालाओं का पाठ्यक्रम पढाया जाता है। सभी विद्यार्थी सातवीं श्रेणी के आखिर में राज्य सरकार की ओर से ली जानेवाली *प्राथमिक शालान्त परीक्षा* में बैठते हैं।

बुनियादी शिक्षा की महत्त्व की चार नीव हैं—उद्योग, उद्योग द्वारा स्वावलम्बन, समूह जीवन और समाज सेवा के कार्य। इन सब प्रवृत्तियों के द्वारा छात्रों का सर्वांगीण विकास किया जाता है। इन बातों से सम्बन्धित पिछले दस साल का विवरण निम्नलिखित है

उद्योग-उत्पादन : जत्थे में

वर्ष	विद्यार्थी संख्या	कताई गुण्डी (मीटर नाप, १००० तार)	बुनाई चौ०मी०	कृषि सब्जी, फल किलो०	धान्य दलहन, तेलहन किलो०
'६१–'६२	९८	२,६४४	२२४	२,६१८	५१४
'६२–'६३	१०७	२,५१५	२५४	२,५१६	१००
'६३–'६४	११६	२,५०४	२११	१,७१५	१,०६८
'६४–'६५	१०७	२,०५०	१५०	८४०	५५१
'६५–'६६	१११	१,६७१	११२	११३	६१०

पाठशाला का स्वावलम्बन

वर्ष	पाठशाला का कुल खर्च	उद्योग की कुल आय	उद्योग द्वारा पाठशाला का स्वावलम्बन
'६१–६२	१,२७२	१ ४५५	१५ ७ प्रतिशत
'६२–६३	७ ७०१	१,७३८	२२ ५। "
६३–'६४	७,५४१	१,६४८	२२ १ "
'६४–'६५	६,६७०	१,४०७	१४ १ "
'६५–६६	८,१७६	१,२५४	१५ २ "

वस्त्र स्वावलम्बन और समाज के लिए उत्पादक-श्रम द्वारा कमाई

वर्ष	वस्त्र-स्वावलम्बन गुण्डी मीटर नाप	शाला-समाज के लिए	दान के लिए कमाई
'६१–'६२	४,१२१	२१४	—
'६२–६३	४,३७६	८५	३६
'६३–'६४	४,२७८	३५५	—
'६४–'६५	४,८८१	५०	—
'६५–६६	३,३६१	—	—

प्राथमिक शालान्त इम्तहान का परिणाम

औसतन ५ वर्ष का श्रेणी संख्या	औसतन ५ वर्ष का उत्तीर्ण हुए	परिणाम के ५ वर्ष का औसतन प्रतिशत
२६	२२	७६

हर छात्र प्रतिवर्ष के अन्त मे अपने वार्षिक कार्य का विवरण लिखता है। एक छात्र के तीन साल के अन्त मे लिखे गये विवरण में से कुछ हिस्सा नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।

वस्त्र विद्या

मैं तीन साल विद्यालय म रहा, और इस अवधि में निम्नलिखित कौशल प्राप्त किये

(१) कपास-सफाई का कौशल, (२) कपास ओटना, (३) धुनाई, (४) पूनी बनाना, (५) बटाई, सूत कातना, (६) सूत खोलना, (७) सूत दुबटना, (८) बिस्तर निवाड, (९) काजे बनाना, (१०) ताना डालना,

(११) ताना सफाई करना, (१२) कंघी भरना, सारणी, (१३) नेपकीन बुनना, (१४) खादी बुनना।

इन तीन वर्षों में मैंने निम्नलिखित उपकरण तैयार किये :

पतली माल, मोटी माल, पूनी का सीखचा, धुनकी, खडा परेता, शलाका, निवाड-राछ।

तीन वर्ष में निम्नलिखित कार्य किये :

८६ गुण्डी की कताई की, ३ मीटर निवाड बुनी, नेपकीन २२ सें०मी० × २२ सें०मी० नाप की बुनी और १० मीटर की खादी बुनी।

वस्त्र-स्वावलम्बन

तीन साल में मैंने अपने वस्त्र के लिए २१५ गुण्डी की कताई की। उसमें से ४३ मीटर खादी बुनवायी और गुण्डी देकर उसके एवज में ३ मीटर खादी चड्डी के लिए खादी-भण्डार से ली। मैंने २२ मीटर खादी अपने भाइयों के लिए भेजी।

कृषि

तीन साल में बैंगन, केले, बाजरा के खेत में तरह-तरह के काम किये।

रसोई-विद्या

तीन साल मे मैंने रसोई बनाने में निम्नलिखित कौशल प्राप्त किये :—

चावल, दाल, सब्जी, चपाती, भाखरी, पूडी, पकौडा, बूंदी, खीर, कढी, खिचडी और लड्डू आदि बनाना।

रसोई बनानेवाले की आचरण-विधि

(१) हाथ-पैर धोकर रसोई बनानी चाहिए।

(२) स्वच्छ कपडे पहनना चाहिए।

(३) आटा गूंधते या सब्जी काटते वक्त अपने पसीने की बूंद बर्तन के अन्दर नहीं गिरनी चाहिए।

(४) रसोई खुली नहीं रखनी चाहिए।

(५) बर्तन स्वच्छ करके इस्तेमाल करना चाहिए।

(६) रसोई कच्ची न रहे या न जले, इसका ध्यान रखना चाहिए।

(७) डोई से पानी लेकर पीना चाहिए।

इन तीन सालों में प्रति वर्ष मैं वनभोजन में शामिल था और मैंने रसोई पकाने का कार्य किया था।

सफाई विद्या

इन तीन सालों में मैंने निम्नलिखित अलग अलग स्थानों की सफाई की पेशाबखाना-सफाई, मैदान-सफाई, श्रेणीवार कमरा-सफाई, रसोईघर सफाई, वस्त्रोगृह-सफाई, दफ्तर सफाई, बुनाई शाला-सफाई, छोटे बडे बर्तन की सफाई।

सफाई कार्य में इस्तेमाल होनेवाले छोटी-बडी झाड़ू बनाने का काम सीखा।

मक्खी सब रोग का मूल है। मक्खी गन्दगी पर आकर बैठती है, वहाँ अपना घर बनाती है और गन्दगी में अण्डा रखती है। वह गन्दगी पर बैठकर हमारे भोजन पर आकर बैठती है। उसके साथ रोग के कीटाणु होते हैं। वह उन्हें भोजन पर छोड जाती है। इसलिए हम रोग के शिकार बनते हैं। इसलिए मैंने भोजन को हमेशा ढाँककर रखा, खाते समय मक्खी उडाता रहा, जिससे मक्खी भोजन पर न बैठ जाय।

इन वर्षों में निम्नलिखित उत्तरदायित्व के स्थानों पर काय किये - श्रेणी मंत्री (दो दफा), पुस्तकालय मंत्री (दो दफा), व्यायाम मंत्री (दो दफा) छात्रालय मंत्री, दस्ता-नायक (दो दफा)।

प्रवास

तीन साल में प्रवास करके निम्नलिखित स्थान देखे

घुवारण, वणाक बोरी बांध, डाकोर, ढुआ, गडतेश्वर, बडौदा, पावागढ़, पेटलाद मिल।

मैं तीन साल सर्वोदय मेले में गया था।

सुटेव की शिक्षा

मैंने तीन साल में निम्नलिखित सुटेवों का विकास किया

(१) सबके साथ मिल जुलकर रहना। (लेकिन कभी-कभी झगडा हुआ।)

(२) अपनी सब चीजों को सुव्यवस्थित रखना।

(३) शिष्ट आचरण करना।

(४) माता पिता और बडे व्यक्तियों को नम्रता से बुलाना।

(५) सुबह जल्दी से नियमित उठना और पाठशाला में नियमित हाजिर रहना।

(६) गालियों से बचने का प्रयत्न करना, लेकिन कभी कभी गाली निकल जाती है।

प्राथमिक शालान्त इम्तहान में ५९ प्रतिशत अंक प्राप्त करके उत्तीर्ण हुआ।

विनय मन्दिर (उत्तर बुनियादी विद्यालय)

सन् १६४८ मे कक्षा ५ से कक्षा ७ तक की बुनियादी शाला की स्थापना हुई। उस शाला में हुए कार्य का अहवाल ऊपर दिया गया है। बुनियादी शाला में काम करते हुए ऐसा अनुभव आया कि छात्र सिर्फ तीन वर्ष ही शाला और छात्रावास में रहता है। इसके दरमियान वह श्रमनिष्ठा, स्वावलम्बन, ईमानदारी, नियमितता, जिम्मेदारी, कर्तव्य-पालन, समाज-सेवा इत्यादि के संस्कार-बीज ग्रहण करता है, परन्तु उसके बाद आगे पढने या व्यावसायिक क्षेत्र में, विपरीत वातावरण के कारण वे संस्कार छूट जाते हैं, इसलिए सात वर्ष तक छात्र शाला और छात्रावास में रहे तो इन संस्कारो का दृढ सिंचन होता है और इस अवस्था मे विवेक-बुद्धि का उदय होने से ये संस्कार सुदृढ बनते हैं।

इस दृष्टि से आगे का कदम उठाना उचित और आवश्यक लगता था और इसलिए पुन सन् १६६१ मे उत्तर बुनियादी शाला का प्रारम्भ कक्षा ८ से हुआ। क्रमश: प्रतिवर्ष आगे एक-एक कक्षा का प्रारम्भ करते-करते सन् १६६४ मे शाला में कक्षा ११ तक की पढाई होने लगी।

इस विनय मन्दिर को स्थापित किये सिर्फ ८ साल हुए हैं। इन ८ वर्षों के दरमियान हमारा हेतु रहा है विद्यार्थियों का चरित्र-गठन। चरित्र-गठन के निम्न पहलू सिद्ध करने योग्य हैं और उत्तर बुनियादी शिक्षा द्वारा ये सिद्ध होने चाहिए :—

१. विद्यार्थी ऐसा हो जो उद्यमी हो, किफायतदार हो, विनयी हो, चौकस हो, स्वच्छ हो, सुघड़ हो, वस्त्र-स्वावलम्बी हो, समय का पालन करे, जिम्मेदारी से काम करे, समझदारी, शुभ-विचार और कुशलता के साथ काम करे। वह सहकार और मेल से रहे। उसकी स्वतंत्र विचार-शक्ति (विवेक-शक्ति) का विकास हो। समाज और व्यक्ति की मिल्कियत को नुकसान न करे। निर्व्यसनी रहे। नेक बने, वाणी, पठन और लेखन में शुद्ध भाषा का उपयोग करे। अभ्यासी बने, देश और दुनिया के प्रश्नो और प्रवाहों से सतर्क रहे।

इस दृष्टि से हम शाला की विविध प्रवृत्तियो का संक्षिप्त परिचय दे रहे हैं।

शालेय उद्योग

कृषि-गोपालन शाला का मुख्य उद्योग है। वस्त्र-स्वावलम्बन की दृष्टि से कताई-उद्योग गौण उद्योग है। शाला में हर रोज आधा घण्टा सफाई उद्योग और

डेढ़ घण्टा कृषि उद्योग के लिए नियत किया गया है। कक्षा ८ में छात्रो को कृषि शिक्षा के अतिरिक्त अम्बर चरखे पर कताई सिखायी जाती है।

कृषि उद्योग का आयोजन छात्रो के निम्न हेतुओ को ध्यान में रखकर किया गया है :

१ वे उद्योग के अभ्यासक्रम की मूलभूत प्रक्रियाएँ कुशलता के साथ करें।

२ कृषि-उद्योग के साधन पहचानें, उनय साधनो का उपयोग करें, उसकी संभाल रखें, सामान्य मरम्मत करें।

३ उद्योग की प्रक्रियाओ के लिए जरूरी माल-सामान और शक्ति का साधारण अन्दाज लगा सकें, उसकी गिनती या हिसाब कर सकें।

४. उनकी अवलोकन करने की सूझ का विकास हो।

५ वे उद्योग के नोघपत्रक रखें, उस पर से हिसाब तय कर सकें।

६. उद्योग के जरिये उनके कई गुण—जैसे कि नियमितता, चौकसी, गति, और सुघड़ता का विकास हो।

इन हेतुओं को सिद्ध करने के लिए अलग अलग श्रेणियो में कृषि के प्लाट बाँटे जाते हैं, और इन श्रेणियो में से सामान्यत आठ या दस छात्रो की टोली बनाकर टोलियो को कृषि के प्लाट सुपुर्द किये जाते हैं। इन टोलियो का कार्य विशिष्ट उद्देश्यपूर्ण बनाने के लिए उन्हें एक ही फसल के भिन्न-भिन्न प्रकार के बीजो के प्रयोग दिये जाते हैं, जिससे विद्यार्थी तुलना कर सकें और इसमे विशेष रस ले सकें। हर एक टोली अपने कार्य का आयोजन करती है और अपने-अपने प्लाट में जोत के अलावा सभी कार्य करती है। इस तरह के आयोजन से निम्न हेतु सिद्ध होते हैं

१ विद्यार्थी कार्य का आयोजन करते हैं।

२ कार्य व्यवस्थित ढग से और उत्तम उत्पादन पाने के हेतु को ध्यान में रखकर करते हैं।

३ इसके लिए वे समय पर और पूरे प्रमाण में खाद देते हैं। जन्तुनाशक दवाओ की जरूरत पडने पर वे उसका उपयोग भी करते हैं, समय पर पानी देते हैं।

४ इसके प्रसग मे उपस्थित होनेवाले प्रश्नो और उलझनो के समाधान के लिए वे कृषि शिक्षक और सन्दर्भ-साहित्य का सहारा लेते हैं।

५ इस प्रकार के आयोजन से विद्यार्थियों का अभिक्रम विकसित होता है। उनकी स्वतत्र बुद्धि शक्ति का विकास होता है और उनकी शक्तियो को योग्य दिशा मिलती है।

इसके अतिरिक्त कृषि-उद्योग के अभ्यासक्रम की निम्न पूरक प्रवृत्तियाँ चलायी जाती हैं :

१. कृषि के विभिन्न विषयों की पुस्तिकाएँ स्वाध्याय द्वारा तैयार करना, कक्षा ११ के विद्यार्थियों को तीन-तीन, चार चार के ग्रुप में बाँटते हैं और वे ग्रुप अपने अपने को सुपुर्द किये गये विषयों के लिए जरूरी पुस्तकें, सामयिकी आदि का अभ्यास करके करीब १०० पन्ने की हस्तलिखित पुस्तिका तैयार करते हैं। अन्तिम दो वर्ष में तैयार की गयी पुस्तिकाओं के विषय ये रहे

१. सेन्द्रिय खाद, २ असेन्द्रिय खाद, ३ पशुओं के रोग, ४ बागायती फसलें, ५. जमीन की पैमाइश, ६ कृषि के औजार, ७ फसल सरक्षण और ८. आवश्यक औजार।

२ बाकी की कक्षाओं का प्रत्येक विद्यार्थी अपने अनुभव पर आधारित व्यक्तिगत वार्षिक अहवाल तैयार करता है।

३. अभ्यास को पूरक और समृद्ध करने के लिए उसके अनुरूप प्रोजेक्ट हाथ में लिये जाते हैं। इस तरह अन्तिम दो वर्षों में निम्न प्रोजेक्ट हाथ में लिये गये।

(अ) खेडा जिले के खाद्यान्नों की खेती। (फसलें-गेहूँ, बाजरी और गन्ना)।

(आ) वनस्पति शास्त्र।

इसके लिए पुस्तकों का अभ्यास करना, चार्ट्स तैयार करना, सग्रह करना, विविध प्रयोग करना, नमूनों का सर्जन करना। ऐसे विविधलक्ष्यी शिक्षानुभव इस प्रोजेक्ट द्वारा विद्यार्थियों को हासिल होते हैं। इन सभी के परिणामस्वरूप कृषि सग्रहालय बन सका है, जिसमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है।

४ इन अनुभवों के लाभ लोगों तक पहुँचाने के लिए प्रतिवर्ष जिले के योजित सर्वोदय मेले में खेती-बारी का खास स्टाल तैयार करके अद्यतन रीतियों के प्रचार की योजना की जाती है।

५. कृषि प्रयोग पत्रिका—इस पाक्षिक में महत्व के तीन स्तम्भ हैं (१) प्रगतिशील किसान की अनुभव-वानी। (२) आप जानते हैं? कृषि विषयक रिपोर्ट। (३) हमारी कृषि शाला की कृषि विषयक वैज्ञानिक जानकारी। इस पत्रिका का सम्पादन विद्यार्थी कृषि शिक्षक के मार्गदर्शन में करते हैं।

कृषि उद्योग के कार्यों में कृषि शिक्षक के अतिरिक्त बाकी शिक्षक भी विद्यार्थियों के साथ रहकर काम करते हैं। सप्ताह में एक दिन (सामान्यत गुरुवार को) सुबह में ३ घण्टे कृषि का तीव्र कार्यक्रम रखा जाता है। इस अवसर पर विद्यार्थियों के साथ सभी शिक्षक काम करते हैं। बाकी दिनों में कृषि शिक्षक

के अलावा बाकी शिक्षक करीब आधा समय हाजिर रहते हैं और काम की व्यवस्था करते हैं। इस पद्धति का बड़ा असर होता है। शिक्षक अपने काम से विद्यार्थियों के सामने उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। शिक्षक मात्र निरीक्षक न रहकर मार्गदर्शक और सहकारी बनते है। इसके फलस्वरूप कृषि के काम व्यवस्थित और उत्साह से सम्पन्न होते हैं। इनके परिणामस्वरूप कृषि-उद्योग जीवंत और सदैव विकसित होता रहता है।

अन्तिम पाँच वर्षों का प्रगति-लेखा निम्नानुसार है :—

कृषि के द्वारा आय

वर्ष	विद्यार्थी संख्या	क्षेत्रफल एकड	आय रुपयो मे	प्रति विद्यार्थी आय रुपयो मे	काम के कुल घंटे	प्रति घंटे आय रुपयों में
१९६३–६४	७७	३–२५	१३२–०६	१–७२	९,७८४	०–१$\frac{३}{४}$
१९६४–६५	९५	५–४	१,०८९–१७	११–४६	१८,१११	०–६
१९६५–६६	८९	५–४	१,१०८–३१	१२–४५	२२,५३१	०–५
१९६६–६७	९२	५–४	१,९१६–१७	२०–८४	१७,२८५	०–१२
१९६७–६८	११९	७–८	४,०१३–६०	३३–१९	२४,५३३	०–१६$\frac{१}{२}$

शाला-स्वावलम्बन

उद्योग की मूल आय के द्वारा शालेय खर्च (उद्योगसहित के खर्च) का कितना प्रतिशत सिद्ध हुआ है, यह नीचे की तालिका से प्रकट होता है :

वर्ष	शाला का कुल खर्च रुपयो में	उद्योग की आय रुपयो मे	स्वावलम्बन प्रतिशत
१९६३–६४	१९,५४४	१,५८०	८
१९६४–६५	३४,२४५	३,०१२	९
१९६५–६६	२६,०६८	४,८६५	१८
१९६६–६७	३१,८२१	५,३१८	१६.७
१९६७–६८	३४,५०१	७,३३५	२१.२

प्रार्थना

शाला के कार्य के प्रारंभ में प्रार्थना आयोजित की जाती है। प्रार्थना के बाद वार्तालाप दिया जाता है। सोमवार के दिन नैतिक कथा चलायी जाती है या सुभाषित समझाये जाते हैं। मंगलवार को साप्ताहिक समाचार, उसकी भूमिका के साथ नक्शे में भौगोलिक स्थानों की ओर निर्देश करके समझाया

जाता है। बुधवार को वैज्ञानिक वार्तालाप का कार्यक्रम रहता है। गुरुवार के दिन सुबह मे कृषि का ३ घटो का सघन कार्यक्रम होता है। शुक्रवार के दिन ध्वजवदन विधि सिखायी जाती है। विद्यार्थियो मे से एक ध्वजरक्षक बनता है और एक ध्वज-प्रमुख बनता है। ध्वज प्रमुख खुद राष्ट्र के किसी प्रश्न के बारे में प्रासगिक प्रवचन देता है। शनिवार को समूह कवायत होती है।

सुबह की प्रार्थना के समय के सब वार्तालाप शिक्षको के द्वारा दिये जाते हैं। छात्रालय की शाम की प्रार्थना में विद्यार्थी सक्रिय बन सके ऐसा आयोजन किया गया है। प्रारम्भ मे ईशावास्य उपनिषद में से पसद किये गये श्लोको का गान, भजन तथा धुन गाते हैं। इसके बाद विद्यार्थियो की दैनिक प्रवृत्ति शुरू होती है। इसके लिए अलग अलग कक्षाओ के दिन बाँट दिये गये हैं। ज्यादातर विद्यार्थी समाचार-कथन मे भ ग लें, इसलिए एक विद्यार्थी एक ही समाचार मौखिक रीति से कहे ऐसा आयोजन किया जाता है। इसके अतिरिक्त वे प्रेरक प्रसग सुनाते हैं। इस दृष्टि से वे सामयिकों और पुस्तको का पठन करने के लिए प्रेरित होते हैं। इस प्रवृत्ति के द्वारा विद्यार्थियो की मौखिक अभिव्यक्ति अच्छी तरह से खिलती है और प्रार्थना सम्मेलन ज्यादा जीवत बनता है। इसके अतिरिक्त आचार्य की ओर से एक सद्ग्रंथ का पठन होता है। गत वर्ष में इस तरह की दो किताबों का पठन हुआ था

(१) देवदूत—जाज वाशिंगटन कार्वर की जीवन-कथा।

(२) सत सेवता सुकृत वाधे—श्री नारायण देसाई लिखित पुण्यश्लोक जपुजी के स्मरण।

इस तरह प्रार्थना-प्रवृत्ति के द्वारा विद्यार्थियो में सस्कारो का सिंचन हो और सुयोग्य अभिरुचि निर्माण हो—इस तरह का प्रयास किया है।

उत्सवों की मनौती

राष्ट्रीय तथा धार्मिक उत्सवों की मनौती सामान्यतः निम्नांकित रीति से करते हैं :

(१) सभा : इस सभा में विद्यार्थी तथा शिक्षक इस उत्सव के बारे में प्रासंगिक वार्तालाप देते हैं। बहुतेरे विद्यार्थियो को सभा में वक्तव्य देने का मौका मिले, इसलिए अलग अलग कक्षाओं को अलग अलग प्रसगों की सभाओं का संचालन सौंपा जाता है। विद्यार्थी इसके लिए इसके अनुरूप किताबों और मासिकों का पठन करके, अभ्यास करके अपने वक्तव्य सुनाते हैं। इसके साथ सभा-सचालन की भी उनको तालीम मिलती है।

(२) इसके अतिरिक्त उत्सवों के अनुरूप सस्कार कायक्रम, खेलकूद आनंद प्रमोद के कायक्रम कार्यान्वित होते हैं।

(३) इस तरह सामान्यत निम्नांकित उत्सव मनाते हैं राष्ट्रीय— स्वातंत्र्य दिन प्रजासत्ताक दिन (गणतंत्र) रेंटिया बारस, गाधी-जयंती गाधी सप्ताह शिक्षक दिवस, हिन्दी दिवस। जयंतियाँ, सवत्सरियाँ—लोकमान्य तिलक सवत्सरी विनोबा जयंती, सरदार सवत्सरी, स्व० लालबहादुर शास्त्री सवत्सरी, गाधी निर्वाण दिन, नेहरू जयंती। धार्मिक—रक्षाबंधन, बाताल। अन्य—विश्व शान्ति दिन, मानवहक दिन, सस्था स्थापन दिन, कक्षा ११ के विद्यार्थियों के विदाई-समारभ।

प्रोजेक्ट और प्रदर्शनी

वर्ष में हरेक सत्र में एक प्रदर्शनी का आयोजन करते हैं। यह प्रदर्शनी विद्यार्थियों के द्वारा किये प्रोजेक्ट की फलश्रुति के रूप मे तैयार हो ऐसा आयोजन करते हैं। दो वर्षों के दरम्यान किये गये प्रोजेक्ट ये रहे —

१ विज्ञान प्रकाश (प्रयोग चार्ट माडल)
२ वनस्पति शास्त्र—प्रयोग, चार्ट मॉडल सग्रह
३ गुजरात के साहित्यकार—जीवनी, कृतियाँ इनकी मुखाकृतियाँ (स्केच)
४ भारत के सोलह राज्य
५ भारत का चौथा सामान्य चुनाव और भारत का सविधान
६ खेडा जिले की खाद्य फसलों की सघन कृषि

प्रदर्शनी के वक्त विद्यार्थीगण दर्शकों को विषय वस्तु समझाते हैं प्रयोगों को समझाते हैं और दर्शकों के द्वारा पूछे गये प्रश्नों के प्रत्युत्तर देते हैं। इस तरह ये प्रोजेक्ट इनकी अभ्यास निष्ठा और विविध शक्तियों के प्रोत्साहक होते हैं।

समाज-सेवा मे निम्नांकित कायक्रमों का आयोजन किया जाता है

- गांधी-सप्ताह में इर्दगिर्द की बस्तियों में प्रार्थना सभा और सस्कार कार्यक्रम।
- ग्राम सफाई।
- श्रमकार्य—इर्दगिर्द के गाँवों में उपयोगी श्रमकार्य आयोजित होता है।
- रहेल गाँव की ओर का रास्ता लगभग २ फीट ऊँचा १२ फीट चौड़ा और ८७५ फीट लम्बा तैयार किया।
- ओधासन गाँव में बस स्टैण्ड के लिए मिट्टी डालकर गड्ढा भरने के श्रमकार्य में भाग लिया।

• कठोल गाँव से रास गाँव की ओर जानेवाले रास्ते को तैयार करने के श्रम-कार्य में भाग लिया गया।

• सर्वोदय मेला—प्रतिवर्ष बापू श्राद्ध दिन पर आयोजित जिले के सर्वोदय-मेले में विनय मदिर समाज-सेवा के अगरूप निम्नाकित प्रवृत्तियाँ करता है

१. प्रदर्शन—लोकोपयोगी प्रदर्शनी तैयार करना—जैसे, खेतीबारी के चार्ट, नमूने, संग्रह इत्यादि के जरिये किसान लोग कृषि की अद्यतन पद्धतियो से परिचित बनें। महात्मा गाधी का जीवन-दर्शन (चित्रावली), महात्मा गाँधी ने क्या सिखाया? भारत की प्रगति। २ ग्राम-सफाई। ३ श्रम-कार्य और ४. सत्कार-कार्यक्रम।

इस तरह सर्वोदय-मेले के दरमियान करीब चार दिन विद्यार्थी तीव्रता से ग्रामसेवा के कार्यक्रम मे लगते हैं।

श्रमकार्य

विद्यार्थियो में श्रमनिष्ठा की प्रेरणा पैदा करने के लिए, श्रम के प्रति आदर पैदा करने के लिए और उनका आत्मविश्वास बढ़ाने के लिए निम्नलिखित कार्यक्रम कार्यान्वित किये गये :—

१ कुमार और विनय मदिर के विद्यार्थी और शिक्षकों ने सन् १९६४-की वार्षिक परीक्षा के बाद पन्द्रह दिनों में १२० फीट लम्बा और २४ फीट चौडा उद्योग मदिर बाँधा। इस कार्य में सिर्फ राज और बढ़इयो की मदद ली गयी थी। शेष श्रमकार्य विद्यार्थी और शिक्षकों ने किया था। सारे काम का आयोजन शिक्षकगण ने अनुभवी लोगो की मदद से किया था।

२. कृषि-संग्रहालय के लिए कृषि-मदिर की चुनाई मे करीब एक-तिहाई श्रमकार्य विद्यार्थियों ने किया। उसकी नींव खोदी, नींव में से करीब २ फीट से ३ फीट तक की चुनाई की, पक्की छत भरी, इत्यादि।

३. खादी-कार्यालय के मकान की पक्की छत भरी।

४. विनय मदिर के सारे मकान की पक्की छतें विद्यार्थियो ने भरी। (करीब ६० ग्रास)

५. छात्रालय के नये मकान की नींवें खोदीं (६६ ग्रास)। उसकी पक्की छतें भरी। (४४ ग्रास)

६. शाला की कृषि की जमीन समतल की।

इस तरह विद्यार्थियो ने श्रमकार्य करते करते सस्था के प्रति अपनी भक्ति भी व्यक्त की।

अधिकाश विद्यार्थी छात्रावास में रहते हैं। इस साल विनय मदिर के कुल १३३ विद्यार्थियो मे से ११६ विद्यार्थी छात्रालय मे रहते हैं। छात्रावास की विशेषताएँ निम्नानुसार हैं —

१ विद्यार्थी सभी काम खुद करते हैं। अत कोई रसोइया नही है और न कोई सफाई कामदार है।

२ दिनचर्या ऐसी है जिससे विद्यार्थियो के समय का समुचित उपयोग हो सके और नियमितता का विकास हो सके।

३ विद्यार्थी मण्डल के द्वारा दैनिक प्रवृत्तियो का सचालन।

४ गृहपतियो की व्यक्तिगत निगरानी।

५ स्वतत्र समय मे जितना शक्य हो उतना विद्यार्थी गोशाला के खेत में स्वावलम्बी कमाई करते हैं। इस कमाई में से वे जरूरी स्टेशनरी, साबुन, इत्यादि वस्तुएँ खरीदते हैं।

माध्यमिक शालान्त परीक्षा और विनीत परीक्षा के परिणाम—

गुजरात एस० एस० सी० बोर्ड द्वारा सचालित माध्यमिक शालान्त परीक्षा और गुजरात विद्यापीठ द्वारा सचालित समकक्ष विनीत परीक्षा के परिणाम इस तरह रहे हैं —

वर्ष	माध्यमिक शालान्त परीक्षा का परिणाम (प्रतिशत में)	विनीत परीक्षा का परिणाम (प्रतिशत में)
१९६५	७३	१००
१९६६	८६	७५
१९६७	८६	१००
१९६८	९१	९१

पीड़ितों की सहायता

बिहार अकाल के समय कुमार और विनय मदिर के छात्रों ने ४ जून भोजन छोडकर उसमें से प्राप्त हुए २९८ ६५ रुपये बिहार दुष्काल निधि में अर्पण किये।

इस वर्ष दक्षिण गुजरात में आये हुए प्रचण्ड तूफान के शिकार बने हुए बांधवों के लिए विद्यार्थियो ने १४८ रुपये की पुष्पांजलि अर्पित की। •

कुमार-मन्दिर में गृहकार्य और श्रमायोजन

[कुमार-मन्दिर में प्रयोग और प्राप्ति की पिछली तीन किस्तें क्रमशः 'नयी तालीम' के गत जुलाई, अगस्त तथा सितम्बर के अंकों में प्रकाशित हो चुकी हैं। इस किस्त में गृह-कार्य और श्रमायोजन से सम्बन्धित कार्य-विवरण तथा कार्य प्रणाली का उल्लेख है।—सं०]

कुमार-मन्दिर के छात्रालय के संचालन एवं सुव्यवस्था के लिए स्वस्थ नागरिक-प्रशासन के तरीके पर अहिंसात्मक क्रियाशीलन के परिक्षेत्र में एक सेवक-मण्डल का गठन होता है। सेवक प्रमुख का चुनाव सर्वसम्मति से होता है। एक भी विरोध आने पर चुनाव पूरा नहीं हुआ माना जाता है, और उस विरोधी मतवाले बालक को समझाकर, उसे समाधान होने पर ही चुनाव की प्रक्रिया पूरी हुई मानी जाती है। सेवक-प्रमुख की सहायता के लिए विभागवार सेवक नामांकित होते हैं। इस नामांकन में भी छात्र-परिषद का मत सर्वोपरि और मान्य होता है। कुमार-मन्दिर के विभाग और उनके काम साधारणत. इस प्रकार रहते हैं .

विभाग	काम
१. गृह-विभाग	गृह-व्यवस्था, छात्रालय की देखरेख, अनुशासन, नियम आदि।
२. शिक्षा-विभाग	पुस्तकालय-वाचनालय की व्यवस्था, स्वाध्याय की देखरेख।
३. स्वास्थ्य विभाग	बीमारों की सेवा, आवश्यक औषधि और पथ्यादि की व्यवस्था, सफाई की देखरेख।
४. सांस्कृतिक कार्य-विभाग	सांस्कृतिक पर्व-त्योहारों के अवसर पर सजावट, झांकी, सभा, पारायण आदि की व्यवस्था। दोनों समय की प्रार्थना व भजन-धुन का प्रबन्ध।

विभाग	काम
५ श्रम विभाग	श्रम का आयोजन, समय निर्धारण, काम का बँटवारा, और श्रम का मूल्यांकन।
६ क्रीड़ा विभाग	क्रीड़ा के प्रकार तय करना वातावरण बनाना, नित्य टोलियों में बाँटकर खेल खेलाना, खेल में रुचि पैदा करना, आसपास की शालाओं से क्रीड़ा प्रतियोगिता का आयोजन करना और उसका लेखा रखना।
७ शाला विभाग	शाला के लिए आवश्यक उपकरणों की व्यवस्था करना, सफाई करना करवाना और कक्षाओं की व्यवस्था करना।
८ उद्योग विभाग	उद्योग के लिए स्थान, बिछावन, उपकरण की व्यवस्था, उद्योग का हिसाब किताब, लेन-देन, मूल्यांकन आदि। वार्षिक और सामयिक लक्ष्य निर्धारण में भी इनका योग रहता है।
९ पूर्ति विभाग	खाद्य सामग्रियों का संचय और वितरण, हिसाब रखना, साबुन-तेल आदि की व्यवस्था।
१० सूचना विभाग	खबरों का चयन और प्रसारण। घंटा बजाना।

टोली गठन का ढंग

गृहकार्य की दैनिक व्यवस्था के लिए टोलियों का गठन होता है। वर्तमान में ४ टोलियाँ कार्यरत हैं। टोलियों के गठन में बच्चों की इच्छा ही सर्वोपरि रहती है। प्रत्येक टोली में कितने सदस्य हों और किसमें कौन रहें, इसका निर्णय वे स्वयं करते हैं। हर बच्चे को अपनी इच्छा के अनुसार टोली में शामिल होने की छूट रहती है। हर टोली को महीने में एक सप्ताह हर प्रकार के काम करने होते हैं। टोलियों के नायक का चुनाव बच्चों की सहमति से श्री गृहपतिजी करते हैं। फिलहाल हर टोली में ७-७ बच्चे हैं।

कार्यों के बटवारे में कोई दिक्कत न हो कौनसी टोली कब क्या काम करे इसके लिए एक कार्यचक्र बनाया हुआ है। उसके अनुसार ही टोलियों का काम बदलता रहता है कोई व्यवधान नहीं आता। सप्ताह के समाप्त होने पर भोजन बनानेवाली टोली भीतरी सफाई का भीतरी सफाईवाली बाहरी सफाई का, बाहरी सफाईवाली टोली महासफाई का और महासफाईवाली टोली भोजन बनाने का काम सँभाल लेती है। ।क्रमशः

सफाई जो टोली भीतरी सफाई का काम करती है, उसके सफाई करने के स्थान निमत होते हैं। हर छात्र को अपने नियत स्थानो की ठीक-ठीक सफाई करनी होती है। फर्श, दीवार, खिडकियाँ, दरवाजे, छत और बाहरी दीवार की पूरी पूरी सफाई होती है। कही भी कोई मकडे का जाला, या कचरे का ढेर या धूल की पर्त पडी न रह जाय, इसकी सावधानीपूर्वक देखरेख की जाती है। कमरे में बिछे बिछावन को झटककर, ठीक से तह कर यथास्थान रखने का आग्रह रहता है। कमरे के हर कोने की सफाई हो, हर वस्तु अपनी ठीक जगह पर ही रहे, इसकी समझ बच्चे रखते हैं।

बाहरी सफाई में मकानो के आगे पीछे का भाग (मैदान), झण्डा-चौक, शौचालय मार्ग, सार्वजनिक सडक को जानेवाले माग (सयोजक मार्ग) आदि की सफाई होती है। मार्ग में झाडू लगते हैं, कचरा, कागज के टुकडे, बडे पत्थर, आदि एकत्रित कर यथास्थान पहुँचाये जाते हैं। अगर इन मार्गों पर से बिछी रेत हट जाती है, तो उसे पुन बिछा दी जाती है। उग आयी घासो को निकाल दिया जाता है।

महासफाई में शौचालय मूत्रालय की सफाई आती है। इसमें कार्यकर्तागण भी भाग लेते हैं। प्रतिदिन ३ कार्यकर्ता इस टोली के साथ काम करते हैं। शौचकक्षो की सफाई, कमरे के जाले आदि न रह पायें, मल प्रवाहिनी पूरी तरह साफ हो, उपयोग में आनेवाला जलागार भी निर्मल हो जाय, इसकी सावधानी बरती जाती है। मूत्रालयों में मूत्र रुक न जाय, इसके लिए ब्रशो का प्रयोग होता है।

सफाई का निरीक्षण करने के लिए सफाई के बाद स्वास्थ्य-सेवक बारीकी से देख जाते हैं कि काम कैसा हुआ, कही कोई त्रुटि तो नही रह गयी। यदि कहीं कोई त्रुटि दीखी तो सम्बंधित टोली-नायक को तत्काल सूचित किया जाता है, जिसे टोली नायक उसी समय सुधार लेता है।

व्यक्तिगत सफाई पर पूरा जोर दिया जाता है। तन साफ रहेगा तो मन भी साफ रहेगा। नाक कान, आँख, मुँह, दाँत, शरीर, वस्त्र—सबकी ठीक ठीक सफाई पर बल दिया जाता है। बाल सँवारे हुए हों, वस्त्र धुले हो, दाँत चमकीले हों, नाक साफ हो, आँखो में चमक हो, शरीर मे स्फूर्ति हो, इसकी फिकर गृहपतिजी रखते हैं।

जो बच्चा बीमार पडता है, उसकी सेवा और औषधि-पथ्यादि की समुचित व्यवस्था स्वास्थ्य विभाग सँभालता है। गृहपतिजी के मार्गदर्शन में विभाग सेवक

व्यवस्था करते हैं। बडी बीमारी होने पर दवाखाना ले जाना, वहाँ प्रवेश दिलाना अथवा बच्चे को घर छोड़ आना, यह समयानुसार स्थिति देखकर किया जाता है।

शुद्ध, निर्मल, छना हुआ पानी बच्चे को पीने को मिले, इसकी देखरेख गृहपतिजी रखते हैं। पानी के मटकों को प्रतिदिन पानी भरने से पूर्व अच्छी तरह धो लिया जाता है।

रसोई : प्रति रविवार को सप्ताह भर के उपयोग के लिए अनाजों की बिनाई-चुनाई बच्चे कर लेते हैं। आटा बाहर से पिसवाया जाता है। प्रसगानुसार बिनाई चुनाई की गति भी ली जाती है; प्रतियोगिता का आयोजन भी होता है। काम सुन्दर, सफाईपूर्वक होना ही चाहिए इसकी खास फिकर रखी जाती है।

प्रतिदिन हिसाब से खाद्य-सामग्री अन्न-भण्डार से निकाली जाती है। भोजन टोली पूरी सावधानी से बुद्धिपूर्वक अपना काम करती है। बच्चे विधि-पूर्वक रोटी, दाल, भाजी, चावल आदि पकाते हैं। रोटियाँ समान वजन की और समान गोलाई की अच्छी सिकी हुई बनें, इसका ध्यान बच्चे रखते हैं और क्षमतानुसार अच्छा काम करते हैं। शायद ही कभी कोई रोटी जल जाय या कच्ची रह जाय। एक आदिवासी बहन इस काम मे बच्चो की सहायता करती हैं। यह गृहमाता के पूरे उत्तरदायित्वो को तो नही निभा पाती, लेकिन भोजन बनाने में भरपूर सहयोग करती हैं।

खाने के लिए बच्चे पंक्ति में बैठते हैं। परोसने के बाद मंत्र बोलते हैं, फिर भोजन प्रारम्भ होता है। थाली में जूठन नही छोडते। वे भोजन-कक्ष में 'अन्न न निन्द्यात्, तद्व्रतम्' का दर्शन नित्य करते हैं। बर्तन माँजने के लिए एक रसोडी चौक बना है। वहाँ छनी हुई राख रखी रहती है, उसका उपयोग बच्चे करते हैं। जहाँ बच्चे अपने बर्तन धोते हैं वहाँ पानी से भरी तीन कुण्डियाँ रहती हैं, शुद्ध जल से बर्तनो को धोकर, साफ कपडे से पोछकर, रैक पर जमा कर रखते हैं। खाने के स्थान और रसोडे की सुन्दर सफाई की व्यवस्था रहती है। सारा काम ठीक ढग से, नियत समय के अन्दर पूरी जिम्मेदारी के साथ किया जाता है। पर्व त्योहारों पर भोजन की विशेष व्यवस्था होती है। सफाई की भी विशेष व्यवस्था की जाती है।

अपराध-निरोध के लिए भरसक प्रयत्न किया जाता है। अपराध करनेवाले बच्चे को छात्र-परिषद् के सामने अपना अपना अपराध स्वीकारना पडता है और आगे वैसा न करने की यह प्रतिज्ञा करता है। अगर एक ही बच्चा बार-

बार अपराध करता है, तो छात्र-परिषद् उस पर विचार करती है और सजा के रूप में कुछ अधिक जिम्मेदारियाँ या अन्य कठिन श्रमकार्य देती है, जिसे नियत समय में करके बनाना होता है। उसके प्रति सदैव सहानुभूति का भाव रखा जाता है।

श्रमायोजन की दिशा

श्रम कार्य को गति देने के लिए और दिशा निर्देश के लिए एक साथी कार्यकर्ता बच्चों के साथ रहते हैं। उनकी निगरानी में श्रम विभाग के सेवक बच्चे महीनेभर में होनेवाले श्रमकार्यों की योजना बनाते हैं और उस पर अमल करते हैं। सेवक बच्चे मूल्यांकन करते हैं कि कितने लोगों ने काम किया, कितने समय तक काम किया, किस दर से काम हुआ, निष्पत्ति-स्वरूप कितनी राशि का काम हुआ और किये जानेवाले काम में से कितना हुआ और कितना शेष रहा।

आयोजन में यह ध्यान रखा जाता है कि ऐसा काम हाथ में लिया जाय जो सार्वजनिक हित से सम्बन्धित हो—जैसे पगडण्डी बनाना, फर्श भरना, कुएँ के पास की सफाई, गाँव के शौचालय, मूत्रालय का निर्माण, मार्गों की सफाई, खेतों के आसपास की और सड़कों के आसपास की अनुपयोगी घासों की सफाई, भवन निर्माण में भाग लेना, अवान्तर मार्गों का निर्माण, दैनिक सफाई में बचे रह जानेवाले काम को पूरा करना आदि कामों को प्राथमिकता के आधार पर निपटाया जाता है। जो जरूरी होता है, उसे प्राथमिकता देकर क्रमानुसार निपटाते हैं। आश्रम की सीमा में, मैदान में, घरों के आसपास, सीढ़ियों के पास पानी रुककर कीचड़ न जम जाय, इसलिए उन जगहों पर रेत बिछायी जाती है। इससे बरसात में तकलीफ नहीं होती। बागबानी के काम भी इसीके अन्तर्गत होते हैं। क्यारियों के निर्माण, उनकी पालें बाँधना, पत्थर जमाना, मिट्टी तैयार करना, फूल पौधे लगाना, उसकी निदाई-गुड़ाई करना, सींचना, सारे सार-सम्हाल के काम बच्चे श्रमायोजन के अन्तर्गत करते हैं।

गृहकार्य और श्रमायोजन से बच्चों में कार्य निपुणता आये, बौद्धिक और शारीरिक विकास साथ साथ हो, प्रकृति के साथ एकात्म बोध हो, हर आदमी अपना काम अपने से करे, इसमें सहज स्वावलम्बन सिद्ध हो, सफाई, स्वास्थ्य और कला की दृष्टि से बच्चों का सम्यक् विकास हो, इसी उद्देश्य से पूरी निगरानी और प्रेमपूर्ण वातावरण में ये काम सम्पन्न किये जाते हैं।

—काली प्रसाद 'आलोक'

पोषण और स्वास्थ्य

निर्मला देशपांडे

भगवद्गीता में सात्विक, राजस, तामस आहार का विश्लेषण कर साधना के लिए आहार-शुद्धि की अनिवार्यता बताया गयी है। भारतीय जीवन-दर्शन के इस पहलू पर आधुनिक विज्ञान की कई खोजें अधिक रोशनी डाल रही हैं। व्यक्ति के शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य का और समाज-स्वास्थ्य, समाज की शांति का सीधा सम्बन्ध उस भोजन के साथ है, जो हम बिना सोचे-समझे प्रतिदिन करते रहते हैं। इस विषय के जिज्ञासुओं मे इंग्लैंड के स्व० सर राबर्ट मेक्करिसन का विशेष स्थान माना जाता है, जिन्होंने भारत की जनता के अलग-अलग भोजन-प्रकारों का गहराई से अध्ययन कर कुछ बुनियादी सिद्धान्तों की ओर दुनिया का ध्यान आकर्षित किया है। अनुभव तथा प्रयोगों पर आधारित उनके ज्ञान का 'पोषण और स्वास्थ्य' (न्यूट्रिशन एण्ड हेल्थ) पुस्तक के द्वारा हर कोई लाभ उठा सकता है।

संयुक्त राष्ट्रसंघ की ओर से आयोजित खाद्य और खेती के सम्मेलन की सन् १९३४ की रिपोर्ट में कहा गया है कि बीमारियाँ, रुग्ण शरीर, क्षमता की कमी, रोग प्रतिकार की शक्ति की कमी आदि का सबसे बड़ा कारण है—उचित पोषण का अभाव। सरकार और समाज उचित पोषण की ओर ध्यान दे तो स्वस्थ, उत्साही, सक्षम, दीर्घायु और शरीर-मनोबलसम्पन्न मानवों के समाज का निर्माण हो सकता है। इस विचार को प्रस्तुत करते हुए लेखक कहते हैं कि सुयोग्य पोषण पाओ और स्वस्थ बनो। अच्छे जीवनमान (स्टैण्डर्ड ऑफ लिविंग) के लिए यह अत्यधिक आवश्यक है कि हर व्यक्ति को समुचित पोषण मिले।

खाद्य, पोषण और स्वास्थ्य, विशिष्ट खाद्य वस्तुओं का शरीर की रचना और कार्य-पद्धति में स्थान, राष्ट्र का स्वास्थ्य और पोषण, खाद्य-गुणों के अभाव के कारण होनेवाली बीमारियाँ, अनुचित खाद्य के कारण होनेवाली बीमारियाँ तथा पोषण और स्वास्थ्य के बारे में आधुनिकतम प्रयोग, इन छः प्रकरणों के द्वारा यह छोटी पुस्तक एक कीमती विचार देती है। प्रयोगशीलता की महिमा को बताते हुए लेखक अनाग्रही वृत्ति रखते हैं और मानते हैं कि नये-नये प्रयोग होते जायेंगे और ज्ञान के पटल खुलते जायेंगे।

शरीर की रचना, पोषण से होनेवाली क्रियाएँ आदि जानने के लिए कुछ प्रारम्भिक जानकारी की आवश्यकता है। हर जीवन की तरह मानव का शरीर भी अनगिनत 'सेल्स' (कोषों) का बना हुआ है, हर 'सेल' एक भौतिकी तथा रासायनिक प्रयोगशाला ही है। जब वह अपना काम ठीक से नहीं कर पाता, तब फिर बीमारियाँ पैदा होती हैं। मानव जैसा खाता है, वैसा बनता है। हवा, पानी, जमीन, सूरज की रोशनी आदि की सहायता से निर्जीव वस्तुओं का सजीव वस्तुओं में परिवर्तन कर, वनस्पति मानव के लिए खाद्य पैदा करती है। यह सत्य है कि मानव मिट्टी का बना है। और उसका पोषण भी मिट्टी में से पैदा की हुई चीजें करती हैं। इस तरह धरती तथा समस्त जीवन-सृष्टि के साथ मानव का अत्यन्त निकट का सम्पर्क है। सेल्स का पोषण, परम्परानुबन्ध, उनके कार्यों का संचालन और शक्ति निर्माण, इनके लिए जो ग्रहण किया जाता है वह खाद्य कहलाता है। जिनके द्वारा ये सब कार्य किये जाते हैं, वे हैं—प्राणवायु (प्राण-वायु), पानी, प्रोटीन्स (दाल जाति के पदार्थ), फैट्स (चिकनाईवाले पदार्थ), कार्बोहाइड्रेट्स (शक्करवाले पदार्थ) तथा विटामिन्स (सजीवन-तत्त्व) आदि उनतीस चीजें। इनमें दस हैं एमिनोएसिड्स, जो प्रोटीन्स से प्राप्त होते हैं, ग्यारह कैल्शियम सोडियम जैसे निर्जीव द्रव्य हैं। एक है कार्बोहाइड्रेट्स के द्वारा प्राप्त होनेवाला ग्लूकोज, एक है फैट्स से प्राप्त होनेवाला लिनोलिक एसिड और छ विटामिन्स हैं। किसी भी एक खाद्य-पदार्थ में सब चीजें नहीं होती हैं, इसलिए विविध पदार्थों का सन्तुलन, समुचित मात्रा तथा इन सब चीजों का समुचित परस्पर-अनुबन्ध शरीर धारण के लिए आवश्यक है। इनके साथ खून के निर्माण के द्रव तथा रफेज (फुजला) की भी आवश्यकता होती है। अलावा इनके हरी सब्जियों में हरेपन में कुछ ऐसे विशेष गुण रहते हैं, जो किसी भी 'सिंथेटिक फूड' (कृत्रिम आहार) से प्राप्त नहीं हो सकते हैं। इसलिए ताजी हरी चीजों का आहार मे विशेष स्थान है। हरी सब्जियों के गुण भी सब्जी पैदा करने की पद्धति, जमीन की स्थिति, खाद, पानी आदि चीजों पर निर्भर हैं। लेखक मानते हैं कि भारत में प्राकृतिक खाद के द्वारा पैदा किये हुए अन्न मे कुछ विशेष गुण होते हैं; जो पश्चिमी देशों मे कृत्रिम खाद के द्वारा पैदा किये हुए अन्न मे नहीं होते हैं। इस तरह खेती की पद्धति पर खाद्य के गुण निर्भर रहते हैं। अगर हम धरती से अच्छी चीजें चाहते हैं तो हमें धरती की समुचित सेवा करनी होगी। कृत्रिम खाद आदि के द्वारा धरती की शक्ति कम होते ही एक ऐसा चक्र शुरू हो जाता है, जिसमें कम शक्तिवाली घास, अशक्त पशु, कम गुणवाला खाद्य और अन्त में अस्वस्थ, रुग्ण मानव बनता जाता है।

जिस धरती में हमे तथा समस्त जीवन सृष्टि को पोषण मिलता है, उस धरती को खाद रूप मे मल, मूत्र, पत्तियाँ आदि सब निरन्तर वापस मिलता रहेगा, तभी स्वस्थ जीवन का निर्माण होगा।

मानव शरीर की कार्य-रचना में अगणित क्रियाओं का परस्पर अनुबन्ध है, जिनके मूल मे वह खाद्य है जो हम खाते हैं। अनुचित पोषण के कारण मानो खुली हवा, सूर्य प्रकाश, व्यायाम, आराम, नींद की कमी, अतिश्रम और थकान, चिन्ता, मानसिक तनाव वैलरिज की कमी, नशीली वस्तुओं का अतिसेवन, अनुचित खाद्य आदि के कारण मानव शरीर स्वस्थ नही रह पाता है। लेकिन इन सबमें अनुचित खाद्य का सबसे अधिक असर होता है। बन्दर तथा चूहों को अलग-अलग प्रकार का पोषण देकर कई प्रयोग किये गये है, जिनसे यह साबित हुआ है कि किसी खास बीमारी का प्रधान कारण है किसी विशिष्ट पोषक-गुणों का खाद्यों में अभाव। भारत के विभिन्न प्रान्तों के आहार चूहों को देकर लेखक ने यह पाया है कि उन उन प्रान्तों मे होनेवाली बीमारियाँ उसी प्रकार का आहार पानेवाले चूहों को भी होती हैं। और उस आहार की कमी को दूर करनेवाली चीजें आहार के साथ जोड़ी जाती हैं तो चूहे भी स्वस्थ हो जाते हैं। पंजाब, बंगाल उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, मद्रास आदि प्रान्तों के आहारों को लेकर प्रयोग करने पर लेखक ने देखा कि वंश (रेस), आबोहवा आदि के कारण नहीं, बल्कि भोजन के कारण मद्रासी की अपेक्षा पंजाबी अधिक ताकतवर और स्वस्थ होता है। रोटी खानेवाले क्षेत्र से आया हुआ गेहूँ पीसकर रोटी खाते हैं। लेकिन दुर्भाग्य से चावल खानेवाले पालिश्ड (साफ किया हुआ) चावल खाते हैं। और चावल बनाने का तरीका भी ऐसा होता है कि उसके कई पोषक द्रव्य खत्म हो जाते हैं। इसलिए रोटी खानेवालों के शरीर अपेक्षाकृत अधिक स्वस्थ पाये जाते है। रोटी दाल दूध दही, तथा हरी सब्जी और थोड़े से फल खानेवाला पंजाब तथा सरहद सूबे का व्यक्ति स्वाभाविक ही अधिक स्वस्थ और तगड़ा बनता है, क्योंकि उसके पोषण में वे सारी चीजें होती हैं जिनकी शरीर के लिए आवश्यकता है। चोकर निकाला हुआ आटा तथा सफेद चीनी से बहुत नुकसान होता है।

लेखक ने एक और प्रयोग किया। समान किस्म के चूहों के दो दलों को समान परिस्थितियों मे रखा। लेकिन एक दल को पंजाब की खुराक दी और दूसरे को इंग्लैंड के गरीबों की खुराक दी, जिसमें सफेद ब्रेड, थोड़ा दूध व अधिक शक्करवाली चाय, उबले आलू गोभी, डिब्बों मे बन्द गोश्त (टिण्ड मीट) और

जेम दिया। नतीजा यह हुआ कि रोटी, दाल, सब्जी, दूध लेनेवाले चूहे स्वस्थ बने तथा शांति और सहयोग से रहने लगे और इग्लैंड के गरीब वर्ग का खाना खानेवाले चूहे कमजोर, बीमार बने और एक दूसरे को काटने लगे। अन्त में उनमें से कुछ अधिक बलवान चूहों ने कमजोर चूहों को खा डाला और बचे हुए बीमार पडने लगे, जिनमें पेट की तथा फेफडो की बीमारियाँ आदि विशेष पायी गयी, जो पजाबी खाना खानेवाले चूहो मे नही पायी गयी। फिर उन्हीं चूहो को मद्रास का खाना दिया गया तो वे वैसे ही रहे। तथ्य भी यही है कि मद्रास तथा इग्लैंड के गरीब वर्ग में वे ही बीमारियाँ पायी जाती हैं, जो चूहो मे पायी गयीं।

पेप्टिक अल्सर (पेट के व्रण) का कारण ढूँढ़ने के लिए लेखक ने जो प्रयोग किये, उनमें समान किस्म के स्वस्थ चूहो के तीन दलो को तीन किस्म का भोजन दिया। पजाब का भोजन लेनेवाले चूहो को अल्सर नही हुआ, मद्रास का पालिश्ड चावल खानेवालो में ग्यारह प्रतिशत और प्रचुर मात्रा मे टेपिओका (पहाडी आलू) खानेवालो त्रावनकोर के लोगो का भोजन लेनेवाले चूहो में उनतीस प्रतिशत अल्सर पाया गया। पजाब के भोजन से दही, दूध, हरी सब्जी को कम करके चूहो को खिलाया जाये तो स्टोन (पथरी) जैसी बीमारी होती है। इसी तरह अन्य बीमारियो का कारण भी असन्तुलित आहार में ढूँढ़ा जा सकता है और सक्रामक बीमारियो का हमला भी असन्तुलित आहार लेनेवालो पर ही होता है।

हवा (आक्सीजन) तथा पानी को भी भोजन का हिस्सा मानना चाहिए, जिनका शरीर धारणा मे प्रथम स्थान है और जिनकी कमी के कारण फेफडे की, पेट की बीमारी जैसी कई बीमारियाँ होती हैं। पोषण मे दूसरा स्थान है प्रोटीन्स का। शरीर के एक एक किलोग्राम वजन के लिए एक ग्राम प्रोटीन आवश्यक होता है। लेकिन इससे अधिक मात्रा मे लेने पर नुकसानदेह साबित होता है। लेखक मानते हैं कि यह खयाल गलत है कि गोश्त के द्वारा प्राप्त होनेवाला प्रोटीन अधिक अच्छा होता है। लेखक की राय में दूध तथा दूध से बननेवाली चीजो के द्वारा प्राप्त होनेवाला प्रोटीन अधिक अच्छा है। आर्थिक दृष्टि से भी गोश्त का आहार फायदेमन्द नहीं माना जायेगा। प्रोटीन्स की कमी के कारण शरीर की शक्ति घटती है और पेट की बीमारियाँ आदि कई बीमारियाँ होती है। मिनरल साल्ट्स (खनिज क्षार) को शाकाहारियो को अधिक आवश्यकता रहती है। केलशियम (चूना) फास्फोरस, आयर्न (लोहा)

तथा आयोडीन की कमी के कारण कमजोर हड्डियाँ और यौन शक्तिक्षय, एनिमिया (रक्त की कमी), ग्वाइटर (कठमाला) जैसी बीमारियाँ होती हैं। विटामिन्स की कमी के कारण शरीर की रोग प्रतिकार शक्ति घटती है और कई बीमारियाँ होती है। गर्भिणी स्त्रियों तथा बच्चों को विटामिन्स की सर्वाधिक आवश्यकता है।

असन्तुलित आहार और गन्दगी रोग निर्माण के प्रधान कारण हैं। लेखक मानते हैं कि डाक्टरों को इस ओर विशेष ध्यान देकर रोग प्रतिबन्धक कार्य करना चाहिए। दो हजार साल के पूर्व हिपोक्रेट्स ने कहा था कि डाक्टर को चाहिए कि वह जनता के खाद्य, पेय की आदतों का अध्ययन करें और उसका उनके स्वास्थ्य पर क्या असर होता है यह जानें। जो यह नहीं जानता है, वह उसके परिणामों को, बीमारियों को क्या जानेगा ?

पोषक आहार, खुली हवा, सूर्य प्रकाश आदि के कारण भारत के हिमालय के जंगलों और पहाड़ों में रहनेवाले, प्राकृतिक ढंग से पैदा किया हुआ अनाज खानेवाले हुँजा जैसी जमातों का स्वास्थ्य बहुत अच्छा है। विकसित देशों के बड़े शहरों के निवासियों में पायी जानेवाली बीमारियाँ उनमें नहीं हैं। इग्लैण्ड में स्वास्थ्य की चर्चा करते हुए लेखक कहते हैं कि वहाँ के भोजन में भी प्रोटीन्स, कैल्शियम, आयर्न, विटामिन 'ए' तथा 'डी' की कमी है। कोनुर की प्रयोग शाला में लेखक के साथी ने पाया कि तीन दिन के बाद हरी सब्जी का अधिकतर विटामिन 'सी नष्ट हो जाता है। इसलिए ताजी सब्जी खानी चाहिए। इग्लैण्ड को यह नसीब नहीं होता है, और न उन्हें विटामिन 'डी' देनेवाला प्रचुर सूर्य प्रकाश उपलब्ध होता है।

लेखक मानते हैं कि सन्तुलित आहार के द्वारा बीमारियों को रोकने के काम को प्रधानता देनी चाहिए, जिसके लिए आर्थिक स्थिति सुदृढ़ बनाना, शिक्षा के द्वारा स्वास्थ्य और पोषण के ज्ञान का प्रसार करना आवश्यक है। जनता को यह बताना चाहिए कि क्या खाया जाय, कैसे और कितना खाया जाय। गृह-वाटिका योजना का विकास करना चाहिए, ताकि हर परिवार अपने लिए साग-सब्जी पैदा कर सके, पशुपालन कर ताजा दूध प्राप्त कर सके। इसमें कोई सन्देह नहीं कि स्वस्थ देश वह होगा, जहाँ हर व्यक्ति का जमीन से सम्पर्क होगा और हर व्यक्ति ममाता की सेवा करेगा।

पुस्तक का अन्तिम अध्याय सिक्नेयर द्वारा पचीस साल के बाद लिखा गया है, जो कहते हैं ' गत पचीस साल के प्रयोगों के परिणामस्वरूप सर रावर्ट

मेक्करिसन के इस कथन की पुष्टि हुई है कि स्वास्थ्य के लिए सबसे अधिक आवश्यक है संतुलित आहार। जानवरों पर किये गये प्रयोगो के तथ्यों को मानव पर लागू करते समय सर राबर्ट ने आवश्यक सावधानी बरती है। उनके बाद हुई नयी खोजो में से एक खोज यह है कि हमारे शरीर के अन्दर आँतो में बैक्टिरिया (जीवाणु) के द्वारा विटामिन्स का समन्वय कुशलता से किया जाता है। पेनिसिलिन जैसी एंटी बायोटिक दवाएँ खाने से आँतें अक्षम बन सकती हैं और वह प्राकृतिक समन्वय-कार्य बन्द हो सकता है। दूसरी खोज है, एंटी-विटामिन्स के अस्तित्व की जानकारी की।

अमरीका जैसे विकसित देशो की समस्या है अति आहार की। वहाँ पर खाद्य वस्तुओ का अपव्यय तथा नाश होता रहता है। जहाँ दुनिया की दो-तिहाई जन सख्या समुचित आहार के अभाव से पीड़ित है, वहाँ अमरीका जैसे देशो की एक-तिहाई जन-सख्या गलत आहार से पीडित है और वहाँ पर कैन्सर, दिल की बीमारी आदि बढ़ रही है। इन देशो के आहार में उपयोगी फैट्स के बजाय नुकसानदेह फैट्स का मात्रा अधिक रहती है, जो प्राणीजन्य तथा डिब्बो मे बन्द फैट्स के रूप में रसोईघर मे प्रवेश करती है। धरती को दिये जानेवाले कृत्रिम रासायनिक खाद डी० डी० टी० जैसे कीटाणुनाशक आदि के वनस्पतियो पर और उनके द्वारा मानव शरीर पर होनेवाले परिणामो की भयकरता को अभी तक हमने समझा नही है। जिन जानवरो का गोश्त खाया जाता है, उन्हे दिये जानेवाले सेक्स हारमोन्स, एंटी बायोटिक्स तथा ट्रैंक्विलाइजर्स (शामक दवाइयाँ) के हमारे खाद्य पर होनेवाले परिणामो को भी हमने ठीक से जाना नही। लेकिन यह प्रसन्नता की बात है कि खोज प्रारम्भ हो गयी है और अधिक प्रसन्नता की बात यह है कि पोषण और स्वास्थ्य की समस्या पर अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर विचार तथा आचार प्रारंभ हो गया है।

('न्यूट्रिशन एण्ड हेल्थ''—सर राबर्ट मेक्करिसन, फेबर एण्ड फेबर लिमिटेड, २४ रसेल स्क्वेअर, लन्दन।)०

ज्ञान प्राप्ति से पहले इन्द्रिय शिक्षण अधिक महत्त्व का है। बच्चो को उठना, बैठना, खाना, सोना, चलना आदि का भी शिक्षण देना चाहिए।

बच्चो को ऐसी पद्धति से शिक्षण देना चाहिए, जिससे उनमें, स्वयं ज्ञान प्राप्त करने की क्षमता पैदा हो सके।

('शिक्षण विचार' से) — विनोबा

शिक्षक और शिक्षणालय

मदनमोहन पाण्डेय

[अनेक शिक्षक-बन्धु शिक्षक और शिक्षणालय की वर्तमान परिस्थिति से क्षुब्ध और दुःखी हैं। विनोबाजी द्वारा 'आचार्यकुल' की उद्भावना इस परिस्थिति के निराकरण के लिए ही हुई है। वस्तुतः 'आचार्यकुल' की प्राण प्रतिष्ठा होने पर शिक्षकों को वह सम्मान और गरिमा प्राप्त होती है, जिसके वे अधिकारी हैं।—सं०]

शिक्षक का दायित्व बहुत बड़ा होता है। वह निर्माता है, स्रष्टा है। ज्ञान-विज्ञान की नयी परम्पराओं का सृजन करना उसके जीवन का अत्यन्त महत्व-पूर्ण कार्य है। वह एक महान् शिल्पी है, जो मृण्मय मूर्तियों में नया प्रकाश, नयी चेतना उत्पन्न करता है। वह बालक के अविकसित मन को एक नये सांचे में ढालकर उसे एक नया रूप प्रदान करता है। वह समाज का नियामक भले ही न हो, निर्माता तो है ही। सचमुच ही वह राष्ट्र के जीवन का सबसे महान संरक्षक है। वह गुरु है, अस्तु गरिमा से युक्त है। आज शिक्षक उपेक्षित है। हमारे वर्तमान सामाजिक ढाँचे में शिक्षक का स्थान निम्नतम है। वह शासकों के द्वारा ठुकराया जाता है। वह राजनीतिज्ञों के हाथ की कठपुतली है। उसे न तो आर्थिक सुविधाएँ ही प्राप्त हैं, न वह सम्मान, जिससे वह राष्ट्र को ऊँचा उठा सके।

शिक्षक को हर प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त होनी चाहिए, तभी वह सच्चे अर्थ में ज्ञान की उपासना कर सकता है और विश्व को अपनी प्रतिभा का अमूल्य वरदान दे सकता है। जिस देश में शिक्षकों का अपमान होता है वह देश कभी भी उन्नति नहीं करता है। भारत जैसे देश में जहाँ कभी शिक्षक का

स्थान अत्यन्त ऊँचा था, आज अपने को शिक्षक कहने में भी लोगों को लज्जा का अनुभव होता है। आज शिक्षक का पेशा सबसे गर्हित समझा जाता है। दूसरे पेशेवालो से कम सुविधाएँ प्राप्त होना ही इसका एकमात्र कारण नहीं है, शिक्षक के प्रति उदासीनता का प्रमुख कारण है—शिक्षण के क्षेत्र मे ऐसे अवांछित तत्त्वों का प्रवेश, जो शिक्षा के मर्म को नहीं जानते और जिनमे बौद्धिक एव चारित्रिक, सभी प्रकार की गरिमा का अभाव है। हम शिक्षक का चुनाव करते समय केवल उसकी डिग्री देखते हैं, हम उससे अन्य गुणों की अपेक्षा नहीं करते। प्रायः सभी शिक्षा-सस्थाओं मे ऐसे व्यक्तियों की भरमार है जिनमे शिक्षक बनने का गुण नहीं है। न तो किसी विषय का पर्याप्त ज्ञान ही है न तो उनके पास वह प्रेरणाप्रद व्यक्तित्व ही है, जो मन पर अमिट छाप डाल सके। वे केवल इसलिए शिक्षक माने जाते हैं कि उनके पास न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता का प्रमाणपत्र है और वे शतरंज की उन सभी चालों से परिचित हैं, जो दूसरों को मात दे सकें। भला ऐसे शिक्षक का कौन आदर करेगा। ऐसे शिक्षक अपने विद्यार्थियों को कौनसी प्रेरणा दे सकेंगे? वे व्यवहार-कुशल कहे जा सकते हैं। वे दूसरों को रिझा सकते हैं। वे खुशामद के द्वारा प्रबंध समिति के सदस्यों को अपनी तत्परता का बोध करा सकते हैं और अपने कुत्सित आचरण से सारी संस्था के जीवन को विषाक्त बना सकते हैं, किन्तु वे स्वय आदर्शहीन होने के कारण नये आदर्शों की संस्थापना नहीं कर सकते।

आज के अध्यापक कुण्ठाग्रस्त हैं। जहाँ एक ओर अल्पज्ञ, अज्ञान एवं स्वार्थी लोगों ने हमारी संस्थाओं पर एकाधिकार स्थापित करने की होड़ लगा रखी है, वहीं सतत ज्ञान की साधना में लीन रहनेवाले निष्ठावान अध्यापक भय और अनिश्चितता की दारुण यत्रणा से पीड़ित हैं। वे चकित एव स्तंभित होकर नियति के क्रूर परिहास पर आँसू बहाते हैं। प्रबंध समिति के सदस्यों तक उनकी आवाज नहीं पहुँचती, क्योंकि वे पूर्वाग्रह से युक्त हैं और उलझे हुए हैं शतरंज की चालों में। काश हमारी शिक्षा सस्थाएँ नामधारी शिक्षकों के क्रूरपाश से मुक्त हो जातीं! किन्तु क्या यह सभव है?

हम भीषण दलदल में फँसे हुए हैं। हमारे योग्यतम शिक्षक अवसरवादी व्यक्तियों के कुचक्र के कारण अपनी प्रतिभा का सही उपयोग नहीं कर पा रहे हैं। हमारी शिक्षा सस्थाओं पर अयोग्य व्यक्तियों का नियत्रण है।

व्यक्तिगत सस्थाओं मे राजनीति का बोलबाला है। सत्ता की होड़ में हमारे अधिकांश शिक्षक अत्यन्त बर्बर आचरण पर तुले हुए हैं। विद्यार्थियों को परीक्षोपयोगी ज्ञान मात्र प्रदान कर वे अपना सारा समय शतरंज की चालों

मे व्यतीत करते हैं। गुटबंदियो और दलबंदियो के कारण विशुद्ध सेवा की भावना से शिक्षा के क्षेत्र मे प्रवेश करनेवाले व्यक्तियो को साक्षात नरक का दर्शन होता है। वास्तव मे कतिपय व्यक्तियो के निहित स्वार्थ ने अनेक शिक्षा सस्थाओ का जीवन इतना भयावह बना दिया है कि राजनीति से पराङमुख व्यक्ति के लिए घुटन सी पैदा होने लगती है, और कुछ हैं शिक्षक—राजनीतिज्ञ! विद्यार्थियो के सर्वांगीण विकास का उनके ऊपर दायित्व नहीं है। यह दायित्व तो केवल उनका है जो अनायास ही इनके कोपभाजन बनकर मानसिक सघर्षों से उत्पीडित होते रहते हैं। ये अपनी अल्पज्ञता को अनेक आवरणो से ढककर आदर्शों की दुहाई दे देकर अपनी महत्ता का आतक स्थापित करते हैं और सस्था के विकास में अनेक प्रकार की अड़चनें डालते हैं। ये अधिकार और मर्यादा के लिए सघर्ष करते हैं। सस्था के अन्तर्गत अपना पृथक् गुट बनाकर सुविधाओ का उपयोग करना चाहते हैं और अपने गुट के बाहर के लोगों को अपना शत्रु समझकर उन्हे उखाड फेंकने का प्रयास करते हैं। अस्तु, हमारी शिक्षा-सस्थाओ में एक ओर तो सत्ता का सघर्ष चला करता है और दूसरी ओर अस्तित्व का खतरा कर्मठ अध्यापको को सही दिशा मे अपनी मानसिक शक्ति का उपयोग नही करने देता। इन नामधारी शिक्षको से राष्ट्र का कितना हित हो सकता है विचारणीय है।

प्रश्न यह है कि यदि हमारी शिक्षा सस्थाएँ ऐसे व्यक्तियो के प्रभाव से मुक्त नहीं की जाती और प्रवृत्तया अध्यापन को जीवन का पवित्रतम उद्देश्य समझनेवाले निस्पृह और सच्चे शिक्षको को निरतर शोषण और अत्याचार का शिकार होना पडता है तो देश के लिए राष्ट्र के लिए इससे अधिक दुर्भाग्यपूर्ण और क्या बात हो सकती है! इन शिक्षक राजनीतिज्ञों ने शिक्षा के क्षेत्र को अत्यन्त दूषित बना दिया है। सस्थाओ मे इनका एकाधिपत्य है। वहाँ इनके कुनबे पलते हैं। प्रत्येक कर्तव्यपरायण शिक्षक इनके षडयन्त्रो का शिकार बनता है। ये जिससे रुष्ट हो उसका जीवन दुखमय बन जाता है। इनमें ज्ञान अथवा चरित्र का वैशिष्ट्य नही होता। ये कूटनीति के पडित होते हैं। ये सस्थाओ के भाग्यनिर्माता हैं व्यक्तियो के भाग्यनिर्माता हैं। इनकी उपस्थिति, बाहुल्य, शक्तिश्वणना सभी शिक्षा के मार्ग में बाधक हैं किन्तु सचालको की दृष्टि में ये कुशल समझे जाते हैं। इस भाँति के शिक्षक समाज के, राष्ट्र के शत्रु है, फिर भी इन्हें असीम एव अपरिमित अधिकार प्राप्त है। ये प्रबधको के विश्वासभाजन बनकर अपना उल्लू सीधा करते हैं। ज्ञान और चरित्र की महत्ता ही क्या है, जब हमारी शिक्षा-सस्थाओ में प्रतिभा का सम्मान नही हो सकता?●

१२ दिसम्बर : बहत्तरवें जन्म-दिवस पर पुण्य-स्मरण

परमहंस बाबा राघवदास

विपदा के साथी, दीनों के बन्धु, दुर्बलों के रक्षक, युवकों के चरित्र-निर्माता, स्वतंत्रता के पुजारी, त्यागमूर्ति बाबा राघवदास जनता के लिए देवतुल्य मानव थे। मँझोला कद, चौड़ी छाती, पतली कमर, गेहुँआ रंग, ज्योतिष्मान चेहरा, सिर और दाढ़ी के बड़े बिखरे बालों के बीच तेज चमकीली आँखें! आजादी की लड़ाई के दौरान कभी कभी बाल घुटवा देते तो चेहरे की दीप्ति और बढ़ जाती। गले मे बँधी तुलसी की नन्ही कण्ठी जिस पर लोगों की दृष्टि प्रायः नहीं पड़ती थी, उन्हें कर्तव्य की याद दिलाती रहती। नंगे धड़ पर श्वेत खादी की चादर और नीचे लगोंट के ऊपर वैसा ही शुभ्र कौपीन। बड़ा आकर्षक व्यक्तित्व था उनका। वह अपने हाथ से कते सूत का ही कपड़ा पहनते। उसे अपने हाथ से चमकाकर धोते। आग्रह करने पर भी दूसरों से अपनी सेवा कभी नहीं करायी। उनका घर और कार्यालय उनके कन्धे पर रहता था। जहाँ बैठते, जल्दी से 'यरवदा' चरखा खोलकर सूत कातने लगते। उनकी सारी क्रिया तेजी और फुर्ती से होती। वह एकसाथ जल्दी-जल्दी कई काम करते। तेजी से चलते, तेजी से बोलते, तेजी से लिखते-पढ़ते। मानो भागते हुए समय के एक-एक पल को दौड़ाकर पकड़ लेना चाहते हों। यही छोटा-सा परिचय है बरहज के परमहंस बाबा राघवदास का।

बाबा राघवदास प्राय ३ बजे उठ जाया करते थे। पहर रात रहते ही वह नहा-धो, पूजा-पाठ कर काम में लग जाते और दिन भर काम करते रहते। काम, निरन्तर काम, नये-नये लोकोपयोगी काम। काम ही से तो आदमी की दुनिया बनती और सजती है।

बाबाजी का सबसे बड़ा गुण था कि वह गनगनाकर चलते, तिलमिलाकर देखते, छटपटाकर सोचते और झनझनाकर काम करते। सुस्त शिथिल यात्री वह नहीं थे। अपनी अदम्य साधना से 'चरैवेति' को उन्होंने साकार कर दिया।

सन् १६५१ मे विनोबाजी ने भूदान आन्दोलन शुरू किया। काल-प्रवाह के विरुद्ध होते हुए भी विनोबा के भूदान आन्दोलन को देश की जनता का प्यार मिला। उसी प्यार की लहर ने बाबा राघवदास को विनोबाजी से मिला दिया। उत्तर प्रदेश मे विनोबाजी ने सन् १६५२ में ११ महीने पदयात्रा की। ४२ जिलो मे ३००० मील पैदल घूमे। बाबा राघवदास उनकी इस पदयात्रा के अग्रिम दस्ते के नायक थे। ६ अप्रैल १६५५ को २ वर्ष की अखण्ड पदयात्रा का सकल्प लेकर उन्होने अपना बरहज आश्रम छोड़ा और यह घोषित किया कि जबतक भूदान की समस्या हल नही होगी, अपने आश्रम पर नही लौटूँगा। उन्होने लगभग १५ हजार मील की भूदान-पदयात्रा की। १०० ग्रामदान, ५० हजार एकड़ भूमि, ४८ हजार रुपये नकद, ४० हजार रुपये की सम्पत्ति, २००० मन अन्न, ४० जोडी बैल, १४०० वृक्ष, ३० कुएँ, १५ मकान और २०० खेती के औजार उन्हें दान मे मिले।

बाबा राघवदास की अन्तिम साँस भूदान के पवित्र पथ पर चलते-चलते टूटी। मध्यप्रदेश में जाकर वहाँ के आदिवासियो की गरीबी देखकर वह अपने को और भूल गये। सिवनी में मध्यप्रदेश का सर्वोदय सम्मेलन होने जा रहा था। बाबाजी उसका उद्घाटन करने गये। जाड़ा खूब पड रहा था। कपडे उनके पास बहुत थोड़े थे। पाँव नंगे, सिर नगा, धड नंगा, आग का भी सेवन नही। फलस्वरूप ८ जनवरी को बाबा राघवदास के फेफडो में शीत समा गया। ज्वर की हालत में भी बाबाजी ने सम्मेलन की कार्यवाही मे पूरा योगदान दिया। १२ जनवरी को वे शय्यारूढ़ हो गये और १५ जनवरी १६५८ को जब सूर्य उत्तरायण हो गये तो गीता का अन्तिम श्लोक समाप्त होते-होते उनके प्राण-पखेरू रात में ११ बजकर २० मिनट पर उड गये। इस प्रकार चलते चलते चल बसे बाबा राघवदास।

याद आ गयी वे पंक्तियाँ, जिन्हे एक फकीर ने स्वामी सत्यानन्द के आश्रम पर सुनायी थी

> अगर दिल गिरफ्तार है मखमसों[1] में,
> तो खिलवत[2] भी बाजार से कम नहीं है,
> मगर जिसके दिल को है एक सूई[3] हासिल
> तो वह अन्जुमन[4] में भी खिलवत नहीं है।

---

१ दुनियादारी, २. एकान्त, ३ एकाग्रता, ४. भीड़भाड़ मजलिस।

बाबा राघवदास का जन्म पूना के माहुले मुहल्ले मे बेलगाँव तहसील के पाच्छापुर गाँव से आकर बसे हुए संभ्रान्त ब्राह्मण परिवार मे १२ दिसम्बर १८९६ को हुआ। यह वही पाच्छापुरकर परिवार था जो बाजीरावपेशवा तक को कर्ज दिया करता था। इनका बचपन का नाम राघवेन्द्र था। राघवेन्द्र के पिता का नाम शेषो दामोदर और माता का नाम यशोदा देवी था। राघवेन्द्र के चार भाई और तीन बहनें थी। इस प्रकार शेषप्पा पाच्छापुरकर के आठ सन्तानें थी। राघवेन्द्र पाँचवें पुत्र थे। माता पिता धार्मिक भावना के थे। समाज में उनका बडा आदर था।

भाई-बहनो के बीच बड लाड प्यार से वह पल रहे थे। माता का उन पर विशेष स्नेह था। उसी समय परिवार के ऊपर वज्रपात हुआ। एक एक करके भाई, बहन, माता और पिता, सभी को प्लेग ने अपना ग्रास बना लिया! केवल बचे रहे राघवेन्द्र और छोटा भाई यादवेन्द्र। लाशो से पटे घर को बन्द कर ड्योढी पर दोनों भाई थे। अकस्मात् यादवेन्द्र भी ज्वराक्रान्त हुआ। राघवेन्द्र नदी से पानी लाकर उसे पिलाते, घण्टो रोते, फिर भी धैर्य नही छोडा। दो दिन बाद छोटा भाई भी मौत की गोद में सो गया! बहनोई को जब पता चला तो उन्होने राघवन्द्र को अपने यहाँ कर्हाड बुला लिया।

बम्बई में राघवेन्द्र ने एफ० ए० तक की शिक्षा पूरी की। उपनिषद और दर्शन की ओर वही उनकी रुझान हुई। स्वामी विवेकानन्दजी के जीवन, कर्म और वाणी का उनके जीवन पर गहरा असर पडा था। तिलक और पराजपे ने राघवेन्द्र के कोमल हृदय में स्वराज्य और संस्कृति का बीज बोया, जो आगे चलकर बाबा राघवदास की कठिन स्वराष्ट्र साधना के रूप मे विकसित हुआ। ११ फरवरी १९१३ को राघवेन्द्र ने अपनी मशा के अनुरूप सिद्ध गुरु की खोज में महाराष्ट्र छोड दिया।

उत्तर प्रदेश और महाराष्ट्र का सम्बन्ध बहुत पुराना है। बम्बई में देवीसिंह के अखाडे में देशभक्त युवको से काशी, प्रयाग, हरद्वार और उत्तरकाशी के सन्तों की चर्चा सुनी थी। वह बम्बई से हरद्वार, मथुरा वृन्दावन होते हुए प्रयाग आये। प्रयाग के हडिया नामक गाँव मे एक बगीचे में कुछ दिन रहे। प्रयाग से काशी आये। दशाश्वमेध घाट पर हो रही मराठी सत्सग चर्चा में उनके मामा और मामी ने उन्हे पहचान लिया। किसी तरह से टाल टूलकर उन्होने अपना पीछा छुडाया। काशी से गाजीपुर के मौनी बाबा के यहाँ चले गये। मौनी बाबा

के यहाँ मुंशी राम एकबाल लाल से मुलाकात हुई। मुंशीजी के साथ गडवार (बलिया) गये। गडवार से ६ मिल दक्षिण इन्द्रपुर की कुटी पर बाबा नारायणदास के साथ भी कुछ दिन रहे। इन्द्रपुर से मऊ हरसेनपुर पहुँचे और यहीं पर बरहज में सिद्ध योगी अनन्त महाप्रभु का परिचय मिला।

योगिराज अनन्त महाप्रभु की आयु १३७ वर्ष थी। उनके दीर्घकाय, लम्ब वर्ण, विशाल नेत्र देदीप्यमान मस्तक और निर्मल स्मित का युवक राघवेन्द्र पर गहरा प्रभाव पड़ा। योगिराज कभी सोते नहीं थे। राघवेन्द्र सात दिन, सात रात जागकर उन्हें देखते रहे और कभी सोते नहीं देखा। राघवेन्द्र को लगा कि उन्होंने अपना गुरु पा लिया। बस, वे बरहज में आकर रहने लगे।

जीवन में कुछ ऐसे क्षण आ जाते हैं जो अपनी अमिट छाप मन और विचार पर छोड़ जाते हैं, फिर उनकी प्रतिक्रिया आचरण में प्रकट होती है। इसे ही जीवन का मोड़ कहते हैं। बाबा राघवदास के जीवन में प्रारम्भ से ही इस तरह अनेक मोड़ आये, जिनके कारण उनकी प्रकृति दृढ़ एवं दृढ़निष्ठ होती गयी। बात उन दिनों की है जब मैं कालेज में अध्ययन कर रहा था। सुना कि बाबाजी आनेवाले हैं। मुझे उनके विचारों में जो विनम्र खोखलापन रहता था वह शैली बहुत प्रिय थी। और यह भी सुना था कि बाबा राघवदासजी हमारी पुरानी पीढ़ी के उन त्यागी, तपस्वी और पुरुषार्थी गुरुजनों में से हैं जिन्होंने देश की स्वतन्त्रता के लिए अपना सब कुछ न्योछावर करने का दृढ़ संकल्प किया था। वे आये और उनके दर्शनों ने हमारी जीवन दिशा ही मोड़ दी। हमारे मानस पर आज तक उनका प्रभाव ज्यों का त्यों प्रतिष्ठित है।

साधारण कोटि के लोगों से बाबाजी में विशेषता यह थी कि दरिद्रनारायण की प्रचण्ड सेवा करते हुए भी उनमें निर्लिप्तता का भाव अनुपम था। घर-द्वार छोड़कर बरहज आश्रम को तिलांजलि देने के बाद भी अवसाद की एक क्षीण रेखा तक उनमें नहीं दिखाई पड़ी। उनका दिल और दिमाग दोनों ही बहुत मजबूत थे। और, यह इसलिए हुआ कि बचपन से ही दुख व संघर्षों के बीच उनका अस्तित्व रहा है।

उनके स्वभाव में ईमानदारी साक्षात् मूर्तिमान थी। जिन जिन संस्थाओं के चलाने का भार उन पर डाला गया उनमें जबतक दरिद्रनारायण की सेवा का भाव रहता था तबतक बाबाजी साथ रहते थे जहाँ गरीबों के नाम पर जाल बट्टा होने का आभास मिलता था तो वे सुधार कर देते या फिर उसे एकदम छोड़ देते थे। एक दिन की बात है

अलीगढ जिले मे उनकी पदयात्रा चल रही थी। मन, वाणी व कर्म से भूदान-कार्य मे वे रत थे। फिर भी कभी कभी जब वे विचारमग्न होते तो वर्तमान शासन और स्वशासी संस्थाओ के बारे मे सोचते। उनके दिव्य ललाट पर उभरी वक्र रेखाएँ गंभीर चिंतन का आभास दे रही थीं। सवेरा हुआ। ४ बजे सारी क्रिया से निवृत्त होकर पत्र लिखने लगे। एक-दो तीन नही, पूरे १०५ पत्र उन्होंने लिखे। विचार-मंथन का नवनीत यह था कि प्रदेश और देश की अनेक संस्थाओं के वे सदस्य अथवा संचालक थे, सबसे त्यागपत्र दे दिया। आज के लोगो में संस्थाएँ बनाने और उनसे चिपटे रहने की लिप्सा के लिए बाबाजी का त्याग आदर्श प्रस्तुत कर रहा है।

एक दूसरी भी चीज है, जिसने सबको प्रभावित किया है। वह है अपनी न्यूनतम सुविधा के लिए भी बेफिकर रहना। दूसरो का छोटा सा भी कष्ट उनके लिए पहाड जैसा होता और अपना तो बडा से-बडा दु:ख भी उन्होने तृण के समान समझा। ये सारे गुण उनमें अलौकिक थे, जिनकी तुलना मे आज कोई दिखाई नही देता।

अत्याचार और अन्याय को वे एक क्षण भी बरदाश्त नहीं कर सकते थे। वे किसी भी अधिकारी अथवा प्रभावशाली व्यक्ति के कदाचार का डटकर विरोध करते थे और तबतक दम नही लेते थे जबतक जनता के मुआफिक निर्णय नहीं करा लेते थे। इस प्रकार के दृढ़, नैष्ठिक एव आदर्श चरित्र का अभाव हो जाने से ही देश की वर्तमान दुर्दशा है। उनके साथ जिन लोगो ने काम किया है उनमें बाबाजी का जरा-सा भी अश नहीं मिलता।

परमहस बाबा राघवदासजी का बहत्तरवाँ जन्म दिवस १२ दिसम्बर को एव ग्यारहवीं पुण्यतिथि १५ जनवरी को मनायी जायगी। ऐसे अवसर पर हम सबको चाहिए कि बाबाजी की हिमालय की-सी उच्चता, समुद्र-सी गहराई, गंगा-सी पवित्रता और मातृवद् सरलता को हृदयगम करें तथा जिन उद्देश्यो की खातिर बाबाजी जिये और मरे उनको पूर्ण करने में हम प्राणपण-से जुट जायँ।

विनोबाजी की आकांक्षा "प्रदेशदान" की पूर्ति के लिए बाबाजी अगर आज होते तो क्या वे दूसरे दूसरे व्यर्थ के कामों में अपना समय गंवाते फिरते? उनका तो सारा जीवन ही तूफानमय था, फिर क्यों आज इस प्रदेश में 'तूफान' खडा नहीं हो रहा है? जिस प्रकार बाबाजी ने विनोबाजी के भूदान-आन्दोलन को अपना जीवन लक्ष्य बना लिया था और भूदान-कार्यक्रम संस्था का नहीं जनता का हो गया था, आज क्यो नहीं बाबाजी की आत्मा की शान्ति के लिए सब लोग एकसाथ खडे हो जाते? —कपिल अवस्थी

श्री धीरेन्द्र मजूमदार—प्रधान सम्पादक
श्री वशीधर श्रीवास्तव
श्री राममूर्ति

वर्ष : १७
अक : ५
मूल्य : ५० पैसे

अनुक्रम

दिसम्बर, '६८

निवेदन

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- 'नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा छः रुपये है और एक अक के ५० पैसे।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक-संख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- रचनाओ में व्यक्त विचारो की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट सर्व सेवा सघ की ओर से प्रकाशित, अमल कुमार बसु इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि०, वाराणसी-२ में मुद्रित।

नयी तालीम : दिसम्बर '६८

पहले से डाक-व्यय दिये बिना भजने की अनुमति प्राप्त

लाइसेंस न० ४६ रजि० सं० एल १७२३

गांधी-शताब्दी-वर्ष १९६८-६९

गाधी विनोबा क ग्राम स्वराज्य का सदेश गाँव गाँव, घर-घर पहुचाने के लिए निम्न सामग्री का उपयोग कीजिए .

पुस्तकें—

(१) जनता का राज्य—लेखक श्री मनमोहन चौधरी, पृष्ठ ६२ मूल्य २५ पैसे

(२) Freedom for the Masses—लेखक श्री मनमोहन चौधरी जनता का राज' का अनुवाद, पृष्ठ ७६, मूल्य २५ पैसे

(३) शांतिसेना परिचय—लेखक श्री नारायण देसाई, पृष्ठ ११८, मूल्य ७५ पैसे

(४) हत्या एक आकार की—लेखक श्री ललित सहगल, पृष्ठ ६६, मूल्य रु० ३ ५०

(५) A Great Society of small Communities—ले० सुगत दासगुप्ता, पृष्ठ ७८ मूल्य रु० १० ००

फोल्डर—

१-गाधी गाँव और ग्रामदान
२-गाधी गाँव और शान्ति
३-ग्रामदान क्यो और कैसे ?
४-ग्रामदान क्या और क्यो ?
५-ग्रामदान के बाद क्या ?
६-ग्रामसभा का गठन और कार्य
७-गाँव गाँव म खादी
८-सुलभ ग्रामदान
९-देखिए ग्रामदान के कुछ नमूने
१०-गाधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम

पोस्टर—

१-गाधी ने चाहा था सच्चा स्वराज्य
२-गाधी ने चाहा था स्वावलम्बन
३-गाधी ने चाहा था अहिंसक समाज
४-ग्रामदान से क्या होगा ?
५-गाधी जन्म शताब्दी और सर्वोदय-पत्र

प्रदेश के सर्वोदय सगठनों और गाधी-जन्म शताब्दी समितियों स सम्पर्क करके यह सामग्री हजारो लाखो की तादाद मे प्रकाशित वितरित कराने का प्रयत्न करना चाहिए।

शताब्दी समिति की गाधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति टु कलिया भवन कुन्दीगरो का भैंरू जयपुर ३ (राजस्थान) द्वारा प्रसारित

आवरण मुद्रक गण्डलवाल प्रेस, वाराणसी।